समर्पण

★

गोलोकवासी

पूज्य पिता

श्रीबल्देवदास जी की स्मृति में

उनके पुत्र द्वारा

सादर

समर्पित

नम्र निवेदन

गोलोकवासी पूज्य पिताजी को कथा तथा भजन सुनने में अत्यधिक रुचि थी और प्रायः उन्होने सभी पुराणो की कथा सुनी भी थी। नित्य ही घंटे आध घंटे वे भजन सुनते थे और इसके लिए भजनो के अनेक संग्रहग्रंथ भी एकत्र हो गए थे। सुनने तथा इन ग्रंथो के पढने से इस ओर मेरी भी रुचि हो गई थी। यद्यपि मेरा परिवार नवद्वीप के श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु के संप्रदाय मे दीक्षित चला आता है पर मेरी माता वल्लभ संप्रदाय मे दीक्षित थीं अतः उस संप्रदाय के संबंध में भी कुछ जानकारी थी। अष्टछाप के सुकवि-भक्तो के भजन-संग्रहो के अनुशीलन का भी अवसर बराबर मिलता था। हिंदी-सेवा का व्रत लेने पर इन कवियों की रचनाओ की प्राचीन हस्तलिखित तथा छपी प्रतियो के संग्रह करने का भी उत्साह हुआ और दैवयोग से नंददासजी की रचनाओं की दोनो प्रकार की अनेक प्रतियॉ मुझे प्राप्त हुईं, जिससे लगभग दस वर्ष के हुए कि इनकी रचनाओ के संपादन का विचार हुआ। यह कार्य आरंभ भी हुआ और पहले इनके संबंध मे कई लेख भी पत्रिकाओ में प्रकाशित कराए।

इसी बीच में प्रयाग विश्वविद्यालय ने नंददासजी की दो रचनाएँ अनेकार्थ मजरी तथा मानमंजरी प्रकाशित कीं, जिनमें बहुत अशुद्धियॉ रह गई थी। इस पर मैंने एक लेख हिंदुस्तानी एकैडमी प्रयाग की पत्रिका में प्रकाशित कराया जिससे वह संस्करण काट दिया गया और उसके अनतर नंददासजी के समग्र ग्रंथ दो भागो में उसी विश्वविद्यालय से प्रकाशित हुए। यह बडे अध्यवसाय तथा छानबीन के साथ प्रस्तुत किया गया है और विद्वान संपादको ने बड़े परिश्रम के साथ जहॉ जहॉ साधन प्राप्त हुए वहॉ से उन्हे एकत्र कर इसका संपादन किया है।

नंददास ग्रंथावली को प्रकाशित करने के लिए काशी नागरी प्रचारिणी

सभा ने वचन दिया था पर धनाभाव से वह बहुत दिनो तक प्रकाशित करने में असमर्थ रही। दो वर्ष हुए कि प्रांतीय सरकार ने सभा को दो सहस्र रुपए प्राचीन ग्रंथों को प्रकाशित करने के लिए दिए, जिससे इस ग्रंथ की छपाई में हाथ लगा दिया गया था परंतु अनेक विघ्नों के कारण इसकी छपाई में बहुत समय लग गया। अस्तु, इस प्रकार यह ग्रंथावली प्रकाशित हो गई। इसमें अभी अनेक त्रुटियाँ रह गई हैं, जो आगे के संस्करणों में दूर की जायँगी।

विनीत

व्रजरत्नदास

विषय-सूची

भूमिका	पृष्ठ-संख्या
१. विषय-प्रवेश	१–४
२. नंददास की जीवनी	४–२३
३. रचनाएँ	२३–३०
१. रास पंचाध्यायी	३१–३५
२. सिद्धांत पंचाध्यायी	–३६
३–४ अनेकार्थमंजरी तथा मानमंजरी	–४५
५. रूपमंजरी	–४६
६. रसमंजरी	–४८
७. विरहमंजरी	–४८
८. भ्रमर गीत	–४६
६. गोवर्द्धनलीला	–५०
१०. श्यामसगाई	–५०
११. रुक्मिणीमंगल	–५१
१२. सुदामाचरित	–५१
१३. भाषा दशमस्कंध	–५२
१४. पदावली	–५३
४. आलोचना	५३–१२१
ब्रजभाषा और उसका व्यापकत्व	५५–५६
भाषासौष्ठव	–५८
भक्तिभावना	–६०
गोपनीय राधतत्व	–६८
प्रेम-भक्ति	–७२
रासलीला	–७५
पंचाध्यायी	–८४
रूपमंजरी	–६२

विरहमंजरी तथा रसमंजरी —१०५
भ्रमरगीत —११०
श्यामसगाई —१११
रुक्मिणीमंगल —११४
भाषा दशम स्कंध —११७
गोवर्द्धनलीला तथा सुदामा चरित —११८
पदावली —१२१

मूल रचनाएँ

रासपंचाध्यायी १—३०
श्रीकृष्ण-सिद्धांत-पंचाध्यायी ३१—४०
अनेकार्थ-ध्वनि मंजरी ४१—६५
नाममाला ६६—१०२
रूपमंजरी १०३—१२५
रसमंजरी १२६—१४१
विरहमंजरी १४२—१५१
भ्रमर गीत १५२—१६६
गोवर्द्धनलीला १६७—१६९
स्याम-सगाई १७०—१७४
रुक्मिणी-मंगल १७५—१८५
सुदामा चरित १८६—१८८
भाषा-दशम स्कंध १८९—२७८
पदावली २७९—३४२
टिप्पणी ३४३—३८०
सहायक ग्रंथ-सूची ३८१—३८४
पदानुक्रमणिका ३८५—३९१

भूमिका

१. विषय-प्रवेश

सात शताब्दियाँ व्यतीत हो गई जब कि हिंदुओं के स्वातंत्र्यसूर्य के अस्त होने के साथ साथ हिंदी साहित्येतिहास का वीरगाथा-काल भी प्रायः समाप्त हो गया। मुसल्मानों के अस्थायी आक्रमणों के बाद उनके छोटे छोटे राज्य स्थापित हुए और बाद को दिल्ली की सल्तनत जमी, जिससे भारतीय हिंदू राजवंशों की सत्ता उत्तरापथ मे प्रायः मिट सी गई। सं० १२६३ में दास वंश का राज्य आरंभ हुआ और क्रमशः अनेक पठान राजवंशो के तीन सौ वर्षों तक राज्य करने के अनंतर मुगल राज्य वंश स्थापित हुआ, जिसका अंत अभी बड़े बलवे के समय हुआ है। इन प्रधान मुसलमान राजवंशो के सिवा और भी छोटे मोटे अनेक मुसल्मानी राज्य इतर स्थानों में स्थापित होते तथा बिगड़ते रहे और इनके संपर्क का राजनीतिक स्थिति-परिवर्तन के साथ भारत के सामाजिक तथा धार्मिक परिस्थितियो पर बहुत प्रभाव पड़ा। इस प्रभाव की भारतीय भाषाओं पर भी पूरी पूरी छाप पड़ी है। जब हम अपने देश की रक्षा न कर सके और जब इन आगंतुक शत्रुओं ने धर्मांधता के कारण हमारे सामने ही हम लोगो के उपासना गृहों देवमंदिरो तथा पाठशालाओं को यथाशक्ति नष्ट भ्रष्ट किया और हमारे पूज्य महात्माओं तथा ग्रंथों का अपमान किया और हम लोग सिवा देखते रहने के कुछ प्रतीकार भी न कर सके तब हम हिंदुओं के हृदय में हमारा आत्मगौरव, उत्साह तथा शौर्य अंतर्हित सा हो रहा। जब हम साहस तथा वीरता के कार्य करने में अशक्त हो गए तब वीर-गाथाओं की रचना या श्रवण करना हमारे लिए संभव नहीं रह गया। ऐसी दशा में सर्व आशामय भगवान की सुरक्षिणी पर असुर-विनाशिनी शक्ति की ओर दृष्टि लगाकर अर्थात् सगुणोपासना कर हम अपने हृदय को सांत्वना देने की चेष्टा करने लगे। इन आगंतुकों की धर्मांधता, कट्टरपन तथा हठधर्मी यहाँ तक बढ़ी थी कि वे दूसरों को अपने अपने विचारानुसार अपने इष्टदेव की उपासना करने में पूरे बाधक बन बैठे। जरा जरा बहाने ढूँढ़-

कर वे मंदिर, अर्चन-पूजन, उत्सव आदि को भ्रष्ट करने में सदा प्रयत्नशील रहे। इन कारणों से निर्गुण उपासना की ओर भी जनसाधारण की रुचि बढ़ी। शांति-प्रिय हिंदुओं ने, जिनमें यह गुण बलात् उत्कर्ष को पहुँचा दिया गया था और जो अपने परमेश्वर को समग्र सृष्टि का स्रष्टा समझते आ रहे थे, मुसल्मानों से मेल मिलाने के लिये राम-रहीम की एकता का भी प्रस्ताव किया तथा कुछ सहृदय मुसल्मानो ने इसमें योग भी दिया पर वह प्रयास भी अब तक व्यर्थ ही सा हुआ। इसमें भी सूक्ष्मतः वही एकेश्वरवाद चल रहा था जिसकी भयंकर लीला का उनको नित्य अनुभव हो रहा था। हिंदू जनता स्वातंत्र्य, राज्य, वैभव आदि सब कुछ खोकर भी अपनी संस्कृति, सभ्यता आदि खोना नहीं चाहती थी और न खो सकती थी इसलिए उसने इस परिस्थिति-परिवर्तन से ईश्वरोन्मुख प्रेम अर्थात् भक्ति का आश्रय लिया और राम-कृष्ण की भक्ति का ऐसा प्रवाह बहा कि उससे सारा देश तरंगित हो उठा।

बौद्धकालीन तथा उसके पूर्व के कर्मकांड का समय व्यतीत हो चुका था और उसकी ओर से भी जनता का चित्त हट गया था। गृहस्थ गार्हस्थ्य-धर्म त्याग कर विरक्ति तथा ज्ञानमार्ग की ओर अग्रसर नहीं हो सकता था और वह उस उपासना की ओर आकृष्ट हो रहा था, जो गार्हस्थ्य धर्म निबाहते हुए पूरा हो सकता था। कुमारिल भट्ट तथा शंकराचार्य ने बौद्धधर्म का, उसी की जन्मभूमि से, निर्वासन कर दिया पर शंकर का अद्वैतवाद भी ज्ञान-प्रधान ही था। इनके दो शताब्दी अनंतर श्री रामानुजाचार्य का प्रादुर्भाव हुआ, जिन्होंने विशिष्टाद्वैत मत का प्रवर्तन किया। इन्हींने पहले पहल ज्ञान तथा उपासना का संमिश्रण किया और परब्रह्म परमेश्वर के त्रिगुणात्मक त्रिमूर्ति में से विष्णु भगवान के अर्चन-पूजन का उपदेश दिया। इसके बाद वैष्णवों के दो प्रधान दल हो गए—एक में त्रेतावतार श्रीरामचंद्रजी की तथा दूसरे में द्वापरावतार श्रीकृष्णचंद्रजी की उपासना चलाई गई। प्रथम के आचार्य श्रीरामानंदजी थे, जो श्रीरामानुजाचार्य के संप्रदाय में हुए और दूसरे के श्रीविष्णुस्वामी, श्रीमध्वाचार्य तथा श्रीनिंबार्काचार्य हुए। विष्णुस्वामी के अंतर्गत श्री वल्लभाचार्य तथा माध्वाचार्य के अंतर्गत श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु ने अलग अलग नवीन शाखाएँ चलाईं।

इस सगुण उपासना के साथ साथ नवीन परिस्थिति के अनुकूल निर्गुण उपासना की भी प्रथा चली। यह सामान्य भक्तिमार्ग था और इसकी भी दो शाखाएँ फूट निकलीं। ये दोनो एकेश्वरवाद को लेकर चलीं और दोनो ही के परमेश्वर निराकार होते भी सर्वगुण संपन्न माने गए। प्रतिमा-पूजन का इनमें वहिष्कार था, अतः वर्णव्यवस्था का इनमें किसी प्रकार का बंधन नहीं था। मूर्तिपूजा तथा जातिव्यवस्था इन दोनो पर इन पंथवालों ने खूब व्यंग्य-वाण छाड़े हैं। कभी ये ब्रह्मज्ञान छाँटते थे और कभी सगुण-उपासना की झलक दिखला देते थे, कभी एकेश्वर-वादी वनते और कभी अवतारों का वर्णन कर बैठते थे। ये प्रवर्त्तकगण केवल सभी जाति के हिंदुओं ही को नहीं मुसल्मानो तक को अपने मत मे लाने के लिए उसी ध्येय के उपयुक्त उपदेशमय मार्ग निकालना चाहते थे। इनमे एक मे ब्रह्मज्ञान का प्राधान्य है और दूसरे मे सूफी मतानुकूल अलौकिक प्रेम का।

प्रेम लौकिक (अर्थात् सांसारिक) तथा अलौकिक (अर्थात् दैवी, शुद्ध) दो प्रकार का होता है। सूफी इन्हीं दो को इश्कमजाजी तथा इश्क हक़ीक़ी कहते है और दूसरे ही को लेकर उस पंथवालो ने काव्य-रचना की है। ईश्वर को माशूक अर्थात् प्रियतमा मानकर ये प्रेमभक्त अर्थात् आशिकगण उसके विरह मे उसकी याद जीवन भर करते रहते थे और मिलन होना ही उनका ध्येय रहता था। हिंदी साहित्य में इस प्रकार की प्रेम गाथाएँ विशेषकर मुसल्मान सूफियो ने ही लिखी हैं और जिनमे प्रियमिलन की यह उत्सुकता तथा विह्वलता विशेष व्यापक रूप में व्यंजित की गई है, उसीका कवि इस प्रकार की रचना में अधिक सफल हुआ है। नंददासजी की एक रचना इसी प्रकार की एक प्रेमगाथा लेकर बनी है, जिसका उल्लेख आलोचना खंड मे किया जायगा।

सगुण उपासना मार्ग की एक मुख्य शाखा श्रीकृष्ण की भक्ति की है, जिसके प्रधान आचार्यो का ऊपर उल्लेख हो चुका है। इन आचार्यो में श्री विष्णुस्वामी के संप्रदाय के अंतर्गत श्री वल्लभाचार्य का जन्म चंपा-रण्य में वैशाख कृष्णा एकादशी सं० १५३५ वि० को हुआ था और आपाढ़ शुक्ला तृतीया सं० १५८७ को काशी मे इनका गोलोकवास हुआ। इन्होंने समग्र देश का पर्यटन कर अपने मत का प्रचार किया था।

इन्होंने वृंदावन ही में अपनी मुख्य गद्दी स्थापित की थी, जो इनके उपास्यदेव श्रीकृष्ण की लीलाभूमि थी। इन्होंने वात्सल्य भाव से श्रीकृष्ण की उपासना की थी अतः बालकृष्ण ही इनके उपास्यदेव थे। इनके प्रभाव से इनके शिष्य भक्त सुकवियों ने श्रीकृष्णलीला-संबंधी सहस्रों ऐसे अमृतमय मधुर पद कहे कि उनके श्रवण-पठन से जनसाधारण का हृदय आज भी भक्तिपूर्ण हो जाता है। इनके पुत्र गोस्वामी श्रीविट्ठलनाथजी ने अपने पिता के चार तथा अपने चार शिष्यसुकवियों को चुन कर अष्टछाप स्थापित किया था। सूरदास, कुंभनदास, परमानंददास तथा कृष्णदास इनके पिता के और नंददास, गोविंददास, छीतस्वामी तथा चतुर्भुजदास इनके शिष्य थे।

नंददास की जीवनी

उक्त अष्टछाप के प्रायः सभी कवियों की जीवनी के लिए जो साधन प्राप्त हैं वे साधारणतः सभी के लिए समान हैं और ये ऐसे हैं, जो जीवनी के लिए आवश्यक सभी बातों को निश्चयपूर्वक स्पष्टतः नहीं बतला सकते। भक्तकवि नंददासजी के विषय में भी वही बात है, पर कुछ अन्य साधन ऐसे और मिल गए हैं, जिनसे कुछ विशेष प्रकाश उनकी जीवनी पर पड़ने की आशा है। कवि ने स्वयं अपनी रचनाओं में अपने विषय में जो कुछ कहा है वह प्रायः नहीं के समान है और जनश्रुतियाँ तथा अन्य ग्रंथों में इनका जो उल्लेख हुआ है, उन्हीं सबको लेकर उनकी जीवनी की रूपरेखा प्रस्तुत करने का प्रयास किया जा सकता है।

परलोक की चिंता में मग्न भारतीय कवियों की, विशेषतः भक्त कवियों की, यह प्रवृत्ति रही है कि वे नाम के भूखे न होने से अपने इस नश्वर जीवन के विषय में कभी कुछ न लिखते थे और जो कुछ कहीं लिखा भी जाता है वह भी मानो इष्ट की भक्ति में भूलकर स्वतः लिख गया है। नंददासजी ने भी अपने विषय में कहीं कुछ नहीं लिखा है और जो कुछ उनके विषय में उनकी रचनाओं में मिलता है वह उनके इष्टदेव, गुरु, संप्रदाय, भक्त मित्र आदि ही के संबंध में है। यहाँ उनके ऐसे पदों तथा पदांशों को उद्धृत कर ऐसी ज्ञातव्य बातें संकलित की जाएँगी।

नंददासजी ने अपने दीक्षागुरु श्रीविट्ठलनाथजी के लिये कई पद कहे हैं, जिनमे उन्हे अधिकतर 'श्रीवल्लभ-सुत' तथा कहीं कहीं 'विट्ठलेश', नामो से स्मरण किया है।

१. प्रात समै श्रीवल्लभ-सुत के बदन-कमल को दरसन कीजै।

२. श्रीवल्लभ-सुत के चरन भजौ।
....
नंददास प्रभु प्रगट भये दोउ श्रीविट्ठल गिरिधरन भजौं।।

३. जयति रुक्मिनीनाथ पद्मावती-प्रानपति
विप्रकुल-छत्र आनंदकारी।
..........प्रगट अवतार गिरिराजधारी।।

४. भजौ श्रीवल्लभ-सुत के चरन।

५. श्रीलछमन घर बाजत आजु बधाई।
पूरन ब्रह्म प्रगटि पुरुषोत्तम श्रीवल्लभ सुखदाई।।

६. प्रकटित सकल सृष्टि आधार।
श्रीमद्वल्लभ-राजकुमार ।।

७. 'नंददास' प्रभु पट्गुन संपन श्रीविठलेश वरौ।

इस प्रकार के इतने ही पद मिले है, जिनमे नंददासजी ने अपने गुरु की स्तुति की है और इनमे एक पद गुरु के पिता श्रीवल्लभाचार्य के जन्म पर कहा गया है। प्रसिद्ध रासपंचाध्यायी के आरंभ मे श्रीशुकदेवजी की १४ रोलाओं मे वंदना है पर गोस्वामी विट्ठलनाथजी की वंदना नहीं है। अन्य दो रचनाओं में केवल गुरु शब्द आया है, नाम नही है।

१. श्रीगुरु चरन सरोज मनावौं। गिरि गोवर्धन-लीला गावौं।।
(गोवर्द्धन लीला)

२. श्रीगुरुचरण-प्रताप सदा आनंद वढ़ै उर।
(रुक्मिणी मंगल)

अन्य रचनाओ मे श्रीकृष्णस्तव से मंगलाचरण किया गया है या मंगल पद का अभाव ही है। तात्पर्य इतना ही है कि नंददासजी लक्ष्मण भट्ट के पुत्र श्रीवल्लभाचार्य, उनके पुत्र श्रीविट्ठलनाथजी तथा पौत्र श्रीगिरि-

धरजी में पूर्ण भक्ति रखते थे और दीक्षा लेने के बाद सदा उनकी सेवा में रहते थे। आश्चर्य तो यह है कि अपनी प्रबंध रचनाओ में इन्होंने अपने गुरु का स्तवन नहीं किया है। क्या ये दीक्षा लेने के पहले की रचनाएँ हैं ?

नंददासजी ने चार पदो मे यमुनाजी की स्तुति की है और एक पद में गंगाजी का माहात्म्य साधारणतः वर्णन किया है। श्रीयमुनाजी उनके इष्टदेव श्रीकृष्ण को अत्यंत प्रिय थीं अतः उनकी विशेष प्रकार से स्तुति की है। आज भी श्रीनाथजी के चित्रपट के साथ सभी भक्त श्रीयमुनाजी का भी चित्र दर्शनार्थ लेते हैं। उन्हीं इष्टदेव की लीलाभूमि होने के कारण नददासजी ने गोवर्द्धन पर्वत, गोकुल, वृंदावन, नंदग्राम तथा व्रज और मथुरा नगर का बराबर पदो में वर्णन किया है। नंददासजी ने दो पदों मे राम कृष्ण का एक साथ स्तवन कर प्रगट किया है कि वास्तव मे दोनों एक हैं और लीला के लिए ही इन्होंने भिन्न भिन्न अवतार धारण किया था। हो सकता है कि अपने रामभक्त भाई के कारण प्रभावान्वित होकर ऐसा किया हो। कई पदो में हनुमानजी का स्मरण किया है।

नंददासजी ने अपनी कई रचनाओं के आरंभ में इस प्रकार लिखा है कि मानो वह अपने किसी मित्र की आज्ञा से या उसका प्रिय करने के लिये रचना करने बैठे थे। देखिए—

१. परम रसिक इक मीत मोहि तिन आज्ञा दीन्हीं।
   ताते मै यह कथा यथामति भाषा कीन्ही॥

   (रास पंचाध्यायी रो० १६)

२. एक मीत हम सों अस गुन्यो। मै नाइका-भेद नहि सुन्यो॥
   ....

   तासौं 'नंद' कहत तव ऊतरु। मूरख जन मन मोहित दूतरु॥

   (रसमंजरी)

३. परम विचित्र मित्र इक रहै। कृष्णचरित्र सुन्यो गो चहै॥

   (दशम स्कंध भाषा)

अनेकार्थ तथा नाममाला तो उन लोगो के लिए बनाया है, जो
उचरि सकत नहिं संस्कृत अर्थ ज्ञान असमर्थ। (अनेकार्थ)
उचरि सकत नहि संस्कृत जान्यो चाहत नाम॥ (नाममाला)

और इनमें उस मित्र को गिन लेना उचित नहीं ज्ञात होता। नंददासजी के यह मित्र कौन थे, जो रसिक थे और थे कृष्णलीला तथा नायिका भेद के जिज्ञासु। इनके मित्र कम न थे पर प्रायः सभी विद्वान् सुकवि तथा भक्त थे। भक्तों में सत्संग होता ही है और एक दूसरे से वे विचार विनिमय करते ही हैं पर किसी विषय को समझाने के लिये ग्रंथ रचना करने को अपने से अधिक विद्वान् तथा सुयोग्य व्यक्ति ही से प्रार्थना की जाती है। नंददासजी की एक मित्र स्त्रीभक्त रूपमंजरी का उल्लेख वार्ता मे आया है, जिससे यह बराबर मिला करते थे और जिसके नाम पर कहा जाता है कि इन्होंने एक प्रबंध काव्य भी रचा है। उसमें की एक पात्री इंदुमती यही नंददासजी कहे जाते हैं। अतः कहा जा सकता है कि यही रूपमंजरी नंददासजी की रसिक मित्र हैं, जिनके लिये इन्होने कई रचनाएँ लिखी है।

नंददासजी की रचनाओ से केवल उपर्युक्त बातो का पता लगता है और यह भी निर्विवाद रूप से ज्ञात होता है कि यह श्रीकृष्ण के भक्त थे। अब दूसरे लेखको की रचनाओं से नंददासजी की जीवनी-संबंधी वृत्तांत पर विचार किया जायगा।

प्रथम तथा प्राचीनतम जिस ग्रंथ में नंददासजी का उल्लेख हुआ है वह श्रीनारायणदास प्रसिद्ध नाम नाभादासजी का भक्तमाल है, जो भक्त-संप्रदाय में अत्यंत आदर के साथ देखा जाता है और साहित्य के इतिहास के लिये एक प्रामाणिक ग्रंथ है। नाभादासजी जयपुर के अंतर्गत गलतानिवासी अग्रदासजी के शिष्य थे और इनका रचनाकाल सं० १६४० और सं० १६८० के बीच में रहा है। भक्तमाल में दो नंददास का उल्लेख है, जिनमे एक के विषय में केवल एक पंक्ति इस प्रकार दी गई है—

नाभा ज्यो नॅददास मुई एक बच्छ जिवाई।

प्रियादासजी ने इसपर एक कवित्त में टीका की है, जिससे ज्ञात होता है कि यह बरेली निवासी एक भक्त थे और खेती करते हुए साधु-सेवा में लगे रहते थे। किसी दुष्ट ने बछवा मारकर इनके द्वार पर सुला दिया था, जिसे इन्होने जिला दिया। यह अष्टछाप के सुकवि नंददासजी नहीं हो सकते क्योंकि इसमें इनका स्थान दूसरा दिया है, यह

व्यवसायी कहे गए हैं और इनके कवि होने का संकेत तक नहीं है। दूसरे नंददासजी के विषय में निम्नलिखित छप्पय दिया गया है—

> लीला पद रस रीति ग्रंथ रचना में आगर।
> सरस उक्ति रस जुक्ति भक्ति रस गान उजागर॥
> प्रचुर पयधि लौं सुजस रामपुर ग्राम निवासी।
> सकल सुकुल संवलित भक्त-पद-रेनु-उपासी॥
> श्रीचंद्रहास-अग्रज सुहृद परम प्रेम पद में पगे।
> श्रीनंददास आनंदनिधि रसिक सु प्रभु हित रँग मगे॥

इस छप्पय पर प्रियादासजी की टीका में कुछ नहीं लिखा गया है, जिसका नाम भक्तिरसबोधिनी है और जो कवित्तों में लिखी गई है। यह सं० १७६९ में भक्तमाल की रचना के सौ वर्ष बाद लिखी गई थी। प्रियादासजी को स्यात् कोई नई वात ऐसी ज्ञात नहीं हो सकी थी कि वे उसको टीका में स्थान देते, अतः वे मौन रह गए। उक्त छप्पय की प्रथम दो पंक्तियों से यह ज्ञात होता है कि नंददासजी ने कृष्णलीला के पद तथा रस-रीति पर ग्रंथ लिखे हैं। इनकी रचनाओं को देखने से यह बहुत ठीक ज्ञात होता है। रसमंजरी तथा बिरह मंजरी रीतिग्रंथों के अंतर्गत ही आ सकते हैं और अनेकार्थ तथा नाममाला कोषसंबंधी हैं। रूपमंजरी आख्यानक रूप में होते भी कृष्णभक्ति से पूर्ण है तथा अन्य सभी रचनाएँ कृष्णलीला संबंधी है। इनकी कविता में उक्तियों का सारस्य तथा भक्ति रस की पूर्णता होना प्रसिद्ध ही है।

इसके बाद की तीन पंक्तियों से पता लगता है कि यह रामपुर के निवासी थे, शुक्ल या सु-कुल वंश में उत्पन्न हुए थे, भक्तों की सेवा करते थे, चंद्रहास-अग्रज-सुहृद थे तथा परम प्रेमपथ के पथिक थे। रामपुर स्थान के विषय में सूकरक्षेत्र माहात्म्य, रत्नावली चरित आदि से मालूम होता है कि यह एटा जिला के अंतर्गत सोरों गाँव के पास है, जिसे अब श्यामपुर कहते है और यह भी कहा जाता है कि यह नाम-परिवर्तन नंददासजी के कृष्णभक्त हो जाने के कारण हुआ है। इस विषय पर आगे उक्त पुस्तकों पर विचार करते समय कुछ विवेचन किया जायगा। सुकुल से अच्छे कुल का तथा शुक्ल आस्पदयुक्त ब्राह्मण होना दोनों अर्थ लिया जा सकता है पर द्वितीय अर्थ लेना ही विशेष

समीचीन है। भक्त के लिये अच्छे कुल का होना न होना इतने महत्व का न था कि नाभाजी को उसे लिखना आवश्यक होता पर निवास-स्थान का उल्लेख करते हुए जाति का लिख देना ही विशेष स्वाभाविक है। अन्य भक्तों के विषय में भी कहीं अन्यत्र उनके अच्छे कुल के होने का वर्णन नहीं किया गया है यद्यपि बहुत से भक्त सुवंशजात थे। श्रीचंद्रहास-अग्रज-सुहृद के कई अर्थ हो सकते हैं—

१. चंद्रहास के बड़े भाई के मित्र
२. चंद्रहास के प्रिय बड़े भाई
३. चंद्रहास जिसके प्रिय बड़े भाई थे

अंतिम दो से नंददास तथा चंद्रहास का भाई भाई होना स्पष्ट है, चाहे उनमें से कोई भी बड़ा रहा हो और यही अर्थ लेना युक्तियुक्त है। उस समय चंद्रहास नाम का कोई ऐसा प्रसिद्ध व्यक्ति और उसपर नंददासजी से बढ़कर प्रसिद्ध व्यक्ति नहीं पाया जाता, जिसका उल्लेख कर नंददासजी से बढ़कर प्रसिद्ध व्यक्ति नहीं पाया जाता, जिसका उल्लेख कर नंददासजी का परिचय दिया जा सके। राजनीतिक या साहित्यिक इतिहासों या भक्त-शृंखला किसी में तत्कालीन किसी प्रसिद्ध व्यक्ति का यह नाम नहीं मिलता। स्वभावतः किसी विशिष्ट पुरुष से संबंध बतलाकर परिचय देने की प्रथा अवश्य है पर चंद्रहास के ऐसा पुरुष होने का कहीं कुछ पता नहीं है इसलिए भाई भाई संबंध बतलाना ही ठीक ज्ञात होता है। अन्य साधनों से इसका कहाँ तक समर्थन होता है, यह बाद को देखा जायगा।

ध्रुवदासजी के बयालीस ग्रंथ प्रसिद्ध है, जिनमें एक भक्तनामावली है। इनका रचनाकाल सोलहवीं विक्रमीय शताब्दी का अंतिम भाग है। इनकी तीन रचनाओं में रचना का समय दिया है, जो सं० १६६३, सं० १६८६ तथा सं० १६९८ वि० है। भक्तनामावली के दोहे सं० ७७-७९ पर नंददासजी का इस प्रकार उल्लेख है -

नंददास जो कछु कह्यो राग-रंग सों पागि।
अच्छर सरस सनेहमय सुनत स्रवन उठ जागि॥
रमन दसा अद्भुत हुती करत कवित सुढ़ार।
बात प्रेम की सुनत ही छुटत नैन जलधार॥

वावरो सो रस में फिरै खोजत नेह की बात।
आछे रस के बचन सुनि बेगि विवस ह्वै जात॥

उक्त दोहों से अवश्य ही उनकी जीवनी पर कोई प्रकाश नहीं पड़ता, पर थोड़े शब्दों में एक भक्त कवि ने नंददासजी की काव्यकला, सहृदयता, प्रेम, भक्ति, रसिकता, तल्लीनता आदि पर पूरा प्रकाश डाल दिया है। साथ ही यह भी निश्चय रूप से वतला दिया है कि उनके समय तक अर्थात् आज से तीन सौ वर्ष पहले ही नंददास अपनी भक्ति तथा काव्य के लिए इतने प्रसिद्ध हो चुके थे कि उनका नाम इतने आदर से उक्त नामावाली मे ग्रथित किया गया।

व्रजभाषा में वल्लभ संप्रदाय की बीसों वार्ताएँ मिलती है, जिनमें दो 'चौरासी वैष्णवन को वार्ता' और 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' विशेप विशद और प्रसिद्ध हैं। इनमें प्रथम में वल्लभाचार्य के शिष्यों का और द्वितीय मे विट्ठलनाथजी के शिष्यों का विवरण है पर है सभी उनके गुरु के प्रति भक्ति की गाथा और साथ-साथ में कुछ गोविद के प्रति भी। इस कारण नंददासजी का उल्लेख द्वितीय ग्रंथ मे मिलता है। ये दोनो ग्रंथ विट्ठलनाथजी के लिखे हैं या नहीं, इनमें सदेह है पर यह निर्विवाद मान लेना चाहिए कि उनके लिखे हुए न होते भी उनस सुनी हुई वातों को किसी ने वाद में लिख डाला है और यही कारण है कि लेखक ने अपने गुरु के नाम का वरावर आदर के साथ उल्लेख किया है तथा कई स्थलों पर यह स्पष्टतः झलकता है कि कोई किसी से सुनी हुई वात लिख रहा है। प्रथम द्वितीय से प्राचीनतर है क्योंकि उसमें पूर्ववर्ती भक्तो का विवरण है। विट्ठलनाथजी का निधन सं० १६४४ में हुआ था अतः ये रचनाएँ उसी के आस-पास में प्रणीत हुई होंगी। इनकी प्राचीन हस्तलिखित प्रतियाँ प्राप्त नही हुई हैं, जिनसे इनके रचनाकाल का समय निश्चित किया जा सके और न इसके निश्चय करने के लिए इस भूमिका मे काफी स्थान है। प्रथम की दो खंडित हस्तलिखित प्रतियाँ मेरे संग्रह में है पर उनमे लिपिकाल नहीं दिया है। ये ग्रंथ जिस किसीने लिखे हों पर उसने उन भक्तो के प्रचलित तथा प्रख्यात वार्ताओं ही का समकालीन लोगों से तथा जन-श्रुति से सुनकर संकलित किया है और ये दो तीन शताब्दी से कम प्राचीन भी

नहीं ज्ञात होतीं अतः कम से कम इनमें दी हुई वार्ताओं में कोई शंका नहीं पड़ती।

दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता के डाकोर संस्करण के पृ० ७८-३५ पर नंददासजी का विवरण दिया है जिसका सारांश इस प्रकार है :—

नंददासजी तुलसीदास के छोटे भाई थे। यह अत्यंत विषयासक्त थे और नाच तमाशे में अवश्य पहुँचते थे। एक समय कुछ लोग श्रीरणछोड़जी के दर्शन को द्वारिका चले तब यह भी तुलसीदासजी की आज्ञा न मानकर यात्रा को चल दिए। यह मथुराजी सीधे पहुँच गए पर जिन लोगो के साथ यह वहाँ गए थे उनको छोड़कर अकेले आगे बढ़े, परन्तु रास्ता भूलकर सिंधनद में जा पहुँचे। वहाँ एक क्षत्री की वहू का रूप देखकर ये उसपर मोहित हो गए। यह नित्य वहाँ जाते और उसे देखकर चले आते। होते-होते यह बात सारे नगर मे प्रसिद्ध हो गई। उस स्त्री के घरवालो ने बहुत कुछ रोका-टोका, पर नंददास ने जब एक न माना तब उन लोगो ने उस स्थान को छोड़कर श्रीगोकुल में चलकर रहना ही ठीक किया और वे ग्राम छोड़कर चल दिए। नंददास भी पता लगाकर गोकुल की ओर चल पड़े और उन लोगो से दूर-दूर पीछे लगे चले। जमुनाजी के तट पर पहुँच वे तो नावपर पार उतरकर श्रीगोकुल में गोस्वामी श्रीविट्ठलनाथजी के पास पहुँच गए पर नंददासजी इसी पार बैठे रह गए। श्री गोसाँईजी ने कहा कि उस ब्राह्मण को तुम लोग उस पार क्यो छोड़ आए हो? यह सुन वे बड़े लज्जित हुए। तब श्रीगुँसाईजी ने अपने एक सेवक को भेजकर नंददासजी को बुलवाया। नंददासजी की आँखे श्रीगुसाँईजी के दर्शन करते ही खुल गई और उन्होने चरणों पर गिरकर दंडवत किया। श्रीगुसाईजी ने श्रीयमुना स्नान कराकर इन्हे इष्ट मंत्र दिया। इसके अनंतर यह महाप्रसाद लेने जो बैठे, तो लीला का जो अनुभव हुआ, तो सारी रात बैठे रह गए, पत्तल से न उठे। सबेरे श्री गसांईजी ने आकर कहा—'नंददास, उठो, दर्शन का समय हुआ।' तब उठे और श्रीगुसांई जी की वदना की ('प्रात समय श्री वल्लभ सुत को उठतहि रसना लीजिए नाम' आदि)। तब से यह दर्शन का आनन्द लेने और भगवद्गुणानुवाद मे लगे रहते। तुलसीदासजी ने जब यह समाचार

सुनकर नंददासजी को काशी से पत्र लिखा तब इन्होंने उत्तर दिया कि मैं क्या करूँ, श्रीरामचंद्रजी तो एक पत्नीव्रत हैं और श्रीकृष्ण अनंत पत्नियों के स्वामी है, अब तो सर्वस्व उनके अर्पण कर चुका। नंददासजी समग्र दशम भागवत की लीला छन्दोबद्ध भाषा में कर रहे थे। उसे देख मथुरा के कथा कहनेवाले ब्राह्मणों ने आकर श्री गोसाईंजी से विनती की कि इस ग्रंथ के बन जाने से हम लोगों की जीविका मारी जायगी, तब श्रीगुसांईजी की आज्ञा से इन्होंने भागवत की भाषा नहीं की। जब तुलसीदासजी वृंदावन गए, तब नंददास उनसे आकर मिले। तुलसीदासजी ने इनसे कहा कि हमारे संग चलो, पर यह नही गए। इसके अनंतर यह तुलसीदासजी को श्री गोबर्द्धननाथजी के दर्शन को लिवा ले गए पर इन्होंने सिर नहीं झुकाया, तब नंददासजी ने दोहा पढ़ा—

आज की सोभा कहा कहूँ भले विराजे नाथ।
तुलसी मस्तक तब नमे धनुष बाण लीओ हाथ॥

यह सुनकर श्री गोवर्धननाथजी ने श्रीरामचंद्र का रूप धरकर दर्शन दिया। इसके अनंतर जब तुलसीदासजी भाई के साथ गोस्वामी विट्ठलनाथजी के पास गए तब वहाँ भी उन्होंने सिर नही झुकाया इसपर नंददासजी के कहने से गोस्वामीजी ने अपने पुत्र श्री रघुनाथलाल जी तथा पुत्रवधू श्री जानकी बहू को आज्ञा दी कि तुलसीदास को श्री सीताराम का दर्शन दो। इसपर तुलसीदास को वैसा ही दर्शन मिला तब उन्होंने प्रसन्न होकर एक पद कहा, जिसका टेक इस प्रकार है—

बरनौ आवधि गोकुलग्राम।

उक्त सारांश से नंददास के विषय में इतना पता लगता है कि

१—वह तुलसीदास के भाई तथा ब्राह्मण थे। वार्ता के पाठांतर मे इनका सनाढ्य ब्राह्मण होना लिखा है।

२—गोस्वामी श्री विट्ठलनाथजी से दीक्षा लेने के पहले यह सौंदर्योपासक तथा लंपट थे पर बाद को अनन्य कृष्णभक्त हो गए।

३—दीक्षा के बाद सदा ब्रजमंडल में रहे पर पहले कहाँ रहते थे इसका पता नहीं है। अवश्य ही उनका स्थान अन्यत्र था।

४—भागवत दशम स्कंध का भाषानुवाद लिखते थे पर गुरु की आज्ञा से लिखना बंद कर दिया।

५—नंददासजी गायक तथा कवि थे।

६—तुलसीदासजी काशी से इनसे मिलने को ब्रज आए और इन्हें अपने साथ लिवा जाना चाहा पर यह नहीं गए।

'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' के पृ० ३५८-७ पर रूपमंजरी की वार्ता दी हुई है, जिसका सारांश इसी भूमिका में आगे रूपमंजरी रचना के विवेचन में दिया गया है। उससे ज्ञात होता है कि नंददासजी से रूपमंजरी से मित्रता थी और प्रायः उन दोनों का सत्संग रहा करता था। नंददासजी की मृत्यु अकबर के समय में हुई थी, जिसकी मृत्यु सं० १६६२ में हुई। गोस्वामीजी ने इनके तथा रूपमंजरी के देहत्याग की प्रशंसा की थी और उनका देहावसान सं० १६६६ में हुआ था अतः नंददासजी की मृत्यु सं० १६६० के पहले होना निश्चित है।

'श्रीगोवर्द्धननाथजी की प्राकट्य वार्ता' में अष्टछाप के कुल कवियों का नाम देकर लिखा गया है कि इन सभी भक्तों ने श्रीनाथजी के सम्मुख कीर्तन किए थे। नंददासजी की श्रीनाथजी की सेविका रूपमंजरी के साथ मित्रता थी और उसीके लिए रसमंजरी की रचना करने का भी उल्लेख है। नंददास कृत रूपमंजरी काव्य की नायिका रूपमंजरी यही इनकी मित्रिणी है और उसकी सहचरी इंदुमती स्वयं नंददास हैं। इस उल्लेख से नंददासजी के 'रसिक मित्र' का कुछ परिचय मिल जाता है।

इधर ही कुछ ऐसी रचनाएँ मिली हैं, जिनसे तुलसीदास तथा नंददासजी की जीवनी पर विशेष प्रकाश पड़ता है। रचनाकाल के विचार से इनमें रत्नावली-दोहा संग्रह प्रथम है, जिसमें रत्नावली के बनाए हुए १११ दोहे संगृहीत हैं। यह तुलसीदासजी की पत्नी थीं ऐसा दोहों से ज्ञात होता है। यह सोरों में अन्य कई रचनाओं

रत्नावली चरित, शूकरक्षेत्र माहात्म्य आदि के साथ पं० गोविंदवल्लभ पंत के पास सुरक्षित है। इस दोहा संग्रह की हस्तलिखित प्रति का लिपिकाल सं० १८७५ है। इसके कुछ दोहे नीचे दिए जाते हैं—

जासु दलहि लहि हरपि हरि हरत भगंत भव रोग।
तासु दास पद दासि है 'रतन' लहत कत सोग॥
वैर्स बारही कर गह्यौ सोरहिं गौन कराय।
सत्ताइस लागत करी नाथ 'रतन' असहाय॥
सागर कर रस ससि 'रतन' संवत मो दुखदाय।
पिय-वियोग जननी मरन करन न भूल्यो जाय॥
मोइ दीनो संदेश पिय अनुज नंद के हाथ।
'रतन' समुझि जनि पृथक मोइ सुमिरत श्रीरघुनाथ॥

तात्पर्य इतना निकला कि जिसके पत्र को लेकर प्रसन्न हो हरि भगवान भक्त के सांसारिक कष्ट दूर करते हैं उसके दास (तुलसीदास) की दासी रत्नावली है। इसका विवाह बारह वर्ष की अवस्था में, द्विरागमन सोलह में तथा त्याग सत्ताइसवाँ वर्ष लगते ही हुआ था। अंतिम घटना सं० १६२७ की है, जिस वर्ष में रत्नावली की माता की भी मृत्यु हुई थी। इसके पति ने अपने छोटे भाई नंद (या छोटे भाई के पुत्र) के हाथ संदेश भेजा था कि हे रत्नावली, मुझे अपने से अलग मत समझ, हम रघुनाथ का स्मरण कर रहे है (या पाठांतर से जो तू रघुनाथ का स्मरण करती है)।

जिस प्रकार तुलसीदासजी की यौवनकाल में स्त्री के प्रति आसक्ति प्रसिद्ध है प्रायः उसी प्रकार नंददासजी की भी विषयासक्ति थी और दोनों ही अपने इष्टदेव के प्रति झुकते ही सांसारिक माया-मोह से एकदम विरक्त हो पड़े। यह हो सकता है कि तुलसीदासजी पहले और नंददासजी बाद को विरक्त हुए हों। नंददासजी का सोरों से काशी तुलसीदास से मिलने जाना और तुलसीदास का नंददास से मिलने व्रज मंडल जाना दो सौ वैष्णव की वार्ता से स्पष्ट है। हो सकता है कि काशी से लौटते समय तुलसीदासजी ने अपनी पत्नी को नंददासजी के द्वारा संदेश भेजा हो और रत्नावली ने स्नेह के कारण नंददास का दोहे में केवल 'नंद' से स्मरण किया हो। उक्त उद्धरण से रत्नावली का जन्म

संवत् १६०० आता है और इसीके आसपास या विशेषकर कुछ पहले ही नंददासजी का जन्मकाल होना चाहिए।

अब तक ऊपर लिखे गए किसी भी साधन ग्रंथ में नंददासजी के किसी संतान के होने का उल्लेख नहीं मिला है। इधर हाल मे सूकरक्षेत्र माहात्म्य नामक एक रचना नंददासजी के पुत्र कृष्णदास कृत मिली है। इन नंददासात्मज कृष्णदास निर्मित एक ज्योतिषग्रंथ 'वर्षफल' भी प्राप्त हुआ है और उक्त भट्टजी के पास रामचरितमानस के बाल, अयोध्या तथा अरण्यकांडो की जो हस्तलिखित खंडित प्रतियाँ हैं वे इन्हीं कृष्णदास के लिये लिखी गई थी। अब इन तीनो के उद्धरणों से विवेचन किया जाय कि यह नंददास कौन हैं ? सूकरक्षेत्र माहात्म्य मे कुछ सोरठे इस प्रकार हैं, जो सं० १८७० की लिखी हस्तलिखित प्रति से उद्धृत किए जा रहे हैं। रचनाकाल सं० १६७० है।

वंदहुँ तुलसीदास पितु-चड़ भ्राता पद-जलज।
जिन निज बुद्धि विलास रामचरितमानस रच्यो॥
सानुज श्रीनँददास पितु की बंदहुँ चरन-रज।
कीनो सुजस प्रकास रासपंचअध्याथि भनि॥
बंदहुँ कृपा निकेत पितुगुरु श्रीनरसिह पद।
वंदहुँ शिष्य समेत वल्लभ आचारज सुपद॥
वंदहुँ कमला मात बंदहुँ पद रत्नावली।
जासु चरन-जलजात सुमिरि लहहि तिय सुरथली॥
सुकुल वंस द्विज-मूल पितरन पद सरसिज नमहुँ।
रहहि सदा अनुकूल कृष्णदास निज अंस गनि॥

इस ग्रंथ की रचना का समय इस प्रकार दिया है—

सोरह सौ सत्तर प्रमित संवत सित दल माँह।
कृष्णदास पूरन कर्‍यो क्षेत्र महात्म वराह॥

ग्रंथ के अंतिम भाग में वंशावली दस दोहों मे दी गई है—

खेत वराह समीप सुचि, गाम रामपुर एक।
तहँ पंडित मंडित बसत, सुकुल वंस सविवेक॥
पंडित नारायन सुकुल, तासु पुरुष परधान।
धार्‍यो सत्य सनाढ्य पद, ह्वै तप-वेद-निधान॥

शस्त्रशास्त्र विद्या कुशल, भे गुरु द्रोन समान।
ब्रह्मरंध्र निज भेदि जिन, पायो पद निर्वान॥
तेहि सुत गुरु ज्ञानी भये, भक्तपिता अनुहारि।
पंडित श्रीधर, शेषधर, सनक, सनातन चारि॥
भये सनातन देव सुत, पंडित परमानंद।
व्यास सरिस वक्ता तनय, जासु सच्चिदानंद॥
तेहि सुत आत्माराम बुध, निगमागम परवीन।
लघु सुत जीवाराम भे, पंडित धरम धुरीन॥
पुत्र आत्माराम के, पंडित तुलसीदास।
तिमि सुत जीवाराम के, नंददास चँदहास॥
मथि मथि वेद पुरान सब, काव्यशास्त्र इतिहास।
रामचरितमानस रच्यो, पंडित तुलसीदास॥
वल्लभ-कुल वल्लभ भये, तासु अनुज नँददास।
धरि वल्लभ आचार जिन, रच्यो भागवत रास॥
नंददास सुत हौं भयो, कृष्णदास मतिमंद।
चंद्रहास बुध सुत अहै, चिरजीवी व्रजचंद॥

उक्त उद्धरणों का सार इतना हुआ कि शूकर क्षेत्र के पास रामपुर ग्राम में शुक्ल वंश के नारायण पंडित ने सनाढ्य पद धारण किया, जिनके चार पुत्र श्रीधर, शेषधर, सनक तथा सनातन थे। सनातन के पुत्र परमानंद, उनके सच्चिदानंद और इनके दो पुत्र आत्माराम तथा जीवाराम थे। आत्माराम के पुत्र रामचरितमानसकार तुलसीदास हुए और जीवाराम के रास पंचाध्यायी के रचयिता नंददास तथा चंद्रहास दो पुत्र हुए। नंददास के पुत्र कृष्णदास और चंद्रहास के पुत्र व्रजचंद हुए। नंददास की स्त्री का नाम कमला था और तुलसीदास की स्त्री का नाम रत्नावली था। नंददासजी के श्रीनृसिंह गुरु थे और वल्लभाचार्यजी दीक्षागुरु थे। नंददासजी ने अपने ग्राम रामपुर का श्यामपुर नाम कर दिया था, जो अब इसी नाम से प्रसिद्ध है। यह वल्लभ संप्रदाय के थे और कृष्णदास भी उसी संप्रदाय के थे क्योंकि इन्होंने भी उनकी वंदना की है। कृष्णदास कृत 'वर्षफल' ज्योतिषग्रंथ है, जिसका निर्माण सं० १६५७ मे हुआ था। इसके अंत में कुछ दोहे हैं, जिनसे नंददास की जीवनी से संबंध है।

तात अनुज चंद्हास बुध, वर निरदेसहि धारि।
लिष्यो जथामति वर्षफल, बालबोध संचारि॥

कवित

कीरति की मूरति जहाँ राजै भगीरथ की,
तीरथ बराह भूमि वेदनु जे गाई हैं।
जाई धाम रामपुर स्यामपुर कीनो तात,
स्यामायन स्यामपुर बास सुषदाई है॥
सुकुल-विप्र बंसभे बिग्य तहाँ जीवाराम,
तासु पुत्र नंददास कीरति कबि पाई है॥
ता सुत हो कृष्णदास वर्षफल भाषा रच्यौ,
चूक होइ सोधें मम जानि लघुताई है॥
सोरह सौ सत्तामनि, विक्रम के वर्ष माँझि,
भई अति कोप दृष्टि बिस्व के विधाता की।
बीतत असाढ़ बाढ़ लाई बड़ देवधुनि,
बूड़ी जल जन्मभूमि रत्नावलि माता की।
नारी नर बूड़े कछु सेस बड़ भाग रहे,
चिन्ह मिटे बदरी के दुखद कथा ताकी।
आजु नभ कृष्णमास तेरस शनि कृष्णदास,
वर्षफल पूरयो भई दया बोध दाता की॥

पुष्पिका—इति श्रीष्णदास विरचितम् भाषा वर्पफलम् सम्पूर्णम्॥ संवत् १८७२ मार्गसिर कृष्णा तृतियां गुरुवासरे, सहसवान नगरे शुभम्, शुभम्, शुभम्।

इस उद्धरण से ज्ञात होता है कि कृष्णदास ने पिता के छोटे भाई चंद्रहास की आज्ञा से यह वर्पफल ग्रंथ बनाया है। गंगाजी के तटस्थ शूकरक्षेत्र में रामपुर ग्राम को इनके पिता ने श्यामपुर कर दिया, जहाँ इन लोगों का निवासस्थान था। शुक्ल ब्राह्मण जीवाराम के पुत्र कवि नंददास हुए, जिनके पुत्र कृष्णदास हुए। विक्रमीय सं० १६५७ में रत्नावली माता की जन्मभूमि बदरी ग्राम आषाढ़ बीतते बीतते बाढ़ आ जाने से जलमग्न हो गया और इसी वर्प के कृष्ण तेरस शनिवार को

यह रचना पूरी हुई। इसमें रत्नावली नाम के साथ माता शब्द रखने से कुछ लोग चिहुँकेंगे पर वह केवल आदरार्थ ही नहीं आया है प्रत्युत् प्रायः लोग ताई चाची न कहकर बड़ी माँ, छोटी माँ इत्यादि कहते भी हैं। वास्तव मे वे सभी माता की श्रेणी ही में हैं और अन्य उद्धरणों से यह ज्ञात हो चुका है कि कृष्णदास की माता का नाम कमला है और उनके ताऊ तथा ताई का नाम तुलसीदास तथा रत्नावली है।

रामचरितमानस की एक प्राचीन खंडित हस्तलिखित प्रति का ऊपर उल्लेख हो चुका है, जो सं० १६४३ वि० की लिखी हुई है। दो कांडों की पुष्पिकाएँ नष्ट नहीं हुई हैं और उनके आवश्यक अंश नीचे दिए जाते हैं।

१. श्रीतुलसीदास गुरु की आज्ञा सों उनके भ्राता सुत कृष्णदास सोरों क्षेत्र निवासी हेंत लिखित लछिमनदास काशीजी मध्ये सं० १६४३ आषाढ़ शुक्ल ४ शुक्र इति।

२. संवत् १६४३ शाके १५०८..........नन्ददास पुत्र कृष्णदास हेत लिखी रघुनाथदास ने काशीपुरी में।

इनसे नन्ददास के पुत्र कृष्णदास का होना तुलसीदास तथा नन्ददास के समय ही में लिखे लेख से समर्थित होता है यदि ये सत्य हों। साथ ही यह कृष्णदास का सोरों निवासी होना भी बतलाता है। यदि उक्त प्रतियाँ वास्तव में सच्ची हैं तो दो बातें निश्चित होती हैं। एक तो रामचरितमानस का संवत् १६४३ के पूर्व ही समाप्त हो जाना तथा दूसरे गोस्वामीजी की मूल प्रति से इनकी प्रतिलिपि का होना। मानस का 'संवत सोरह सौ इकतीसा। करौं कथा हरिपद धरि सीसा।' के अनुसार आरंभ सं० १६३१ मे हुआ था पर समाप्ति कब हुई इसका उल्लेख नहीं हुआ है। आश्चर्य तो यह है कि यह एक प्रकार मानस की प्राप्त प्रतियों में प्राचीनतम है पर इसकी ओर मानस के प्रेमियों की दृष्टि अब तक नहीं गई नहीं तो इसके विषय मे भी विशेष छानबीन हो चुकी होती।

रत्नावली-चरित एटा जिले के सोरों ग्राम के निवासी मुरलीधर चतुर्वेदी कृत है, जिसकी रचना सं० १८२६ में हुई थी। यह पद्य में है

और इनकी एक अन्य रचना बारहसेनी जातिवृक्ष भी है। जंगनामा के रचयिता कवि मुरलीधर अथवा श्रीधर से यह भिन्न हैं, जो प्रयाग निवासी तथा पूर्ववर्ती थे। रत्नावली चरित की प्राप्त प्रति का लिपिकाल सं० १८६४ है। मूल तथा प्रतिलिपि दोनों ही उक्त भट्टजी के पास हैं। यह रचना चरितनायिका के प्रायः दो सौ वर्ष बाद जनश्रुति के आधार पर लिखी गई है, जैसा कि रचयिता स्वयं कहता है।

साध्वी रत्नावलि कहानि। बिरधन मुख जस परी जानि।
दुज मुरलीधर चतुरवेद। लिखि प्रगटो जगहित सभेद॥

इस चरित में विशेषतः तुलसीदास तथा रत्नावली के चरित्रों का तथा गोस्वामीजी के वैराग्य लेने ही तक का वर्णन है और नंददासजी का कहीं कहीं प्रसंगवश उल्लेख हो गया है। जैसे विवाह के प्रसंग में रत्नावली के पिता जब वर की खोज मे निकले तब किसी ने कहा—

तबै मीत एक दई आस। गुरु नृसिंह के जाहु पास॥
स्मारत वैष्णव सो पुनीत। अखिल वेद आगम अधीत॥
चक्रतीर्थ ढिग पाठशाल। तहीं पढ़ावत बिपुल बाल॥
तहॉ रामपुर क सनाढ्य। सुकुल वंश घर द्वै गनाढ्य॥
तुलसिदास अरु नंददास। पढ़त करत विद्या विलास॥
एक पितामह पौत्र दोउ। चंद्रहास लघु अपर सोउ॥
तुलसी आत्माराम पूत। उदर हुलासो के प्रसूत॥
गए दोउ ते अमरलोक। दादी पातहिं करि ससोक॥
....
नंददास अरु चंद्रहास। रहहिं रामपुर मातु पास॥
दंपति बिच बाराह धाम। लहत मोद आठोहु याम॥

उक्त उद्धहरण से ज्ञात होता है कि एक पितामह के तुलसीदास, नंददास तथा चंद्रहास पौत्र थे और अंतिम सबसे छोटे थे। तुलसीदास आत्माराम तथा हुलासो के पुत्र थे और उनके मरने पर दादी के पास बाराह धाम में रहते थे। नंददास और चंद्रहास रामपुर में माता के पास रहते थे। ये सब भाई सोरों में चक्रतीर्थ के पास स्थित स्मार्त वैष्णव वेदपाठी गुरु नृसिंह की पाठशाला मे पढ़ते थे। नंददास आदि शुक्ल आस्पदधारी सनाढ्य ब्राह्मण तथा रामपुर के निवासी थे। रत्नावली

पति-वियोग काल में कभी रामपुर में और कभी वदरिका ग्राम में रहती हुई सं० १६५१ में स्वर्ग सिधारी—

कबहुँ रामपुर वसति जाइ। कबहुँ वदरिका रहति आइ॥
भू सर रस भू बरस पूरि। सुरग गई लहि सुजस भूरि॥

साथ साथ पढ़ने के उक्त उल्लेख से यह भी ज्ञात होता है कि तुलसीदास तथा नंददास की अवस्थाओं में दो चार या वहुत कर सात आठ साल की विभिन्नता हो सकती है। उक्त सभी विवेचन से नंददास की जीवनी की जो रूपरेखा तैयार होती है वह निम्न प्रकार से है—

जन्म—सं० १६०० के आसपास (रत्नावली के प्रायः समवयस्क)
माता-पिता—पिता आत्माराम और माता कमला।
जाति—ब्राह्मण, सनाढ्य, शुक्ल।
भाई—तुलसीदास चचेरे बड़े भाई व चंद्रहास छोटे सहोदर।
संतान—कृष्णदास पुत्र।
गुरु—शिक्षा गुरु स्मार्त वैष्णव वेदज्ञ ब्राह्मण नृसिंहजी।
दीक्षा गुरु गोस्वामी श्रीविट्ठलनाथजी।
जन्मस्थान—एटा जिला के अंतर्गत सोरों के पास रामपुर ग्राम, जो अब श्यामपुर कहलाता है।
निवासस्थान—व्रजमंडल।
मित्र—रूपमंजरी, वैष्णवी श्रीकृष्ण की उपासिका।
स्वभाव—दीक्षा लेने के पहले विपयासक्त थे पर वाद को अनन्य कृष्ण भक्त हो गए। सहृदय भावुक कवि थे।
मृत्यु—सं० १६६२ के पहले इनकी मृत्यु।

श्री वृंदावन-निवासी प्राणेश कवि ने 'अष्टसखामृत' नामक काव्य-ग्रंथ में श्री महाप्रभु वल्लभाचार्य तथा गोस्वामी विट्ठलनाथजी के अष्टछाप के भक्तकवियों की महिमा का वर्णन किया है, जिसकी एक हस्तलिखित प्रति गोकुल में प्राप्त हुई है। यह प्रतिलिपि सं० १८६५ के चैत्र शुक्ला ५ शुक्रवार को समाप्त हुई थी। इसमे नंददासजी के विपय में जो कुछ लिखा गया है, वह नीचे दिया जाता है।

राम-भगत तुलसी-अनुज नंददास व्रज ख्यात।
द्विज सनौढ़िया सुकुल कवि कृष्ण भगत अवदात॥
नंददास विट्ठल-कृपा बहु वित वैभव पाय।
खरच्यौ सब परमार्थ हित श्रीहरि भक्ति बढ़ाय॥
कर्यौ राम ते स्याम निज बदलि इष्ट अरु गाम।
रच्यौ स्याम सर बाछरू हरि बलदाऊ धाम॥
सौंपि अनुज चंदहास कर सुत दारा धन धाम।
आए सूकर खेत तजि व्रज बसि सेयौ स्याम॥
नंददास सुख-माधुरी बोलनि प्रान अनूप।
सुर नर मुनि की का चली जिन मोहे व्रजभूप॥
बाँचत श्रीमद्भागवत बिबिध भाँति अरथाय।
बैन सुधारस जनु सने देत भक्ति उमगाय॥
कृष्ण राम के रूप भए नंददास मन आनि।
लखि तुलसी मन चलि रहे प्रान जोरि जुग पानि॥
रामायन भाषा बिरचि भ्राता करी प्रकास।
देखि रची श्रीभागवत भाषा श्री नँददास॥
जब बरनत गोपी-बिरह नंददास पद गाइ।
स्रवत नैन निरझर बनत कृष्ण प्रेम पुलकाइ॥
प्रान सनेही स्याम के नंददास बड़ भाग।
प्रति छन हरि सेवा निरत, पुष्टि पंथ अनुराग॥

उक्त उद्धरण से तुलसीदास, नंददास तथा चंद्रहास का भाई और सनाढ्य शुक्ल ब्राह्मण होना समर्थित होता है। नंददासजी अपनी संपत्ति, स्त्री तथा पुत्र को अपने भाई चंद्रहास को सौंपकर शूकरक्षेत्र से व्रज चले आए और यहाँ भागवत भाषा बनाया। नंददासजी का मन रखने के लिए श्रीकृष्ण ने तुलसीदासजी को रामजी का रूप दिखलाया। नंद-दासजी के विरह के पद बड़े मर्मस्पर्शी थे और यह हरिभक्ति के अनन्य अनुरागी थे।

तात्पर्य यह कि इस ग्रंथ से प्राप्त विवरण यद्यपि कोई नया प्रकाश नंददासजी की जीवनी पर नहीं डालता पर अन्य साधनों से प्राप्त सामग्री की कई बातों का समर्थन अवश्य करता है।

बेनीमाधवकृत मूल गोसाईंचरित में नंददासजी का कुछ उल्लेख इस प्रकार है। सं० १६८९ के मार्गशीर्ष में गोस्वामी तुलसीदासजी वृंदावन आए और नाभाजी के पास गए, जो ब्राह्मण संत थे। इनके साथ मदनमोहनजी के मंदिर में गए, जहाँ श्रीकृष्ण मूर्ति ने धनुषबाण हाथ में ले लिया। इस लीला की बरसाने में बड़ी प्रसिद्धि हुई। दक्षिण से श्री रामचंद्रजी की एक मूर्ति अयोध्या जा रही थी और यहीं यमुनातट पर ले जानेवाले विश्राम के लिये ठहर गए। उस मूर्ति को देखकर उदय ब्राह्मण रीझ गए और गोसाईंजी से प्रार्थना की कि यह यहीं स्थापित की जाय। इस पर गोसाईंजी के प्रताप से मूर्ति हिली नहीं तब 'जिजिमा' (न) ने वहीं स्थापित कर दिया और 'कौशल्यानंदन' नाम रखा। इसी समय नंददासजी कनौजिया इनसे आकर मिले, जो सेस सनातन के शिष्य होने के नाते गोस्वामीजी के गुरुभाई हुए। यहीं हितजी के पुत्र गोपीनाथ से अवध की महिमा कहकर तथा हलवाई के घर श्रीबालकृष्ण को दिखलाकर चित्रकूट चले गए। (हिंदुस्तानी एकेडमी द्वारा प्रकाशित गो० तुलसी० पृ० २४१–२)

उक्त चरित के नाभाजी प्रसिद्ध भक्तमाल के रचयिता नहीं हो सकते क्योंकि वह जन्मांध, निम्नवर्ण के तथा जयपुर के अंतर्गत गलता के निवासी थे। इनका भक्तमाल भी प्रायः सं० १६६० में लिखा गया था। मूर्ति के धनुषबाण धारण करने की दंतकथा नंददासजी के साथ दर्शन करते समय घटित हुई अन्यत्र बतलाई गई है और इसमें नाभाजी के साथ। स्यात् इसीलिए वह इसमें विप्र संत बतलाए गए हों, क्योंकि हरिजन का मंदिर मे जाना लिखना अनुचित ज्ञात हुआ। यह गोसाईं चरित विश्वसनीय ग्रंथ नहीं है, अतः इसपर विशेष विचार करना आवश्यक नहीं प्रतीत होता।

सुंदरदास श्रीवास्तव्य कायस्थ खरे दूलहराम के पुत्र थे, जो कमरुद्दीन खाँ वजीर के नायब राय भोगचंद के पुत्र थे। दूलहराम के बड़े भाई राय नौनिद्धराम भी उसी पद पर रहे। दूलहराम तथा सुंदरदास दोनो बंगाल आए और अंतिम मुर्शिदाबाद के नवाब के यहाँ दीवान हो गए। यह मथुरानिवासी थे पर यहीं इन्होंने अपने परिवार को बुला लिया। आठ वर्ष दीवान रहने के अनंतर इन्होंने छुट्टी ले ली और तीर्थयात्रा करते हुए काशी आकर यहीं बस गए। इन्होंने श्रीकृष्णलीला

तथा संतो की वंदना पर बहुत से पद कहे हैं। साथ-साथ प्रत्येक भक्त के एक-एक या दो पद भी संगृहीत किए हैं। इनका समय विक्रमीय उन्नीसवीं शताब्दि का पूर्वार्द्ध है। मीराबाई के बाद नंददासजी की वंदना इस प्रकार लिखी है—

श्रीनंददास कौं करौं प्रनाम। पंचाध्या जिनका सरनाम॥
अतिहि भक्ति औ प्रेम तें गायो। मूरतिवंत रासि दिखरायो॥
इक इक चौपाई मनो सागर। प्रेम प्रीत्ति के आगर नागर॥
तिन सों चहौं वास वृंदावन। भूलि रहैं ताही रस मैं मन॥

रचनाएँ

नंददास के जीवनचरित्र लिखने में जिन मुख्य साधनों का ऊपर उल्लेख किया गया है, उनमे उनकी रचनाओं मे केवल रासपंचाध्यायी तथा भाषा भागवत का नाम आया है, अन्य किसी रचना का नाम नही मिलता। गार्सिन द तासी ने अपने ग्रंथ 'इस्त्वार द ला लितरेत्योर इंदीन' में नंददास के चौदह ग्रंथों का नाम दिया है—

१. अनेकार्थमंजरी	२. नाममाला	३. दशमस्कंध
४. पंचाध्यायी	५. भँवरगीत	६. मानमंजरी
७. रासमंजरी	८. रसमंजरी	९. रूपमंजरी
१०. जोगलीला	११. रुक्मिणीमंगल	१२. सुदामाचरित
१३. प्रवोधचंद्रोदय	१४. गोवर्धनलीला	

इनमे २ तथा ६ एक ही रचना है, केवल नाम-भेद से दो मान लिए गए है। रासमंजरी भूल से विरहमंजरी के लिए लिखा गया है, ऐसा ज्ञात होता है पर यदि ऐसा नहीं है तो रसमंजरी ही का दुबारा नाम लिखा गया है। तासी लिखता है कि 'डाक्टर स्प्रेजर के पुस्तकालय में उसने इन चौदह ग्रंथों का संग्रह स्वयं देखा था, जो ५७६ पृष्ठों में था और जिसे करीमुद्दीन ने संगृहीत किया था। रास पंचाध्यायी का कलकत्ते का छपा तथा मदनपाल द्वारा संपादित ५४ पृष्ठों का संस्करण और अनेकार्थमंजरी तथा नाममाला दोनो के दो संयुक्त संस्करण देखे थे, जिनमें एक सन् १८१४ ई० में खिदिरपुर से और दूसरा हीराचंद द्वारा संपादित व्रजभाषा काव्य संग्रह के अंतर्गत सन् १८६५ ई० मे बंबई से

प्रकाशित हुआ था।' (इस्त्वार द ला लितरेत्योर इंदीन द्वितीय संस्करण भाग २ पृ० ४४५-७)

शिवसिंह सरोज में नंददासजी की निम्नलिखित सात रचनाओं का उल्लेख है—

१. नाममाला २. अनेकार्थ ३. पंचाध्यायी
४. रुक्मिणीमंगल ५. दशम स्कंध ६. दानलीला
७. मानलीला

इनमें अंतिम दो तासी के लिखे हुए ग्रंथों से भिन्न नई रचनाओं के नाम आए हैं। डा० सर जॉर्ज ग्रिअर्सन ने अपने ग्रंथ 'मॉडर्न वर्नाक्युलर लिटरेचर आव हिंदुस्तान' में इन्हीं सात नामों को दुहराया है। बा० राधाकृष्णदास ने स्वसंपादित भक्तनामावली के परिशिष्ट में इन्हीं ग्रंथों उल्लेख किया है। इसके अनंतर काशी नागरीप्रचारिणी सभा की खोज की रिपोर्टों में नंददासजी की रचनाओं की सूचना मिलती है। यह खोज-कार्य सन् १९०० ई० से आरंभ हुआ है और अबतक चला जा रहा है। प्रथम वर्ष की रिपोर्ट में इनकी किसी रचना का उल्लेख नहीं है। आगे की रिपोर्टों में सूचित रचनाओं का क्रम से नाम दिया जाता है—

१. सन् १९०१ ई० की वार्षिक रिपोर्ट—१. भागवत दशमस्कंध (सं०११)
२. रास पंचाध्यायी (सं० ६९)

२. सन् १९०२ की वार्षिक रिपोर्ट—१. अनेकार्थमंजरी (सं० ५८)
२. विरहमंजरी (सं० ७०)

३. ,, १९०३ , ,, —१. अनेकार्थ नाममाला (सं० १५३)

४. ,, १९०६–८ की त्रैवार्षिक ,, —१. रासपंचाध्यायी
२. भागवत दशम स्कंध
३. नामचिंतामणिमाला
४. जोगलीला ५. स्यामसगाई
(सं० २०० ए—२०० ई)

५. „ १६०६–११ „ „ —१. नासिकेतुपुराण गद्य
२. नाममाला–मानमंजरी
३. नाममाला ४. अनेकार्थमंजरी
५. रसमंजरी ६. विरहमंजरी
(सं० २०८ ए–२०८ एफ)

६. „ १६१२–१४ „ „ —१. रुक्मिणीमंगल (सं० १२०)

७. „ १६१७–१६ „ „ —१. नाममाला २. पंचाध्यायी
३. श्यामसगाई
(सं० ११६ ए–११६ सी)

८. „ १६२०–२२ „ „ —१. नाममाला (दो प्रति)
२. नाममंजरी ३. अनेकार्थभाषा
४. भ्रमरगीत
(सं० ११३ ए–११३ एफ)

इस प्रकार सन् १६२२ ई० तक की प्रकाशित रिपोर्टों में, जिनमें सन् १६१५–१६ की रिपोर्ट अभी छपी नहीं है, कुल चौदह रचनाओं का उल्लेख हुआ है। इसके बाद की अप्रकाशित रिपोर्टों में निम्नलिखित तीन रचनाओं का उल्लेख है—

१. फूलमंजरी २. रानी मंगौ ३. कृष्णमंगल

मिश्रबंधु विनोद के नये संस्करण में तीन नई रचनाओं का उल्लेख हुआ है, जिनके नाम है—

१. ज्ञानमंजरी २. हितोपदेश ३. विज्ञानार्थप्रकाशिका (गद्य)

इनमें अंतिम गद्य ग्रंथ है तथा किसी संस्कृत ग्रंथ की टीका है, जिसे मिश्रबंधु ने छत्रपुर में स्वयं देखा है। प्रथम दो के विषय में कुछ भी प्रकाश नहीं डाला गया है कि ये नाम कहाँ से प्राप्त हुए हैं। मिश्रबंधु विनोद का आधार प्रधानतया सभा की खोज की रिपोर्टें ही है। कॉकरौली के श्रीद्वारिकेश पुस्तकालय में 'रासलीला' की एक हस्तलिखित प्रति का होना कहा जाता है, जो नंददास की कृति बतलाई जाती है। इनके सिवा नंददासजी की कृति के रूप में 'बाँसुरीलीला' तथा 'अर्धचंद्रोदय' नाम की दो और पुस्तकें कही जाती हैं। 'सिद्धांतपंचाध्यायी' की एक हस्तलिखित प्रति हमारे संग्रह में है, जिसका उल्लेख स्व० पं०

रामचंद्रजी शुक्ल ने अपने साहित्य के इतिहास के परिवर्द्धित संस्करण में किया है।

इस प्रकार देखा जाता है कि निम्नलिखित रचनाएँ अवश्य ही नंद-दास कृत हैं, जो उनके नाम से बराबर प्रसिद्ध रही हैं, जिनमें उनका छाप है, भाषा, वर्णन-शैली आदि से उन्हीं की ज्ञात होती हैं तथा जिनकी अनेक हस्तलिखित प्रतियाँ भी प्राप्त हैं।

१. रासपंचाध्यायी   २. भागवत दशम स्कंध   ३. भ्रमरगीत
४. रूपमंजरी   ५. रसमंजरी   ६. विरहमंजरी
७. अनेकार्थमंजरी   ८. नाममंजरी   ९. रुक्मिणीमङ्गल
१०. श्यामसगाई   ११. सिद्धांत पंचाध्यायी

सुदामाचरित, जोगलीला तथा गोवर्द्धनलीला तीनों का उल्लेख तासी ने आज से सत्तर वर्ष पूर्व नंददास की रचनाओं में किया है और उन सभी रचनाओं की एक एक या दो दो प्रतियाँ प्राप्त हैं। इनमें प्रथम कवि की आरंभिक रचना ज्ञात होती है क्योंकि भाषा, काव्य-कला आदि की दृष्टि से यह बहुत शिथिल बन पड़ी है। गोवर्द्धनलीला नंददासजी कृत भागवत दशम स्कंध के २४–२५ वें अध्यायों से लेकर तथा कुछ पंक्तियाँ जोड़कर स्वतंत्र रचना बना दी गई ज्ञात होती है। इस कारण नंददास की रचनाओं के जिस संग्रह में भागवत दशम स्कंध भी हो उसमें इसके अलग देने की आवश्यकता ही नहीं है। सुदामाचरित की कथा श्रीकृष्ण के मथुरा जाने के बाद की है और दंतकथा के अनुसार रासलीला के अध्यायों के बाद का भागवत का अनुवाद नष्ट कर दिया गया था इसलिए हो सकता है कि उसी नष्ट हुए अनुवाद का यह अंश हो। इसके अंत में लिखा भी है—

चरित स्याम को इहि हैं ऐसो। बरन्यो 'नंद' जथामति जैसो॥
दसमस्कंध बिमल-सुख बानी। सुनत परीछित अति रति मानी॥

जोगलीला के कवि नंददास हैं या नहीं इसमें संदेह ही है। सभा की सन् १९०६–८ की रिपोर्ट सं० २०० डी पर इसे नंददास कृत लिखा गया है पर उसमें ग्रंथ के उद्धरण नहीं दिए हैं, जिनसे मिलान किया जा सके अतः यह उल्लेख उसी प्रकार अविश्वास्य है, जिस प्रकार नासिकेतु-

पुराण तथा गंगादास कृत नाममाला को नंददास कृत लिखना। सभा के संग्रह की हस्तलिखित प्रति में नंददासजी की छाप पूरी रचना में कहीं नहीं है और केवल अंत में पुष्पिका इस प्रकार है—'इति श्रीनंददास कृत जोगलीला संपूर्ण'। उसके प्रथम तथा अंतिम पद इस प्रकार हैं—

एक समैं मन मित्र मोहि अग्या यह दीनी।
याही तें मति उकति जोगलीला तब कीनी॥
शुक सनकादिक सारदा नारद सेस महेस।
देहु बुद्धि बर उदै उर अच्छर उकति बिसेस॥
यहै बिनती अहै॥ १॥

कपट रूप करि किते भाँति कहुँ भेख बनावै।
गोपी गोप गोपाल कौं नित ख्याल खिलावै॥
रूप सिरोमनि राधिका रसिक-सिरोमनि स्याम।
नित्य बसौ उर मैं सदा करि संकेत सधाम॥
स्याम-स्यामा सहित॥ ६३॥

'नित्य बसौ उर' का पाठांतर 'निपट बसौ उर' तथा 'बसत उदै उर' भी मिलता है और इस पर यह तर्क किया गया है कि 'उदय' कवि की छाप है। प्रथम पद के 'देहु बुद्धि बर उदै उर' में श्लेष से दो अर्थ निकलते हैं पर अंतिम पद के 'बसत ? (बसौ) उदै उर में सदा' से एक ही अर्थ ध्वनित हो पाता है अर्थात् 'उदय कवि का छाप है। जिन प्रतियों का प्रयाग वि० वि० के संस्करण मे उल्लेख हुआ है, उनमें किसी का लिपिकाल नहीं दिया गया है। खोज के सन् १९०० ई० की प्रथम वार्षिक रिपोर्ट मे जोगलीला की एक हस्तलिखित प्रति का संख्या ६८ पर उल्लेख है जिसका लि० का० सं० १९०४ है और कवि उदयकृत माना गया है। इधर सन् १९०१ ई० की खोज में उदय की प्रायः २०-२५ छोटी-छोटी रचनाओं का पता चला है, जिनमे जोगलीला के समान अन्य अनेक लीलाएँ हैं। उद्धरणों के मिलाने से ज्ञात होता है कि सब एक ही कवि की रचनाएँ हैं।

जोगलीला की एक प्रति में, जो हमारे संग्रह मे मौजूद है, अंतिम पद के स्थान पर दूसरा ही पद मिलता है, जो नीचे पुष्पिका सहित दिया जाता है—

रिद्धि सिद्धि नव निद्धि बाढ़ें गृह भारी।
महा मंगल कूँदेत सदा चित आनंदकारी॥
जो कोई सीखें सुनें लीला जोग प्रकास।
भक्ति मुक्ति ताकों मिले निश्चे केसोदास॥
जाय जमन्त्रास मिटि॥ ९५॥

इति श्री जोगलीला केसोदास कृत संपूर्णम्। मिती दुतिय ज्येष्ठ व० ३० मंगलवार सं० १८९५॥

जोगलीला का प्रथम पद मंगलाचरण के रूप में है और उसमें शुक सनकादिक का नाम आना चित्य नहीं है क्योंकि ये सभी भक्त-श्रेष्ठ हैं। वैष्णव संप्रदाय के विषय में संक्षेप में इस भूमिका में लिखा गया है, जिसके देखने से ज्ञात हो जायगा कि शिव जी तथा सनकादिक दो वैष्णव संप्रदायों के दैवी आचार्य हैं, जिनके लौकिक आचार्य मध्वाचार्य तथा निंबादित्य हुए हैं और प्रथम के अंतर्गत वल्लभ संप्रदाय है। शुकदेवजी, नारदजी आदि परम वैष्णव हैं अतः इनके नामों का मंगलाचरण में आना चिंत्य नहीं है प्रत्युत उचित है क्योंकि कवि श्रीकृष्णलीला का वर्णन करने के लिये ही उन परम भक्तों का स्मरण कर रहा है तथा सहायता का इच्छुक है। यह रचना उदय की हो या केशोदास की हो इस पर तर्क करने की यहाँ आवश्यकता नहीं है पर नंददास की नही है, ऐसा प्रायः निश्चित रूप से कहा जा सकता है। यद्यपि यह रचना नंददासजी के भ्रमरगीत के अनुकरण पर बनी है पर भ्रमरगीत में अनुराग-मयी विरहविधुरा गोपियों की जो कातरोक्तियाँ हैं वे करुण रस से ओत-प्रोत हैं और इसी कारण वे अधिक मर्मस्पर्शी हो गई हैं। जोगलीला में वह बात नही है। इसमे मिलन के पहले की अनुरागावस्था का लीलामय प्रेमा-लाप मात्र है, शुद्ध क्रीड़ा सा है। माता के सामने श्रीराधिकाजी का जोगिन बनकर एक ज्ञात या अज्ञात योगी से इस प्रकार वादविवाद करना, क्या लड़ना झगड़ना कहें, अनुचित ज्ञात होता है और नंददासजी से उत्कृष्ट भक्त-कवि के योग्य नहीं हो सकता।

नासिकेतपुराण नामक गद्यग्रंथ को खोज की रिपोर्ट में नंददास-कृत न मानते हुए भी उन्हींके नाम से वह लिखा गया है। प्रयाग विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित 'नंददास' के परिशिष्ट १ (ङ) में इस

ग्रंथ की तीन प्रतियों से उद्धरण दिए गए हैं, जिनमें दो का लिपिकाल सं० १७९५ तथा सं० १८५५ है। नागरी प्रचारिणी सभा, काशी को इधर एक हस्तलिखित प्रति इस ग्रंथ की प्राप्त हुई है, जो सं० १८८८ वि० की लिखी हुई है। आरंभ तथा अंत में नंददासजी का कहीं रचयिता के नाम से उल्लेख नहीं है। ग्रंथ के भीतर पाठ में उनका कई वार उल्लेख हुआ है, जो इस प्रकार है। आरंभ में—

१. नंददासजी आपणा सिखा नै कहतु है।
२. सु अबे स्वामी नंददासजी आपणा मित्रा ने
भाषा करि कहतु है।

सिसु पूछतु है गुसाई जु मेरे अभिलाषा
नासकेतु पुराण सुणिवे की यच्छया बहौतु है।
..... अब नंददासजी कहतु हैं ॥

अंत में—
स्वामी नंददास आपणा मित्रा नै
भाषा करि सुणाइछै सु या कथा महा अमृतु है।

उक्त उद्धरणों से ज्ञात होता है कि किसी गोस्वामी नंददासजी ने नासिकेतुपुराण भाषा में अपने शिष्य या मित्र को सुनाया था, जिसे किसी तीसरे व्यक्ति ने पुस्तक का रूप दिया है। इसकी भाषा अत्यंत शिथिल है और प्रसिद्ध नंददासजी से भाषा पर अधिकार रखनेवाले के कभी योग्य नहीं है। यह कृति इनकी नहीं हो सकती।

रासलीला तथा दानलीला भी नंददासजी की कही जाती हैं पर इनकी दो एक के सिवा अधिक प्रतियाँ नहीं मिलती हैं। पूरी दानलीला तथा रासलीला का आदि और अंत से दो उद्धरण प्रयाग विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित 'नंददास' में उद्धृत किया गया है पर उनमें नंददास के प्रामाणिक ग्रंथों का सा काव्य-कौशल, भाषा-सौष्ठव तथा सारस्य नाम को भी नहीं है वरन् भाषा-शैथिल्य, भावहीनता, नीरसता ही अधिक है। ये सुप्रसिद्ध नंददास की कृतियाँ नहीं ज्ञात होतीं। राजनीति हितोपदेश के संबंध में भी

यही कहा जायगा। भक्त-कवि नंददासजी ने सिवा अपने इष्टदेव के कीर्तन के और कुछ नहीं लिखा है। जो प्रति इसकी मिली है वह बहुत आधुनिक है और किसी अन्य स्वामी नंददास की कृति है।

फूलमंजरी की जो प्रति हमारे संग्रह में है, उसका लिपिकाल सं० १७९३ वि० है और यह नंददास की अन्य कृतियो के बीच मे लिखी गई है पर इसमें आदि या अंत मे कहीं नंददासजी का नाम नहीं आया है। रामहरिजी ने, जो इस संग्रह के तैयार करानेवाले थे तथा नंददासजी की रचनाओं के प्रेमी थे, इसे नंददासजी कृत न मानकर ही उनका इसमे उल्लेख नहीं कराया है और न वे इसके रचयिता का नाम ही जानते थे, नहीं तो उसका अवश्य नाम देते। इसमें ३१ दोहे हैं, पर डा० याज्ञिक की प्रति में ३२ वॉ दोहा अधिक है और उसमें कवि की छाप भी है। दोहा इस प्रकार है—

पहोपबंध धरि ग्रंथ है कह्यो पहोपन नाम।
परसोतम याको भजै लै लै पहोपन नाम॥

सभा की खोज की सन् १९२९–३१ की अप्रकाशित रिपोर्ट मे ३१ ही दोहे हैं, छापवाला दोहा नहीं है पर पुष्पिका में—इति श्री फूलमञ्जरी नंददास किरत संपूर्ण समापतं—दिया है। ऐसी अवस्था में इसे नंददासजी कृत न मानना ही उचित है।

रानी मंगौ भूल से सभा की सन् १९२९–३१ की रिपोर्ट में नंददास कृत लिख ली गई है, क्योकि जो अंत का उद्धरण दिया गया है वह अनर्गल-सा ज्ञात होता है। उसमें किसी दानलीला की चौपाई की चार पंक्तियॉ मिल गई हैं। पत्राकार पुस्तको के पत्रों के आगे पीछे हो जाने से और उस पर विचार न करने से ऐसी भूल हो जाती है पर इस असावधानी का फल बहुत बुरा होता है, जिससे अकारण ही रानी मंगौ नंददासजी के गले मढ़ दी गई। कृष्णमंगल नंददासजी के छाप सहित बीस पंक्तियों का एक पत्र मात्र है। इस प्रकार निश्चय होता है कि सुप्रसिद्ध नंददासजी के केवल तेरह ग्रंथ हैं, जिनका ऊपर उल्लेख किया गया है। इनके सिवा इनके स्फुट गेय पदों का संग्रह पदावली के नाम से अंत मे दिया गया है।

१ रास पंचाध्यायी

यह नंददासजी की सर्वश्रेष्ठ तथा प्रसिद्धतम रचना है और अब तक इसके कई संस्करण हो चुके हैं। इस ग्रंथ की हस्तलिखित प्रतियाँ भी बहुत मिलती हैं। काशी नागरीप्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्टों मे भी बहुत सी प्रतियों का उल्लेख है पर ग्रंथ के उदाहरण एकाध ही में दिए गए हैं। प्रकाशित प्रतियो में सबसे प्राचीन सं० १८८५ की कलकत्ता टाइप में छपी हुई रास पंचाध्यायी है, जिसके प्रथम चार अध्यायो में २४६ रोले है तथा अंतिम मे ५३ रोले तक हैं। प्रति अपूर्ण है पर इस प्रकार देखा जाता है कि इस संस्करण में तीन सौ से अधिक रोले है। इसमें भूमिका आदि कुछ नहीं है, जिससे इसके आधार का कुछ पता चले। इसके अनंतर सं० १९३५ (सन् १८७८-९ ई०) की हरिश्चंद्र चंद्रिका में भारतेंदु बा० हरिश्चंद्र ने इसे प्रकाशित किया। इसमे भी आरंभ मे कोई लेख नहीं है, जिससे ज्ञात हो सके कि किन साधनो के आधार पर इसका संपादन किया गया है। इसका शीर्षक केवल पंचाध्यायी रखा गया है और अध्यायों में भी यह विभक्त नही है। इसमें २८४ रोले संगृहीत हैं। इसके पचीस वर्ष बाद काशी नागरीप्रचारिणी सभा से बा० राधाकृष्णदास के संपादन में इसका एक संस्करण निकला, जिस कार्य मे बा० जगन्नाथदासजी रत्नाकर की सहायता पाने का भी उल्लेख हुआ है। इसका नाम रासपंचाध्यायी है और यह श्रीमद्भागवत के अनुसार पाँच अध्यायों में विभाजित भी है। इसमें ३२७ रोले हैं अर्थात् चंद्रिका में प्रकाशित पंचाध्यायी से ४३ रोले अधिक है। बा० राधाकृष्णदास ने लिखा है कि चंद्रिका तथा मथुरावाली लीथो की प्रति ही उनके संपादन-कार्य की आधार है तथा 'दोनो को मिलाने से पाठ भेद बहुत निकला तथा कुछ पद ऐसे मिले जो चंद्रिका में न थे और कुछ ऐसे जो मथुरावाली मे नही।' इनके सिवा उनके पास बा० कार्तिक प्रसाद खत्री तथा गोस्वामी किशोरी लाल की दो प्रतियाँ भी थीं, जिनमे एक अत्यंत अशुद्ध थी तथा दूसरी में केवल प्रथम अध्याय मात्र था। संपादन के विषय में वह लिखते है कि—

'चंद्रिका की प्रति के अतिरिक्त सब प्रतियो में स्थान स्थान पर कुछ दोहे भी दिए है और पाँचो अध्याय भी लगाया है। अध्याय

मैंने भी लगा दिया है और मूल श्रीमद्भागवत में जो नाम उन अध्यायों का लिखा है वह भी फुटनोट में लिख दिया है, परंतु दोहों को मूल में न रखकर नोट में दिया है क्योंकि यह स्पष्ट जान पड़ता है कि ये दोहे कदापि नंददासजी के नहीं हैं क्योंकि कहाँ तो वह कविता और कहाँ ये भद्दे दोहे। दूसरे श्रीमद्भागवत में कहीं श्रीमती राधिकाजी का नाम नहीं आया है। और ऐसे ही नंददासजी ने भी इसको बचाया है, परंतु दोहेवाले ने इस बारीकी को न समझकर एक दोहे में भद्दी तरह पर नाम दे दिया है जिसे पाठकगण स्वयं जाँच सकते हैं। पदों के क्रम का भी बहुत कुछ उलट पलट है, मैंने प्रायः चंद्रिका का क्रम और पाठ ही प्रधान रखा है। हाँ कोई-कोई पाठान्तर मुझे दूसरी प्रतियों का विशेष अच्छा जान पड़ा है तो उनको प्रधान कर दिया है।'

सभा की प्रति के प्रकाशन के एक वर्ष बाद बा० बालमुकुंद गुप्त ने 'रास पंचाध्यायी तथा भँवरगीत' प्रकाशित किया, जिसके संपादन के लिए चंद्रिका, मथुरा की लीथो की प्रति तथा सं० १८६४ की छपी प्रति को आधार बतलाया गया है। उसमें प्रथम दो बा० राधाकृष्णदास के भी आधार थे। इसमें पदसंख्या ३२२ है अर्थात् बा० राधाकृष्णदास की प्रति से ५ रोला कम हैं। इसके चौदह वर्ष बाद बा० ब्रजमोहनलाल विशारद का संस्करण निकला, जिसके आधार बा० राधाकृष्णदास तथा बा० बालमुकुंद गुप्त के संस्करण मात्र है। इसके अनंतर जो संस्करण निकले, वे सब इन्हींके आधार पर प्रकाशित हुए हैं। पं० जवाहिरलाल जी चतुर्वेदी द्वारा संपादित नंददासजी के ग्रंथों की अप्रकाशित प्रति में रास पंचाध्यायी में ३२६ रोले दिए गए हैं। सन् १९३६ में लक्ष्मी आर्ट प्रेस, दारागंज प्रयाग से प्रकाशित रासपंचाध्यायी में ३१२ रोले हैं, जिसका संपादन पं० जवाहिरलालजी चतुर्वेदी ने किया है, ऐसा उल्लेख उसमे है।

उक्त प्रकाशित सात आठ प्रतियों के साथ जिन छ हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर इस ग्रथ का संपादन हुआ है उन सबका विवरण नीचे तालिका रूप में देकर देखा जायगा कि वास्तव में नंददास कृत कितने रोले थे और प्राचीन प्रतियों में मिलते थे।

सं०	प्रति-विवरण	लिपि या प्रकाशन काल	पद सं०	अध्याय है या नहीं	नाम	विशेष
१.	हस्तलिखित, निजी	सं० १७६३	२०६	नहीं	भापा पंचाध्यायी	
२.	,, ,,	नहीं है	२११	,,	पंचाध्यायी भाषा	
३.	,, व्रजभूषणदास	सं० १८२३ पौष शु० ७ बुध	२०७	,,	पंचाध्यायी	पत्राकार
४.	,, वराहमिहिराचार्य पुस्त० पटना	नही	२०६	,,	रासलीला पंचाध्यायी	
५.	,, मुरारीलाल केडिया	१७५७ मार्गशीर्ष शु० १ शनौ	२१५	है	पंचाध्यायी	
६.	हस्तलिखित प्र० आर्यभापा पुस्तकालय काशी	सं० १८७१	२११			
७.	छाप, चंद्रिका	सन् १८७८ सं० १६३५	२८४	नही	पंचाध्यायी	
८.	,, राधाकृष्णदास	सं० १६६०	३२७	है	रासपंचाध्याय	
९.	,, बालमुकुंद गुप्त	,, १९६१	३२२	,,	,,	
१०.	,, व्रजमोहनलाल	,, १९७५	३२७	,,	,,	खंडित
११.	,, फलकत्ता टाइप	,, १८०५	३०० के ऊपर	,,	,,	

इस प्रकार देखा जाता है कि उक्त हस्तलिखित प्रतियों में, जो ढाई सौ वर्ष से डेढ़ सौ वर्ष प्राचीन हैं, २०६ से २१५ तक रोले हैं पर प्रकाशित प्रतियों में इनकी संख्या बहुत बढ़ जाती है। इनमें २८४ से ३२७ तक रोले हैं अर्थात् एक सौ से अधिक रोले बढ़ गए हैं। प्रयाग विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित 'नंददास' में रास-पंचाध्यायी के संपादन कार्य में जिन प्राचीन हस्तलिखित प्रतियों का उपयोग किया गया है, उनमें क को विशेष प्राचीन माना गया है और इसमें तथा ट' प्रति मे, जो भरतपुर राज्य पुस्तकालय में सुरक्षित है, क्रमशः २१२ तथा २११ रोले हैं। पटियाला पब्लिक लाइब्रेरी की पंचाध्यायी के विषय में उक्त ग्रंथ में लिखा गया है कि यह इसी विक्रमीय बीसवीं शताब्दि की है, २०८ रोले हैं तथा क प्रति से मिलता हुआ इसका पाठ है। इस प्रकार निश्चित रूप से यह ज्ञात हो जाता है कि मूलतः रास पंचाध्यायी मे २१५ से अधिक रोले नहीं थे। उन आधुनिक हस्तलिखित प्रतियो पर भी विश्वास न करना चाहिए, जिनमें अधिक रोले है क्योकि वे प्रकाशित प्रतियो की प्रतिलिपियाँ हो सकती हैं और उनमें प्रक्षेप की भी प्रतिलिपि संमिलित होगी।

नंददासजी की केवल चार रचनाओं को प्रकाशन का अवसर मिला है और इनमें केवल एक भ्रमरगीत ही ऐसी रचना है, जिसमें एक भी पद किसी संस्करण में अधिक या कम नहीं मिले। अन्य तीनो में काफी प्रक्षिप्त अंश मिलते हैं। अनेकार्थमंजरी तथा नाममणि मंजरी में क्षेपक अंश काफी है और इसका आगे उल्लेख किया गया है। ऐसी अवस्था में इनके सबसे प्रसिद्ध ग्रंथ में इनके भक्तो ने क्षेपक न मिलाया हो यह हो नहीं सकता। छ हस्तलिखित प्रतियाँ भी इसका समर्थन करती हैं क्योंकि यदि ये १२० पद वास्तव में नंददासजी के होते तो अवश्य ही किसी न किसी प्राचीन प्रति में मिलते। अतः वे ही पद नंददासजी कृत मान्य हैं, जो उक्त सभी हस्तलिखित प्रतियो में हैं। एक बात और है। हस्तलिखित प्रति ख मे पाँचो मंजरियाँ भी हैं, जिनमे दो में अर्थात् अनेकार्थ तथा नाममंजरी में रामहरिजी ने अपने रचे दोहो को मिलाने का स्पष्ट उल्लेख कर दिया है और नंददासजी की रचना में कितने दोहे थे इसका भी उल्लेख किया है। यदि उनकी लिखी पंचाध्यायी मे प्रक्षिप्त अंश होते या किए गए होते तो उसका भी वह अवश्य उल्लेख करते

पर उनका न कुछ लिखना यही कहता है कि उस समय तक प्राप्त पंचाध्यायी में क्षेपक अंश नहीं था। उक्त कारणों से उल्लिखित प्रतियों में प्राप्त पदों के सिवा जो पद मिले हैं वे परिशिष्ट में प्रक्षेप मानकर दे दिए गए हैं।

इसके नाम के विपय में भी कुछ संशय रहा है। उक्त पाँच हस्तलिखित प्रतियों, काशी-नागरीप्रचारिणी सभा के खोज-विवरण में प्राप्त तीन हस्तलिखित प्रतियों तथा चंद्रिका में केवल पंचाध्यायी नाम दिया है। किसी में पंचाध्यायी के वाद तथा किसी में पहिले 'भापा' शब्द दिया है और किसी में पंचाध्यायी के बाद रासक्रीड़ा लिखा है। कलकत्ता संस्करण तथा चंद्रिका के बाद के प्रकाशित सभी संस्करणों में रासपंचाध्यायी नाम दिया है और यही नाम हिन्दी साहित्य के इतिहासों में भी पाया जाता है। यही नाम प्रसिद्ध हो गया है और ग्रंथ के आशय को भी विशिष्टरूप से प्रकट करता है अतः यही नाम रखा गया है।

यद्यपि इसके नाम के अनुसार इस रचना को पॉच अध्यायों में आरंभ ही से विभक्त रखना चाहिए था पर प्राचीन हस्तलिखित प्रतियों में ऐसा नहीं मिलता। कलकत्ता-संस्करण तथा बा० राधाकृष्णदास की संपादित प्रति में श्रीमद्भागवत के अनुसार यह पॉच अध्यायों में विभक्त है, जो ठीक भी है और उनके रखने से लाभ ही है, हानि नहीं। इस कारण ये अध्याय उसी प्रकार रखे गए है।

मूलग्रंथ श्रीमद्भागवत में भी २९–३३ तक पॉच अध्याय रासलीला के हैं और श्रीनंददासजी ने उसी का यह अनुवाद किया है अतः इस में भी पॉच अध्याय रहने चाहिए।

२ सिद्धांत पंचाध्यायी

यह रचना अभी हाल ही में मिली है और इसका कथानक वही है, जो रास पंचाध्यायी का है। इसमें कुछ कुछ सिद्धांत प्रतिपादित करते हुए चले हैं अतः इसका ऐसा नामकरण किया है। आरंभ मे २० रोलाओं में परम शक्तिमान परमब्रह्म की स्तुति करते हुये भक्तों पर कृपा रखने के कारण उनका सगुण रूप में वृंदावन में अवतीर्ण होना कहा गया है।

इसके अनंतर शरद निशि तथा पूर्ण चंद्र की शोभा वर्णन करते हुए 'शब्द-ब्रह्ममय वंशी' द्वारा गोपियों को महारास का निमंत्रण दिया गया है। इन सब ने वेदादि द्वारा कथित सभी कर्म धर्म का परित्याग कर एकमात्र उन्हीं हरिभगवान की शरण ली और सांसारिक किसी प्रकार के प्रेम-स्नेह का ध्यान न कर उन्हीं की लीला में अपने को समर्पित कर दिया। विद्वानों के ज्ञानमार्ग से, जिसमें बिना ज्ञान के मुक्ति नहीं होती तथा इसलिए ज्ञान ही सर्वस्व है, गोपियों ने अपना विभिन्न मार्ग प्रगट किया। इस मार्ग को परम ब्रह्मज्ञानी शुकदेवजी, नारदजी, उद्धवजी यहाँ तक कि ब्रह्मा तथा शिवजी ने भी अपनाया। यही कारण है कि भक्तिमार्ग की गुरु ये ही गोपियाँ मानी गई हैं। यही नंददासजी ने कहा है कि 'नाहिंन कछु शृङ्गार कथा इहि पंचाध्यायी।' यह तो भक्ति मार्ग का सिद्धांत रोचक ढङ्ग से सरल तथा सरस भाषा में बतलाता है। ४४ वें रोला में ब्रज-युवतियों के वन में पहुँचने पर इसका वर्णन आरंभ होता है। नंददासजी कहते हैं कि रासपंचाध्यायी में गोपियों के आने पर 'अनाकृष्ट मन' श्रीकृष्णजी ने जो उपदेश दिया था वह केवल उनके उत्तर द्वारा उनकी भक्ति, शुद्ध प्रेम, को संसार पर प्रगट करने के लिए कहा था। इसके अनंतर श्रीकृष्णजी क्यों छिप गए तथा फिर प्रगट हुए और क्यों रासलीला दिखलाया, इन सबकी कुछ कुछ व्याख्या करते गए हैं। इन्हीं व्याख्याओं की प्रधानता के कारण तथा संक्षेप में लीला कहने से इसका यह नामकरण किया गया है। इस पर विशेष आलोचना में लिखा जायगा।

इस रचना में कुल १३८ रोला हैं, जिनमें प्रायः १०० सिद्धांतविषयक तथा बाकी लीला संबंधी हैं। यह रचना नंददासजी की सर्वोत्तम रचनाओं में से है और यह हिंदी-साहित्य की एक निधि है।

३-४ अनेकार्थमंजरी तथा मानमंजरी

नंददासजी कृत पाँच मंजरियाँ प्रसिद्ध हैं और इन पाँचों का एक संग्रह स्यात् अहमदाबाद से बहुत दिन हुए प्रकाशित भी हुआ था पर देखने में नहीं आया। इनमें रसमंजरी, विरहमंजरी तथा रूपमंजरी के नामों में विभिन्नताएँ नहीं मिलतीं पर अनेकार्थमंजरी तथा मान-मंजरी के नामों में विशेष गड़बड़ी मची है। अनेकार्थध्वनिमंजरी,

अनेकार्थमाला, नाममाला, नाममणिमंजरी, नाममंजरी
नामकरण हो गए हैं, यहाँ तक कि दोनो को मि
नाम अनेकार्थ नाममाला भी बन गया है। इस प्रकार नामो
के साथ साथ इन दोनो की पदसंख्या में भी बहुत विभिन्न .. गई
है। दोहो मे निर्मित होने तथा केवल शब्दार्थ-संग्रहमात्र करना ही
कार्य होने से प्रक्षिप्त अंशों को जोड़ देने की सुविधा अधिक थी और
यही कारण है कि कोषो की सहायता से कुछ दोहे गढ़कर प्रायः
लोगों ने मिला दिए हैं, जिन्हे अलग करना सुकर कार्य नहीं रह
गया है।

सं० १८३५ वि० को हस्तलिखित प्रति में, जिसे रामहरीजी ने
प्रस्तुत कराया था, इन दोनो मंजरियो के अंत में कुछ दोहे दिए गए हैं,
जो विचारणीय हैं। दोहे इस प्रकार हैं—

अनेकार्थ मंजरी—त्रीस ऊपरें एक सौ नंददास जू कीन।
और दोहरा रामहरि कीने हैं जु नवीन॥
श्रीमन् श्रीनँददास जू रसमद आनँदकंद।
रामहरी की डीठता छमियो हो जगबंद॥

कोश मेदिनी आदि औ कछू शब्द अधिकाइ।
मन रुचि लखि बिच संधि दिय बाँचौ जा चित भाइ॥

मानमंजरी—दो सत पैंसठ ऊपरे दोहा श्रीनँददास।
रामहरी बाकी किए कोष धनंजय तास॥
संतन की बानी बड़ी रामहरी मतिमंद।
अपुने समुझन कों लिखे बन ते बिच दिए संद॥

इस हस्तलिखित प्रति में पाँचों मंजरियाँ एक साथ दी हुई हैं और
प्रायः एक ही समय की लिखी हुई हैं। अनेकार्थमंजरी तथा मानमंजरी
के प्रक्षिप्त अंशों का तो उल्लेख हुआ है पर अन्य तीन के संबंध में
किसी प्रकार के क्षेपक की सूचना नहीं दी गई है। पूर्वोक्त उल्लेखो से
यह तो स्पष्ट है कि पायः पौने दो सौ वर्ष पहले उक्त दोनो मंजरियों
मे कितने दोहो का होना प्रसिद्ध था या कितने दोहे उस समय तक
प्राप्त थे। रामहरीजी के पूर्व या उनके समय तक भी इन दोहो में कुछ
प्रक्षिप्त अंश मिल चुके थे या नहीं, इसे निश्चित रूप से नहीं कहा जा

सकता पर तब भी उन दोहों को देखने से यह अवश्य कहा जा सकता है कि उनमें प्रक्षिप्त अंश नहीं हैं। रामहरिजी नंददास की कविता के प्रेमी थे और स्वयं कवि थे। यदि प्रक्षिप्त अंश उन्हें ज्ञात होते तो अवश्य लिखते। इस प्रकार यह निश्चित सा है कि अनेकार्थ में १२० तथा मानमंजरी में २६५ दोहे नंददासजी के हैं और इनसे अधिक जो मिलते हैं वे दूसरों के हैं जो इस प्रकार मिला दिए गए हैं कि उन्हें छाँटना कठिन कार्य हो गया है।

रामहरिजी की रचनाओं का उल्लेख काशी नागरी प्रचारिणी सभा की सन् १६२६-३१ की खोज की रिपोर्ट में हुआ है, जिनमें दो उनकी मौलिक हैं तथा अन्य संग्रह मात्र हैं। मौलिक रचनाएँ लघुनामावली तथा लघुशब्दावली दोनों ही सं० १८३४ की हैं और ये दोनों अनेकार्थी तथा पर्यायवाची शब्दों पर रचे गए है। हो सकता है कि इसी के एक वर्ष बाद अनेकार्थमंजरी तथा मानमंजरी की प्रतिलिपि कराते समय इन अपनी रचनाओं का उनमें समावेश करा दिया हो। नंददासजी की रचनाओं से वे कितने परिचित थे, यह निम्नलिखित दोहों से ज्ञात होता है—

वृंदावन जमुना पुलिन, राधाकृष्ण विहार।
नंददास सत कविन की वानी करै अहार॥
नंददास नामावली अमरकोश के नाम।
इन ते जे वितरक्त औ लिखे हेत घनस्याम॥

अनेकार्थमंजरी तथा मानमंजरी की सम्मिलित चार छपी हुई प्रतियाँ प्राप्त हैं, जिनका विवरण इस प्रकार है—

१. अनेकार्थ और नाममाला—बनारस लाइट प्रेस से सं० १६२६ में पुनः प्रकाशित। प्रथम पुस्तक में १५६ और द्वितीय मे २६७ दोहे है।

२. अनेकार्थ और नाममाला—हरिप्रकाश यंत्रालय द्वारा अमीरसिंहजी की आज्ञा से संशोधित होकर सं० १६३३ मे प्रकाशित। प्रथम में १५४ और द्वितीय में २७७ दोहे हैं।

३. अनेकार्थ-नाममाला—लीथो का छापा, काशी नागरीप्रचारिणी सभा के आर्यभाषा-पुस्तकालय मे सं० ११ पर सुरक्षित है। प्रकाशक, स्थान तथा समय कुछ नहीं दिया है। प्रथम मे १५२ और द्वितीय में २६७ दोहे हैं।

४. अनेकार्थ-नाममाला—भारतजीवन प्रेस, काशी से प्रकाशित। प्रथम में १५४ और द्वितीय में २७८ दोहे हैं।

इन छपी प्रतियो के सिवा हमारे संग्रह में तीन मानमंजरी की व एक अनेकार्थमंजरी की हस्तलिखित प्रतियाँ हैं, जिनका विवरण इस प्रकार है—

१. 'मानमंजरी'—लिपिकाल सं० १९२५। दोहा संख्या २३८। मंगलाचरण के ४ दोहों के अनंतर 'मान' शब्द से पुस्तक का आरंभ है और अंत 'माला' तथा 'जमल' से है।

२. 'मानमंजरी'—प्रति का अंतिम पृष्ठ नहीं है। ७५८ वाँ दोहा माला पर है। प्रति काफी पुरानी है और पाठ शुद्ध है।

३. 'मानमंजरी' नाममाला—लिपिकाल सं० १८३५ है। पदसंख्या ३२५ है। पाठ शुद्ध है।

४. अनेकार्थध्वनिमंजरी'—पद-संख्या १३८ है और लिपिकाल सं० १८३५ के आसपास है।

इनके सिवा काशी नागरी प्रचारिणी सभा को तीन हस्तलिखित प्रतियाँ अनेकार्थमंजरी की मिली हैं, जिनका विवरण नीचे दिया जाता है—

१. संख्या ६४ ख० (पुस्तकालय की सूची की), दोहा सं० १५३। इसमें दोहा संख्या १२१ 'रस' पर और १५२ 'स्नेह' पर है, बीच में ३१ दोहे प्रक्षिप्त हैं और १ दोहा ग्रंथ-माहात्म्य पर है।

२. संख्या ६४ ग (पुस्तकालय-सूची), लिपिकाल सं० १८७७, दोहा सं० १४८। अंतिम दोहा ग्रंथ-माहात्म्य पर है। छापवाले दोहे की संख्या ११८ है। सारंग पर अन्य में चार दोहे हैं पर इसमे केवल एक है।

३. संख्या ६४ च (पुस्तकालय-सूची), दोहा संख्या १०४ अपूर्ण। इसका नाम 'भाषानेकार्थ' दिया है।

याज्ञिक संग्रह में जो अब सभा को मिल गई है, अनेकार्थ मंजरी की तीन प्रतियाँ है जिनका विवरण इस प्रकार है—

१. सूची संख्या १७७।१४ की प्रति आरंभ में खंडित है। कुल १२१ दोहे इसमें हैं पर लिपिकाल नहीं दिया गया है।

२. सूची संख्या १७६।१४ की प्रति में ११८ दोहे हैं। यह पूर्ण है पर लिपिकाल इसमें भी नहीं दिया है।

३. सूची संख्या २६४।१४ की प्रति सं० १८१८ की है और पूर्ण है। इसमें ११७ दोहे हैं और भरतपुर में लिखी गई है।

अनेकार्थमंजरी की ऊपर लिखी चार छपी प्रतियों में १२१ वें दोहे में नंददास की छाप दी हुई है और मंगलाचरण के चार दोहों मे तीसरे में भी छाप है। दोहे इस प्रकार हैं—

> उचरि सकत नहिं संस्कृत अर्थ ज्ञान असमर्थ।
> तिन हित 'नंद' सुमति जथा भापा कियो सुअर्थ॥
> तेल सनेह, सनेह घृत, बहुरो प्रेम सनेहु।
> सो निज चरनन गिरिधरन नंददास कहँ देहु॥

हस्तलिखित प्रतियों में एक को छोड़कर सभी में मंगलाचरण के केवल तीन दोहे हैं और इस प्रकार इस रचना में १२० दोहो के होने का हिसाब ठीक बैठ जाता है। चारो छपी प्रतियो में इस छाप के बाद तेतीस दोहे हैं, जो अवश्य ही औरो की रचनाएँ हैं। सभा की खोज की रिपोर्टों में अनेकार्थमंजरी की जिन हस्तलिखित प्रतियो का उल्लेख है, उनमें भी १२२, १२० तथा ११६ दोहे हैं। इसी प्रकार मानमंजरी की उक्त चार प्रतियो में किसी में मंगलाचरण के दो किसी में तीन या चार दोहे हैं और दूसरे मे नंददासजी की छाप है। अंत में 'जुगल' नाम के दोहे में छाप है, जो छपी प्रतियों में दो मे २७६ वीं तथा २७७ वीं और दो प्रतियो में २६७ वीं संख्या पर है। दोहे इस प्रकार हैं—

> उचरि सकत नहि संस्कृत जान्यो चाहत नाम।
> तिन हित 'नंद' सुमति जथा रचत नाम को दाम॥
> जमल, जुगल, जुग, द्वंद्व, द्वै, उभय, मिथुन, विवि, वीय।
> जुगलकिशोर सदा वसौ 'नंददास' के हीय॥

सभा की खोज की रिपोर्टों मे मानमंजरी की जिन हस्तलिखित प्रतियो का उल्लेख है उनमें २५८, २८४, ३०१, ३०७ तथा २६८ दोहे हैं। ऊपर की विवेचना के अनंतर दोनों रचनाओं की दोहा-संख्या एक प्रकार निश्चित हो जाने पर अब प्रक्षिप्त अंश को छाँटना आवश्यक हुआ क्योंकि प्रायः सभी में दो चार से लेकर पचास साठ तक दोहे

अधिक हैं और इसके लिये कुल दोहों की प्रतीकानुक्रमणिका तालिका रूप में तैयार की गई। इसके अनंतर दोनों रचनाओं की प्राप्त चारों छपी प्रतियो तथा अनेकार्थ की चार और मानमंजरी की तीन हस्तलिखित प्रतियो से प्रत्येक दोहों की संख्याएँ उनमें भरी गई। इस प्रकार रामहरीजी के बनाए हुए दोहे उन्हीं की लिखी हुई संख्या के अनुसार, स्वतः अलग हो गए क्योंकि वे किसी भी अन्य प्रति में नहीं मिले। अनेकार्थमंजरी में ५५ और नाममाला में ६० दोहे रामहरिजी के पृथक् हो गए, जो क परिशिष्टों में दे दिए गए हैं। रामहरिजी के सिवा जिन अन्य सज्जनों ने अपनी कविता अनेकार्थ में जोड़ी है उन सब ने उन्हें प्रायः नंददासजी के छापवाले दोहे के उपरांत ही रखा है इससे वे अलग ही है और ख परिशिष्ट मे दिए गए हैं। मानमंजरी मे जितने दोहे नंददासजी कृत रामहरिजी ने दिए हैं, उन्हें अलग करने पर जो दोहे बचे वे भी अन्य कृत माने गए और उसके परिशिष्ट ख में दिए गए हैं। इस प्रकार नंददासजी कृत अनेकार्थमंजरी तथा मानमंजरी में उतने ही दोहे विश्वस्त रूप से उन्हींके बनाए हुए मान कर रखे गए, जो सं० १८३५ वि० तक उनके कहे गए हैं। अधिकतर यही आशा तथा विश्वास है कि वे सब नंददासजी ही की रचनाएँ है। मानमजरी की इससे एक प्राचीनतर सं० १७२५ की लिखी प्रति का हवाला दिया जाता है, जिसमें २८३ दोहे हैं अर्थात् १८ दोहे अधिक हैं। इनमे कुछ दोहे ऐसे शब्दो पर हैं, जिनका अन्य किसी भी प्रति में उल्लेख नहीं है और कुछ दोहे बीच में अर्थात् एक दोहे को तोड़कर दो दोहे बनाकर दिए गए हैं। जैसे—

सदन, सद्म, आराम, गृह आलय, निलय स्थान।
भवन भूप वृषभानु के गई सहचरी ल्यान॥

क्षेपककार महाशय ने इस पर यों कृपा की—

सदन, सद्म, आराम, गृह, गेह, वेश्म, संकेत।
लैमधिष्ट पद, आस्पद, आलय, निलय, निकेत॥
मंदिर, मंडप, आयतन, वसति नीक अस्थान।
भवन भूप वृषभानु के गई सहचरी ल्यान॥

ऐसे क्षेपक प्राचीन प्रतियों के मिलान करने ही पर छाँटे जा सकते हैं। नाममाला की जो तीन हस्तलिखित प्रतियाँ काशी नागरी प्रचारिणी सभा में हैं, उनका विवरण देखने से ज्ञात होता है कि इनमें भी २५९, २७२ तथा १६८ दोहे हैं। विवरण नीचे दिया जाता है—

१. पुस्तकालय की सूची की संख्या ६४ की प्रति सं० १९०६ की लिखी है, इसका नाम 'नाममाला' दिया है। इसमें २५९ दोहे हैं पर भूल से सं० ६९ के बाद पुनः सं० ६० लिख गया है। अंतिम दोहा माला पर है और इसके पहले का छाप का है।

२. पुस्तकालय सूची की संख्या ६४ ग की प्रति सं० १८७५ की लिखी है। इसका प्रथम पृष्ठ नहीं है। इसका नाम 'नामावली' दिया हुआ है। इसमें २७२ दोहे हैं और अंतिम छाप वाला है।

३. पुस्तकालय सूची की सं० ३९३ की प्रति सं० १८५५ की लिखी हुई है और पूर्ण है। इसमें कुल १६८ दोहे हैं। अंतिम दोहे मुगल और माला पर है।

याज्ञिक-संग्रह में भी नाममाला की छ प्रतियाँ हैं, जिनका विवरण नीचे दिया जाता है—

१. सूची सख्या १७१।१४ की प्रति में कुँआर वदी ५ सं० १८७६ लिपिकाल है। इसमें २६८ दोहे हैं और लाल रोशनाई में मानमंजरी नाम दिया है, जिसे काटकर किसी ने ऊपर नाममाला नाम लिख दिया है। प्रति पत्राकार बड़े अक्षरों में है। पाठ विशेष शुद्ध नहीं है। कहीं कहीं जैसे 'खड्ग' नाम के खड्ग का दोहा भूल से नहीं लिखा गया है और आगे 'दिशा' का उसके स्थान पर लिख गया है। यही दोबारा पुनः दिया गया है। आरंभ में दो चार दोहे प्रक्षिप्त हैं पर उसके वाद नहीं हैं।

२. सूची संख्या २९४।१४ की प्रति भरतपुर में सं० १८१८ में लिखी गई है। इसमें २६६ दोहे हैं और मानमंजरी नाम दिया गया है।

३. सूची संख्या १७४।१४ की प्रति सं० १८१९ की है। इसमें २८४ दोहे हैं परंतु यह साधारण कागज पर लिखा है, मसि भी साधारण फीकी है। संवत् के आगे साके सालिवन लिखा है। प्रति प्राचीन नहीं ज्ञात होती।

४. सूची संख्या ११।१४ की प्रति सं० १९३५ की लिखी ज्ञात होती है। इसमें २५७ दोहे हैं।

५. सूची संख्या ७६६।१४ की प्रति सं० १७७५ की लिखी है पर यह शक संवत ज्ञात होता है क्योंकि प्रति इतनी प्राचीन नहीं है। इसमें २८५ दोहे हैं और नाममाला नाम है।

६. सूची संख्या ७६९।१४ की प्रति सं० १९०५ की है और उर्दू लिपि में है। इसमें २६९ दोहे हैं और नाममंजरी नाम है।

इस प्रकार देखा जाता है कि एक सुकवि, साहित्य प्रेमी तथा विशेष रूप से नंददासजी की कविता के प्रेमी रामहरिजी की पौने दो सौ वर्ष प्राचीन प्रति में स्पष्ट उल्लेख है कि मानमंजरी में २६५ दोहे हैं और प्रायः अधिकतर हस्तलिखित तथा छपी प्रतियाँ इसी का अनुमोदन करती हैं। ऐसी अवस्था में इसी के अनुसार इस ग्रंथ का पाठ लेना युक्तिसंगत है।

एक बात और ध्यान देने योग्य है। नंददासजी भक्त-कवि थे अतः इन्होंने जो कुछ लिखा है, सभी में हरि-कीर्तन ही उनका ध्येय था। इनके हर दोहे में देखा जायगा कि हरि, गोविंद, कृष्ण का उल्लेख मिलता है पर क्षेपककारों में यह भक्ति न थी और वे केवल कोष-रूप में दोहे बनाने में व्यस्त रहे और अपने आदर्श के सूक्ष्म ध्येय को नहीं पहचान सके। रामहरिजी ने कुछ अंशों तक अपने दोहों में इस पर ध्यान रक्खा है पर वह भी सफल नहीं हो सके। नंददासजी ने कहीं-कहीं ऐसा भी किया है कि जब एक दोहे में शब्दों के आधिक्य के कारण नामकीर्तन का स्थानाभाव देखा तब एक दोहा और केवल उसी अभाव की पूर्ति के लिये जोड़ दिया है, जैसे—

नीलकंठ, केकी, बरहि, शिखी, शिखंडी होय।
शिवसुत बाहन, अहिभषी, मोर, कलापी, सोय॥
नटत मयूर अटान चढ़ि अतिहि भरे आनंद।
निसि दिन उनए रहत है, नवनीरद नँदनंद॥

नाममाला का एक नाम मानमंजरी भी है और ऐसा क्यों नाम रखा गया है इसका भी एक रहस्य है, जो इस रचना में गुप्त रूप से रखा गया है। इसे तीसरा दोहा कुछ स्पष्ट करता है, जो इस प्रकार है—

गूँथनि नाना नाम को अमरकोष के भाय।
मानवती के मान पर मिले अर्थ सब आय॥

अर्थात् अनेक नामों को कोष रूप में गूँथते हुए भी सबका अर्थ मानिनी के मान पर घट जाता है। प्रथम शब्द 'मान' ही कवि ने इसी कारण रखा है और मंगल रूप में कहता है कि—

मान राधिका कुँअरि को सबको करु कल्यान॥ ५॥

अब प्रत्येक शब्द के दोहे की द्वितीय अर्द्धाली या जिस शब्द के दो या अधिक दोहे हैं, उनके अंतिम दोहे को लेने से मानलीला का पूरा वर्णन आ जाता है। राधिकाजी के मान करने पर

अली कुँअरि वृषभानु की चली मनावन ताहि॥ ६॥
मति सों मति करतै चली भली बिचच्छन तीय॥ ७॥

....

भवन भूप वृषभानु के गई सहचरी स्यान॥१०॥

वृषभानु का ऐश्वर्य वर्णन करने पर

चित मे सोचत सहचरी भीतर कैसे जाउँ॥३६॥
लोपांजन दृग दै चली ताहि न देखै कोय॥३७॥

और भी ऐश्वर्य देखती, सकुचाती वह वहाँ पहुँची, जहाँ श्री राधिकाजी

दुग्ध फेन सी सेज पर बैठी तिय कमनीय॥४७॥

वहाँ राधाजी का सौंदर्य, मान देखते हुए वह

पानी नैन पखारिकै अंजन हाथै लीन।
प्रगट भई पिय की सखी निपट सुसंकित दीन॥७४॥

राधाजी इसको देख कर क्रुद्ध हो गई, जिससे यह डर गई और तब राधाजी ने पूछा—

कित डोलत है कुशल कहु पूछति कुँवरि सुजान॥८१॥

इस पर वह सखी राधाजी की प्रशंसा करते, श्रीकृष्ण का प्रेम तथा अधैर्य वर्णन करते और उनका ईश्वरत्व प्रगट करते हुए मान त्यागने की प्रार्थना करती है। इस पर राधा जी उन्हें कपटी कहती हैं तब वह उत्तर देती है—

पाप-महावन दहन-दव जाकौ रंचक नाम।
ताकौं तू कपटी कहत कहा कहौं तोहि भाम॥२१६॥

इस प्रकार वह सखी उन्हें समझाती है तथा उपालंभ देती है—

काली अहि गंजन समै मैं राखी गहि बाँहि।
नँद-नंदन पिय-प्रेम बस परत हुती दह माँहि ॥१६८॥

इस पर भी राधाजी नहीं मानतीं और कहती हैं

मद पीयें ज्यों बकत कोउ कहा बकत है दूति ॥१९३॥

इस पर जब सखी टेढ़ी मेढ़ी कहती हुई जाने की आज्ञा माँगती है।

तब प्रिय सहचरि तन चितै मुसकी कुँवरि तनाक ॥२०६॥

अंत में

सौध हर्म्य प्रासाद तें चली जु तिय गति मंद।
महल धौरहर तें मनों अवनी उतरत चंद ॥२१२॥

मार्ग में चलते हुए अनेक वृक्ष पुष्प आदि को लेकर व्यंग्य करती हुई सखी उसे संकेत स्थान पर ले जाती है तथा

यों राधा-माधव मिले परम प्रेम हरषाइ ॥२६१॥
जुगल-किशोर सदा बसौ 'नंददास' के हीय ॥२६३॥

यहाँ मानमंजरी इस नाममाला में गूँथी गई है। प्रक्षिप्त अंश के दोहे इस रहस्य रचना से स्वभावतः अलग पड़ गए हैं।

५—रूप मंजरी

'दो सौ बावन वैष्णव की वार्ता' के पृ० ३८५–७ पर लिखा है कि 'हिंदू राजा की पुत्री रूपमंजरी अकबर को व्याही दासी थी पर उसका स्पर्श नहीं करती थी। उसका प्रण था कि यदि वह उसे छुएगा तो वह प्राण दे देगी। यह अत्यंत सुंदरी थी, इससे अकबर उसे देखकर संतुष्ट रहता था। रूपमंजरी गुटका मुख में रखकर नित्य नंददास के पास जाती थी। इस प्रकार कई वर्ष बीते। एक दिन अकबर के सामने किसी ने गाया—

देखो देखो री नागर नट, निरतत कलिंदी तट।
'नंददास' गावे तहाँ निपट निकट।

अकबर ने पूछा कि क्या वह परमेश्वर के इतने पास बैठ कर गाता है। किसी ने कहा कि वह जीवित है, उन्हीं से पूछा जाय। अकबर

सकुटुंब इस पर व्रज आया और बीरबल को उनके पास भेजा। इन्होंने दो दिन बाद आने का वचन दिया। दूसरे दिन यह रूपमंजरी के डेरे के पास स्थित कुंड में स्नान को गए तब श्रीगोवर्धननाथजी को प्रत्यक्ष रूप-मंजरी के यहाँ भोग लगाते देखा। यह एक वृक्ष की ओट से दर्शन करने लगे। श्रीठाकुरजी के कहने पर रूपमंजरी ने इन्हें बुलवाया और इन्होंने आज्ञा पाकर महाप्रसाद लिया। नंददासजी यहाँ से विदा होकर दूसरे दिन अकबर के पास गए और उसके वही प्रश्न पूछने पर कुछ रहस्य उद्घाटन करने के बदले शरीर त्याग दिया। अकबर उदास होकर रूप-मंजरी के पास गया और उससे यह वृत्तांत कहा। वह भी नंददास के विरह से निष्प्राण-शरीर होकर गिर गई।'

नंददास कृत रूपमंजरी की घटनावली इस प्रकार है कि निर्भयपूर के राजा धर्मधीर के एक अतीव सुंदरी राजकुमारी रूपमंजरी थी। विवाह योग्य होने पर माता-पिता ने उसके उपयुक्त वर से उसका विवाह कर देना चाहा पर ब्राह्मण ने लोभ से इसका उलटा कर दिया। इस कारण जब राजकुमारी युवती हुई तब उसने श्रीकृष्ण भगवान से प्रीति की। उसकी सखी इंदुमती उसकी सहायिका हुई और उसकी स्तुति से राजकुमारी को एक बार स्वप्न में भगवान के दर्शन हुए। इसके अनंतर विरह आरंभ हुआ और नंददासजी ने बारहमासा कह डाला। अंत में इसका अनन्य प्रेम देखकर भगवान ने इसे अपना लिया। इसके साथ-साथ सखी इंदुमती का निस्तार हो गया। कहते हैं—

जदपि अगम तें अगम अति, निगम कहत है जाहि।
तदपि रँगीले प्रेम तें निपट निकट प्रभु आहि॥

उक्त दोनों कथाओं का मिलान करने से स्पष्ट ही ज्ञात होता है कि वे दोनो 'निपट निकट' क्या हैं, एक ही हैं। वार्ता की रूपमंजरी ही इस आख्यानक काव्य की नायिका है, नंददास सहचरी हैं, अकवर रूपी अपने अयोग्य पति को त्याग कर वह नंददास के यहाँ श्रीकृष्ण भगवान से मिलने नित्य आती थी। नंददासजी वहाँ 'निपट-निकट' गायन करते थे। अकवर के इसी रहस्य की जिज्ञासा करने पर नंददास तथा रूप मंजरी दोनो ने कुछ न कहकर शरीर त्याग दिया था।

इस ग्रंथ का पाठ सं० १८३५ की निजी प्रति के आधार पर विशेष रूप से रखा गया।

६—रसमंजरी

नंददासजी ने इस रचना में अपने एक मित्र के कथन पर नायक-नायिका भेद का विशद वर्णन किया है और अति संक्षेप में हाव भाव आदि पर भी कुछ लिखा है। इस ग्रंथ के कारण यद्यपि यह रीतिकाल के आरंभिक कवियों मे परिगणित किए जा सकते हैं पर प्रधानतः यह भक्तिकाल ही के कवि हैं। इस ग्रंथ के विशेष परिचित न होने के कारण हिंदी साहित्य के इतिहासकारों ने इन्हे कृपाराम, मोहनलाल मिश्र, करणेश, बलभद्र आदि के साथ अपने ग्रंथों में स्थान नहीं दिया है। रहीम के 'बरवै' का नायिका भेद के उदाहरणो का संग्रहमात्र होते हुए भी उल्लेख है पर नंददासजी के, जिन्होने लक्षणों ही पर अधिक ध्यान दिया है, कहीं भी उल्लेख नहीं किया गया है। ऐसा केवल इस ग्रंथ के अप्राप्य होने ही के कारण हुआ है।

मित्र के अनुरोध पर नायका-भेद लिखते हुए नंददासजी कहते हैं कि प्रेमतत्त्व की पहिचान के लिये इसका ज्ञान आवश्यक है। इन भेदों को न जानने से इन सबके होते हुए भी वह अंधे के हाथ मे रखे हुए अमूल्य रत्न के समान हैं। इसी कारण वह विस्तार के साथ इस विषय पर लिखते हैं। २४ दोहे तथा चौपाई तक इस ग्रंथरचना का कारण कह कर वह ग्रंथ आरंभ करते हैं। धर्म के अनुसार पहले तीन भेद—स्वकीया, परकीया तथा सामान्या किए हैं। फिर प्रत्येक के अवस्था-नुसार मुग्धा, मध्या तथा प्रौढ़ा तीन भेद माना है। मुग्धा के नवोढ़ा तथा विश्रब्ध नवोढ़ा और ज्ञातयौवना तथा अज्ञातयौवना भेद किए हैं। अब इतने भेदों का पूरा लक्षण देने के बाद धीरा, अधीरा तथा धीरा-धीरा भेद मध्या तथा प्रौढ़ा में बतलाए गए हैं। मुग्धा मे, इतना मात्र कह दिया गया है कि, वे स्पष्ट नहीं होते। व्यापार के अनुसार आठ भेदो में से केवल तीन के लक्षण दिए हैं। इसके अनंतर प्रोषित पतिका आदि नौ भेदो को मुग्धा, मध्या तथा प्रौढ़ा तीनों पर घटाते हुए लक्षण दिए हैं। इस प्रकार नायिका भेद समाप्त कर नायक के चार भेद धृष्ट शठ, दक्षिण तथा अनुकूल के लक्षण बतलाए गए हैं। तब हाव, भाव, हेला तथा रति का लक्षण देकर ग्रंथ समाप्त किया गया है। यह पूरा ग्रंथ दोहे चौपाइयों में है।

इसका पाठ निजी दो हस्तलिखित प्रतियो के आधार पर निश्चित

किया गया है। भरतपुर की लिखी सं० १८१८ की प्रति का पाठ शुद्ध नहीं है और रूपमंजरी के कई दोहे आदि इसमें मिल गए हैं।

७—विरहमंजरी

भगवान श्रीकृष्णचंद्र के वृंदावन से मथुरा चले जाने पर विरह-विधुरा गोपियों द्वारा चंद्र को संबोधन कर नंददासजी ने बिरह का वर्णन किया है। आरंभ में विरह चार प्रकार का बतलाया गया है—प्रत्यक्ष, पलकांतर, वनांतर और देशांतर। प्रत्यक्ष वह है कि प्रिय के पास रहते भी प्रेमाधिक्य से भ्रम के कारण सखी से पूछ बैठना कि प्यारे कहाँ हैं? प्रिय को देखने में पलकों के गिरने से जो बाधा पड़ती है, वह पलकांतर है। जब कृष्णजी के गोचरण के लिये वन में चले जाने से वनांतर विरह होता था तब मथुरा तथा द्वारिका चले जाने पर देशांतर विरह हुआ था। इसके अनंतर बारहमासा कहा गया है। इस मंजरी में चंद्र को दूत बनाकर गोपियों ने अपनी विरह कथा कही और उनसे प्रार्थना की कि द्वारिका में श्रीकृष्ण के पास जाकर यह वृत्तांत कह कर निवेदन करना कि अब तो आकर वृंदावन में निवास करें। यह संदेश मानों स्वप्न में कहलाया गया है और उसी प्रकार का मिलन भी दिखलाया गया है, जैसे 'जागि परै सुख पावत तैसें'। भाव यह है कि विरहावस्था स्वप्न है और उसी में सब कष्ट मिलता है और जागृत हो जाने पर अर्थात् मिलन हो जाने पर फिर सुख ही सुख है।

इस मंजरी में १८ दोहे, १२ सोरठे और ७२ चौपाइयाँ हैं। भाषा तथा भाव सभी नंददासजी के योग्य हैं। इसका पाठ दो हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर ठीक किया गया है।

८. भ्रमरगीत

श्रीकृष्णजी के मथुरा चले जाने के अनंतर विरहिणी गोपियों द्वारा उन्हें भ्रमर-संज्ञा देकर जिन पदों में उपालंभ दिया जाता है, उन्हीं को भ्रमर-गीत कहते हैं। सूरदासजी तथा नंददासजी के भ्रमर-गीत व्रज भाषा साहित्य में बहुत प्रसिद्ध हैं। इस भ्रमर-गीत में उद्धवजी श्री कृष्णजी का संदेश लेकर व्रज आए और उनसे तथा विरह-विधुरा गोपियों के कथोपकथन में साकार-सगुण तथा निराकार-निर्गुण ईश्वर

के प्रति प्रेम का विवेचन किया गया है। उद्धव के कूट पाण्डित्य का गोपियों पर कुछ भी असर नहीं हुआ पर विरहकातरा व्रजबालाओं के सरल प्रश्नों, उत्तरों तथा दशा ने उद्धवजी से उद्भट ब्रह्मज्ञानी को प्रेम-विभोर अवश्य कर डाला। श्रीकृष्णजी ने उद्धव को उनका ज्ञान-गर्व मिटाने ही के लिये व्रज भेजा था। लौटते समय उनकी प्रेमदशा का जो वर्णन किया गया है तथा श्रीकृष्णजी को पहुँचते ही जो फटकार दिलाई गई है, उसे पढ़ने तथा श्रवण करने मात्र से उद्धव के हृदय ही के परिवर्तन मात्र का द्योतन नही होता है प्रत्युत् प्रत्येक पाठक तथा श्रोता के हृदय में वह प्रेमावेश स्थापित कर देता है।

इस भ्रमर गीत के संपादन मे चार हस्तलिखित प्रतियो तथा चार छपी प्रतियो से सहायता ली गई है। हस्तलिखित प्रतियों का काल क्रमशः सं० १८९५, १८७३, १९०८ और १९२३ वि० है। छपी प्रतियाँ सन् १८९४, १९०३, १९०४ और १९१८ ई० की हैं। सभी में ७५ पद हैं अतः यह निश्चित है कि इनमें क्षेपक नहीं है। विशेष प्राचीन एक भी प्रति नहीं प्राप्त हो सकी, इसका खेद अवश्य है। तीन हस्तलिखित प्रतियो के ७५ वे पद के अंत में लिखा है कि 'जन मुकुंद पावन भयो सो यह लीला गाय।' एक हस्तलिखित प्रति तथा छपी प्रतियो में जन मुकुंद के स्थान पर नंददास लिखा है। इस पर दो शंकाएँ उठती हैं। प्रथम यह कि नंददासजी का जनमुकुंद भी छाप रहा हो और दूसरा यह कि अज्ञात जनमुकुंद के स्थान पर प्रसिद्ध नंददासजी का नाम जोड़ दिया गया हो। परंतु जन-श्रुति इसे नंददास का बतलाती है और वैष्णव मंदिरो के नित्य कीर्तन में यह पद पाया जाता है, जिसमें अष्टछाप तथा अत्यंत ही प्रसिद्ध भक्तो के पद लिए गए है अतः प्रथम ही शंका मान्य है।

९. गोवर्द्धन लीला

इस रचना की केवल एक प्रति प्राप्त हुई है और खोज की रिपोर्ट में भी इसका केवल एक वार उल्लेख हुआ है। श्रीकृष्ण ने इंद्र की पूजा उठाकर गोवर्द्धन पर्वत की पूजा की प्रथा चलाई, जिसपर इंद्र ने कोप कर व्रज पर प्रलयमेघ भेजा और उसे वर्षा से वहा देने का प्रयास किया। भगवान ने पर्वत को उठाकर उसकी छत्रच्छाया में सबकी रक्षा की तथा

इंद्र का गर्व तोड़ा। इसी का चालीस चौपाइयों में संक्षेप में इस रचना में वर्णन हुआ है। इसकी हस्तलिखित प्रतियो की कमी से यह ज्ञात होता है कि इसका प्रचार अधिक नहीं हुआ था। यह रचना छोटी होते हुए भी नंददासजी के योग्य ही है।

१०. श्याम सगाई

श्री राधिकाजी को देखकर यशोदाजी की इच्छा हुई कि इसके साथ अपने पुत्र श्रीकृष्णजी का विवाह करें और इस संबंध के लिये उन्होंने श्री राधाजी की माता कीर्तिजी से कहलाया। उन्होंने उत्तर दिया कि मेरी पुत्री सीधी-सरल है और श्रीकृष्ण बड़े चंचल-चित्त तथा माखन-चोर हैं इसलिए मैं सगाई नहीं करूँगी।

इस उत्तर पर यशोदाजी चिंता कर रही थीं कि श्रीकृष्णजी वहाँ आ गए। वह यह वृत्तांत सुनकर वाल स्वभाव से वोले कि मैं विवाह नहीं करना चाहता पर यदि तुम्हें इन्हीं से विवाह कराने की चिंता है तो मुझे नंद वावा की शपथ जो यह पैर पड़कर न दें। इसके अनंतर यह वरसाने की ओर गए और सखियो सहित आती श्रीराधिकाजी इनके सौंदर्य को देखकर ऐसी मुग्ध हुईं कि उनपर वेहोशी छा गई। सखियों ने उनकी माता से सर्प-दंशन के कारण ऐसा होना वतलाया और श्रीकृष्ण को विष दूर करने के लिए वुलाने की राय दी। काली-नाग नाथने के कारण यह सर्प के मंत्र-ज्ञाता प्रसिद्ध हो चुके थे। तव अंत में इन्होंने जाकर विप दूर कर दिया और कीर्तिजी ने सगाई करना स्वीकार कर लिया।

भ्रमर गीत के ढंग पर एक रोला तथा एक दोहा मिश्रित २८ पदों में यह विवरण अत्यंत सरस भाषा में लिखा गया है।

११. रुक्मिणी मंगल

इसमें १३१ रोला छंद हैं। इसकी कथा इस प्रकार है कि विदर्भ-नरेश भीष्मक अपनी पुत्री रुक्मिणीजी का विवाह श्रीकृष्णजी करना चाहते थे क्योंकि रुक्मिणीजी का उन पर प्रेम था और श्रीकृष्ण जी का भी उन पर प्रेम था। परंतु भीष्मक का पुत्र रुक्म श्रीकृष्णजी से द्वेष रखता था, इसलिए उसने अपने पिता

को रुक्मिणी का विवाह राजा शिशुपाल से करने पर बाध्य किया। अंत में विवाह निश्चय हो गया और शिशुपाल बारात सजाकर मगधाधिप जरासंध के साथ विदर्भ की राजधानी कुंडिनपुर पहुँचा। रुक्मिणी को इस विवाह का जब पता मालूम हुआ तब उसने एक ब्राह्मण द्वारा श्रीकृष्ण को पत्र भेजा कि यदि वे समय पर उसका उद्धार न कर सकेंगे तो उसे बलात् आत्महत्या कर लेनी पड़ेगी। यह पत्र पाकर श्रीकृष्णजी रथ पर सवार हो कुंडिनपुर पहुँचे और इनकी सहायता को इनके बड़े भाई बलरामजी भी ससैन्य पीछे पीछे पहुँचे। जब श्रीरुक्मिणीजी विवाह के संबंध में नगर के बाहर देवीजी का अर्चन-पूजन करने गईं और वहाँ से लौटने लगीं तभी मार्ग में श्रीकृष्णजी ने उन्हें अपने रथ पर बैठा लिया और अपने राज्य की ओर लौट चले। इस हरण की वार्ता को सुनकर शिशुपाल, जरासंध तथा रुक्म सेना लेकर चढ़ दौड़े पर सभी को परास्त होकर लौट जाना पड़ा। द्वारिका पहुँचने पर दोनों का विधिवत् विवाह हुआ और राजा भीष्मक ने दहेज आदि भेज दिया।

नंददासजी ने आरंभ के अंश का विस्तार से वर्णन किया है पर युद्ध को चार पाँच रोलाओं में समाप्त कर दिया है। अंत में विवाह का मंगलगान किया है। यह रचना अत्यंत सरस है।

१२. सुदामा-चरित्र

साढ़े चालीस चौपाइयों में सुदामाजी का प्रसिद्ध उपाख्यान सरल भाषा में कह दिया गया है। सुदामा की निरीहता तथा उनकी पतिव्रता स्त्री का अपने पति ही के लिये श्रीकृष्णजी से याचना करने को कहना, मित्र से मिलने पर उनसे कुछ न कहना तथा श्रीकृष्णजी का बिना माँगे मित्र की पूरी सहायता करना दिखलाना भक्तकवि के योग्य ही है। यह छोटा सा काव्य संक्षेप में तथा सुगम भापा में लिखा गया है।

१३. भापा दशमस्कंध

श्रीमद्भागवत के दशम स्कंध के केवल प्रथम २८ अध्यायों का यह भापानुवाद है और जनश्रुति के आधार पर यह ज्ञात होता है कि नंददासजी ने इसके आगे अनुवाद नहीं किया। पूरा दशमस्कंध नब्बे

अध्यायों में है, जिनमें ४९ वें अध्याय पर पूर्वार्द्ध की समाप्ति है। यह अनुवाद भी अक्षरशः न होकर भावानुसरण मात्र है। यह अनुवाद भी किसी मित्र को सुनाने के लिए किया गया था और दोहे-चौपाइओं में है। नंददासजी ने श्रीमद्भागवत के टीकाकार श्रीधर स्वामी का स्पष्ट उल्लेख किया है और ऐसा ज्ञात होता है कि इन्होंने अन्य भाष्य-कारों के भी ग्रंथ मनन किए हैं, जिनके विचार कहीं कहीं इनके अनु-वाद में आ गए हैं। कवि ने अनुवाद में यथानियम कहीं कुछ अंश छोड़ दिए हैं तो कहीं कुछ विस्तार भी किया है।

भाषा दशम स्कंध में कितने अध्याय अनूदित हुए थे, इसमें मतभेद है। श्रीकर्मचंद गुग्गलानीजी द्वारा संशोधित प्रति में २८ अध्याय हैं, जिनके संपादन की आधार चार हस्तलिखित प्रतियाँ थीं। इनमें एक सं० १७६४ वि० की है। श्रीमुरारीलाल केडिया, काशी की सं० १७५७ की तथा कॉकरौली के श्रीद्वारिकेश पुस्तकालय की प्रतियों में भी केवल २८ अध्याय हैं। उन्तीसवें अध्याय की कथा रासपंचाध्यायी के अंत-र्गत आ जाती है, जिसे नंददासजी ने स्वतंत्र रूप से रोलाओं में अलग लिखा है। कोई कारण नहीं ज्ञात होता कि इस अध्याय का दुबारा चौपाइओं में अनुवाद किया गया हो। इस अध्याय की भाषा भी संदिग्ध-सी है इसलिए यह अलग परिशिष्ट में दिया गया है।

हमारे निज संग्रह में एक खंडित प्रति है, जो दो सौ वर्ष से कम प्राचीन नहीं है। इसकी तथा पूर्वोक्त केडियाजी की प्रति की सहायता से इस ग्रंथ का पाठ ठीक करने में अधिक सहायता ली गई है। प्रयाग विश्वविद्यालय की प्रकाशित प्रति से इस संस्करण में कहीं कहीं थोड़ा पाठ भेद पड़ गया है पर यथाशक्ति बहुत समझकर वैसा भेद किया गया है।

१४. पदावली

नंददासजी के पदों का अब तक एक भी संग्रह अलग प्रकाशित नहीं हुआ है, केवल संग्रह ग्रंथों मे अन्य कवियों के पदों के साथ ये इतस्ततः मिलते हैं। नित्य कीर्तन के पद-संग्रह, भजन-संग्रह, प्राचीन हस्तलिखित पद-संग्रहो आदि बीस पचीस ग्रंथों से खोजकर प्रायः दो

सौ पद बड़ी कठिनता से संकलित किए जा सके हैं। ये सब श्रीकृष्ण-लीला-संबंधी हैं, पर कुछ श्रीरामचंद्र तथा उनके अनुगामी हनुमानजी के संबंध के भी है। श्रीकृष्णजी की बाल-लीला तथा प्रेम-लीला मुख्य है और कुछ पद विनय तथा भक्ति पर भी है।

पदावली के संपादन की मुख्य कठिनाई पाठ को शुद्ध करना था। प्राचीन हस्तलिखित प्रतियों में यत्रतत्र लेखन की ऐसी अशुद्धियाँ मिलती थीं कि अर्थ लगाना कठिन हो जाता था। यदि भाग्य से वह पद किसी अन्य प्रति में मिल गया तो कुशल हो जाती थी नहीं तो अक्षरों का क्रम मिलाना साधारण काम नहीं था। छपे पदों में भी भूलें मिलती थीं, जहाँ दो शब्द के अक्षर इधर-उधर कर अनर्गल चार शब्द बन गए थे। यथाशक्ति इन सबको ठीक किया गया है, पर तब भी भूल रह जाना स्वाभाविक है।

आलोचना

कविता वास्तव में मानव-जीवन का विश्लेषण है और उसमें तत्कालीन प्रचलित मुख्य मुख्य भावों तथा उच्च आदर्शों का प्रतिपादन किया जाता है। कविता मनुष्यों ही की कृति है और स्वांतःसुखाय होते हुए भी मनुष्यों ही के लिए रची जाती है। ऐसी अवस्था में मानव-जीवन के अर्थात् मनुष्यों के भाव, विचार, अनुभव आदि का कविता में जितना ही अच्छा स्वाभाविक वर्णन होगा उतनी ही वह कविता आनंददायिनी तथा अमर होगी। वन की किसी सुरम्यस्थली की, उसके सुंदर वृक्षों की अवलियों की, भरे हुए जलाशय तथा केलि करते हुए पशुपक्षियों की नैसर्गिक शोभा का सुंदर चित्र खींचकर कवित्वशक्ति का अच्छा परिचय दिया जा सकता है पर उस शोभा का शोक-मग्न मानव-हृदय पर क्या प्रभाव पड़ता है, क्रीड़ा करते हुए विलासी युग्मों को वह किस प्रकार आकर्पित करती है, भक्तजनों के पवित्र चित्त को कैसे वह शांति प्रदान करते हुए इष्टदेव की ओर प्रेरित करती रहती है, इसका विश्लेपण करना कविता की पराकाष्ठा है। तात्पर्य यह कि इस प्रकार बाह्य जगत् तथा मानव हृदय के संमिलन का स्पष्टीकरण ही कविता का प्रधान ध्येय रहा है और रहेगा तथा यही वास्तविक कविता है।

मानव-हृदय सदा स्वभावतः सुख-प्राप्ति का इच्छुक रहा है और वह जो कुछ भी करता है, इसी को ध्येय बनाकर ही करता है। मनुष्य कष्ट उठाता है, तप करता है, अपना प्राण तक दूसरों के लिये विसर्जन कर देता है, पर यह सब वस्तुतः किसी आशा ही से किया जाता है और वह इस सुख-आनंद से भिन्न नहीं है। कविता भी कवि-हृदय के अनुभव, विचार आदि ही हैं पर इन सबको वह तार्किक शैली पर, उपदेश रूप में या वैज्ञानिक ढंग पर कविता में नहीं रखता प्रत्युत् अत्यंत आनंददायक शैली पर सुंदर शब्दावली में इस प्रकार सजा देता है कि पाठक तथा श्रोता सभी पढ़-सुनकर मुग्ध हो उठते हैं और उन्हें वह आनंद मिलता है, जो सांसारिक आनंद से परे लोकोत्तर ही कहा जा सकता है। कविता केवल मनोरंजक मात्र ही नहीं है और न उसके पठन-पाठन तथा श्रवण से जो आनंद मिलता है वह निरुपयोगी ही है प्रत्युत् 'वेदविद्येतिहासानामर्थानां परिकल्पित' होने के कारण उसमें वह शक्ति है, जिससे—

दुःखार्तानां समर्थानां शोकार्तानां तपस्विनाम्।
विश्रांतजनने काले नाट्यमेतन्मया कृतम्॥

नाट्यशास्त्र के निर्माता भरत मुनि ने श्रव्य तथा दृश्य काव्यों को आनंददायक ही माना है। लिखते हैं—

क्रीड़नीयकमिच्छामि दृश्यं श्रव्यं च यद्भवेत्।

भामह भी इसका समर्थन करते हैं—

धर्मार्थकाममोक्षेपु वैचक्षण्यं कलासु च।
प्रीतिं करोति कीर्तिंश्च साधु काव्यनिवंधनम्॥

सत्काव्य-ग्रंथ धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष चारों के देनेवाले होते हैं, कला-में वैचित्र्य लाकर आनंद तथा यश के देनेवाले होते हैं। कोई भी वस्तु अपनी निजी तभी मानी जाती है, जब वह आनंददायक होती है और यही कारण है कि कलात्मक वस्तुएँ आनंद की प्रतिमूर्ति होती कविता भी कलात्मक है और इसी के द्वारा ही मनुष्य तथा प्रकृति के सर्वस्व प्रेम, सौंदर्य, शांति तथा आनंद का अनुभव-प्राप्त ज्ञान संचित होकर मानव-हृदय को सदा प्रफुल्लित तथा आनंदित करता रहता है।

कला कविता में सजीव हो उठती है और हृत्तंत्री को झंकरित कर अपना अमिट प्रभाव उस पर छोड़ जाती है। इसकी एक•एक सूक्तियाँ छोटे छोटे टुकड़े मानव-समाज के पथ-प्रदर्शन का काम करते हैं और अनंत विश्व में व्याप्त ईश्वरीय संदेशो को मानव हितार्थ स्पष्ट करते रहते हैं।

व्रजभाषा और उसका व्यापकत्व

भारत की जिस प्राचीनतम भापा का अब तक पता चला है वह ऋग्वेद मे प्राप्त है और शब्दानुशासन होने से उसके सुसंस्कृत हो जाने पर भी प्राचीन भापाओं का प्रवाह न रुका तथा वे अपनी स्वतंत्र सत्ता बनाए हुए विकसित होती रहीं। ये भापाएँ संस्कृत न होने के कारण प्राकृत कहलाईं और प्रांत-भेद से इनके भी कई भेद हुए। ये प्राकृत भी जब साहित्यिक हो पड़ीं और इनके रूप आदि भी नियमबद्ध हो गए तब स्वतंत्र रूप से विकसित होती हुई भाषाएँ अपभ्रंश कही जाने लगी। ये नियमानुकूल न होकर जन साधारण की बोलचाल मे प्रयुक्त होती रहीं, इसलिए ये भ्रष्ट अर्थात् अपभ्रंश समझी जाने लगीं। जब ये अपभ्रंश भी नियमानुशासित हुईं तब अनेक प्रांतो मे वे भाषाएँ विकसित हुई, जिन्हे कहीं कहीं पुरानी हिंदी, कहीं जूनी गुजराती और कही कुछ कहा जाने लगा। इन्ही से वर्तमानकाल की भापाओं का विकास हुआ है।

हिंदी-साहित्य मे जिस काव्यभापा का दौरादौर प्रायः सात शताब्दियों तक रहा है वह यद्यपि प्रांतीय शब्द 'व्रजभापा' के नाम से ही पुकारी जाती है पर अपने साहित्यिक रूप मे वह समग्र उत्तरापथ की काव्यभाषा रही है। इसका पूर्वरूप अपभ्रंशकाल की भाषा से मिलता हुआ आया है और यद्यपि इसका ढाँचा पश्चिमी हिंदी ही का है पर यह अन्य प्रांतीय भापाओं को अपना कर ही चली है। इसमे सभी बोलियो को समानरूपेण आदर मिला है और यही कारण है कि यह इतनी व्यापक हो गई। अवधी भाषा मे भी काव्यग्रंथ लिखे गए और अच्छे लिखे गए पर उसमें व्रजभापा सी व्यापकता नही आ सकी। साहित्य के उन्नयन का आधार राज्याश्रय है और हिंदी-साहित्य के आरंभिक तथा मध्यकाल में हिंदू राज्य विशेपतः गुजरात से व्रजमंडल तक ही

रहे हैं। यह भी पश्चिमी भाषा के आधार को लेकर ही काव्यभाषा बनने का एक मुख्य कारण हुआ था।

ब्रजभाषा की व्यापकता तथा विस्तार का प्रधान कारण श्रीकृष्ण-लीला-वर्णन है, जिसका भक्तकवियों द्वारा खूब प्रचार हुआ था और होता रहता है। सगुण प्रेमोपासना में श्रीरामचंद्र तथा श्रीकृष्णचंद्र ही की उपासना का प्राधान्य बराबर रहा है और प्रथम के मर्यादा पुरुषोत्तम होने से उनकी लीला-वर्णन से सोलहों कलापूर्ण भगवान श्रीकृष्ण की लीला के वर्णन का अधिक प्रचार हुआ। दोनो ही की लीला-भूमि की भाषा दोनों ही के लीला-वर्णन के लिये अपनाई गई थी पर ब्रजमंडल के कवियों ने, जिनकी संख्या अधिक थी, ब्रजभाषा पर विशेष ममता दिखलाई और उसके सहज स्वाभाविक माधुर्य ने उसे और भी सबका प्रिय बना दिया। इन कारणों से ब्रजभाषा के व्यापक-प्रचार मे बहुत सहायता मिली और विरोधी आंदोलनो के होते भी उसका स्थान साहित्य में अमर है।

भाषा-सौष्ठव

कविता वास्तव में भाव-प्रधान ही है, भाषा प्रधान नहीं है पर तब भी भाषा की निजी सत्ता है। भाव के सौंदर्य को पूर्ण रूप से विकसित करना भाषा ही का काम है और यदि भाव को प्रकट करने के लिए उसके उपयुक्त भाषा नहीं हुई तो वह कभी स्पष्ट न हो सकेगा। यद्यपि भाव आत्मा-रूप है, जो कविता के भाषा-रूपी शरीर को सजीव बना देता है पर तब भी यदि भाषा में कोई विशेषता न रही तो वह सजीव हो जाने पर भी आकर्षक न हो सकेगी। निर्जीव होते हुए भी भाषा वह सुंदर चित्र है, जो नेत्रों को बरबस आकृष्ट कर लेता है और सुंदर भाव द्वारा सजीव हो जाने पर तो वह हृदय पर भी अधिकार पा जाता है। उत्तम कविता के लिये भाव तथा भाषा दोनों ही का सुंदर-सुष्ठु होना आवश्यक है और एक की हीनता का प्रभाव दूसरे पर अवश्य पड़ता है। आत्मा तथा शरीर का संबंध पारस्परिक है, एक के अभाव में दूसरे का अस्तित्व ही कहाँ! अच्छा भाव भी अस्पष्ट लचर भाषा के कारण शिष्ट समाज में तब तक सम्मानित नहीं होता जब तक कुशल व्याख्याता उस भाव को स्पष्ट नहीं करता और भाव-हीन होते भी लालित्य-पूर्ण भाषा

में होने के कारण कितनी कविता लोगों को बराबर मुखाग्र रहती है। यही कारण है कि सुकवियों का भापा पर पूरा अधिकार रहता है और वे अच्छे अच्छे भावों को अच्छी उपयुक्त भापा ही में व्यक्त करते हैं।

भाषा में सरलता अत्यंत आवश्यक है। कविता पढ़ते या सुनते समय यदि उसका भाव स्पष्ट न होता चले और उसको समझने के लिये कोष उलटना पड़े तो रसास्वादन की शृंखला टूट जाती है और भाव उखड़ा-सा लगने लगता है। सरल भापा रखते हुए जब कवि भाव के अनुकूल शब्दों का सुंदर चयन करता है तब उसमें जो लालित्य, माधुर्य तथा रमणीयता आ जाती है, उससे भाव सौंदर्य और भी निखर उठता है। साथ ही भापा में यह शक्ति भी होनी चाहिए कि वह कवि के हृदयस्थ भाव को श्रोता या पाठक के हृदयों तक तुरंत स्पष्ट रूप से पहुँचा दे और यदि यह शक्ति उसमें नहीं है तो वह कवि को असफल बना देगी। भापा में बनावटपन या कृत्रिमता न होनी चाहिए, सरल स्वाभाविक प्रवाह होना चाहिए क्योंकि इसका प्रभाव विशेष रूप से भावों के प्रकटीकरण पर पड़ता है। भापा मे वह लचकीलापन भी होना चाहिए जो अपने को भावो के अनुकूल बना सके अर्थात् जिस प्रकार के भाव हों उनको उपयुक्त रूप से प्रकट करने के लिये वैसी भाषा स्वतः प्रवाहित होती रहे।

यों तो इस प्रकार के गुण प्रायः सभी भापाओं में रहते हैं और सफल कवियों के हाथ मे पड़ने पर ये गुण और भी स्पष्ट हो उठते हैं पर तब भी यह अवश्य कहा जा सकता है कि किसी भाषा में ये गुण स्वभावतः अधिक होते है तथा किसी मे कम। ऐसा भी पाया जाता है कि किसी भापा मे एक प्रकार के गुण अधिक हैं तो किसी मे दूसरे प्रकार के। व्रजभापा की बनावट ही कुछ इस प्रकार की है कि उसमें प्रकृत्या माधुर्य, सरसता, लालित्य बना रहता है और उपर्युक्त सभी गुण इसमे है। यही कारण है कि इसीमे बहुत काल से कविता होती आ रही है। नंददासजी व्रजमंडल ही के भक्त सुकवि हो गए है और वह भी सौर-काल के। उस काल के सुप्रसिद्ध कवियो के समाज में भाषाधिकार के कारण ही यह 'और सब गढ़िया नंददास जड़िया' कहलाए थे। सुवर्णकार दो प्रकार के होते हैं, एक वह जो सोने को

गढ़कर आभूषण बनाते हैं और दूसरे वह जो उन आभूषणों में कुंदन से रत्नों को जड़ते हैं। यह कार्य भी बारीक कलापूर्ण होते हुए उन आभूषणों की शोभा का मुख्य कारण होता है। इसे स्पष्ट करने के लिए इनके सारे ग्रंथ ही उपस्थित हैं पर यहाँ दो चार उदाहरण दे दिए जाते हैं।

उज्जल मृदुल बालुका कोमल सुखद सुहाई।
श्री जमुना जू निज तरंग करि यह जु बनाई॥
प्रेम-पुंज बरधन के काज ब्रजराज कुँअर पिय।
मंजु कुंज मैं नेकु दुरे अति प्रेम भरे हिय॥

(रास पंचाध्यायी)

बुड़्यो जु मन पिय प्रेम-रस क्यों हूँ निकस्यो जाय।
कुंजर ज्यों चहलै पर्‌यो छिन छिन अधिक समाय॥

(रूपमंजरी)

गुहि गुहि नवल मालती माला। मोहिं पहिरावहु मोहनमाला॥
ललित लवंग लतनि की छाँही। हँसि बोलौ डालौ गहि बाँही॥

(विरहमंजरी)

कौन ब्रह्म की जोति ग्यान कासों कहौ ऊधौ ?
हमरे सुंदर स्याम प्रेम को मारग सूधौ॥
नैन, बैन, स्रुति, नासिका मोहन रूप दिखाइ।
सुधि बुधि सब मुरली हरी प्रेम-ठगौरी लाइ॥
सखा सुनि स्याम के। (भ्रमरगीत)

वृंदावन, वंसीवट, जमुना तट वंसी रट,
रास में रसिक प्यारो खेल रच्यो वन में।
राधा-माधो कर जोरैं, रवि-ससि होत भोरैं,
मंडल मैं निरतत दोऊ सरस सघन में॥
मधुर मृदंग बाजै, मुरली की धुनि गाजै,
सुधि न रही री कछु सुर, मुनि, जन में।
'नंददास' प्रभु प्यारो रूप-उजियारो अति,
कृष्ण-कीड़ा देखि भये थकित जन मन में॥

(पदावली)

भक्ति-भावना

सृष्टि के आरंभ ही से किसी न किसी प्रकार की उपासना का आरंभ हो जाता है। प्राचीन काल के इतिहासों से ज्ञात होता है कि उपासना का आरंभ सर्वप्रथम भय ही से हुआ था और इसीलिए मानव-समाज के आरंभिक-काल में भूत-प्रेतादि ही सर्वत्र पूज्य माने गए थे। इसके अनंतर भय के साथ लाभ का विचार भी संमिलित हुआ और आकाश तथा वर्षा के स्वामी इंद्रदेव की भावना कर उनकी उपासना इसलिए चलाई गई कि वर्षा अच्छी होने से अन्नादि की उपज अधिक होगी। प्रत्यक्ष सूर्य की उपासना चली क्योंकि उसीका प्रकाश मनुष्यों को बहुत लाभ पहुँचाता था। मानव विचार के अधिक परिपक्व होने पर किसी एक ऐसे स्रष्टा की कल्पना की गई, जो समग्र गोचर अगोचर विश्व का निर्माता, नियंता तथा हंता हो सकता है और उसी के प्रायः साथ साथ अवतारवाद का आरंभ हुआ—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥

(श्रीमद्भागवद्गीता ४–७)

इसी प्रकार आरंभ में कर्मकांड का—यज्ञ, तपस्या आदि का—विशेष प्रचार रहा। इसके अनंतर ज्ञान के सिद्धांतों का प्रसार हुआ पर यह सब होते हुए भी भक्ति-श्रद्धा की सत्ता साथ साथ चलती रही और वह सूक्ष्मतः दोनों में उपस्थित रही। इसके अभाव में कर्मकांड कोरा कर्म मात्र रह जाता है और यही अवस्था ज्ञान-कांड की भी हो जाएगी। अद्वैतवादी शंकराचार्य से प्रसिद्ध ज्ञानविद् को भी काशी में भक्ति की सत्ता स्वीकार करनी पड़ी थी। भक्तिपूर्ण उपासना के लिये आधार आवश्यक है और यह सगुण-साकार तथा निर्गुण निराकार दो प्रकार का होता है। कहीं कहीं निर्गुण मतभेद में ऐसे आधार के अभाव में मत प्रवर्तक स्वयं ही वाद को आधार बन बैठता है, जैसे बौद्ध मत में महाज्ञानी बुद्ध भगवान।

भक्तों में भी दो भेद है। एक वे है जो संसार त्यागी होकर केवल अपने इष्टदेव की उपासना में तत्पर रहते हैं, निष्काम अर्थात् कामना-रहित होकर उसीके भजन-कीर्तन मे तल्लीन रहते हैं और उसके विनिमय

में किसी भी प्रकार की आकांक्षा नहीं रखते। ये वीतरागी (वैरागी) कहलाते हैं। दूसरी कोटि में वे सांसारिक गृहस्थ हैं, जो अपने इष्टदेव की उपासना, कीर्तन में अपना कुछ समय देते हुए गार्हस्थ्य-धर्म निवाहते हैं। पहली कोटि के भक्त दूसरी कोटि वालों के आदर्श, उपदेष्टा तथा मार्गप्रदर्शक होते हैं। इनकी अनन्यता, भक्तिमयी रचनाएँ तथा उपदेश जनसाधारण में भक्ति के भाव का उद्रक करते हैं। परंपरा से घर में होती आती हुई उपासना-पूजन को देखकर, कथाश्रवण कर, सत्संग से तथा कभी कभी संसारचक्र में पड़कर भक्ति का बीजारोपण हो जाता है और वह क्रमशः बढ़ती रहती है। भक्तिसूत्र में नारदजी ने कहा है—

पूजादिष्वनुराग इति पाराशर्यः। कथादिष्विति गर्गः।
आत्मरत्त्कविरोधेनेति शाण्डिल्यः।

उपासना के पहले पहल दो प्रधान भेद हुए, एक शैव और दूसरा वैष्णव। विष्णु के दो अवतारों को लेकर वैष्णवों में भी दो भेद हुए। एक में श्रीसीताराम की और दूसरे में श्रीराधाकृष्ण की उपासना प्रधान मानी गई। अंतिम भेद के तीन आचार्य हुए—विष्णुस्वामी, मध्वाचार्य तथा निंबादित्य। प्रथम के अंतर्गत वल्लभाचार्यजी हुए, जिनके पुत्र श्रीविट्ठलनाथजी के शिष्य नंददासजी हुए। इनकी जीवनी से ज्ञात होता है कि यह एक खत्रानी पर आसक्त होकर मारे मारे फिरते थे पर गोस्वामी श्रीविट्ठलनाथजी के सत्संग तथा उपदेश से श्रीराधाकृष्ण की भक्ति इनके हृदय में इस प्रकार अंकुरित हो उठी कि वह अंत तक विकसित होती गई और यह भक्त-सुकवियों के अग्रगण्यों में एक हो उठे।

गोपनीय श्रीराधा-तत्त्व

नंददासजी ने मानमंजरी, स्यामसगाई तथा पदावली में श्रीराधाजी का वर्णन किया है पर उनके अन्य किसी भी रचना में इनका नाम नहीं आया है। दोनों पंचाध्यायी तथा भाषा दशमस्कंध श्रीमद्भागवत के प्रायः अनुवाद ही है और जब उसीमें श्रीराधिकाजी का उल्लेख नहीं है तब इनमें न आना ही संभव है। नंददासजी के समय तक श्रीराधाकृष्ण की उपासना काफी प्रचलित हो चुकी थी अतः इन ग्रंथों में उनका नाम न आना किसी अन्य कारण से नहीं हो सकता। श्रीमद्भागवत में श्रीराधाजी का नाम स्पष्टतः नहीं आया है और ऐसा ही विष्णुपुराण के

संबंध में कहा जा सकता है। महाभारत में श्रीकृष्ण की ब्रजलीला ही का वर्णन नहीं है अतः वह ब्रज के कृष्ण से भिन्न द्वारिका के अन्य कृष्ण भी कहे गए है और यह भी आक्षेप किया जाता है कि श्रीराधिकाजी को गोपियो में प्रमुखता देने का पहले पहल श्रेय श्रीजयदेवजी को है। यह ईसवी बारहवीं शताब्दि में हुए थे। अब देखना चाहिए कि इनके पूर्ववर्ती कवियों ने श्रीराधिकाजी का उल्लेख अपनी रचनाओं में किया है या नही और यदि किया है तो किस रूप में।

काव्यालंकार के रचयिता रुद्रट का समय ईसवी नवीं शताब्दि माना जाता है और इस पर जैन विद्वान नेमिसाधु ने सं० ११७५ वि० में टीका लिखी है। इसकी एक प्राचीन हस्तलिखित प्रति मे सं० ११७६ वि० दिया है। नेमि साधु ने टीका में अपने से प्राचीन टीकाकारो का उल्लेख किया है तथा पाणिनि, भरत, कालिदास आदि से प्राचीन साहित्यकारो की रचनाओं से उद्धरण भी दिए हैं। ऐसे ही एक उद्धरण में राधा मधुसूदन का इस प्रकार उल्लेख हुआ है:—

कृष्णः सोऽपि हताशया व्यपहृतः कान्तः कयाप्यद्यमे।
किं राधेमधुसूदनो नहि नहि प्राणाधिकश्चोलकः॥

क्षेमेंद्र का समय ग्यारहवीं शताब्दि विक्रमीय का आरंभ है। इनका नाटक बाल-चरित अप्राप्त है पर इनके दशावतारचरित में (८, ८३, १६०, १७१, १७६) श्रीराधाकृष्ण का वर्णन है, जिसका रचनाकाल सं० ११२८ वि० है। धाराधिपति भोजराज के पूर्वज वाक्ततिराज के दसवों शताब्दि के दानपत्र में (इंडियन ऐंटिक्वेरी जिल्द ६ पृ० ५१) एक श्लोक है जिसमे श्रीराधिकाजी का उल्लेख यों है —

यल्लक्ष्मी वदनेन्दुना न सुखितं यन्नार्दितं वारधे
र्वारायन्न निजेन नाभि सरसी पद्मेन शान्ति गतम्।
यच्छेषाहि फणसहस्र मधुरश्वासैर्न चा श्वासितं
तद्राधा विरहातुरं मुररिपोर्वेल्लद्वपुः पातु वः॥

आनंदवर्धनाचार्य ने स्वरचित ध्वन्यालोक में, जिसकी रचना विक्रमीय नवीं शताब्दि के अंत में हुई थी, एक श्लोक दिया है जिसमें श्री राधाजी का वर्णन है—

दुराराधा राधा सुभगवदने नापि मृजत-
स्तवैतत्प्राणेश जघनवसने श्रुना पतितम्।
कठोरं स्त्रीचेतस्तलमुपचारै विरमहे।
क्रियात् कल्याणं वो हरिरनुतमेष्वेवावमुदितः॥

श्रीभट्टनारायण का समय सातवीं शताब्दी का अंत तथा आठवीं का आरंभ माना गया है। इन्होंने अपने नाटक वेणीसंहार के मंगलाचरण में श्रीराधाकृष्ण के रास-विहार का वर्णन किया है। श्लोक इस प्रकार है—

कालिन्द्याः पुलिनेषु केलिकुपितामुत्सृज्य रासे रसं
गच्छन्तीमनुगच्छतोऽश्रुकलुषां कंसद्विषो राधिकाम्।
तत्पादप्रतिमानिवेशितपदस्योद्भूतरोमोद्गते
रक्षुण्णोऽनुनयः प्रसन्नदयिताहष्टस्य पुष्णातु वः॥

पंचतंत्र का समय विक्रम संवत् के आरंभ के कुछ पूर्व माना जाता है। इसमें विष्णु रूप कौलिक की कथा है, जिसमें वह कौलिक अपने को विष्णु तथा उस राजकन्या को श्रीराधा का अवतार कहता है।

सत्यं अभिहितं भवत्या परं किंतु राधा नाम मे भार्या।
गोपकुलप्रसूता प्रथमं आसीत् सा त्वं अवतीर्णा॥

पंचतंत्र के प्रायः समकालीन हालसातवाहन की गाथासप्तशती में एक श्लोक इस प्रकार है—

मुहमारूएण तं कह्न गोरअं राहिआएं अवणेन्तो।
एताशां वल्लवीणं अराणाण विगोरअं हरसि॥
मुखमारुतेन त्वं कृष्ण गोरजो राधिकाया अपनयन्।
एतासां वल्लवीनामन्यसामपि गौरवं हरसि॥

(काव्यमाला गाथासप्तशती पृ० ४४)

गाथासप्तशती में श्रीकृष्ण के साथ गोपियों का भी वर्णन आया है। भास कवि का समय ईसवी सन् के पूर्व शताब्दियों में है और उनके रचित 'बालचरित' में गोपालकृष्ण का तथा गोपियों के साथ रास-क्रीड़ा का भी वर्णन आया है। वाल्मीकीय रामायण में वासुदेव श्रीकृष्ण का

कई बार वर्णन आया है। बालकांड सर्ग ४० श्लोक २–३ तथा २५ इस प्रकार हैं—

यस्येयं वसुधा कृत्स्ना वासुदेवस्य धीमतः।
महिषी माधवस्यैषा स एव भगवान्प्रभुः ॥ २ ॥
कापिलं रूपमास्थाय धारयत्यनिशं धराम् ॥ ३ ॥
ते तु सर्वे महात्मानो भीमवेगा महाबलाः।
ददृशुः कपिलं तत्र वासुदेवं सनातनम् ॥२५॥

अर्थ—जिस धीमान् वासुदेव की यह पृथ्वी है, उन्हीं माधव की यह महिषी हैं। वही भगवान इसके प्रभु कपिल का रूप धारणकर इस पृथ्वी को सदा उठाए रहते हैं। उन सब महाबली वेगवान महात्माओं ने सनातन वासुदेव कपिलजी को वहाँ देखा।

अयोध्याकांड के सर्ग ३० श्लोक ३७ में गोलोक का उल्लेख है—

देवगंधर्वगोलोकान्ब्रह्मलोकाँस्तथापरान्।

युद्धकांड के सर्ग ११९ श्लोक २७ मे लिखा है—

महेन्द्रश्च कृतो राजा बलिं बद्ध्वा सुदारुणम्।
सीता लक्ष्मीर्भवान्विष्णुः देवः कृष्णः प्रजापतिः ॥

अर्थ—रामचंद्र को संबोधित कर कहा गया है कि अत्यंत कठोर बलि को बाँधकर महेंद्र को आपने राजा बनाया। सीता लक्ष्मी हैं और आप विष्णु, देव, कृष्ण तथा प्रजापति हैं।

उत्तरकांड के सर्ग ५३ पर श्लोक २० इस प्रकार है—

उत्पत्स्यते हि लोकेऽस्मिन्यदूनां कीर्तिवर्धनः।
वासुदेव इति ख्यातो विष्णुः पुरुषविग्रहः ॥

अर्थ—इस संसार में विष्णु भगवान् मनुष्य शरीर में अवतार लेंगे और यदुओं की कीर्ति बढ़ाते हुए वासुदेव नाम से प्रसिद्ध होंगे।

महाभारत मे व्रज या मथुरा के श्रीकृष्ण का उल्लेख नहीं है, यह कथन भी भ्रांतिमात्र है। शांति पर्व के दशावतार चरित वर्णन, वस्त्रहरण के समय द्रौपदी की श्रीकृष्ण को पुकार तथा सभापर्व में शिशुपाल की

श्रीकृष्ण-निंदा आदि में व्रज तथा मथुरा की लीलाओं का स्पष्ट उल्लेख है तथा जिनसे निश्चित रूप से ज्ञात हो जाता है कि व्रज, मथुरा तथा द्वारिका के कृष्ण एक ही थे। द्रौपदी पुकारती है—गोविंद द्वारिकावासिन् कृष्ण गोपीजनप्रियः। श्रीमद्भागवत में ये एक थे, इसका पूरा विवरण है। यद्यपि श्रीराधाजी का नाम इस ग्रंथ में स्पष्ट नहीं आया है पर रास-लीला में एक विशेष गोपी पर विशेष प्रेम होने का उल्लेख है और एक श्लोक में गुप्त रूप से नाम लाया गया है। श्लोक है—

अनयाराधितो न्यूनं भगवान् हरिरीश्वरः।
अन्यो विहाय गोविंद

श्रीराधाजी के संबंध में ब्रह्मवैवर्त पुराण में विशद कथा दी हुई है जो संक्षेप में यहाँ दे दी जाती है।

अनादि काल से चली आती हुई तथा अनंत काल तक चली जाने वाली इस दृश्य तथा अदृश्य समग्र सृष्टि की उत्पादिका तथा संचालिका शक्ति ही परब्रह्म परमेश्वर या प्रकृति है। बृहदारण्यक उपनिषत् (१।४।३) में कहा गया है कि परब्रह्म का एकाकी होने से मन नहीं लगता था इससे उसने दूसरे की इच्छा की। वह स्वतः अपने में अकेला ही स्त्री-पुरुष दोनो के युक्तरूप में पूर्ण है अतः वह एक मटर की दो दाल के समान दो हो गए। ब्रह्मवैवर्तपुराण के प्रकृति खंड में कहा गया है कि—

प्रथमे वर्तते प्रश्च कृतिस्स्यात् सृष्टिवाचकः।
सृष्टेराद्या च या देवी प्रकृतिः सा प्रकीर्तिता॥
योगेनात्मा सृष्टिविधौ द्विधारूपो बभूव सः।
पुमांश्चदक्षिणार्द्धाङ्गो वामाङ्गः प्रकृति स्मृतः॥

प्र से पहले होना तथा कृति से सृष्टि का अर्थ लेने से तात्पर्य हुआ 'सृष्टि से पहिले वर्तमान होना'। अर्थात् सृष्टि से पहले जो देवी वर्तमान थी वह प्रकृति कहलाई। सृष्टि के लिये योग द्वारा वह परब्रह्म दो रूप हो गया। दक्षिण अर्द्धांग पुरुष और वाम अर्द्धांग प्रकृति हुआ। प्रकृति को त्रिगुणात्मिका कहा है और सृष्टि का प्रधान कारण भी—

गुणे प्रकृष्ट सत्वे च प्रशब्दो वर्तते श्रुतौ।
मध्यमे रजसि कृश्च तिशब्दस्तमसि स्मृतः॥

त्रिगुणात्मस्वरूपा या सर्वशक्ति समन्विता ।
प्रधानं सृष्टि करणे प्रकृतिस्तेन कथ्यते ॥

और इस प्रकृति की विना सहायता के ब्रह्म भी सृष्टि नहीं कर सकता—

नहि क्षमं तथा ब्रह्म सृष्टि स्रष्टुं तया विना ।
सर्वशक्तिस्वरूपा या तया च शक्तिमान् तदा ॥

सृष्टिविधान के लिये इसी प्रकृति के पाँच स्वरूप हुए—

गणेश जननी दुर्गा राधा लक्ष्मीः सरस्वती ।
सावित्री च सृष्टिविधौ प्रकृतिः पञ्चधा स्मृता ॥

मूलतः प्रकृति एक होते भी सृष्टिकार्य में पाँच रूप में व्यक्त होती है:—

१. दुर्गा—गणेशजननी, शिवरूपा, शिवप्रिया, नारायणी, विष्णुमाया आदि आदि इनके नाम हैं और इनके 'गुणोऽस्त्यनंतोऽनंतायाः' है ।

२. लक्ष्मी—शुद्धसत्वास्वरूपा, पद्मा, सर्वसम्पन्नस्वरूपा आदि आदि इनके नाम हैं । यह शक्ति ही वैकुंठ में महालक्ष्मी, स्वर्ग में स्वर्गलक्ष्मी, राजाओं के यहाँ राजलक्ष्मी तथा गृहस्थों के यहाँ गृहलक्ष्मी होकर 'सर्वपूज्या सर्ववंद्या' हो गई हैं ।

३. सरस्वती—वागबुद्धि ज्ञानादि की देवी, सर्वविद्यास्वरूपा, सर्व-संदेहभंजिनी आदि यह तृतीयाशक्ति सदा सर्वसिद्धिप्रदा है ।

४. सावित्री—वेद, वेदांग, छंदस, मंत्र, तंत्र आदि की देवी, जपरूपातपस्विनी, शुद्धसत्वस्वरूपिणी यह ब्रह्मतेजोमयी शक्ति सबके हृदय मे प्रेरणा करनेवाली है ।

इस प्रकार शक्ति, ऐश्वर्य तथा ज्ञान की प्रथम तीन देवियाँ हैं और उनकी प्राप्ति के लिए सम्यक् उद्योग की प्रेरणा करनेवाली चौथी देवी हैं । इनके बिना मानव-समाज का जीवन निस्तेज ही रहता है परंतु इनके प्राप्त हो जाने पर इनका समुचित उपभोग करने के लिए राधा-शक्ति की आवश्यकता है और उनका वर्णन इस प्रकार दिया है ।

५. राधा—यह प्रेम की अधिष्ठातृदेवी तथा पंचशक्तियो की प्राण-स्वरूपिणी हैं । यह सर्व सौभाग्ययुक्ता, मानिनी, गौरवान्विता, परमानंद-स्वरूपा सर्वमाता तथा परमाद्या है । यह

रासक्रीड़ाधिदेवी च कृष्णस्य परमात्मनः ॥
रासमंडलसंभूता रासमंडलमंडिता ।
रासेश्वरी सुरसिका रासावासनिवासिनी ॥

अर्थात् परमात्मा श्रीकृष्ण की रासक्रीड़ा की देवी यही सुरसिका रासेस्वरी राधा हैं। सब रसों का समुच्चय जो रास है उसीके मंडल से उत्पन्न यह 'परमाह्लादरूपा' गोलोकवासिनी देवी हैं। यह कैसी हैं—

निर्गुणा च निराकारा निर्लिप्तात्मस्वरूपिणी ।
निरीहा निरहंकारा भक्तानुग्रहविग्रहा ॥
वह्निशुद्धांशुकाधाना रत्नालंकारभूषिता ।
कोटिचंद्रप्रभाजुष्ट श्रीयुक्ता भक्तविग्रहा ॥

इन्हीं के वृषभानु-सुता रूप में अवतार लेने से इनके चरणकमल के स्पर्श से पृथ्वी पवित्र हो गई और जो ब्रह्मादि देवताओं के लिये भी 'अदृष्टा' थी वही भारत मे 'सर्वदृष्टा' हो गई थी। ऐश्वर्य, विद्या, शक्ति सब कुछ रहते भी जिस प्रेम से विहीन जीवन नीरस ज्ञात होता है, उसी प्रेम की सर्वस्वरूपिणी देवी यही श्री राधिकाजी है। इस लोक के सुख तथा परलोक की कोई सिद्धि बिना प्रेम के नहीं मिलती। प्रेम का स्थान हृदय है और जहाँ प्रेम है वहीं उसकी अधिष्ठातृ देवी भी हैं।

प्रकृति के इन पाँच रूपों के सिवा 'अंशरूपा, कलारूपा तथा कलाशांश रूपा' अन्य तीन भेद किए गए हैं और अनेक देवियो की उत्पत्ति इन रूपों मे बतलाई गई है। जैसे—

१. अंश-रूप—गंगा, तुलसी, मनसा, देवसेना, मंगला, काली, पृथ्वी।
२. कला-रूप—स्वाहा, दक्षिणा, स्वधा, स्वस्ति, पुष्टि, तुष्टि आदि।
३. कलाशांश-रूप—अदिति, दिति, सुरभी, कद्रू, विनता आदि।

इस प्रकार परब्रह्म परमेश्वर स्वेच्छा से पुरुष तथा प्रकृति द्विधा होकर सृष्टि का संचालन कर देता है। उसके इच्छानुसार उसके साकार तथा निराकार दोनो रूप होते हैं, जिनमें प्रथम भक्तो द्वारा तथा द्वितीय ज्ञानियों द्वारा ध्यानगम्य होता है।

तेजोरूपं निराकारं ध्यायंते योगिनः सदा ।
वदंति ते परंब्रह्म परमात्मानमीश्वरम् ॥
वैष्णवास्तं न मन्यन्ते तद्भक्ताः सूक्ष्मदर्शिनः ।
वदंति इति कस्य तेजस्ते तेजस्विनं विना ॥

तेजोमंडलमध्यस्थं ब्रह्मतेजस्विनं परम्।
स्वेच्छामयं सर्वरूपं सर्वकारणकारणम्॥

वैष्णव भक्तगण भगवान के साकार रूप का आग्रह करते हुए कहते हैं कि वह—

अतीव सुंदरं रूपं बिभ्रतं सुमनोहरम्।
किशोरवयसं शान्तं सर्वकान्तं परात्परम्॥
नवीन नीरदाभासं रासैकश्यामसुंदरम्।

और इसी रूप में उस परब्रह्म परमेश्वर का ध्यान करते हैं। भगवान के इसी साकार रूप को ('कृष्ण इत्यभिधीयते') वे कृष्ण कहते हैं और यह भगवान कृष्ण द्विधा रूप होकर श्री राधाजी के—

अतिमात्रं तया सार्द्धं रासेशो रासमण्डले।
रासोल्लासेषु रहसि रासक्रीड़ां चकार ह॥

इन्हीं श्रीकृष्ण तथा राधिकाजी से विष्णु तथा कमला अलग रूप धारणकर वैकुंठ में रहने लगे। इसके अनंतर ब्रह्मवैवर्त पुराण के ४८-९ वे अध्याय में राधिकाजी के पृथ्वी पर अवतरित होने की कथा है। शिवजी द्वारा यह कथा कहलाई गई है। वह कहते है—

मदिष्टदेवकान्ताया राधायाश्चरितं सति।
अतीव गोपनीयं च सुखदं कृष्णभक्तिदम्॥
शृणु दुर्गे प्रवक्ष्यामि रहस्यं परमाद्भुतम्।
चरितं राधिकायाश्च दुर्लभं च सुपुण्यदम्॥

संक्षेप मे गोलोकस्थ वृंदावन में एकाकी परब्रह्म श्रीकृष्ण स्वेच्छा से दो हो गए और उनका वामांग श्रीराधाजी अलग हो गईं। रासक्रीड़ा के लिये श्रीकृष्ण ने गोपो को तथा राधिकाजी ने गोपियो को उत्पन्न किया। ये दोनों—

राधा भजति तं कृष्णं स च तां च परस्परम्।
उभयोः सर्वं साम्यं च सदासंतो वदंति च॥
राधा पूज्या च कृष्णस्य तत्पूज्यो भगवान् प्रभुः।
परस्पराभीष्टदेवे भेदकृन्नरकं व्रजेत्॥

यहीं एक बार भगवान श्रीकृष्ण के विरजा नाम की श्रीराधाजी की सखी से प्रेमालाप करने से श्रीराधा कुपित हो गई और उनकी भर्त्सना

करने लगीं। श्रीकृष्ण तो मौन रहे पर सुदामा ने कुछ प्रत्युत्तर दे दिया, जिसपर क्रुद्ध हो राधिकाजी ने शाप दिया कि जा, आसुरी योनि मे जन्म ले। इसपर उसने भी पलट कर शाप दिया कि तुम भी पृथ्वी पर गोप-कन्या हो और कृष्ण का विच्छेद रहे। इसी शाप के कारण—

राधा जगाम वाराहे गोकुलं भारतं सति।
वृषभानोश्च वैश्यस्य सा च कन्या बभूव ह॥

वृषभानु तथा कलावती की कन्यारूप में श्रीराधाजी ने जन्म लिया और जब यह बारह वर्ष की थीं तब रायाण वैश्य से इनका विवाह हुआ। यह रायाण गोलोक ही का रायाण था—

स च द्वादश गोपानां रायाण प्रवरः प्रिये।
श्रीकृष्णांशश्च भगवान् विष्णु तुल्य पराक्रमः॥

यह रायाण यशोदाजी का सहोदर भाई था और इसके गृह पर 'छाया संस्थाप्य' राधाजी अंतर्द्धान रहीं। उनके चौदहवें वर्ष में श्रीकृष्ण का गोकुल में जन्म हुआ। गोकुल में श्रीकृष्ण बाल्यकाल व्यतीत कर तथा कैशोरावस्था में पदार्पण करते ही मथुरा चले गए इस कारण शाप के अनुसार श्रीराधाजी को कृष्णविच्छेद बराबर रहा।

प्रेम-भक्ति

वन्दे मुकुन्दमरविन्ददलायताक्षं
कुन्देन्दुशंखदशनं शिशुगोपवेषम्।
इन्द्रादिदेवगणवन्दित पादपीठं
वृन्दावनालयमहं वसुदेवसूनुम्॥

भगवान श्रीकृष्ण ने पृथ्वी पर पहले देवकी-सुत वासुदेव रूप में अवतार धारण किया और मथुरा से व्रज वृंदावन में जाकर जब वहाँ प्रगट हुए तब नंदनंदन यशोदा पुत्र कहलाए। यहीं इन्होंने बाल लीला की, जिससे बाल कृष्ण, लीला कृष्ण, गोपी कृष्ण, गोपाल कृष्ण, राधा कृष्ण आदि कहलाए। व्रज से मथुरा लौट आने पर तथा द्वारिका में रहते हुए यह कूट राजनीतिज्ञ वासुदेव कृष्ण हो गए। इसीके अनंतर यह योगेश्वर कृष्ण हुए। श्रीमद्भागवतादि भक्ति ग्रंथों में इनका प्रथम रूप

तथा वेद, उपनिषद् महाभारत आदि में इनका द्वितीय रूप विशेष ग्रहण किया गया है। योगेश्वर कृष्ण का विशेष वर्णन महाभारत में आया है।

भगवान श्रीकृष्ण का उल्लेख ऋग्वेद, अनेक उपनिषदों, दस ग्यारह पुराणों, संहिताओं, तंत्र ग्रंथो आदि में बराबर मिलता है और श्रीमद्भागवत; हरिवंश तथा महाभारत तो इनकी लीलाओं से भरा हुआ है। इनमें इनकी तथा इनके संबंधियों की वंश-परंपराओं का विस्तार के साथ विवरण मिलता है। ऐसा ज्ञात होता है कि द्वारका का अंत श्रीकृष्ण के अंतर्हित होने के साथ-साथ हुआ है और उसके अनंतर कलियुग का आरंभ हुआ है। भारतीय पंचांग के अनुसार कलियुग का आरंभ हुए पाँच सहस्र वर्ष से अधिक हो गए अतः इसके पहले श्रीकृष्ण ने भारत भूमि में अवतरित होकर इस देश को अपनी लीलाओं से पावन किया था।

भक्ति सूत्र में श्रीनारदजी ने कहा है कि 'भक्तिः महानुरक्तिरीश्वरे' अर्थात् ईश्वर के प्रति तीव्र अनुराग ही भक्ति है और इसके उदाहरण स्वरूप में 'व्रज गोपिकादिवत्' लिखा है। इन्हीं व्रज गोपियों की प्रधान या स्वामिनी श्रीराधा है तथा श्रीराधाकृष्ण की उपासना तथा भक्ति ही प्रेमभक्ति कहलाती है।

स्वभावतः स्त्री हृदय अनुरागपूर्ण होता है और जब वह किसी के प्रति बढ़ जाता है तब सभी अन्य भाव दूर हो जाते हैं। यदि इस अनुराग में विपर्यांतर नहीं होता और वह माधुर्यमय भगवान के प्रति दृढ़ हो जाता है तभी मानव जीवन चरितार्थ होता है। इसी प्रकार अनुराग भगवान श्रीकृष्ण के प्रति जन्म ही से गोपियों में था और इसी कारण पति-पुत्र आदि का मोह त्याग कर वे भगवान से पूर्णतया आसक्त हो गईं। अवश्य ही उनकी आसक्ति पहले वहिर्मुखी थी, वे श्रीकृष्ण के मनोमुग्धकारी रूप-लावण्य ही में अनुरक्त थीं और इसी को अंतर्मुखी करने के लिये श्रीकृष्ण ने पहले अनुवृत्ति मार्ग ग्रहण कर उनकी आसक्ति को अत्यधिक तीव्र कर दिया। कुछ देर तक श्रीकृष्ण के संपर्क में रहने से उनका प्रेम इतना बढ़ गया कि उन्हे संसार तुच्छ समझ पड़ने लगा। इसके अनंतर कुछ देर के विरह से उनकी अहंता भी दूर हो गई और उनका प्रेमाभाव इतना प्रगाढ़ हो गया कि वे कृष्ण रूप हो गईं। इसी समय भगवान इनके बीच में आविर्भूत हो गए और इससे

गोपियाँ पूर्णकाम हो गईं। उनकी बहिर्मुखी बुद्धि अंतर्मुखी हो गई और वे परमानन्द में विभोर हो उठीं। वे शुद्ध प्रेम के द्वारा भगवान में मिल गईं। प्रेमिक आत्माएँ चिन्मय श्रीकृष्ण मूर्ति में आकृष्ट होकर सहज मानव प्रकृति के अनुरूप ही उस मधुर मूर्ति के सहवास की प्रार्थिनी हुईं पर उसके स्पर्श मात्र से शुद्ध होकर वे सांसारिक रागों से दूर शुद्ध प्रेमपूर्ण हो गईं।

साधारणतः मनुष्य के सभी कर्म विधि-निषेध से सीमित होते हैं, कोई कर्म भला है तो कोई बुरा है पर बालकों की क्रीड़ा में भले-बुरे का ज्ञान नहीं होता। वे किसी उद्देश्य को लेकर क्रीड़ा नहीं करते। भगवान ने कहा ही है—

दोषबुद्ध्योभयातीतः निषेधात् न निवर्तते।
गुणबुद्ध्या च विहितं न करोति यथार्भकः॥

महापुरुष लोग का भी धर्म अधर्म में कुछ स्वार्थ या अनर्थ नहीं होता—

कुशलाचरितेनेषाम् इह स्वार्थः न विद्यते।
विपर्ययेन वानर्थः निरहंकारिणां प्रभो॥

विहित धर्मपूर्ण आचारों में उनका कोई स्वार्थ नहीं होता और न इसके विपरीत कार्यों के करने से उनको अनर्थ का भान होता है क्योंकि उनमें अहंकार ही नहीं है, अहं की भावना ही नहीं है। ऐसी अवस्था को प्राप्त भक्तगण सर्वांतर्यामी भगवान श्रीकृष्ण में जिस प्रकार की भावना से पूर्ण आसक्ति प्राप्त कर लेते हैं वही आगे के लोगों के लिये एक मार्ग हो जाता है। भाव को लेकर ही गुरु-शिष्य परंपरा चलती है। गुरु जो भाव बतलाता है उसी का आश्रय लेकर शिष्य आगे बढ़ता है और सफल काम होता है। इसी गोपी-भाव या राधा-भाव के मुख्य शिष्य नवद्वीप-गौरव श्रीकृष्ण-चैतन्य महाप्रभु हुए, जिन्होंने इसी प्रेमभक्ति की शिक्षा दी है। राजस्थान की मीराँबाई भी इसी भाव की शिष्या आजन्म रहीं।

गोपियों का प्रेम अलौकिक, असामान्य तथा अतुलनीय था। बालक भगवान श्रीकृष्ण में उनका कैसा सत्य-शुद्ध प्रेम था, यह उनके मथुरा जाते समय दुःख प्रगट करने से ज्ञात होता है। जब उद्धवजी मथुरा से कृष्ण-संदेश लेकर गोपियों को सान्त्वना देने के लिए

वृंदावन आए तब इनकी विरहावस्था देखकर वह ज्ञानप्रवृद्ध होते भी विस्मित हो गए और कहने लगे—

आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्यां
वृंदावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम्।
याः दुस्त्यजं स्वजनमार्गपथं च हित्वा
भेजुः मुकुदपदवीं श्रुतिभिः विमृग्याम्॥
वन्दे नंद व्रजस्त्रीणां पादरेणुम् अभीक्ष्णशः।
यासां हरिकथोद्गीतं पुनाति भुवनत्रयम्॥

जिन गोपियों ने दुस्त्याज्य स्वजनो तथा आर्यधर्म को छोड़कर वेद विमृग्य बाल-मुकुंद का ही भजन किया है उनकी चरण धूलि से पावन हुई वृंदावन की लता पौधे आदि के बीच में मैं भी कुछ एक हूँ। जिनकी हरि कथा का गान त्रिभुवन को पवित्र करता है उन नंद के व्रज की बालाओं के चरण रेणु की मैं निरंतर वंदना करता हूँ।

भक्ति सूत्र में भक्ति की क्या परिभाषा है यह ऊपर लिखा जा चुका है। उसका तात्पर्य यही है कि परमेश्वर परब्रह्म में उस प्रकार का तीव्र अनुराग करना ही प्रेमभक्ति है जैसा गोपियों की या उनकी स्वामिनी श्रीराधाजी की अनुरक्ति श्रीकृष्ण भगवान मे थी। यही गोपी या राधा भाव ही प्रेमभक्ति है जो साधारण मनुष्यों के लिए दुर्लभ है। इसका कुछ भी अंश हृदय में उत्पन्न होते ही वह भक्त जीव धन्य हो जाता है। इस भक्तियोग के लिए साधना की आवश्यकता पड़ती है पर व्रज बालाओं को ऐसा करना ही नहीं पड़ा क्योंकि उन्हें साक्षात् भगवान ही का सत्संग प्राप्त था। कहा है—

ते नाधीतश्रुतिगणाः नोपासित महत्तमाः।
अव्रतातप्ततपसः सत्संगात्मामुपागताः॥

इन्होंने न वेदों का अध्ययन किया, न महात्माओं की उपासना की, न व्रत रखा और न तपस्या की, केवल सत्संग से मुझे पा लिया। अवश्य ही गोपियों का अपूर्व सौभाग्य था कि उन्हे भगवान ही का सत्संग मिल गया, जिससे उन्हे साधन की आवश्यता ही नहीं पड़ी। परंतु साधारण मनुष्यों के लिए तो यह दुर्लभ है अतः उन्हें साधना

करनी पड़ेगी। इसके लिए शास्त्रों में कुछ साधन बतलाए गए हैं। जैसे—

सात्विकोपासया सत्वं ततः धर्मः प्रवर्तते।

अर्थात् सात्विक भोजन करने से सत्यवृद्धि होती है और धर्म की ओर मन बढ़ता है। इसके अनंतर वैराग्य का अभ्यास करते सुख-लिप्सा नष्ट होती है। फिर सच्चे गुरु का आश्रय लेना चाहिए और तब नैतिक तथा आध्यात्मिक अनुशीलन करना चाहिए। इस अनुशीलन के अंतर्गत तप, तितिक्षा, मौन, स्वाध्याय, ब्रह्मचर्य आदि सभी आ जाते हैं। भक्ति की पाँचवीं साधना अभिमत मूर्ति-पूजन करना है, जो भक्ति प्राप्त करने का उत्कृष्ट उपाय है। शास्त्रीय विधि से मूर्ति पूजन करने से पूजक का विशेष उपकार होता है और कुछ दिन इन सब का अभ्यास करते रहने से साधन भक्ति प्राप्त हो जाती है। इसीके अनंतर प्रेमभक्ति का क्रमशः विकास होने लगता है और भक्त के लिए अपने भगवान् के अतिरिक्त अन्य कुछ लक्ष्य रही नहीं जाता। उन्हे

न पारमेष्ठ्यं न महेन्द्रधिष्ण्यं न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम्।
न योगसिद्धिः अपुनर्भवां वा मयार्पितात्मोच्छति मद्विनान्यत्।।

न ब्रह्मपद, न इंद्र वैभव, न सार्वभौमत्व, न रसातल का आधिपत्य, न योगसिद्धि और न मुक्ति किसी की भी इच्छा नहीं रहती क्योंकि उन्होने अपने को ईश्वर को अर्पित कर दिया है और किसी अन्य की चाह नही रह जाती। ऐसे भक्तो को जो सुख प्राप्त होता है, वर्णनीय नहीं है। उसे भगवान ही एक मात्र प्रिय हो जाते हैं और संसार के अन्य सभी बंधु आदि से विरक्ति हो जाती है। इसी परमानंद के आस्वाद से अन्य सभी क्षुद्र क्षणिक आनंद की लिप्सा रह नहीं जाती और वह सचा प्रेमी भक्त हो जाता है।

रास लीला

लीला शब्द का साधारण अर्थ क्रीड़ा या खेल है और प्रायः यही अर्थ कुछ विशेषता लिए हुए साहित्य तथा शृंगार में माना जाता है। लीला एक हाव भी है जिसकी परिभाषा साहित्य दर्पणकार ने इस प्रकार दी है—

अंगैर्वेषैरलंकारैः प्रेमभिर्वचनैरपि ।
प्रीति प्रयोजितैर्लीलां प्रियस्यानुकृति विदुः ।।

(विरह-काल में समय काटने के लिए) अपने प्रिय के अंगविक्षेप, वेष, आभूषण, बातचीत आदि का नायिकाओं द्वारा अनुकरण किया जाना ही लीला हाव कहलाता है। परंतु इस लीला शब्द में जब वह ईश्वर शब्द संयुक्त हो जाता है, तो रहस्यपूर्ण विशेषता आ जाती है। जब मानव की समझ के परे कोई बात सामने आ जाती है तो वह उसे ईश्वरी-लीला समझकर चित को सान्त्वना देता है। ईश्वर के अवतारों अर्थात् महान् पुरुषों के चरित्र भी लीला कहे जाते हैं और उन चरित्रों के अभिनय भी उनकी लीला कही जाती है जैसे रामलीला या कृष्ण-लीला। जिस प्रकार श्रीरामचंद्र मर्यादापुरुषोतम कहे जाते है उसी प्रकार श्रीकृष्णचंद्र लीला पुरुषोतम कहे जाते हैं।

लीला शब्द की व्युत्पति इस प्रकार की जाती है, लीयमलातीति लीला। ली का अर्थ जोड़ना, मिलना, पाना, लीन होना, गलाना आदि है और ला का अर्थ देना, लेना है। दोनों का मिलाकर अर्थ होगा लीन होने को अंगीकार करना। वेदांत सूत्र में 'लो वत्तु लीला कैवल्यम्' कहा गया है अर्थात यह लोक केवल (ईश्वरी) लीला के लिए है पर कैवल्य से मुक्ति या मोक्ष का भी भाव निकलता है। तात्पर्य यह है कि इहलोक केवल ईश्वरी-लीला ही के लिए नही है प्रत्युत् उस लीला के द्वारा मानव मोक्ष भी प्राप्त कर सकता है। ईश्वर पृथ्वी पर अवतार धारण कर इसी लिए लीला करता है कि वह उसके द्वारा मनुष्यों पर अपनी दया दिखलावे। यह लोक यदि भगवान की लीलाभूमि है तो मानव की यह कर्मभूमि है और आत्मा परमात्मा का संबंध अनित्य है। ईश्वर के लिए कैवल्य मोक्ष का कोई अर्थ नहीं है क्योंकि वह अपने ही रूप में एक तथा पूर्ण है अतः मोक्ष का तात्पर्य केवल आत्माओं के लिए ही है, जिन्हें उसकी आवश्यकता है। इस प्रकार भगवल्लीला का उद्देश्य आत्माओं के प्रति दया दिखलाना तथा उनमें भगवान के प्रति प्रेम-भक्ति की प्रेरणा करना ही है जिससे वे सांसारिक जंजाल से मोक्ष प्राप्त कर सके।

जिस प्रकार श्रीकृष्ण की लीलाओं में गोवर्द्धन लीला, गोचारण लीला आदि हैं उसी प्रकार एक रासलीला कहलाती है, जिसमें भगवान

श्रीकृष्ण ने शारदी पूर्णिमा को गोपियों को साथ लेकर नृत्य-गान तथा क्रीड़ा की थी। यह पूर्णिमा अब रासपूर्णिमा भी कहलाने लगी है। अब विचारणीय यह है कि यह रास शब्द कैसे बना और इसका अर्थ तथा भाव क्या है? अब रासलीला का अर्थ इतना विस्तृत हो गया है या उसका महत्त्व इतना बढ़ गया है कि उसके अंतर्गत समग्र कृष्णलीला ले ली गई है और इस लीला को करने वाले रासधारी तथा उनके दल को रासमंडली कहने लगे हैं। रास यात्राएं भी होती हैं, जिनमें श्रीकृष्ण की सभी लीला के अभिनय होते हैं।

रास शब्द की व्युत्पत्ति रस शब्द से हुई है। क्रिया रस का अर्थ आस्वादन करना, प्रेम करना तथा शब्द करना है। संज्ञा रस के अनेक अर्थ हैं जैसे खट्टा, तिक्त, मिठास आदि छ रस, कविता के शृङ्गार आदि नव रस, स्वाद, प्रेम, किसी वस्तु का निचोड़ा हुआ द्रव पदार्थ, जल आदि हैं। इस शब्द से बने हुए रास शब्द के कोलाहल, विलास, शब्द, वाणी, शृंखला तथा गानयुक्त वह नृत्य जो गोलाकार घूमते हुए किया जाता है। रास शब्द का अंतिम अर्थ उसके अन्य अर्थों का एकीकरण करके बाद में माना गया ज्ञात होता है, क्योंकि ऐसे नृत्य में बहुत से स्त्री-पुरुषों के सहयोग देने से अवश्य ही विलासपूर्ण, कर्ण मधुर ही सही, कोलाहल होता रहा होगा तथा वे शृंखला के समान एक दूसरे से मिलकर नृत्य-गान करते थे। इसके स्वरूप तथा उसके आस्वादन का वर्णन यों किया जाता है कि

सत्वोद्रेकादखंडस्वप्रकाशानंद चिन्मयः।
वेद्यान्तरस्पर्शशून्यो ब्रह्मास्वादसहोदरः॥
लोकोत्तरचमत्कारप्राणः कैश्चित्प्रमातृभिः।
स्वाकारवदभिन्नत्वेनायमास्वाद्यते रसः॥

रजोगुण तथा तमोगुण को दबाकर जब सतोगुण के उद्रेक से अखंड निर्मल प्रकाश युक्त आनंद तथा चमत्कारमय, अन्य विषयों के संबंध से हीन ब्रह्म के आस्वाद के भाई का, तथा अलौकिक चमत्कार द्वारा अनुप्राणित रस का कोई-कोई ज्ञाता अपने ही आकार की भांति अभिन्न रूप से आस्वादन करता है। अर्थात् सच्चिदानंदमय विषयहीन अलौकिक चमत्कारपूर्ण रसों का समुच्चय ही रास है और जिनका

आस्वादन कोई-कोई वैसे ही ज्ञाता कर सकते हैं जिनमें पूर्व जन्म के वासनाख्य संस्कार बने हैं तथा जो उसमें तन्मय हो जाते हैं। इस प्रकार रास तथा लीला दोनों शब्दों की कुछ व्याख्या कर लेने पर रास-लीला के रहस्य का कुछ ज्ञान हो जाता है।

भगवान अपनी लीला शक्ति से दिव्य अवतार धारण कर अमलात्मा जीवो के लिए भक्तियोग का विधान करते हैं और वे 'आनंदैकरसमूर्तयः' भक्त उस सौंदर्य-माधुर्य-सुधामयी मूर्ति के प्रति ऐसे आकृष्ट हो जाते हैं कि उन्हें भगवद्दर्शन के आगे सांसारिक सुख तो क्या, मुक्ति, कैवल्य, अपुनर्जन्म आदि सभी तुच्छ ज्ञात होते हैं। जिस प्रकार भगवान विधि-निषेधातीत हैं, उसी प्रकार शुद्ध अंतःकरण के भक्त भी हो जाते हैं। उनके लिए मर्यादा का पालन या अपालन कुछ महत्व नही रखता। शास्त्रीय विधि तो इतनी ही है कि ईश्वर के प्रति पूज्य तथा श्रद्धा का भाव रखो और उसकी उपासना तथा भक्ति करो। लोगो में ऐसी प्रवृत्ति इसी विधि के कारण होती है और वे बलपूर्वक उस ओर चित्त लगाते हैं पर भगवान की दिव्य लीला में प्रविष्ट होने पर भक्त को इस विधि की आवश्यकता ही नही रह जाती। वह स्वतः विधि या निषेध किसी का विचार किए ही, भगवान के प्रति आकृष्ट हो जाता है। उसे तो भगवान में विशुद्ध प्रेम ही अपेक्षित है।

बहुत से भाव ऐसे होते हैं, जो प्रच्छन्न रूप में कुछ और जान पड़ते हैं पर उनका रहस्य कुछ और ही होता है। यह तो स्पष्ट है कि भगवान श्रीकृष्ण प्राकृत नही हैं और ये गोपियां भी सब प्राकृत प्रपंचो से परे हैं। उनकी यह लीला स्थूल दृष्टि से काम क्रीड़ा ही कही जायगी पर उसमे वास्तव में आत्मा तथा परमात्मा के अलौकिक संयोग का रहस्य ही मुख्य है। गोपियो के प्रेम का पर्यवसान अभेद ही में है, भेद में नही। वास्तव में ये ब्रज लीलाएँ प्राकृत न थीं केवल उनका वाह्यरूप ही प्राकृत था। श्रीकृष्ण ने यह सब लीलाएँ अपने अवतार के आरंभ मे उसके प्रधान प्रयोजन भक्तों मे प्रेमभक्ति की प्रेरणा के लिए की और गोपियाँ इस भक्ति-मार्ग की आचार्य-स्वरूपा हुई।

पंचाध्यायी

निगमकल्पतरोर्गलितं फलं शुकमुखात् द्रवसंयुतम्।
पिवत भागवतम् रसमालयं मुहुरहो रसिकाः भुविभावुकाः॥

श्रीमद्भागवत वेदरूपी कल्पवृक्ष का फल है, जो शुकदेवजी के मुख से निकले हुए रस से भरा हुआ है और रस का आकर है। रसिक भावुकगण इस ग्रंथ के रस का निरंतर पान करते रहें। ज्ञानभक्ति के इस अद्वितीय ग्रंथ के दशम स्कंध में श्रीकृष्ण की वाल तथा कैशोर लीला नव्वे अध्यायों में वर्णित है। इन अध्यायों में २६ वें से ३३ वें अध्याय तक रासलीला का वर्णन है, जिसे रास पंचाध्यायी कहते हैं। नंददासजी ने इसी का भाषा में पद्यबद्ध अनुवाद किया है पर स्वच्छंद भाव से, कहीं कुछ वढ़ाया है तो कहीं कम भी कर दिया है। साथ ही इन्होंने रास पंचाध्यायी लिखने के अनंतर सिद्धांत पंचाध्यायी की भी रचना की, जिसमें रास क्रीड़ा के सिद्धांतों को समझाया है।

संक्षेप में रासलीला की कथा भागवत के अनुसार इस प्रकार है कि शारदीय पूर्णिमा की रात्रि के आरंभ में श्रीकृष्ण ने मुरली वजाकर गोपियों का आह्वान किया। गोपियाँ भी सभी सांसारिक कर्मों का त्याग कर व्यग्रता के साथ वहीं जा पहुँचीं। श्रीकृष्ण ने उनकी प्रेम-परीक्षा लेने के लिए उन्हें घर लौट जाने के लिए उपदेश दिया पर जिन्होंने सभी सांसारिक संबंध, मोह आदि छोड़कर सत्यनिष्ठा से श्रीकृष्ण के प्रति एकांत अनुव्रत ले लिया था, वे किस प्रकार लौट सकती थीं। इस प्रकार उन व्रज वालाओं को अपने प्रति आकृष्ट देखकर अनाकृष्ट भगवान श्रीकृष्ण उनके साथ क्रीड़ा करने लगे। गोपियों में श्रीकृष्ण को विहार करते पाकर अहंकार उत्पन्न हुआ कि वे श्रीकृष्ण को अत्यंत प्रिय हैं पर भगवान उनके इस अहंकार को दूर करने के लिए तत्काल ही अंतर्हित हो गए।

श्रीकृष्ण के साथ विहार करते समय व्रजाङ्गनाएँ उनके हासविलास, वार्तालाप, नृत्य आदि में इतनी तन्मय हो रही थीं कि वे कृष्ण-मय हो गई। प्रेमोन्माद में वे अपने ही को कृष्ण समझ कर उनका अनुकरण करने लगीं। फिर वे वनों में श्रीकृष्ण को खोजने लगीं और जा

सभी में व्याप्त है उसका पता वृक्ष, पशु आदि से पूछती फिरने लगी। उनके मन में भगवान के न मिलने पर गृह लौटने का ध्यान भी नहीं गया, उनमें संसार के प्रति कुछ भी मोह रहा नहीं गया था। अंत में बहुत खोजने पर श्रीकृष्ण के चरण चिह्न मिले और इसके अनंतर श्रीराधिकाजी मिलीं। अब वे सब पुनः श्रीकृष्ण को खोजने लगीं। अंत में उनके न मिलने पर वे उच्च स्वर से रुदन करने लगीं और उनकी लीलाएँ गाने लगी।

इस प्रकार इनका रुदन सुनकर भगवान श्रीकृष्ण उन्हीं के बीच में प्रगट हो गए। गोपियाँ मदनमोहन श्रीकृष्ण को पाकर परम आह्लादित हुईं और उनके साथ यमुना-तट पर जाकर विहार करने लगी। कुछ वार्तालाप के अनंतर रासमंडल रचा गया और प्रत्येक गोपी के साथ एक-एक श्रीकृष्ण प्रगट होकर नृत्य करने लगे। रासलीला समाप्त होने पर प्रातःकाल सभी गोपियाँ अपने गृह लौट गईं और किसी ने भी उन-पर शंका नहीं की।

नंददासजी ने इसमें कुछ परिवर्द्धन तथा संक्षिप्तीकरण किया है। आरंभ में शुकदेवजी की शोभा, भक्ति आदि का बारह रोलाओं में, भागवत तथा पंचाध्यायी का माहात्म्य चार रोलाओं में, वृंदावन तथा वृक्ष का वर्णन सोलह रोलाओं में और श्रीकृष्ण-शोभा पाँच रोलाओं में वर्णित है। इसके अनंतर शरद-वर्णन कुछ विस्तृत किया गया है। मुरलीनाद सुनकर जब व्रज वालाएँ अपने-अपने गृहों के कार्यों को छोड़कर वन की ओर भागी हैं, तब नंददासजी ने केवल उनकी विरह तीव्रता तथा मिलन की आतुरता ही का वर्णन किया है और किन-किन कार्यों को छोड़कर वे वन की ओर चली थीं, उनकी भागवत के समान सूची नहीं दी है। परीक्षित के शंका समाधान के अनंतर कृष्ण गोपी मिलन का वर्णन है, जिसे भागवत में केवल एक ही श्लोक में कह दिया गया है और तब श्रीकृष्ण दस श्लोकों में उपदेश देकर लौट जाने को कहते हैं। नंददासजी ने श्रीकृष्ण के व्रजबालाओं के आने पर मुग्ध होने तथा उनका आदर करने के अनंतर केवल एक रोला में लौट जाने का संकेत कराया है। इसके उपरांत गोपियों के दुखित होने तथा प्रणय-कोप से उनके दिए हुए उत्तर का उल्लेख है। भागवत में जब ग्यारह श्लोक में उत्तर है तब नंददासजी ने केवल छः रोलाओं में कहलाया है। इस प्रकार की कात-

रोक्ति सुनकर श्रीकृष्ण प्रसन्न हो उनके साथ नव-विहार करने लगे। इसका वर्णन भी भागवत के आधार पर होते भी स्वतंत्र है। इसी बीच कामदेव का आना, मूर्छित होना तथा रति का उसे उठा ले जाना नंददासजी की निजी कल्पना है। इसके अनंतर गोपियों को उचित सौभाग्य गर्व होने पर श्रीकृष्ण के अंतर्ध्यान होने के साथ प्रथम अध्याय समाप्त हो जाता है।

नंददासजी दृष्टांत रूप में बतलाते हैं कि जिस प्रकार मिष्टान्न खाते-खाते मन भर जाने पर अन्य तिक्त, निमकीन रस विशेष रुचिकारक ज्ञात होते हैं उसी प्रकार प्रेम में भी संयोग के अनंतर कुछ वियोग होने से प्रेम भी विशेष पुष्ट होता है। व्रजबालाएँ भी श्रीकृष्ण के थोड़ी देर के संसर्ग से इतने प्रेमावेश में आ गई थीं कि उन्हें चेतन-अचेतन का ज्ञान नहीं रह गया था और श्रीकृष्ण को न देखकर वे ऐसी विरहाकुला हो गईं जैसे निर्धन महानिधि को पाकर फिर खो देने से होता है। वे वृक्ष, पौधे आदि से श्रीकृष्ण का पता पूछने लगीं पर उनसे जब निराश हो गईं तब इनका प्रेमावेश और बढ़ा। उनका अहमत्व मिट गया और वे कृष्ण-रूप हो गईं। श्रीकृष्ण ही में तन्मय होकर—'उन्मत्त की नाईं' वे उन्हीं की लीलाओं का अनुकरण करने लगीं। वे 'कृष्ण-भगति तें कृष्ण' हो गईं। इसी समय इन्हे श्रीकृष्ण के चरण चिह्न दिखलाई दिए और वहीं 'प्यारी तिय' (श्री राधाजी) के चरण चिह्न भी मिले। यहीं उन्हें 'बेनी-गुहन' के चिह्न भी मिले पर उन व्रज बालाओं में रत्ती भर ईर्ष्या उत्पन्न नहीं हुई क्योंकि वे सभी सांसारिक माया मोह द्वेष आदि से परे हो गई थीं। ये उन्ही पद-चिह्नों का अनुसरण करती हुई आगे बढ़ीं। कुछ ही दूर पर वही 'प्यारी तिय' अकेली महाविरह में रोती हुई मिली और उसे खोई हुई महानिधि का अर्द्धांश मानकर वे उसे साथ लेकर यमुना-तट पर पहुँचीं। यहाँ दूसरा अध्याय समाप्त होता है और तीसरे में गोपियाँ उन्हीं की लीला का वर्णन करते हुए इस प्रकार अंतर्ध्यान होने पर उलाहने देने लगीं।

इस प्रकार व्रजवनिताओं की विरहाकुलता देखकर श्रीकृष्ण उन्हीं के बीच एकाएक प्रगट हो गए। उन 'मनमथ के मनमथ' को देखकर वे अत्यंत आह्लादित हो उठीं। यमुना के तट पर श्रीकृष्ण से मिलकर सभी पूर्णकाम हो गईं तथा उनके हृदय का कल्मषरूपी काम दूर हो

गया। सभी ने आसन देकर भगवान को बैठाया और अंतर्ध्यान हो जाने के कारण उनका प्रणयतिरस्कार करने लगीं। इस पर भगवान ने उनके निस्वार्थ प्रेम की प्रशंसा करके उन्हें प्रसन्न किया। यहीं चौथा अध्याय समाप्त होता है और पाँचवे में रासलीला का वर्णन है।

रास उस नृत्य को कहते हैं, जिसमें अनेक स्त्री-पुरुष मिलकर गोलाकार नृत्य करते हैं। योगेश्वर श्रीकृष्ण, जितनी गोपियाँ थीं उतना रूप धारणकर प्रत्येक के दिए आसन पर विराजमान हो चुके थे अतः सभी युगल मूर्तियाँ हाथ पकड़कर उठ खड़ी हुईं और रासमंडल वनाकर नृत्य-गान करने लगी। नंददासजी ने नृत्य, गान तथा क्रीड़ाओं का बहुत ही सुंदर सरस वर्णन दिया है। प्रत्येक गोपी यही समझ रही थी कि भगवान उसी के सन्निकट हैं, उसी के है और वह स्वयं उन्हीं की है अर्थात् दोनो में भेद नही है। इस प्रकार २६ रोलाओं तक यह वर्णन समाप्त कर नंददासजी कहते हैं कि इस रस को शिव, शुकदेव आदि देवता-ऋषिगण समझते हैं पर वे भी वर्णन नहीं कर सकते। इस कथा को प्रेम-भक्ति से जो लोग सुनते हैं, गाते हैं उनके लिए यह वेद-ज्ञान-हरिभक्ति के तत्व के समान है और पापनाशिनी तथा मंगलदायिनी भी है। नंददासजी ने इस रचना मे गोपियो के (रासलीला समाप्त होने पर) अपने-अपने गृहों को लौट जाने का उल्लेख नहीं किया है, जैसा कि भागवत मे है। नंददासजी ने रासलीला ही नही समाप्त की है और होती हुई रासलीला के महत्त्व का वर्णन करते हुए उसे समाप्त कर दिया है। उनका भाव यही है कि यह नित्य रासलीला है, जिसकी कभी समाप्ति नही है।

पंचाध्यायी का आधार श्रीमद्भागवत ही है, ऐसा होते भी नंददासजी कोरे अनुवादक मात्र नहीं है। कवि-कल्पना-प्रसूत अनेक नए प्रसंगो का समावेश, सुंदर उक्तियाँ, भाषा-सौष्ठव, विषय-प्रतिपादन की विशिष्ट रीति तथा धार्मिक विचार ये सब कवि की मौलिक विशेषताएँ है। चौथे अध्याय में श्रीकृष्ण के पुनः प्रगट होने पर गोपियों को जो आनंद हुआ है, उसके वर्णन में कवि ने जिन उत्प्रेक्षाओं की लड़ी सी पिरो दी है वह नंददास जी ही की कल्पनाएँ हैं। भागवत मे कुल गोपियो के वीच एक ही श्याम के वैठने का उल्लेख है पर नंददासजी ने प्रत्येक गोपी के सामने

एक एक हरि देव सबहिं आसन पर बैसे।
किए मनोरथ पूरन जिन मन उपजे जैसे ॥

इसी अध्याय में राजा परीक्षित ने पुनः शंका की तथा शुकदेवजी ने उसका समाधान किया पर नंददासजी ने उस अंश को छोड़ दिया है क्योंकि इन्होंने वैसा प्रसंग ही नहीं आने दिया है, जिस पर शंका उठाई गई है। तात्पर्य यही है कि नंददास की निजी मौलिकता की छाप इस ग्रंथ में सर्वत्र है।

रास पंचाध्यायी में जिस रासलीला का वर्णन हुआ है वह केवल साधारण कामकेलि नहीं है प्रत्युत् उसमें आध्यात्मिक रहस्य ही प्रधान है, इसे स्पष्ट करने के लिये नंददासजी ने एक स्वतंत्र काव्य सिद्धांत पंचाध्यायी लिखा है। इसमें १३८ रोला हैं पर यह अध्यायों में नहीं बँटा है। इसमें आरंभ में श्रीकृष्ण की स्तुति है और बतलाया गया है कि वह नर नहीं नारायण हैं। रासपंचाध्यायी में पहले रास-रस के अधिकारी भक्त श्रीशुकदेवजी की स्तुति तथा वृंदावन-माहात्म्य वर्णनकर श्रीकृष्ण की शोभा अति संक्षेप में वर्णित है। इसमें भी वे नारायण ही कहे गए हैं पर सिद्धांत में कुछ विस्तार से कहा गया है कि 'वह अपार रूप-गुण-कर्म संपन्न हैं, वेद पुराणादि सभी विद्याएँ जिनकी स्वाँस मात्र हैं, पंच-विषय, पंच महाभूत, सभी इंद्रियाँ, अहंकारादि जिसकी माया के विकार हैं और जो इन्हीं के अधीन हैं तथा जिसकी आज्ञा से वह सृजन-पालन-संहार करती रहती हैं। जिनका स्वरूप जागृत, स्वप्न तथा सुषुप्ति से परे प्रकाशित होता है, वही नारायण श्रीकृष्ण हैं और अनेक अवतार धारण करते रहते हैं। जिनकी माया ने शिवजी तथा ब्रह्माजी को मोह लिया था, जिनके कारण इंद्र का गर्व पहाड़ पर गिर कर चूर हो गया था, उन्हीं श्रीकृष्ण ने रास-रस प्रगट किया।' यह रास-रस कैसा था, उसे बतलाते हैं कि

अवधिभूत गुन रूप नाद तर्जन जहँ होई।
सब रस को निर्तास रास-रस कहिए सोई ॥

इसके अनंतर जीवात्मा का वर्णन करते हैं कि यह काल, कर्म तथा माया के अधीन है और विधि-निषेध तथा पाप-पुण्य के फेर में पड़ा हुआ है। इस प्रकार के साधारण जीव श्रीकृष्ण नहीं हैं प्रत्युत् वह

परम धरम परब्रह्म ज्ञान विज्ञान प्रकासी।
ते क्यों कहिए जीव-सदृश प्रति शिखर निवासी ॥

और इन्हीं सच्चिदानंद भगवान ने साधारण जीवों के उद्धार के लिये दया करके व्रज में रस-रूप अवतार लिया क्योंकि उस समय वैसे ही भक्तगण वहाँ प्रगट हो चुके थे। श्री वृंदावन के दिव्य रूप का भी यहीं कवि ने अति संक्षेप में वर्णन दिया है और शरद-रजनी, यमुना-तीर तथा रासलीला करने की इच्छा का उल्लेख मात्र कर दिया है। इस प्रकार नंददासजी ने भगवान, भक्त, स्थान, समय सभी की दिव्यता का वर्णन करते हुए रासलीला की दिव्यता की ओर पाठकों को आकृष्ट किया है और तब कहते हैं कि लीला पुरुषोत्तम ने 'शब्द ब्रह्ममय' मुरली बजाकर सभी को मोह लिया। इस ब्रह्मनाद को सुनकर जिनमें परमात्मा से मिलने की आकांक्षा पूर्णरूप से थी वे शीघ्रता ही से नहीं, उन्माद-ग्रस्त-सी उस ओर दौड़ पड़ीं। वे किस प्रकार उस ओर प्रेरित हुईं, कैसे उस ओर चलीं आदि का बारह रोलाओं में अच्छा वर्णन किया है। कितनी अनन्यता, तल्लीनता तथा एकनिष्ठा से सभी सांसारिक मोह आदि त्याग कर वे परमात्मा से मिलने चलीं, यह बतला कर कवि कहता है कि विद्वानों का यह कथन है कि ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं मिलती पर गोपियों ने अपना यह नया मार्ग प्रकट किया है कि प्रेम ही से भगवान की प्राप्ति होती है।

ये गोपियाँ इस मार्ग की अधिकारिणी थीं या नहीं इसे भी कवि ने दोनों ही पंचाध्यायी में बतलाया है। कहते हैं—

सुद्ध प्रेममय रूप पंच भूतन ते न्यारी।
तिनहि कहा कोउ कहै ज्योति सी जग उजियारी ॥

(रास पंचाध्यायी)

धर्म, अर्थ, अरु काम कर्म इह निगम निदेसा।
सब परिहरि हरि भजत भई करि बड़ उपदेसा ॥

(सिद्धांत पं०)

ये व्रजबालाएँ पंचभूतों के प्रभाव से मुक्त शुद्ध प्रेम-स्वरूपिणी थीं और वेदाज्ञा-रूप धर्म-अर्थ-काम आदि सभी का त्याग कर एकमात्र भगवान में लीन हो चुकी थीं। यही कारण है कि जो इस मार्ग की

अधिकारिणी नहीं थीं, उन्होंने मुरलीनाद को सुना अनसुना कर दिया। जो अधिकारिणी थीं पर बलात् रोक दी गईं, वे 'गुनमय तन तजि' ईश्वर से जा मिलीं। जिस समय श्रीकृष्ण ने गोपियों के आने पर उन्हें गृह लौट जाने को स्त्री-धर्म का उपदेश दिया उसी समय उन्होंने स्पष्ट ही कह दिया कि आप हमें स्त्री-धर्म का क्यों उपदेश दे रहे हैं? ये सब धार्मिक आचार विचार आप ही की प्राप्ति के लिये किए जाते हैं और हमने अपनी प्रेम-भक्ति से आपको पा लिया है। अब हमें इन सब सांसारिक प्रपंच की क्या आवश्यकता है?

नंददासजी इस ग्रंथ के संबंध में कहते हैं—

> नाहिंन कछु शृंगार कथा इहि पंचाध्याई।
> सुंदर अति निरवृत्त परा तें इती बड़ाई॥
> जे पंडित शृंगार ग्रंथ मत यामैं सानैं।
> ते कछु भेद न जानैं हरि को बिषई मानैं॥

उनका तात्पर्य कहने का यही है कि श्रीकृष्ण की रासलीला शृंगारिक कामकेलि मात्र नहीं है प्रत्युत् आत्माओं के परमात्मा से मिलन के प्रेममार्ग का चित्रण है। इस प्रकार प्रथम परीक्षा के अनंतर वन-विहार आरंभ हुआ पर शीघ्र ही प्रेमगर्विता व्रजबालाओं का अहंकार दूर करने के लिये, क्योंकि शुद्ध निष्काम प्रेम में इसका गंध भी नहीं होना चाहिए, श्रीकृष्ण उन्हीं के बीच में अंतर्ध्यान हो गए। ऐसा होते ही वे व्रजबालाएँ विरह-कातरा होकर श्रीकृष्ण को ढूँढ़ने लगीं। उन्हे शरीर का भान भी नहीं रहा और वे जड़-चेतन की भिन्नता भी भूल गईं। वे वृक्ष-लतादि से पूछती फिरती रहीं और फिर कृष्णमय होकर उनकी लीला का अनुकरण करने लगीं। कहीं कृष्ण-चरण-चिह्न देख पाया तो उसी पर निछावर हो पड़ी। आगे राधिकाजी विरह में विलाप करती मिल गईं तो उन्हें ही

> धाय भुजन भरि लै पुनि तिहि जमुनां तट आईं।
> कृष्ण दरस लालसा सुतरफै मीन की नाईं॥

सभी व्रज-बालाएँ भगवान के दर्शन की लालसा में विकल हो गईं और

> अपुनैं ईं प्रेम-सुधानिधि वढ़ि गइ प्रेम कलोलैं।

क्योंकि नंददासजी ने पहले ही सिद्धांत रूप में कहा है कि

कृष्ण विरह नहि विरह, प्रेम-उच्छलन कहावै।
निपट परम सुख रूप इतर सब रस बिसरावै॥

वास्तव में प्रेम-भक्ति के अनुयायियों का यह सिद्धांत ही है कि भगवान के विरह में जब सभी सांसारिक माया-मोह दूर हो जाते हैं तथा अहंता का भाव मिट जाता है तभी उनका नैकट्य प्राप्त होता है। इस प्रेमानंद के सामने भक्त को अन्य सभी रस भूल जाते हैं। इस प्रकार व्रज-बालाएँ जब विरहानल में तपकर स्वच्छ हो गईं, अहंकार मिट गया तब भगवान उन्हीं के बीच प्रगट हो गए। श्रीकृष्ण को अपने बीच देखकर गोपियाँ कैसी प्रसन्न हुईं, इसके वर्णन मे नंददासजी ने लौकिक शृङ्गार त्याग दिया है। कहते हैं—

साँवरे पिय कर परस पाइ सब सुखित भईं यौ।
परमहंस भागवत मिलत संसारी जन ज्यौ॥
जैसे जागत स्वप्न सुषुप्ति अवस्था मे सब।
तुरिय अवस्था पाइ जाइ सब भूलि भईं तब॥

इस प्रकार तुरीयावस्था को प्राप्त होने पर उनकी सभी सांसारिक कामनाएँ प्रेम-भक्ति में लीन हो गई और शक्तियों द्वारा आवृत परमात्मा के समान गोपियों ने श्रीकृष्ण को घेर लिया। यद्यपि आरंभ मे गोपियो ने श्रीकृष्ण से लौकिक प्रेम ही किया पर जब वह प्रेम अत्यंत उत्कट होकर शुद्ध तथा निस्सीम हो गया तभी श्रीकृष्ण उनके वश हो गए। भगवान मे जिस प्रकार भी मन लगाया जाय वह उस पर साधन का विना विचार किए प्रसन्न हो जाते है।

तैसेहिं व्रज की बाम काम रस उत्कट करिकै।
शुद्ध प्रेममय भईं लईं गिरिधर उर धरिकै॥

इसके अनंतर जो रासलीला हुई उसके सबंध मे भी कवि ने जो कुछ वर्णन किया है वह भी आध्यात्मिक रहस्य ही से आच्छादित है और इसका प्रभाव भी समय पर ऐसा पड़ा कि

थके उडुप अरु उडुगन उनकी कौन चलावै।
काल चक्र पुनि चकित थकित भयौ मरम न पावै॥ ८

इस रासलीला का वह लोकोत्तर आनंद है, जिसे वेद आदि नित्य कहते हैं। इस पर अमर्यादा या अश्लीलता का जो आक्षेप करते हैं वे यह भूल जाते हैं कि यदि आत्मा तथा परमात्मा के मिलन तथा तज्जनित आनंद का वर्णन किया जाय तो उसके लिए लौकिक मिलन तथा आनंद ही को प्रतीक रूप में लिया जा सकता है। अवश्य ही उस वर्णन में अलौकिकता का भाव या आध्यात्मिक रहस्य सूत्रवत छिपा रहेगा। इसीलिए नंददासजी ने यह सिद्धांत पंचाध्यायी बनाकर इस रासलीला की दिव्यता घोषित की है।

रास पंचाध्यायी प्रबंध-काव्य ही कहा जा सकता है पर रासलीला की सुपरिचित कथा इतनी अल्प है कि कवि को उसकी कमी की पूर्ति अन्य प्रकार से करनी पड़ी है। लौकिक श्रृंगार के भावों को लेकर ही कवि ने उन्हें ऐसा आध्यात्मिक रूप दिया है कि उसमें उसके आत्मा की परमात्मा से मिलकर नित्यानंद प्राप्त करने की उत्कट आकांक्षा स्पष्ट झलकती है। यह काव्य कथा-प्रधान न रहकर भाव-प्रधान हो गया है और इसमें भावों का चित्रण तथा दृश्य-वर्णन ही रसात्मकता लाने का साधन प्रकृत्या बन गया है। यही कारण है कि इसमें कवि को भाषा-सौष्ठव तथा उसकी अलंकृत शैली पर इसलिए विशेष ध्यान रखना पड़ा है कि वह चित्ताकर्षक तथा हृदयग्राही हो उठे। इस वर्णन में आलंबन तथा उद्दीपन दोनों विभावों का सम्यक् तथा अत्यंत सजीव चित्रण किया गया है। आलंबन रूप में श्रीकृष्ण तथा गोपियों का तथा उद्दीपन रूप में वृंदावन प्रकृति शरद रात्रि आदि की शोभा का वर्णन है।

आख्यानक काव्य रूप-मंजरी

हिंदी साहित्य के इतिहास के मध्य या भक्ति काल की भक्ति जिस प्रकार सगुण तथा निर्गुण धाराओं में प्रवाहित हुई उसी प्रकार निर्गुण धारा की दो शाखाएँ ज्ञान-प्रधान तथा प्रेम-प्रधान फूटीं। इनमें अंतिम शाखा ही में सांसारिक प्रेमाख्यानों को लेकर अलौकिक शुद्ध ईश्वर-प्रति प्रेम का यथार्थ वर्णन किया गया है। इन आख्यानक काव्यों में फारस के सूफी संप्रदाय के कवियों के आख्यानक काव्यों 'मसनवियों' की शैली ग्रहण की गई है और लौकिक प्रेम (इश्क मजाजी) को लेकर अलौकिक

प्रेम (इश्क हक़ीक़ी) की महत्ता प्रदर्शित की गई है। भक्त आशिक (प्रेमी) है और 'माशूक' (प्रियतमा) 'खुदा' है। उसीसे मिलने के लिए प्रेमी भक्त विरहाकुल रहता है। यही विरह प्रेम की पीर है जो यावज्जीवन रहती है। इसमें ईश्वर निगुण, निराकार रहता है। हिंदी में इस प्रकार के जितने प्रमुख काव्य हैं वे सभी मुसल्मानों द्वारा लिखे गए हैं और जितने हिंदुओं के लिखे हैं वे सभी साधारण तथा निम्न कोटि के हैं। ऐसा होना सहज स्वाभाविक है क्योंकि फारसी और इसी कारण उर्दू में पुरुष ही विरहकष्ट उठाता है, रोता है तथा मिलने के लिये तड़पता है और स्त्री 'वेवफा' (अकृतज्ञ) होती है। भारतीय भावना इसके ठीक विपरीत होती है, प्रेमिका ही विरहिणी होती है, वही कष्ट उठाती है और नायक शठ, दुष्ट आदि होता है। वही पारसीक भावना हिंदी के प्रेमाख्यानक काव्यों में मुसल्मान कवियों द्वारा गृहीत है। जैसे जायसी के पद्मावत में पद्मिनी की खोज में रत्नसेन ही 'अपनास' करता है और तब उसे वह मिलती है। आख्यानक काव्य की परंपरा हिंदी साहित्य मे सोलहवीं विक्रमी शताब्दि से आरंभ होती है और इसके पहले का कोई काव्य अभी तक प्राप्त नहीं हुआ है।

रूपमंजरी प्रेमाख्यानक काव्य अवश्य है पर यह भारतीय परंपरानुसार है, सूफी संप्रदाय के पारसीक-भावना-युक्त निगुण निराकार-प्रेमाख्यान की परंपरा मे नहीं है, यह ऊपर लिखे भेद से स्पष्ट है। इसमें सांसारिक पति के 'कूर कुरूप कुँवर कहुँ दीनी' होने से परकीया भाव से भगवान श्रीकृष्ण को 'गिरिधर कुँवर सदा सुखदायक' मानकर उनके प्रति प्रेम लगाया गया है। रूपमंजरी प्रेमिका है और वह प्रेम करती है सगुण साकार श्रीकृष्ण से। स्वप्न में दर्शन मिलने से इसका प्रेम उद्वेलित हो उठता है और पुनर्मिलन के लिये वह अत्यंत कातर हो उठती है। अंत में इसकी विरह तपस्या से प्रसन्न होकर 'सपनो ओट दै भेटे गिरिधर लाल।' इस कथानक मे कहीं किसी प्रकार की बाधा बीच में नहीं पड़ती, केवल भक्त तन्मयता तथा एकनिष्ठा से भक्ति करते हुए भगवान की दया से उसे प्राप्त कर लेता है। इसमें शुद्ध गोपी प्रेमपद्धति का अत्यंत सरस वर्णन है, जो रासपंचाध्यायीकार के योग्य हुआ है। इंदुमती गुरु का कार्य करती है, जो अपने शिष्य के लिए भगवान से निरंतर प्रार्थना करती रहती है कि वह उस पर दया करे।

इस काव्य में आख्यानक अंश बहुत ही थोड़ा है, प्रायः ४०-५० पंक्तियों में आ जायगा पर कवि को इसकी ओट में 'परम-प्रेम-पद्धति इक आही। नंद जथामति बरनत ताही॥' मात्र लक्ष्य था। इसी कारण वह अपने लक्ष्य की विस्तृत विवेचना करता हुआ भी कथा शीघ्रता से बढ़ाता चलता है। वह मंगलाचरण ही से इस प्रकार आरंभ करता है—

प्रथमहिं प्रनऊँ प्रेममय परम ज्योति जो आहि।
रूप उपावन रूपनिधि नित्य कहत 'कवि ताहि॥

परब्रह्म परमेश्वर की परम ज्योति का जो अत्यंत आकर्षक सुंदरतम रूप है तथा नित्य है उसी के प्रति प्रेम करने की यह पद्धति भक्तों की निधि है। ईश्वर की प्राप्ति के अनेक मार्ग कहे गए हैं पर प्रेम-मार्ग सबसे निराला है—

जग में नाद अमृत मग जैसो। रूप अमीकर मारग तैसो॥

साधारणतः सभी जीवों में परमात्मा का अंश समानरूपेण वर्तमान है पर क्या कारण है कि उनमें से कुछ सज्जन होते हैं और कुछ दुष्ट दुर्जन? उपमा देकर कवि बतलाता है जिस प्रकार चंद्र एक होते हुए भी अनेक भरे हुए जलपात्र में अनेक दिखलाता है और जैसा निर्मल या गँदला जल होता है वैसा ही वह भी दीखता है। अन्य उदाहरण भी दिए गए हैं। साथ ही कवि कहता है कि यह मार्ग अनधिकारियों के लिये नहीं है और इस काव्य को पढ़कर या सुनकर सांसारिक चहले में उनके अधिक फँसने ही की संभावना है। जिनकी आत्मा शुद्ध है, वे ही इस प्रेमाख्यान के आध्यात्मिक तत्व को समझकर इस मार्ग पर अग्रसर हो सकेंगे।

इस प्रकार मार्ग का संक्षिप्त परिचय देकर कवि उदाहरण रूप में एक आख्यान लेकर इसका विस्तार से विवेचन करता है। कहते हैं—

इहि प्रसंग हौं जु कछु बखानौं। प्रभु तुम अपनौ जस कै मानौं॥

कवि का आशय है कि न वह कोई सच्ची घटना का वर्णन कर रहा है, न कोई कहानी ही लिख रहा है प्रत्युत् वह अपने हृदयस्थ प्रेम भक्ति ही का वर्णन करता है—

अब हौं बरनि सुनाऊँ ताही। जो कछु मो उर-अंतर आही॥

कवि पहले निर्भयपुर का वर्णन करता है, वहाँ के राजा धर्मधीर का कीर्तिमान् होना बतलाता है और तब उसकी पुत्री रूपमंजरी के लड़कपन तथा वयः प्राप्ति का सरस विवरण देता है। इतना कहकर भक्त कवि यह स्पष्टतया बतला रहा है कि निर्भयपुर निवासिनी धर्मधीर की पुत्री रूप मंजरी ही इस प्रेम-पद्धति के अपनाने योग्य पात्र है। निर्भीक चित होकर धैर्य के साथ धर्म का आश्रय लिए हुए रूपनिधि परमात्मा का अंश रूपमंजरी आत्मा ही इस प्रेम-मार्ग पर चलकर उसमें लीन हो सकती है। विशेष का उदाहरण देते हुए सामान्य की बात कही गई है। रूपमंजरी नाम भी रूपनिधि का अंश मानकर रखा गया है।

इतना वर्णन देने के अनंतर कवि अत्यंत संक्षेप में रूपमंजरी के विवाह योग्य होने, वर खोजने, क्रूर कुरूप से विवाह होने तथा इसके कारण सबसे दुखी होने का वर्णन कर देता है और पुनः उसी पद्धति के विश्लेषण में लग जाता है। रूपमंजरी विवाह होने पर कहाँ रही, श्वसुरालय में या मायके में, तथा उसके पति ने उसके प्रेममार्ग में कोई अड़चन डाली या नहीं इन सब के वर्णन से कवि उदासीन है, उससे तो केवल इतने ही से मतलब है कि भक्त किस प्रकार प्रेम कर भगवान से मिलता है अतः कथा भाग मात्र बढ़ाने के लिए उसने इतना वर्णन कर दिया। यह ध्वनि भी अवश्य निकलती है कि सांसारिक माया किसी कारणवश जब टूटती है तभी मनुष्य ईश्वर की ओर आकर्षित होता है जैसे इस आख्यान में 'क्रूर कुरूप' पति मिलने से उसे संसार से विरक्ति होती है और वह ईश्वर को पाने का हठ ठानती है। यह कवि अपनी निजी अनुभूति का उल्लेख कर रहा है जैसा उसकी जीवनी से ज्ञात होता है।

इतना वर्णन हो जाने पर 'सहचरी' का प्रसंग आरंभ होता है और वह रूपमंजरी के कष्ट को देखकर स्नेहवश उसे इस प्रेम-पद्धति में दीक्षित करती है। इंदुबदनी रूपमंजरी की सखी का नाम इंदुमती रखा जाता है। वह रूपमंजरी के सर्वांगसुंदर रूप का वर्णन करती है और उसके अनुरूप पति के न मिलने से वह दुखित होती है। वह उसके दुःख-निवारण का उपाय सोचती है कि ऐसा रूप निष्फल न चला जाय और इसके लिये 'उपपतिरस' ही औषधि निर्धारित करती है। अब उपपतियों में यह समझकर कि—

सुर नर चाम के धाम सब चुवहिं बीच बिकराल।
तिन में इह कैसे बसे छैल छबीली बाल॥

वह उन भगवान श्रीकृष्ण को उसके योग्य चुनती है जो 'निगमहिं निपट अगम' हैं और जो 'आप दया करि आवै'। वह जाकर 'गिरिधर पिय प्रतिमा दिख आई' और तब उसे जिस प्रकार गुरुदेव ने बताया था उसी प्रकार उनकी प्रार्थना करती है। अंत में भगवान उसकी पुकार सुनते हैं और स्वप्न में रूपमंजरी को दर्शन देते हैं। प्रथम दर्शन का रूपमंजरी पर कैसा प्रभाव पड़ता है और बहुत पूछने पर वह जिस प्रकार उसे बतलाती है उसका अत्यंत सरस स्वाभाविक विवरण दिया गया है। वह पूर्व जन्म में गोपी थी इसका आभास इस प्रकार कहकर दिया गया है कि 'द्रुम बेली कछु मीत से भाई।' प्रथम दर्शन ही से किस प्रकार अनुराग उत्पन्न हुआ और निरंतर बढ़ता गया यह

गड़्यो जु मन पिय प्रेम रस क्योंहूँ निकस्यो जाय।
कुंजर ज्यों चहलै पर्यो छिन छिन अधिक समाय॥

नायक का परिचय पूछने पर रूपमंजरी कहती है कि कहीं स्वप्न भी सच्चा हुआ है जो तू पूछती है पर सखी के हठ पर तथा उषा-अनिरुद्ध प्रेमाख्यान का उदाहरण देने पर बतलाती है कि किस प्रकार कहूँ ? वाणी रूप को ग्रहण कर नहीं सकती, नेत्र ही रूप-रस का पान करते हैं पर बोलने की सामर्थ्य ही नहीं है और वे भी उस अनुपम रूप को पूर्णरूपेण ग्रहण नहीं कर सके, जिस प्रकार स्वाति का सुंदर बादल चातक की चोंच में कहाँ तक समा सकता है। तब भी कुछ शोभा वर्णन कर कहती है—

ताके रूप अनूप रस बौरी हौं मेरी आलि।
आज तनक सुधि परत है सबै कहौंगी कालि॥

कितना सुंदर सहज अनलंकृत कथन है कि हृदय पर मार्मिक प्रभाव छोड़ जाता है। ऐसी ही भाषा के कारण 'नंददास जड़िया' कहे गए हैं।

इंदुमती उतने ही वर्णन से समझ गई कि जिसकी वह प्रार्थना किया करती थी उसी ने कृपा की है और इससे प्रसन्न होकर वह

विह्वल हो उठी। सखी की प्रसन्नता देखकर रूपमंजरी ने कारण पूछा तब उसने कुल-वृत्त बतला दिया तथा श्रीकृष्ण का परिचय भी दिया। अब भक्त-कवि प्रथम दर्शन से किस प्रकार कुछ समय तक रूपमंजरी सुखी रही और फिर उसकी विरह-दशा बढ़ी इसका अत्यंत सरस विवरण देता है। अनुराग का आरंभ इस प्रकार होता है—

तिय-हिय-दर्पन तन-रुई रही हुती पुट पागि।
प्रीतम-तरनि-किरनि परसि लागि परी तिहि आगि॥

हृदय रूपी दर्पण पर प्रीतमरूपी सूर्य की किरण पड़ने से प्रेमाग्नि लग गई और हृदय का आच्छादन शरीर रूपी रुई ने उसे पकड़ लिया। इस प्रकार प्रम का आरंभ मिलन से होने के कारण

रूप जोति सी लटकति डोलै। सब सो वचन मनोहर बोलै॥
अँग अँग प्रेम उमँग अस सोहै। हेम छरी जराय जरि को है॥
बार बार कर दर्पन धरै। कुंतलहार सँवारयो करै॥

पर इसके बाद ही इस प्रफुल्ल प्रेम ने पुनः मिलन न होने से विरह का रूप धारण किया।

भूख पियास सबै मिटि गई। खाम कछु गुरजन की लई॥
डभक दै नैन नीर भरि आवहि। पुनि सुखि महाछवि पावहि॥
पुलक अंग स्वरभंग जनावै। बीच बीच मुरझाई आवै॥

इस प्रकार विरह-दशा बढ़ने लगी और ताप इतना बढ़ा कि वह किसी के पास बैठकर इस भय से स्वाँस तक नहीं लेती थी कि उसकी गर्मी का ज्ञान होने से कोई यदि पूछ बैठे तो वह क्या उत्तर देगी। यदि कोई उसे कमलपुष्प देता तो वह इस आशंका से कि कहीं उसके ताप से जल न जाय पास रखवा लेती थी।

इसके अनंतर पावस, शरद, हिम, शीत, वसंत तथा ग्रीष्म षट्ऋतु वर्णन करते हुए विरह दशा का वर्णन किया गया है। बीच बीच में सहचरी का आशा दिलाना, प्रश्नोत्तर, होली के अवसर पर कृष्णलीला का गान सुनकर मूर्च्छा आना आदि का अत्यंत रसमय वर्णन किया गया है। इस प्रकार एक वर्ष तक विरह-ताप रूपी तपस्या मे तपने पर तथा प्रेम-परीक्षा में उत्तीर्ण होने पर पुनः स्वप्न में भगवान् श्रीकृष्ण उसे मिले।

तिहूँ काल में प्रगट प्रभु प्रगट न इहि कलिकाल।
तातें सपनो ओट दै भेंटे गिरिधरलाल॥

इस प्रकार प्रेमाख्यान समाप्त करते हुए कहते हैं कि—

जदपि अगम तें अगम अति निगम कहत है जाहि।
तदपि रँगीले प्रेम तें निपट निकट प्रभु आहि॥

अर्थात् सत्य प्रेम भक्ति पद्धति ही से भगवान की शीघ्र दया हो सकती है, अन्य से नहीं। इस कथा को भी नंददास जी ने रूपमंजरी तथा इंदुमती का नाम देकर 'निज हित कै करी।' इस कथा के पढ़ने तथा सुनने से परम प्रेम-पद की प्राप्ति होती है, यह भी जता दिया है।

इस प्रेम-पद्धति की कठिनता भी नंददासजी ने इस प्रकार प्रगट की है कि इस मार्ग में —

गरल अमृत इकठाँ करि राखे। भिन्न भिन्न करि विरलौ चाखै॥

अर्थात् सांसारिक प्रेम तथा ईश्वर-प्रति प्रेम साथ साथ चलता है, एक से छूटकर या आगे बढ़कर दूसरा प्राप्त होता है। यदि पहले ही में फँसकर रह गए तो वासना विष ही मिलेगा पर यदि उसे त्यागकर भगवान में आसक्ति हो गई तो वही माधुर्य-अमृत की प्राप्ति हो जायगी। यही इस मार्ग की कठिनाई है, जिसे दूर करते ही जीव सच्चा भक्त हो जाता है।

इस आख्यानक काव्य में शृङ्गारिकता पूर्ण रूप से है और 'उपपति रस' की प्रधानता है, जिसे विष कहा गया है और इसमें जो आध्यात्मिक भाव तथा शुद्ध ईश्वर-प्रति-प्रेम भक्ति है वही अमृत है। प्रथम विष-रूपी मार्ग पर चलकर ही दूसरे अमृत-मार्ग पर जाना होता है पर यह विष-रूपी मार्ग ऐसे आकर्षक सहज स्निग्ध शोभा से आच्छादित है कि उस पर आगे बढ़ना अत्यंत सुगम है और जो इसे अपनी निष्ठा से पार कर लेता है वह दूसरे मार्ग पर तुरंत पहुँच जाता है। ईश्वर प्राप्ति के जो अन्य मार्ग हैं वे आरंभ ही से इतने कठोर हैं कि उन्हें अपनाना सबके लिए अत्यंत कठिन है। यही कारण है कि

इंदुमती मतिमंद पै अवर नाहिं निबहंत।
नागर नगधर कुँअर पद यह मग छुयो चहंत॥

नंददास जी ने शृङ्गारिक वर्णन करते हुए भी पहले ही स्पष्ट रूप में कह दिया है कि उनकी नायिका का उपपति सांसारिक नहीं है प्रत्युत् संसार मात्र के सर्वस्व परमात्मा श्रीकृष्ण हैं। सभी भक्ति-पद्धतियों का लक्ष्य ईश्वर प्राप्ति ही है और इनको अपनाने का सभी मानव को अधिकार है। मानव मे पुरुष तथा स्त्री दोनो ही हैं। अब विचारणीय यह है कि पुरुष तो भगवान का दास, सखा आदि कुछ भी बनकर भक्ति कर सकता है और भक्त भगवान के द्वित्व भाव को, 'दुई' को, दूर कर सकता है तो वह आक्षेप-योग्य नही माना जाता पर यदि स्त्री ऐसा भाव लेकर चलती है तो उस पर अनेक प्रकार के आक्षेप किए जाते हैं। ऐसा किया जाता है, इसमे भी आश्चर्य न करना चाहिए क्योंकि मानव-दुर्बलताएँ तो प्रकृत हैं। स्त्री-भक्त यदि परमेश्वर को पति मानकर पूजती है, ध्यान करती है और उसे प्राप्त कर लेती है तो सांसारिक पुरुष उस पर उपपति या जार भाव रखने का लांछन लगाते हैं अश्लीलता का दोपारोपण करते है पर उन्हे ध्यान मे रखना चाहिए कि क्या वह ऐसा कर सकती हैं, कि भगवान को बुलाकर उनके समक्ष मंडप में बैठाकर पाणिग्रहण करे और तब भक्ति का श्रीगणेश करे। स्त्री-भक्त विवाहिता हो या कुमारी हो वह ईश्वर मे पिता, पति, सखा आदि ही का भाव लेकर चल सकती है और इन सब संबंधः मे निकटतम सबध पति पत्नी भाव है, जिसमें द्वित्त्व का अभाव है। संसार की दृष्टि से उनका यह भाव अवश्य उपपति-भाव कहलाएगा पर उसे सांसारिक उपपति-भाव मानकर आक्षेप करना मूढ़ता मात्र है।

नंददासजी ने वास्तव में एक आख्यानक की ओट में प्रेम-भक्ति की पद्धति का विवेचन किया है कि संसार के सभी माया-मोह आदि को त्यागकर एक मात्र भगवान की प्राप्ति के लिये जब भक्त कातर हो उठता है तभी उस पर भगवान दया कर अपना सामीप्य प्रदान करते है और वह भवसागर के जंजाल से मुक्त हो जाता है।

रूपमंजरी काव्य में केवल दो पात्री हैं—नायिका रूपमंजरी तथा उसकी सखी इंदुमती। पात्र श्रीकृष्ण हैं पर वह अत्यंत गौण है। कवि ने रूपमंजरी की 'लरिकाई' से यौवन प्राप्ति तक का क्रमिक वर्णन विस्तार से दिया है और उसके सौंदर्य का अत्यधिक उत्कर्ष इसी कारण वर्णित किया है कि वह 'दुसरी मनहु समुद की वेटी' होकर भगवान के

योग्य पात्री हो जाय। यह वर्णन शृङ्गारिक है और उपमा आदि कहीं-कहीं श्लीलता से दूर पड़ गई हैं। ऐसा होते हुए भी वर्णन सहज स्वाभाविक तथा अत्यंत सरस हुआ है। इसी समय विवाह योग्य होते ही उसका विवाह ऐसे कुरूप पुरुष से होता है, जिससे रूपमंजरी सांसारिक पति-सुख-सौभाग्य से विरक्त हो उठती है। संसार से विमुख या विरक्त होते ही मनुष्य की चित्तवृत्ति ईश्वर की ओर मुड़ती है और ठीक ऐसे ही अवसर पर उसकी सखी इंदुमती उसके विचार-परिवर्तन को समझकर उसे परमात्मा श्रीकृष्ण की ओर आकर्षित करती है। वह जानती है कि श्रीकृष्ण भगवान

जिहिं जिहि भाय भजै जो जोई। तिहि तिहि बिधि सो पूरन होई॥

अर्थात् जो जिस जिस भाव से मुझे भजता है उसी भाव से उसकी इच्छा पूरी हो जाती है। नंददासजी ने श्रीभगवद्गीता के 'ये यथा मां प्रपद्यंते तांस्तथैव भजाम्यहम्।' इस वचन की ही इस रूप में उद्धरणी की है। इंदुमती रूपमंजरी को इसी प्रेम-भक्ति में दीक्षित करती है, उसके लिए निरंतर भगवान से प्रार्थना करती रहती है और रूपमंजरी के विरह-कष्टों को देखकर उसे बराबर आश्वासन तथा भगवान के मिलने की आशा दिलाती रहती है। सारे आख्यानक की प्रेमगाथा पर, विरह की लौकिक दशाओं पर तथा मिलन पर इतना घना आध्यात्मिक रंग चढ़ा हुआ है कि साधारण सांसारिक प्रेम का उसमें चिह्न तक नहीं ज्ञात होता। रूपमंजरी का प्रिय या उपपति या उसके प्रेम का आलंबन कोई सांसारिक पुरुप नहीं है प्रत्युत

वह देखै उहि लखै न कोई। पंडित कहहिं कि सब ठॉ सोई॥
गोकुल गॉव कहूँ इक कोई। तामैं सदा बसत सखि सोई॥

वह अविनश्वर परमात्मा है, जिसे साधारण मानव-नेत्र नहीं देख सकते। रूपमंजरी यह समझ गई कि उसके श्रीकृष्ण कौन हैं और वह उनके प्रेम-विरह में अचेत सी हो गई। उसने उस 'प्रेमसुधारस' का पान किया था जिसे पाने का स्वत्व सच्चे भक्त ही को है। रूपमंजरी का मिलन भी

तिहू काल मैं प्रगट हरि, प्रगट न इहि कलिकाल।
तातैं सपनो ओट दै भेंटे गिरिधर लाल॥

विरह मंजरी तथा रस मंजरी

नंददासजी हिंदी साहित्य के इतिहास के पूर्व-मध्य-काल के ... आते हैं, जो सं० १३५० से सं० १७०० तक माना जाता है। इनकी प्रायः सभी रचनाएँ इसी काल की विशेपता लिए हुए अर्थात् भक्ति पूर्ण है पर उनमे दो ऐसी हैं, जिनमे उत्तर मध्यकाल की विशेपता भी है अर्थात् रीति-ग्रंथो में वे परिगणित की जा सकती है। सौरकाल में उच्चकोटि के साहित्यग्रंथों के तैयार हो जाने पर काव्यशास्त्र की आवश्यकता सभी को ज्ञात हो चुकी थी पर उस काल में वैसे ग्रंथ बहुत कम बन पाए। हिंदी के सुकवियो के सौभाग्य से हिंदी की जननी संस्कृत का अमूल्य कोष उनको सुलभ था और वे संस्कृत भापा से अभिज्ञ थे अतः हिंदी में रीति ग्रंथों का अभाव होने पर भी वे संस्कृत के ग्रंथो के कारण उस विषय के पूर्ण मर्मज्ञ थे। ऐसी अवस्था में न इन कवियों ने रीति-ग्रंथो के तैयार करने का प्रयास किया और न स्यात् आवश्यकता समझी। नंददासजी ने इस ओर दृष्टि की और संस्कृत से अनभिज्ञ लोगो के लाभ के लिये ही अनेकार्थमंजरी तथा नाम मंजरी दो कोप प्रस्तुत किए। इसी उद्देश्य से श्रीमद्भागवत का वह अनुवाद भी कर रहे थे, जिसे उन्हें निरुपाय होकर बंद करना पड़ा था। कुछ इसी विचार से इन्होंने रसमंजरी तथा विरह-मंजरी दो रचनाएँ तैयार की जिनमे प्रथम में नायिका-भेद का विवरण है और द्वितीय मे चंद्र को दूत बनाकर विरह-वर्णन किया गया है।

नंददासजी के पहले रचे गए रीति ग्रंथों में कृपाराम की हिततरंगिणी, मोहनलाल मिश्र का शृङ्गार-सागर आदि ही मिलते हैं। करणेश बंदीजन, बलभद्र मिश्र, आचार्य केशवदास आदि प्रायः इनके समकालीन थे। नवाब अब्दुर्रहीम खाँ कुछ समय के लिए समकालीन होते परवर्ती थे और उनका बरवै नायिका भेद इनके बाद ही लिखा गया था, जिसमें केवल उदाहरणों का संग्रह मात्र है। रीतिकाल के या इसके पहले के जिन कवियों ने इस प्रकार के रीति-ग्रंथो का प्रणयन किया है उनमें प्रायः अधिकांश में काव्य-कला का एक प्रकार नाममात्र को विवेचन हुआ है और वे केवल प्रणेताओं की कवित्वशक्ति के परिचायक मात्र हैं। अपर्याप्त तथा कभी-कभी भ्रामक परिभाषाएँ देकर ये कविगण उदाहरणो मे अपनी पूरी कवित्वशक्ति दिखलाते थे! नंददासजी ने रस

मंजरी नायिका भेद पर लिखा है और इसमें परिभाषा तथा उदाहरण दोनों को एक में मिलाकर इस प्रकार लिखा है कि वे दोनो स्पष्ट हो जाते हैं। जैसे एक कवि ने अज्ञात यौवना की इस प्रकार परिभाषा दी है—

निज तन जोबन आगमन जो नहिं जानति नारि।
सो अग्यात सुजोबना बरनत कवि निरधारि॥

इस दोहे के प्रथम अर्द्धांश में अज्ञातयौवना का अर्थ मात्र दिया गया है और दूसरा अर्द्धांश परिभाषा की दृष्टि से बेकार है। नंददासजी इसका वर्णन इस प्रकार करते हैं—

सखि जब सर-स्नान लै जाहीं। फूले अमलनि कमलनि माहीं॥
पौंछै डारति रोम की धारा। मानति बाल सिवाल क डारा॥
दीरघ नैन चलति जब कौनें। सरद कमल-दल हू तैं लौने॥
तिनहिं श्रवन बिच पकर्यौ चहै। अंबुज दल से लागे कहै॥
इहि परकार तिया जो लहिये। सो अज्ञातजोबना कहिये॥

उस नायिका के आगत यौवन-चिन्ह के अज्ञान का कुछ वर्णन देकर उससे परिभाषा प्रस्तुत की गई है जिससे बाद में उदाहरण देने की आवश्यकता ही नहीं रह गई।

हिंदी तथा उसके आधार संस्कृत के ग्रंथों में नायिकाओं के जितने भेदोपभेद किए गए हैं और जितना विशद वर्णन उनका किया गया है उतना नायकों का नहीं है। इसका कारण क्या है? प्रकृति, धर्म, वय, अवस्था आदि के अनुसार जितने भेद नायिकाओं के हो सकते हैं प्रायः उतने सभी नायकों के भी हो सकते हैं तथा होते भी हैं जैसे स्वकीया, मुग्धा, खंडिता आदि के समान स्वकीय, मुग्ध, खंडित भी होते हैं। अभिसारिकाओं से अधिक अभिसारक ही वास्तविक जगत् में मिलेंगे। इसके दो कारण समझ में आते हैं। प्रथम तो यही है कि इन सब ग्रंथों के लेखक तथा कवि पुरुष ही रहे अतः उनके लिए वर्णनीय स्त्री-जगत् ही था। पुरुषों का वर्णन तो नाममात्र के लिये शठ, अनुकूल आदि दो चार भेद बनाकर कर दिया गया है। दूसरा कारण तथा प्रधान कारण यह है कि भारत की प्रकृति ने प्रकृति ही पर प्रेम करने, उसके दुःख तथा सुख उठाने, विरह में रोने कलपने, खंडिता-लक्षिता होने, मिलन के

लिए अभिसार करने आदि का सारा भार डाल दिया है और पुरुष को केवल अनुकूल, धृष्ट आदि होने का अधिकार दे दिया है। ऐसी अवस्था में नायिका-भेद ही का विशेष लिखा जाना उचित हो गया। यह बहुत कुछ स्वाभाविक भी है क्योंकि पुरुष कठोर होने के कारण बहुत-सी बातों को छिपाने की शक्ति रखता है, विशेष सहनशील होता है तब स्त्री इसके विपरीत विशेष मृदुल, संकोचशील आदि होती है और वह अपने विरह आदि को सहनशील न होने से शीघ्र प्रकट कर देती है। फारसी-उर्दू साहित्य में इसका ठीक उल्टा होता है और 'माशूक' (प्रेमिका) ही अनुकूला, धृष्टा आदि होती है और आशिक (प्रेमी) ही प्रेम करता है, विरह मे रोता बिलबिलाता है और मिलन के लिये आतुर रहता है। अतः यदि इस प्रकार के ग्रंथ उनमें लिखे जाते तो वे नायिका-भेद न होकर नायक-भेद होते। पर उनमे ऐसे ग्रंथों का अभाव ही है।

यद्यपि रसमंजरी मे नायिका भेद ही वर्णित है पर इसका नामकरण इस प्रकार करने का कारण नंददासजी लिखते हैं कि—

है जो कछु रस इहि संसार। ताकहुँ प्रभु तुमही आधार॥
ऐसेहि रूप प्रेम रस जो है। तुम तैं है तुम ही करि सोहै॥
रूप प्रेम आनंद रस जो कछु जग मै आहि।
सो सब गिरिधर देव कौं निधरक बरनौं ताहि॥

अर्थात् सभी को रसेश भगवान श्रीकृष्ण का समझकर और उनको 'रसमय, रस-कारण, रसिक' जानकर इस ग्रंथ का नाम रसमंजरी रख दिया है। इसकी रचना का कारण भी एक मित्र ही है और उसके कहने पर कि—

हाव भाव हेलादिक जिते। रति समेत समुझावहु तिते।
जब लग इनके भेद न जाने। तब लग प्रेम तत्व न पिछाने॥

नंददासजी ने—

रसमंजरी अनुसार कै नंद सुमति अनुसार।
बरनत बनिता-भेद जहँ प्रेम सार विस्तार॥

ज्ञात होता है कि संस्कृत को रसमंजरी, भानु कवि कृत, का आधार

लेकर स्वेच्छानुसार यह रचना की गई है। नंददासजी ने स्वभाव के अनुसार जो तीन भेद उत्तमा, मध्यमा तथा अधमा होते हैं, उनका उल्लेख नहीं किया है। धर्म के अनुसार जो तीन भेद होते हैं, उसीसे आरंभ किया है। ये भेद स्वकीया, परकीया तथा सामान्या हैं। इनके तीन-तीन भेद अवस्थानुसार मुग्धा, मध्या तथा प्रौढ़ा होते हैं। मुग्धा के दो भेद अज्ञातयौवना तथा ज्ञातयौवना हैं और द्वितीय के नवोढ़ा तथा विश्रब्ध नवोढ़ा हुए। धीरा, अधीरा तथा धीराधीरा भेद मुग्धा में अस्पष्ट और मध्या तथा प्रौढ़ा में स्पष्ट माना है। इन्हीं में व्यापार भेद से सुरतिगोपना, वाग्विदग्धा तथा लक्षिता तीन भेद और वर्णन किए हैं। इसके अनंतर प्रोषितपतिका, खंडिता, कलहांतरिता, उत्कंठिता, विप्रलब्धा, वासकसज्जा, अभिसारिका, स्वाधीनवल्लभा तथा प्रीतमगमनी नौ भेद मुग्धा, मध्या, प्रौढ़ा तथा परकीया चारों में मानकर वर्णन किया है। इस प्रकार नायिका-भेद समाप्त कर धृष्ट, शठ, दक्षिण तथा अनुकूल चार भेद नायक के बतलाए हैं और तब हाव, भाव, हेला और रति का वर्णन कर ग्रंथ समाप्त किया है।

संस्कृत में मेघ, पवन, हंस आदि जिस प्रकार दूत बनाए जाकर विरह-संदेश देने के लिए भेजे गए थे उसी प्रकार नंददासजी ने चंद्रमा को दूत नियत कर व्रजबालाओं का विरह संदेश श्रीकृष्ण के पास द्वारिका भेजा है। विरह के भेद देने तथा विरह ही का संदेश भेजने के कारण इस रचना का नाम विरहमंजरी रखा गया है। ग्रंथ का आरंभ ही इस प्रकार करते हैं—

परम प्रेम उच्छलन इक बढ्यो जु तन मन मैन।
व्रजबाला विरहिनि भई कहत चंद सों बैन॥
अहो चंद रस कंद हो जात, आहि उहि देस।
द्वारावति नँदनंद सो कहियो बलि संदेश॥

इस प्रकार चंद्र से संदेश कहते हुए विरह का उल्लेख होते ही कवि व्रज के चार प्रकार के विरह का वर्णन करता है, जो उसके विचार से अन्यत्र नहीं होते। इन भेदों का नाम प्रत्यक्ष, पलकांतर, वनांतर तथा देशांतर दिया है। शृङ्गार रस के दो भेद किए गए हैं, प्रथम संभोग या संयोग और द्वितीय विप्रलंभ या वियोग है। वियोग ही विरह है अर्थात् प्रिय से रहित होना। जब किसी प्रिय का वियोग किसी भी कारण से

होता है या उसके समागम से वंचित होना पड़ता है तो उससे जो कष्ट मिलता है वही विरह-जन्य संताप होता है। इन कारणों को रीति-ग्रंथों मे चार भाग में रखा गया है, जो वियोग के चार भेद कहे गए हैं। ये पूर्वराग, मान, प्रवास तथा करुण हैं। यह ध्यान रखना चाहिए कि विरह या वियोगजन्य दुःख सभी प्रिय स्त्री पुरुष के लिए होता है, जैसे मित्र बंधु-बांधव आदि, पर काव्य जगत मे केवल नायक नायिका के वियोग ही को लिया गया है। पूर्वराग वियोग वह है जहाँ किसी के सौंदर्य आदि गुणों के सुनने से या चित्र या स्वप्न या साक्षात् दर्शन करने से अनुराग उत्पन्न हो जाने पर वह प्राप्त न हो अर्थात् जब तक अनुरक्त नायक या नायिका का दूसरे से मिलन न हो। यह पूर्वराग तीन प्रकार का होता है। एक वह है जिसमें अनुराग अत्यंत गंभीर होता है, बाहरी दिखावट कम होते हुए भी हृदय में दृढ़ता से बना रहता है। यह नीली राग कहलाता है। दूसरा इसके ठीक विपरीत होता है, ऊपरी प्रेम की दिखावट अधिक होती है पर भीतर हृदय में स्थिर नहीं रहता। इसे कुसुंभ राग कहते हैं। तीसरा मंजिष्ठा राग है, जिसमे ऊपरी तड़क-भड़क भी हो और हृदय में भी बना रहे। वियोग का दूसरा भेद मान है। यह विरह-कष्ट अपने आप आमंत्रित किया हुआ होता है, जो प्रणय या ईर्ष्या के कारण उत्पन्न हो जाता है। अत्यधिक प्रणय या नये प्रणय मे, दोनो पक्ष में पूर्ण प्रेम होते भी, अकारण या अत्यंत साधारण कारण को लेकर जब एक दूसरे पर कोप करता है या कहे कि कोप का स्वाँग रचता है तब वह प्रणय-मान कहलाता है और थोड़े ही अनुनय-विनय मे यह स्वाँग उतार फेका जाता है। परंतु ईर्ष्या से अर्थात् किसी दूसरे के प्रति प्रेम या समागम के चिह्न देखकर या सुनकर या शंका कर जो मान होता है वह ईर्ष्यामान है और यह अधिक स्थायी होता है। तीसरा भेद प्रवास है, जिसमें नायक किसी कारण अन्यत्र चला जाता है और चौथा करुणात्मक है। जब प्रिय मरण दशा को प्राप्त हो जाता है पर मरता नहीं उस समय उस विरह की आशंका से जो कष्ट होता है वही करुणात्मक विप्रलभ है।

नंददासजी ने विरह के जो चार भेद कहे हैं उनमे दो तो रीति-ग्रंथों के लिखे हुए एक भेद प्रवास-वियोग के अंतर्गत आ जाते हैं पर प्रत्यक्ष

तथा पलकांतर किसी के अंतर्गत नहीं आते। न इसमें मान का भाव है और न पूर्वराग है। करुणात्मक ये किसी प्रकार कहे नहीं जा सकते। अतः ये कवि की उपज हैं। इसी से कहते हैं कि

नंद समोधत ताकौ चित्त। ब्रज को बिरह समुझि लै मित्त॥
ब्रज में विरह चारि परकारा। जानत हैं जो जाननिहारा॥

परंतु इसके पहले नंददासजी कहते हैं कि

ज्यों मनि कंठ बाँधि कै कोई। बिसरै वन वन ढूँढ़ै सोई॥
सो यह बाला रूप रसाला। साँझ मिले हैं मोहनलाला॥
पियहि फूल माला ही दीनी। सुंदर अंगराग रस भीनी॥
ताहि पहिरि कै कनक अटारी। पौढ़ि रही भरि आनँद भारी॥

अब विचारणीय यह है कि देशांतर विरह प्रिय के दूर चले जाने ही पर होता है और यहाँ संध्या को मिलन हुआ था उस समय की मिली हुई माला पहिरकर संयोगावस्था के आनंद से भरकर श्रीराधाजी सो गईं। जागने पर उन्हें द्वारावती की लीला की सुधि आ गई जिससे वह विरह-कातरा हो गईं। इससे यह भी स्पष्ट है कि श्रीकृष्ण द्वारावती में लीला कर रहे थे अर्थात् ब्रज से बहुत दूर प्रवास में थे तथा देशांतर विरह वास्तविक था। ऐसी अवस्था में इस मिलन तथा विरह में क्या तारतम्य है, यही विचार का विषय है। रास-पंचाध्यायी की समीक्षा में दिखलाया गया है कि विरह सदा प्रेम का उन्नायक रहा है और विरहाग्नि से प्रेम शुद्ध तथा निर्मल होता है। वैष्णव संप्रदायों के अनुसार ब्रजभूमि भगवान श्रीकृष्ण की नित्य लीला भूमि है और उनका उससे वियोग नहीं है। तब यही मानना होगा कि श्रीकृष्ण अपने रसेश रूप से ब्रज में रहते थे या रहते हैं और अपने दूसरे दुष्टसंहारकारी रूप से मथुरा, द्वारिका आदि गए होंगे। परंतु इन संप्रदायाचार्यों की यह आध्यात्मिक भक्ति-भावना कब की हो सकती है? अवश्य ही भगवान श्रीकृष्ण के लीला-काल के बाद की, नहीं तो उद्धव को संदेश लेकर ब्रज में आने की आवश्यकता ही क्या रह गई थी? यदि श्रीकृष्ण एक रूप में ब्रज ही में उस समय उपस्थित थे तब दूसरे रूप को उद्धव से ज्ञानी को विरह-विधुरा ब्रज वनिताओं को समझाने के लिये भेजना कभी आवश्यक न होता। ब्रज भगवान का नित्यधाम है, यह भावना आचार्यों

तथा भक्तों ने बाद में की होगी और इसका प्रभाव नंददासजी पर अवश्य रहा होगा। वह कहते हैं—

बहुर्‌यो ब्रज लीला सुधि आई। जामें नित्य किसोर कन्हाई॥

नंददासजी ने जिससे यह विरह-निवेदन चंद्र के द्वारा श्रीकृष्ण के प्रति कहलाया है वह स्पष्ट ही श्रीराधिकाजी ज्ञात हो रही है। यह रासेश्वरी तथा कृष्णमय हैं, जो

सुमिरत तदाकार ह्वै जाहीं। इहि वियोग इहि बिधि ब्रज माहीं॥

श्री राधाजी जिस प्रकार कृष्णमय हैं उसी प्रकार श्रीकृष्ण राधामय हैं। इन दोनो का कभी वियोग नहीं है और वे एक ही हैं, केवल लीला के लिए दो हैं। ऐसी अवस्था में श्री राधाजी का विरह ठीक उसी प्रकार का है जैसा नंददासजी कहना चाहते हैं। मिलन होते भी द्वारिका की लीला की सुधि आते ही वियोग की कल्पना हो गई और सारा बारह-मासा कह जाने के अनंतर

इहि विधि घरि इक रही चटपटी। बात प्रेम की निपट अटपटी॥
ताकौं निरखि नैन अरबरे। सुंदर गिरिधर पिय हँसि परे॥

प्रेम की कुछ विचित्र चाल होती है। नंददासजी कहते हैं—

भूत छिये, मदिरा पिये, सब काहू सुधि होय।
प्रेम-सुधा-रस जो पिये, तिहि सुधि रहे न कोय॥

तात्पर्य यह कि प्रेम की ऐसी विलक्षण रीति है कि प्रिय के रहते भी कभी-कभी प्रेमिका को ऐसा भान हो उठता है कि वह कहीं चला तो नहीं गया और उद्विग्न हो प्रश्न कर बैठने पर उसका भ्रम दूर हो जाता है, जिससे स्यात् वह स्वयं लज्जित हो उठती है। इसी को प्रत्यक्ष-विरह कहा गया है। यह अत्यंत अस्थायी विरह या विरह-भ्रांति मात्र है। दूसरा भेद पलकांतर भी वस्तुतः विरह न होकर विरह की भावनामात्र है। बराबर टकटकी लगाकर प्रिय का दर्शन करने में पलक गिरने से जो व्यवधान पड़ जाता है उसी के लिये प्रेमिका को जो कष्ट होता है, वही एक प्रकार का विरह-कष्ट मान लिया गया है। इसे कवि प्रेम की एक कसौटी मान कर कहता है—

सुनि पलकांतर विरह की बातैं। परम प्रेम पहिचानत तातैं॥

वनांतर भेद में विरह प्रवास ही का है, चाहे वह दिन भर का या कुछ घंटों ही का क्यो न हो। श्रीकृष्ण लीला में जब वह गाय चराने के लिए वनों में जाते थे तब जब तक वह लौटते नहीं थे उस समय तक का यह नित्य का विरह था पर जब वह अक्रूर के साथ मथुरा चले गए और वहाँ की लीला समाप्त कर द्वारिका में जा बसे तब विरह देशांतर हो गया। इसी विरह के हो जाने पर गोपियों की शिरोमणि श्रीराधाजी ने रात्रि में चंद्रमा को देखकर उसे संदेश दिया कि श्रीकृष्ण से द्वारिका जाकर हमारे विरह-कष्ट की कथा कह आओ।

रही हुती रजनी कछु थोरी। जागि परी जु सहज बर गोरी॥
द्वारावति लीला सुधि भई। ताही छिन जु बिकल ह्वै गई॥
दृष्टि परि गयो चंदा गैन। लागी ताहि सँदेशा दैन॥
द्वादस मास विरह की कथा। बिरहिनि को दुखदायक जथा॥
छिनक माँझ वरनी तिहि बाला। महाबिरहिनी ह्वै तिहि काला॥

अब कवि संदेश-रूप में बारहमासा अर्थात् चैत्र से फाल्गुन महीने तक की हर एक मास की अलग-अलग विरह-वेदना का वर्णन करता है, जो सहज स्वाभाविक तथा सरस होते हुए अत्युक्तिपूर्ण नहीं है। प्रत्येक मास के प्राकृतिक व्यापारों तथा वस्तुओं का विरहिणी के हृदय पर कैसा प्रभाव पड़ता है या उसे अनुभव होता है उसका सरल स्निग्ध भाषा में वर्णन किया गया है। वियोगावस्था में सुखप्रद वस्तुओं का भी कष्टदायक होना, संयोग-काल की स्मृति का कष्टप्रद होना तथा सृष्टि की सभी वस्तु से दुःख अनुभव करना ही स्वाभाविक हो उठता है, जैसे नंददासजी कहते हैं—

चंदन चंद तौ तिनकौ सियरे। जिन तैं नंद-सुवन पिय नियरे॥
सुखद जु हुतौ तुम्हारै संग। सो वह वैरी भयो अनंग॥
द्रुमनि सौं लपटि प्रफुल्लित वेली। जनु मोहिं हँसति है देखि अकेली॥

प्रेम के कारण दुःख तथा सुख दोनों का अनुभव कुछ विशेष रूप से होता है और उनकी अनुभूति भी कुछ विचित्र होती है। सृष्टि की सभी वस्तुओं तथा व्यापारों से जब प्रेम संयोगावस्था में आनंद ही आनंद ग्रहण करता है तब उन्हीं से वियोगावस्था में वह दुःख ही संग्रह करने के योग्य रह जाता है। इसी रूप में इस बारहमासे में नंददासजी ने

सामान्य वस्तुओं तथा व्यापारो से विरह वेदना ही के अनुभवों का वर्णन किया है। केवल ऐसे प्राकृतिक वस्तुओं तथा व्यापारो के कथन से भी सहृदयों पर प्रभाव पड़ जाता है पर जब उनसे अनुभूत कष्ट का उल्लेख होता है तो वह विशेष मार्मिक हो उठता है। जैसे,

वृष की तपति तपति अति बई। घर बन अनलमई सब भई॥
तैसिय बिरह बिथा तन नई। अगिन में अगिन और ज्यो दई॥
चंदन चरचे अति परजरै। इंदु-किरनि घृत-बूँद सी परै॥
पावस-सैन मैन लै बढ्यौ। बिरही जन मारन रिस बढ्यौ॥
बदर बनैत चहूँ दिसि धाये। बूँद बान घन बरसत आये॥

ऐसा भी स्वभावतः होता है कि दुखद वस्तु विरह में विशेष कष्टप्रद हो जाती है, जैसे—

दिन अरु रजनी परै तुसारा। सीतल महा अगिनि की झारा॥
मृदुल बेलि सी ब्रज की बाला। मुरझि चली हो गिरिधर लाला॥

और संयोग में जो वस्तु जितनी सुखप्रद होती है विरह में उतनी ही कष्टप्रद हो जाती है, जैसे जाड़े की बड़ी रात्रि संयोगिनी को सुखद होने के कारण छोटी जान पड़ती है पर उसी प्रकार विरहिणी को दुखद होने से बहुत बड़ी मालूम पड़ती है।

बड्डी रैन तनक से दिना। क्यो भरिए पिय प्यारे बिना॥
रवि जौ तनक न लेइ छुड़ाइ। तौ मोहि निसा बकी गिलि जाइ॥

कार्तिक महीने मे रासलीला हुई थी। स्मृति दशा का इसके विवरण में कवि ने इस प्रकार वर्णन किया है—

आई सरद सुहाई राती। प्रफुलित बलित मल्लिका जाती॥
उदित अहै उडुराज सदा कौ। रहत अखंडित मंडल जाकौ॥
छुटि रहि ज्योति बिमल चंदिनी। सुभग पुलिन कलिदनंदिनी॥
सीतल मृदुल वालुका सच्यो। जमुना मुकर तरंगिनि रच्यौ॥
कलपत कत रे मंजुल मुरली। मोहन मधुर सुधारस जुरली॥

इसमें रासक्रीड़ा की रम्यस्थली तथा उस पर खेलती हुई शरद-चाँदनी वैसी ही है जैसी रासलीला के समय थी पर इस समय अभाव उसी का है, जिसके लिये मंजुल मुरली कलप रही है। कुल वस्तु-स्थिति

वैसी ही प्राप्त होने पर भी एक के अभाव में वह कलपाने ही का कार्य कर रही है। इसी पर वह संदेश भेजती हैं कि—

ठाढ़े ह्वै पिय वहुरि वजाओ। ताकरि व्रजसुंदरी बुलाओ॥

जिससे यह विरह-वेदना किसी प्रकार दूर हो। यह विरहाग्नि ऐसी है जो किसी प्रकार का उपाय करने पर बुझती नहीं क्योंकि—

और ठौर की आगि पिय पानी पाय बुझाय।
पानी मै की आगि बलि काहे लागि सिराय॥

इस विरहाग्नि का स्थान तो हृदय है और वह केवल दूसरे, प्रिय के हृदय के मिलन पर ही शांत हो सकती है।

इस प्रकार बारहमासा तथा संदेश समाप्त कर नंददासजी अपने संप्रदाय की प्रेमभक्ति-पद्धति पर आ जाते हैं और सत्यनिष्ठा, तन्मयता तथा एकाग्रचित्त से अपने इष्टदेव से मिलन की याचना करने पर जिस प्रकार वह भक्त पर दया करते हैं उसी प्रकार—

सुपनै कोउ दुख पावत जैसे। जागि परै सुख पावत तैसे॥

उस विरहकातरा ने—

इकलै प्रानपियारे पाये। देखि हरप भरे नैन सिराये॥

और कवि ने—

इहि परकार विरहमंजरी। निरवधि परम प्रेम रस भरी॥

इसलिए प्रस्तुत किया कि—

जो इहि सुनै गुनै हित लावै। सो सिद्धांत तत्त्व को पावै॥

एक बात विचारणीय है कि यह चंद्रदूत की कथा देशांतर विरह का वर्णन करते हुए आरंभ होती है और देशांतर विरह से तात्पर्य यही है कि व्रजबालाओं का देश छोड़कर उनके प्रिय श्रीकृष्ण अन्यत्र चले गए हैं। दूत चंद्र को द्वारावती भेजा गया है इसलिए श्रीकृष्ण वहीं रहते रहे होंगे, यह भी निश्चित है तब नंददास के नीचे लिखे दो प्रकार के कथन एक दूसरे के विरोधी ज्ञात होते हैं। कहते हैं:—

१. सो यह बाला रूप रसाला। साँझ मिले हैं मोहनलाला ॥
२. रही हुती रजनी कछु थोरी। जागि परी जु सहज वर गोरी ॥
द्वारावति लीला सुधि भई। ताही छिन जु विकल ह्वै गई ॥
दृष्टि परि गयो चंदा गैन। लागी ताहि सँदेसा दैन ॥

पहले तो कहते हैं कि अभी संध्या को वह मोहनलाल से मिल चुकी है और फिर कहते है कि कुछ थोड़ी रात्रि रहते वह जाग पड़ी और द्वारावती चले जाने का स्मरण आते ही विरहिणी वन चंद्रमा को दूत बना द्वारिका संदेश भेजता है। विरहमंजरी के अंत में भी ऐसी ही बातें कही जाती है—

१. मोहि तो लै चलि चंदा मंदा। जहँ मोहन सोहन नँदनंदा ॥
२. बहुर्यो ब्रजलीला सुधि आई। जामैं नित्य किसोर कन्हाई ॥
इकले प्रानपियारे पाये। देखि हरप भरे नैन सिराये ॥

पहले तो चंद्र से कहती है कि हमें वहाँ ले चलो जहाँ श्रीकृष्ण हैं अर्थात् द्वारिका और तुरंत ही ब्रजलीला की सुधि आते ही उसे श्रीकृष्ण वहीं अर्थात् ब्रज ही में अकेले मिल जाते है। ऐसी अवस्था मे यह विरह देशांतर कैसे हो सकता है, जब सोने के पहले मिलन और जागने के वाद फिर मिलन। इतने ही बीच में किस प्रकार प्रीतम के प्रवास-वियोग की समाप्ति हो सकती है। इस प्रकार के विरोधी कथनो में नंददासजी ने सामंजस्य किस प्रकार स्थापित किया है, इस पर विचार करना आवश्यक है।

नंददासजी ने विरह के जो चार भेद किए हैं वे साधारण मानव-विरह नही हैं, जिसे सभी मनुष्य समझ सकते हैं, वे—

ब्रज मे विरह चारि परकाश। जानत हैं जो जाननिहारा ॥

अर्थात् विरह के ये भेद ऐसे हैं, जिन्हें विशिष्ट लोग ही समझ सकते है। वास्तव मे विरह के ये भेद आश्चर्य मे डालने वाले हैं। सामने वैठे हैं पर तब भी विरह पलक गिरने से क्षण भर न देख सकने पर विरह तथा घंटे दो घंटे वन-उपवन मे चले जाने पर विरह। जहाँ ऐसे विरह होते हैं वहाँ देशांतर विरह कैसे सह्य हो सकता है अतः उसकी केवल भावना मात्र कर ली जाती है। नंददासजी भी इसे समझते थे इसी से कहा है—

सुनि देसांतर बिरह-बिनोद। रसिक जनन-मन वढ़वन मोद॥

अर्थात् देसांतर-विरह विनोद मात्र है, जिससे रसिक भक्तों को सुन कर आनंद मिलता है क्योंकि यह विरह उसी प्रकार का है—

ज्यों मनि कंठ वाँधि कै कोई। बिसरै वन बन ढूँढ़ै सोई॥

तिस पर इस प्रकार भेद करने का तात्पर्य नंददासजी क्या बतलाते हैं वह भी सुनिये और समझिए:—

इहि परकार विरह मंजरी। निरवधि परम प्रेम रस भरी॥
जो इहि सुनै गुनै हित लावै। सो सिद्धांत तत्व को पावै॥
अवर भाँति ब्रज को विरह बनै न क्यौ हूँ नंद।
जिनके मित्र बिचित्र हरि पूरन परमानंद॥

जैसे विचित्र पूर्ण परमानंद श्रीकृष्ण प्रीतम हैं, वैसी ही विचित्र प्रेमिकाएँ हैं, वैसा ही विरह तथा उसके भेद हैं। किसी अन्य प्रकार से इसका वर्णन नहीं हो सकता, यह भी नंददासजी कहते और साथ ही यह भी कहते हैं कि इसे सुनने, समझने तथा अपना हित मानने से कृष्ण भक्ति का सिद्धांत तत्व प्राप्त होता है। अब देखना चाहिए कि सिद्धांत क्या है ? आरंभ में कहा है कि

प्रसन भये किधौ सुंदर स्यामा। सदा वसौ वृंदावन धामा॥
याकै बिरह जु उपज्यो महा। कहौ नंद सो कारन कहा॥

जब श्रीकृष्ण सदा वृंदावन धाम में वसते हैं तब वहाँ क्यों विरह होगा ? इस प्रश्न पर नंददासजी ने व्रज के विशिष्ट विरह को समझाया है, जिसका ऊपर उल्लेख हो चुका है। मूलतः

परम प्रेम उच्छलन इक बढ्यो जु तन मन मैन।
ब्रजबाला बिरहिन भई कहति चंद सों वैन॥

जो ब्रजबाला 'परम प्रेम' से उद्वेलित हो उठी है और जिसने 'प्रेम-सुधा-रस" का पान किया है उसे विरहिणी होते ही किसी प्रकार की सुधि नहीं रहती तथा वह विरह की भावना कर दुखित होती है। इस प्रकार 'घरि इक रही चटपटी', जो प्रेम की निपट अटपटी चाल है और इसके अनंतर ही इस सत्य शुद्ध विरहाग्नि से तपते ही

ताकों निरखि नैन अरबरे। सुंदर गिरिधर पिय हँसि परे॥
समाचार जाने तिहि तिय के। अंतरजामी सब के हिय के॥

भक्ति-प्रधान शाखा में, सगुण साकार तथा निर्गुण-निराकार दोनों में, इष्ट के प्रति सत्य प्रेम होना मूल है और मिलन होने तक अर्थात् भगवान के साक्षाद्दर्शन तक विरहावस्था ही प्रधान साधना है और इस साधना में जो सफल होता है, उसकी विरहाकुलता इतनी बढ़ जाती है कि उसे शरीर का भान नहीं रह जाता और उसे 'सब ठॉ सोय' दिखलाई पड़ता है तभी उसे भगवान भी मिलता है। लौकिक प्रेम में भी विरह उसका पोषक होता है और 'मुमकिन नही कि दर्द इधर हो उधर न हो'। सूफी संप्रदाय मे भी यही 'इश्क मजाजी' हिज्र (विरह) से 'इश्क हकीक़ी' हो जाता है और 'जहाँ आर्जू है वहाँ रूबरू है' अर्थात् मिलन की उत्कट इच्छा होते ही प्रत्यक्ष हो जाता है। तब वह दशा हो जाती है कि

दिल के आईनः में है तस्वीरे यार।
जब जरा गर्दन झुकाई देख ली॥

परंतु यह दर्पण विरह-कष्ट रूपी साधना से जितना ही स्वच्छ होता है उतना ही स्पष्ट दर्शन भी होता है। नंददासजी वल्लभसंप्रदाय के वैष्णव थे और इसके अनुसार वृंदावन भगवान श्रीकृष्ण का नित्यधाम है। वह अपने व्रज-कृष्ण रूप में सदा यहाँ निवास करते हैं, चाहे अन्य रूपों से वह मथुरा, द्वारिका आदि कहीं रहे। ऐसी अवस्था में व्रज के लोगों का विरह भावुकता मात्र है पर जब तक वह रहता है तब तक वह सत्य तथा वास्तविक है, नहीं तो वह साधना ही न रह जायगी।

भ्रमरगीत

हिंदी साहित्य में, विशेपकर उसके व्रजभाषा-विभाग मे, गोपी-उद्धव संवाद को लेकर एक से एक अनूठी उक्तियाँ कही गई हैं। जब भगवान श्रीकृष्ण व्रजलीला समाप्त कर लोकपीड़क वालहत्याकारी नृशंस कंस को मारने के लिये वसुदेव आदि द्वारा निमंत्रित होकर अक्रूर के साथ मथुरा चले आए और कंस को उसके सहायको सहित मार कर अपने माता-पिता को कारागार से छुड़ाया तब वह अपने भाई बलरामजी के साथ वहीं रह गए। विरह-कातरा व्रजबालाओं की दशा बार-बार सुनकर श्रीकृष्ण ने उन्हे सांत्वना देने के लिए अपने परम मित्र उद्धवजी को संदेश देकर भेजा, जिन्हे अपने ज्ञान का बड़ा

गर्व था। उद्धवजी ही से संदेश भेजने में श्रीकृष्ण को यह भी इष्ट था कि प्रेम-भक्ति की प्रवर्तिका गोपियों के पास पहुँचने पर उद्धवजी का ज्ञान-गर्व दूर हो जायगा। यह कथा श्रीमद्भागवत दशम स्कंध पूर्वार्द्ध के ४६-४७ वें अध्यायों में वर्णित है। इसी अमर घटना को लेकर अनेक भ्रमरगीत निर्मित हुए हैं, जिनमें भक्ति अर्थात् सगुण उपासना मार्ग तथा ज्ञान अर्थात् निर्गुण उपासना मार्ग को लेकर भक्त-कवियों ने अनूठी उक्तियाँ कही हैं और अन्त में सगुण उपासना ही विशेष लोकप्रिय सिद्ध हुई है। गोपियों के प्रेममार्ग की विजय जनसाधारण की सगुण उपासना के प्रति श्रद्धा प्रकट करती है। उद्धवजी ज्ञान-मार्ग के प्रकांड पंडित थे और उनकी पराजय ज्ञान-मार्ग की दुरूहता प्रकट करते हुए स्पष्टतः बतला रही है कि यह मार्ग सबके लिये न होकर बिरले लोगों के लिये है। वास्तव में प्रथम सरस तथा गार्हस्थ्य धर्म निबाहने वालों के लिये है और दूसरा नीरस संसार विरक्तों के उपयुक्त है। यही कारण है कि गोपियों की तन्मयता, एकनिष्ठा तथा सरसता में उद्धवजी का ज्ञान का गर्व मिट गया।

नंददासजी ने भ्रमर-गीत का आरंभ इस प्रकार किया है कि मानो उद्धवजी ब्रज में आकर टिके हैं और जब उन्हें एकांत में गोपियों से कुछ बातचीत करने का अवसर मिला तब वह गोपियों से कहते हैं—

> कहन स्याम-संदेस एक मैं तुम पै आयो।
> कहन समै संकेत कहूँ अवसर नहि पायो॥
> सोचत ही मन मै रह्यो कब पाऊँ इक ठाँउँ।
> कहि सँदेस नँदलाल कौ बहुरि मधुपुरी जाउँ॥
> सुनो ब्रज नागरी!

इतना सुनते ही, नँदलाल का नाम कान में पड़ते ही, ब्रजबालाओं का सांसारिक ज्ञान विलुप्त हो गया और प्रेमानंद रस से उनका हृदय इतना भर उठा कि उनके सर्वांग पुलकित हो उठे, नेत्रों में जल आ गया और वाणी इतनी गद्‌गद हो उठी कि वे बोल तक न सकीं। जब वे किसी प्रकार अपने को सँभालकर अपने प्यारे कृष्ण का संदेश सुनने योग्य हुई तब उद्धवजी ने अपने ज्ञान की पोटली खोली। ज्ञान तथा सगुण-निर्गुण का उपदेश देते हुए कहते हैं कि

जाहि कहौ तुम कान्ह ताहि कोउ पितु नहि माता ।
अखिल अंड ब्रह्मंड विस्व उनही में जाता ॥
लीला को अवतार लै धरि आए तन स्याम ।
जोग जुगुत ही पाइयै पारब्रह्म-पद-धाम ॥
सुनौ ब्रज नागरी !

साथ ही यह भी समझाया कि यदि ज्ञान-दृष्टि से देखो तो वह तुम से दूर नहीं हैं, वह सर्वत्र व्याप्त हैं। सगुण तो उपाधि मात्र है, वह तो निगु ण, निराकार तथा निर्लिप्त ब्रह्म हैं जिनका सर्वत्र प्रकाश है। यह सुनकर गोपियाँ कितना सरल उत्तर देती हैं—

कौन ब्रह्म की जोति ज्ञान कासों कहै ऊधो ?
हमरे सुंदर श्याम प्रेम को मारग सूधौ ।

फिर कहती हैं—

ताहि बताओ जोग जोग ऊधौ जेहि पावौ ।
प्रेम सहित हम पास नंदनंदन गुन गावौ ॥
नैन बैन मन प्रान में मोहन गुन भरि पूरि ।
प्रेम पियूपै छाँड़िकै कौन समेटे धूरि ॥

जिन्हें इस बात का घमंड हो कि वे ईश्वर को या उसकी माया को समझ सकते हैं वे भले ही ज्ञान-मार्ग पर अग्रसर हों पर जिन्हें केवल प्रेम, श्रद्धा या भक्ति से ईश्वर का गुणगायन कर उनका जन बनना है, उनके लिए ज्ञान तथा कर्म की अहंता के फेर में पड़ना उचित नहीं। इस पर उद्धवजी कहते हैं कि कर्म ही इस विश्व में प्रधान है और इसी के द्वारा विश्व बनता-बिगड़ता है तथा इसी के द्वारा आसन लगाकर लोग ब्रह्माग्नि में शुद्ध हो सायुज्य मुक्ति प्राप्त करते हैं। गोपियाँ इसका कितना सीधा सादा उत्तर देती है कि

कर्म, पाप अरु पुन्य, लोह सोने की वेड़ी ।
पायन बंधन दोउ कोउ मानौ वहुतेरी ॥
ऊँच-कर्म ते स्वर्ग है नीच कर्म ते भोग ।
प्रेम विना सव पचि मुये विपय बासना रोग ॥

कर्म, धर्म या अधर्म तथा उसके फलस्वरूप पुण्य और पाप ये दोनों ही बंधन हैं। एक स्वर्ग देता है तो दूसरा नर्क। इस कर्म के फेर मे वे

ही पड़ते हैं जिनके हृदय में भगवान के प्रति प्रेम, श्रद्धा या भक्ति नहीं है और जिसने 'चाखा कृष्ण रस' उसके लिये सारा कर्मकांड धूलि के समान है। अतः किसी प्रकार के बंधन में न पड़कर भगवान के श्री-चरण मे मन लगाकर उनका समीप्य प्राप्त करना ही भक्तों का ध्येय रहता है। इसी में पूर्ण-आनंद मिलता है। यह सुनकर उद्धवजी अपना पक्ष प्रतिपादन करते हैं कि यदि ऐसा समझ लिया जाता तो योगी लोग क्यों समाधि लगाकर तथा तपस्या कर अपनी ज्योति ब्रह्म-ज्योति में मिलाते। इस पर गोपियाँ कहती हैं—

जोगी जोतिहि भजैं भक्त निज रूपहि जानै।
प्रेम पियूषै प्रगटि श्याम सुंदर उर आनै॥

योगी लोग भगवान की ज्योति को भजते हैं इसलिए उसी में मिल सकते है परंतु भक्त अपने रूप को पहिचानता है और वह प्रेम रूपी अमृत साधन से भगवान को अपने हृदय में स्थापित करता है। भक्त यह नही चाहता कि भगवान में मिलकर वह भी भगवान वन जाय प्रत्युत् वह उससे अलग रहकर उसकी दया तथा सामीप्य प्राप्त कर उसका दर्शन, भजन, सेवा करना चाहता है। भक्त सगुण-निर्गुण, माया, कर्म आदि के प्रपंच से दूर रहकर उस रूप-राशि भगवान के दर्शन मात्र चाहता है—

नास्तिक हैं जे लोग कहा जानैं निज रूपैं।
प्रगट भानु कों छाँड़ि गहत परछाईं धूपैं॥
हमरैं तो यह रूप बिन और न कछू सुहाय।
जो करतल आमलक के कोटिक ब्रह्म दिखाय॥

इस प्रकार वाद-विवाद समाप्त करते हुए ब्रजबालाओं के नेत्रों के आगे श्रीकृष्ण का वही रसेश रूप आ जाता है और वे इस ज्ञान-जंजाल के मूर्त रूप उद्धव की ओर से मुख फेर कर उसी मूर्ति से प्रेमालाप करने लगती हैं। वे अपने अनन्य प्रेम में विभोर तथा विरह में कातर होकर उनसे अपनी परवशता, दीनता आदि प्रगट करती हैं, उपालंभ देती हैं और पूर्णरूप से आत्मसमर्पण कर मिलन की याचना करती हैं। उद्धवजी इन सब की प्रेम विह्लता देखकर तथा उनकी उक्तियाँ सुनकर स्वयं उस प्रेम-भाव में ऐसा तन्मय हो गए कि उन्होंने विचार किया कि—

कबहुँ कहै गुन गाय श्याम के इन्हैं रिझाऊँ।
प्रेम-भक्ति तो भले स्यामसुंदर की पाऊँ॥
जिहि किहि बिधि ये रीझहीं सो हौं करौं उपाय।
जाते मो मन सुद्ध होइ दुबिधा ज्ञान मिटाय॥
पाय रस प्रेम कौ।

इसी समय कहीं से एक भ्रमर उड़ता आ गया। उसे देखते ही भ्रमर को कृष्ण तथा उनके दूत उद्धव के समान मानकर इन दोनों पर गोपियों ने व्यंग्य कसे, आक्षेप किए तथा विनोद किया। अंत में यह सब कहकर वे ऐसी कातर हो गईं कि—

ता पाछें एक बार ही रोईं सकल ब्रजनारि।
हा! करुनामय नाथ हो! कैसौ! कृष्ण! मुरारि॥

ब्रजबालाओं के इस प्रेमाश्रु-प्रवाह में उद्धवजी का ज्ञान-गर्व वह गया और उन्होंने गोपियों को अपना गुरु इस प्रेम-मार्ग का बनाया। कहते हैं—

गोपी-प्रेम-प्रसाद सो हौं ही सीख्यौ आय।
ऊधौ ते मधुकर भयौ दुबिधा जोग मिटाय॥
पाय रस प्रेम को॥

इस प्रेम में दीक्षित होकर उद्धवजी मथुरा लौटे और गोपियों की प्रेमदशा उनके चित्त में ऐसी चढ़ी थी कि वे श्रीकृष्ण से मिलते ही उनकी कठोरता पर उलाहना देते हुए कहते हैं कि—

पुनि पुनि कहै हे स्याम जाय वृंदावन रहिए।
परम प्रेम को पुंज जहाँ गोपी सँग लहिए॥
और संग सब छाड़िकै उन लोगन सुख देहु।
नातरु टूट्यो जात है अब ही नेह सनेहु॥

यह उपालंभ सुनते ही भगवान श्रीकृष्ण ने प्रेमावेश में उद्धव को वह रूप दिखाया जिसमें 'रोम रोम प्रति गोपिका ह्वै गईं साँवरे गात' और कहा कि 'उनमें मोमै हे सखा छिन भरि अंतर नाहिं'।

नंददासजी ने तर्क-वितर्क के रूप में वार्तालाप चलाते हुए भी सारा वर्णन इतनी भावुकतापूर्ण किया है कि वह काव्यकौशल की दृष्टि से मनमुग्धकारी होते हुए अत्यंत प्रभावोत्पादक भी हो गया है। गोपियों

के प्रेम, विरह-कातरता, वियोग में आंतरिक संयोग-दशा सभी का सुंदर भावमयी भाषा में वर्णन किया है और साथ ही गोपियों तथा श्रीकृष्ण पर इन दशाओं से जो प्रभाव पड़ता है तथा अनेक अनुभावों द्वारा वे स्पष्ट होते हैं उनका वर्णन कर उन्हें मानों सजीव कर दिया है। ये सारे वर्णन रससिक्त तथा रसोत्पादक होते भी आध्यात्मिक विचारधारा से परिप्लुत हैं और रसिक भक्तों पर पूर्ण प्रभाव डालते हैं। इस भ्रमरगीत के पढ़ते हुए स्पष्ट ज्ञात होता है कि भक्त-कवि नंददास का स्वर भी गोपियों के प्रेमपूर्ण आत्मनिवेदक के स्वर में मिलता चल रहा है। कवि ने निजी प्रेम-भक्ति की उत्कृष्टता, स्वहृदयगत भक्ति-भावना की तन्मयता तथा इष्ट-मिलन की उत्कट आकांक्षा सभी का ऐसा सुंदर सरस वर्णन किया है कि वे उनकी अनुभूत सी ज्ञात होती हैं और उनका श्रोताओं पर प्रभाव पड़ता है।

श्याम सगाई

नंददास जी की यह साधारण रचना है। भाषा सौष्ठव तो कवि के उपयुक्त ही है पर न इसमें वर्णन-वैचित्र्य ही है और न भावों की सरस अभिव्यंजना ही। काव्यकला की दृष्टि से इसमें किसी प्रकार की विशेषता नहीं है। अलंकारों का समावेश भी बहुत कम है और जो है वह भी कविता का उन्नायक नहीं हो सका है। कथा जो थोड़ी सी है उसके संगठन में भी विशेष रोचकता नहीं आ पाई है। कथा इस प्रकार है—

एक दिन श्रीराधा कृष्णजी के घर खेलने आई। यशोदाजी ने उनके सौंदर्य को देखकर उनसे श्रीकृष्ण के साथ विवाह करने का विचार किया और ब्राह्मणी द्वारा उनकी माता से कहलाया। कीर्तिजी ने कोरा उत्तर दे दिया कि मेरी पुत्री बड़ी सीधी है और कृष्ण बड़े नटखट हैं, मैं विवाह नहीं करूँगी। यह सुनकर यशोदा जी को दुःख हुआ और कृष्ण के आने पर उन्हें उलाहना दिया। इस पर श्रीकृष्ण ने कहा कि यदि तुम्हारी यही इच्छा है तो वे पाँव पड़कर देंगे, तुम शोक न करो। इसके अनंतर यह बन-ठन कर बरसाने गए जहाँ इन्हें देखते ही

मन हरि लीनो स्याम परी राधे मुरझाई।

और 'स्याम स्याम रटिबे लगी' तब सखियों ने उपाय बतलाया कि तुम्हें घर ले चलते हैं, वहाँ कहना कि साँप ने काट खाया है तब हम लोग श्रीकृष्ण को बुला लावेंगे। यही किया गया और राधाजी की माता ने सखियों के कहने पर श्रीकृष्ण को तुरंत बुलवाया और कहला दिया कि अच्छी होने पर श्रीकृष्ण से विवाह कर दूँगी। इस संदेश पर श्रीकृष्ण जाने में आनाकानी करने लगे पर अंत में समझाने पर गए। वहाँ इनके जाते ही राधाजी अच्छी हो गईं और सगाई भी हो गई।

यह रचना स्वतंत्र नहीं ज्ञात होती। कवि ने यथानियम न आरंभ में वंदना की है और न रचना का कोई कारण दिया है। अत में भी लीला के माहात्म्य का कथन नहीं है और न आध्यात्मिक भाव प्रेम सिद्धांत ही का उल्लेख है। यह केवल एक बड़ा पद है, जो कीर्तन में गाया जाता है।

रुक्मिणीमंगल

श्रीमद्भागवत के ५२-४ वे अध्यायों में रुक्मिणीमंगल की कथा विस्तार से दी है जिसका संक्षिप्त विवरण पहले दिया जा चुका है। नंददासजी अपनी कथा उस समय से आरंभ करते हैं जब रुक्मिणीजी श्रीकृष्ण के गुणों को सुनकर उन पर अनुरक्त हो जाती हैं और उन्हें समाचार मिलता है कि उनके भाई रुक्म के आग्रह पर उनका पिता भीष्मक उन्हें शिशुपाल को देने का निश्चय करता है। इस बात को सुनने से श्री रुक्मिणी को कितना कष्ट हुआ, और इस पूर्वराग की विरह-वेदना कितनी असह्य हो उठी, इसका कवि ने विस्तार से अत्यंत भावुकतापूर्ण वर्णन किया है। साथ ही यह कठिनाई भी थी कि—

कन्या कन्या-बिरह-दुःख कों कासों कहिहै।

श्री रुक्मिणीजी अपनी विरह-वेदना किसी से कह भी नहीं सकती थी क्योंकि अभी तो वह अविवाहिता थीं, इसलिए यह सारा दुःख भीतर ही रहकर अत्यधिक कष्टकर हो उठा था। जब दुःख से नेत्रों में जल भर आते थे और कोई कारण पूछता था तो उन्हे बहाना करना पड़ता था। उनकी यह दशा हो गई थी कि—

मिटी भूख अरु प्यास पास कोउ और न भावै।
कोने जाइ उसास भरै दुख कहत न आवै॥

दुरी रहति क्यों प्रिय रति प्रकटहि देत दिखाई।
पुलक अंग, सुर-भंग, स्वेद कबहूँ जड़ताई॥

इस प्रकार वह अपने दुःख को छिपाने का प्रयत्न कर रही थीं पर उसका प्रभाव उनकी शरीर पर विवर्णता, अचेतनता आदि के रूप में पड़ रहा था। विवाह के समारोह को देखकर उनका शोक बढ़ने लगा और शुभ कंकन बँध जाने पर— .

निरखि-निरखि कर कंकन दृग जल भर भर आहीं।

अंत में सोचती हैं कि यदि लोक-लज्जा के फेर में पड़ी तो मेरा सर्वस्व चला जायगा अतः अब क्या करना उचित है। जिन श्रीकृष्ण के चरण-रज की इच्छा ब्रह्मा, ऋषिगण आदि करते हैं और जिन्हें गोपियो ने लोक-लज्जा त्यागकर पाया उसी प्रकार प्राप्त करने का श्रीरुक्मिणी ने भी निश्चय किया। तब—

इहि विधि धरि मन धीर चीर अँसुवन सिरायकै।
लिख्यो पत्र सुविचित्र चित्र रुक्मिनी बनायकै॥

और इस पत्र को एक ब्राह्मण को दिया कि इसे श्रीकृष्ण के पास पहुँचा दे और वह ब्राह्मण भी श्रीरुक्मिणी के दुःख को देख कर सीधा द्वारिकाजी पहुँचा। यहाँ उस पुरी की शोभा का कवि ने बड़ा सुंदर वर्णन किया है। ब्राह्मण नगर की शोभा देखता हुआ श्रीकृष्ण के प्रासाद में पहुँचा और वहाँ उन्हें देखकर अत्यंत प्रसन्न हुआ। कृष्णजी ने भी जब उसका आदर-सत्कार कर बैठाया तब ब्राह्मण ने रुक्मिणीजी का पत्र उन्हें दिया। कृष्णजी ने जब पत्र खोलकर पढ़ना आरंभ किया तब—

परम प्रेम रस साँचे अच्छर बनत न बाँचे।

कुछ अंश पढ़ने के अनंतर रुक्मिणीजी के प्रेमपूर्ण आह्वान से उनका हृदय इतना पसीज उठा कि वह उसे पूरा पढ़ न सके और तब ब्राह्मण ने उनके आदेश से पढ़ सुनाया। पत्र में रुक्मिणीजी ने पहले अपना परिचय दिया और तब किस प्रकार श्री नारदजी द्वारा श्रीकृष्ण-गुण गायन सुनने से उनके प्रति उसका अनुराग हुआ तथा उसने उनका वरण किया, इसे बतलाया। इसके अनंतर रुक्म के हठ से शिशुपाल से विवाह निश्चय होने का समाचार देकर कहा है कि

जो नगधर नँदलाल मोहिं नहिं करिहौ दासी।
तो पावक परजरिहौं बरिहौं तन तिनका सी॥

इसलिए जो उचित समझिए वह कीजिए।

इस पत्र को सुनते ही श्रीकृष्ण ब्राह्मण के साथ रथ पर सवार हो शीघ्रता से कुंडिनपुर चले। इधर रुक्मिणीजी ब्राह्मण को विदा कर कृष्ण-आगमन की प्रतीक्षा में घबराने लगी। कभी अटारी पर चढ़कर देखती कभी खिड़कियों में से। शुभ शकुन होने से घबड़ाहट कुछ कम होती थी पर परिस्थिति के अनुसार समय की कमी से फिर बढ़ जाती थी। इसी समय ब्राह्मण लौटकर आ पहुँचा और उसके प्रसन्नमुख को देखकर उन्हें कुछ धैर्य हुआ। तब भी शंका के कारण पूछने का साहस नहीं हो रहा था कि ब्राह्मण ने श्रीहरि के आने का समाचार सुना दिया। इसी परिस्थिति का कवि ने कितना सरस वर्णन किया है—

पूछि न सकै मुख बात दई यह कहा कहैगो।
कै अमृत सो सींच, किधौं विष देह दहैगो॥
निकसि प्रान तब तन तैं द्विज के वचननि आये।
तबहि कह्यो हरि आये मनु फिर बहुरयो पाये॥

श्रीकृष्ण के कुंडिनपुर आते ही नगर-निवासी उन्हे देखने के लिए उमड़ पड़े और उनके एक एक अंग के सौंदर्य पर मुग्ध हो सभी एक स्वर से इन्हें ही राजकुमारी के योग्य वर कहने लगे। पर शिशुपाल तथा उसके साथ के नरेशों ने यह समाचार सुनकर दुःख प्रकट किया कि इनका आना रहस्य से खाली नही है, कोई उत्पात न खड़ा हो जाय।

इसके अनंतर कुलाचार के अनुसार रुक्मिणी जी नगर के बाहर अंबिका देवी की पूजा करने गई और विधिवत् पूजन करने तथा इच्छित वर पाने के उपरांत धीरे धीरे घर की ओर लौटीं। इसका कवि ने अत्यंत अलंकृत भाषा में वर्णन किया है—

मंद मंद पग धरै चंदमुख किरन विराजै।
मनिमय नूपुर बजै बीन मनमथ सी बाजै॥

अरुन चरन प्रतिबिंब अवनि मैं यों उनमानी।
जनु धर अपनी जीभ धरत पग कोमल जानी॥

इसी समय रुक्मिणीजी ने श्रीकृष्ण को देखने के लिये एकाएक जब अपना घूँघट खोल दिया तब ऐसा भान हुआ कि मानो आकाश में अभी चंद्रमा निकल आया हो। इनके मुखचंद्र की शोभा तथा नेत्रों के कटाक्ष से सारी सेना जड़वत् हो गई और जब रुक्मिणीजी ने श्रीकृष्ण को देखा तो वह भी लड़खड़ा उठीं पर क्रमशः ज्यों ही वह रथ के पास पहुँची तभी श्रीकृष्ण ने उन्हे अपने पास रथ में बैठा लिया। तब

लै चले नागर नगधर नवल तिया को ऐसे।
माखिन आँखिन धूरि पूरि मधुहा मधु जैसे॥

यह अलंकार कवि की निजी सूझ है और कितनी सुंदर है। माधुर्य की साकार मूर्ति श्रीरुक्मिणीजी की मधु से तथा उनके प्रेमी नागर श्रीकृष्ण की मधुहा से समानता देने में कितनी सरसता है।

इसके अनंतर हरण की पुकार मचती है और सभी राजे ससैन्य पीछा करते है पर बलरामजी ने, जो श्रीकृष्ण के एकाकी कुंडिनपुर जाने का समाचार सुनते ही सेना साथ लेकर पीछे-पीछे आ पहुँचे थे, उन सब को युद्ध में परास्त कर भगा दिया। रुक्म ने श्रीकृष्ण का पीछा किया पर उन्होंने इसे परास्त कर छोड़ दिया और स्वयं रुक्मिणीजी को लेकर अपने नगर आये तथा विधिवत् विवाह कर लिया।

भक्त-कविश्रेष्ट नंददासजी को रोला छंद सिद्ध था और भाषा पर इनका अधिकार अनुपम था। रुक्मिणी मंगल में इनकी सरस उक्तियाँ आकर्षक वर्णन शैली तथा प्रांजल प्रसादगुणपूर्ण भाषा सभी इनकी कवित्व शक्ति की परिचायिका हैं।

भाषा दशम स्कंध

नंददास जी ने श्रीमद्भागवत दशम स्कंध का अनुवाद करने के लिये चौपाई दोहे छंदों ही को लिया है, जैसा कि गोस्वामी श्री तुलसीदास जी ने अपने रामचरितमानस के लिये किया है। दोनों ही प्रायः सम-

कालीन तथा भाई-भाई थे और दोनों ही ने स्वतंत्र रूप से अवतार लीलाओं के लिये ये ही छंद उचित समझे है। वंदना रूप मे नंददास जी कहते हैं—

नव लच्छन करि लच्छ जो दसमैं आश्रय रूप।
'नंद' बंदि लै प्रथम तिहि श्रीकृष्णाख्य अनूप॥

नौ लक्षणों द्वारा समझने योग्य जो दसवाँ आश्रय रूप है, उस श्रीकृष्ण नामधारी (परब्रह्म परमात्मा) की पहले हे नंददास ! वंदना कर ले। श्रीमद्भागवत के द्वितीय स्कंध के दसवे अध्याय में ये दश लक्षण विस्तार से दिए हुए हैं जिनके नाम क्रमशः इस प्रकार हैं—सर्ग, विसर्ग, स्थान, पोपण, ऊति, मन्वन्तर, ईशानु कथा, निरोध, मुक्ति और आश्रय। आश्रय के तत्व को समझने के लिये महात्माओं ने प्रथम नौ विषयों का श्रुति आदि की सहायता से विवेचन किया है। नंददासजी ने संक्षेप मे श्रीधरी तथा सुबोधिनी टीकाओं के आधार पर यहाँ उनका वर्णन दिया है पर निरोध का विस्तार से विश्लेपण किया है—

इस प्रकार श्रीकृष्ण की वंदना कर पुनः कहते हैं—

ज्यों गुरु गिरिधर देव की सुंदर दया दरेर।
गुंग सकल पिंगल पढ़ै पंगु चढ़ै गिरि मेर॥

यहाँ 'गुरु गिरिधर' से दो भाव निकलता है, गुरु तथा गिरिधर या गुरु रूपी गिरिधर। वल्लभ संप्रदाय में गुरु गिरिधर के समान ही और कभी-कभी बढ़कर माने जाते हैं अतः पहला ही अर्थ समीचीन ज्ञात होता है। इस प्रकार वंदना करके नंददासजी ने दसों लक्षणों का वर्णन किया है।

महत् तत्व, पंच महाभूत, इंद्रियाँ आदि जो सृष्टि के कारण वर्ग हैं उनकी विराट् स्वरूप परमेश्वर में अवस्थिति है और माया द्वारा प्रेरित उनकी उत्पत्ति या सृष्टि का वर्णन ही सर्ग है। जब ब्रह्मा कार्य रूप मे इसे लाकर सृष्टि रचते हैं तब उसे विसर्ग कहते हैं। इस प्रकार सृष्टि हो जाने पर अपनी अपनी मर्यादा पालन करते हुए जो उत्कर्प की प्राप्ति होती है उसी का नाम स्थिति है। भक्तों पर भगवान की जो कृपा उनके दोपों पर ध्यान न देते हुए होती है, उसे ही पोषण कहा जाता है। यही वल्लभ

संप्रदाय में पुष्टि है तथा उक्त संप्रदाय इसी कारण पुष्टि मार्ग भी कहलाता है। साधुओं की धर्म में जो प्रवृत्ति होती है उसे मन्वन्तर कहते हैं। साधु-असाधु की वासना अर्थात् कर्मवासना जहाँ हो वहाँ ऊति होती है। भगवान के अवतारों तथा उनके अनुगामी महापुरुषों की, जैसे राजा मुचकुन्द आदि की कथा ईशानु कथा कही गई है। दुष्ट राजाओं की दुष्टता का हरण करना ही निरोध है। मायाजनित अन्यथा रूप को त्यागकर आत्मा का अपने रूप में मिल जाना ही मुक्ति है। ऊपर लिखे नौ लक्षणों द्वारा जो लक्षित होता है वही परब्रह्म या परमात्मा आश्रय है, जिससे सब जगत का आविर्भाव तथा जिसमे सबका तिरोभाव होता है। इन्हीं आश्रय श्रीकृष्ण का दसवे स्कंध में वर्णन किया गया है।

नंददासजी ने निरोध पर कुछ और भी लिखा है। श्रीमद्भागवत में निरोध की परिभाषा इस प्रकार दी है—शक्तियों के साथ योगनिद्रा का अवलंबन करके प्रलय-काल में हरि के शयन करने पर हरि में जीव के लय होने का नाम निरोध है। इस पर श्रीधर स्वामी ने जो टीका की है उसी के भाव को लेकर नंददासजी ने 'दुष्ट-नृप-दलन' को निरोध बतलाया है। इसके अनंतर श्री वल्लभाचार्य को सुबोधिनी टीका के अनुसार अर्थ किया है कि भक्तों को अन्य सभी विषयों से विरक्ति तथा मोक्ष का त्याग कर भगवान में शुद्ध प्रेम रखना ही निरोध है। जैसे मोक्ष तथा ब्रह्मानंद का सुख दिखलाने पर भी ब्रजवासी मधुर मूर्ति के विना व्याकुल हो उठे थे। निरोध की तीसरी व्याख्या इस प्रकार की है कि स्नेह भक्ति ऐसी हो कि ईश्वर का ऐश्वर्य देखकर भी उधर ध्यान न रहे। जैसे यशोदाजी ने श्रीकृष्ण के मुख में सारी सृष्टि-लीला देखी पर उस ओर उनकी दृष्टि सत्य स्नेह के कारण नहीं गई। इसी प्रकार श्रीकृष्ण-लीला में अनेक स्थलों पर निरोध के उदाहरण मिलते हैं।

इस प्रकार इन लक्षणों का वर्णन कर भागवत के दशम स्कंध का अनुवाद कार्य आरंभ किया है। श्रीकृष्ण जन्म से गोवर्द्धन धारण तथा वरुणालय से नंद की मुक्ति तक की कथा अट्ठाईस अध्यायों में वर्णित है और इसके अनंतर पाँच अध्यायों में रासलीला का जो वर्णन है उसे नंददासजी ने पंचाध्यायी में कहा है। इसके अनंतर ब्रजलीला के चार अध्याय बचते हैं और तब अक्रूर श्रीकृष्ण को लिवा जाने के लिये आते

हैं और ३९ वे अध्याय मे लिवा कर लौट जाते हैं। मेरा कुछ ऐसा विचार है कि नंददासजी ने स्यात् रासपंचाध्यायी लिखने के अनंतर आगे भागवत का अनुवाद ही नही किया क्योंकि इन सांप्रदायिक भक्तों के केवल ब्रज के ही कृष्ण, गोपीकृष्ण या राधाकृष्ण, इष्टदेव थे, मथुरा, द्वारिका या महाभारत के कृष्ण नही थे। समग्र भागवत का अनुवाद करना, यमुनाजी में विसर्जन करना तथा इसी अंश का बच रहना कोरी दंतकथा सी ज्ञात होती है।

नंददासजी की यह रचना अनुवाद मात्र है पर इस कार्य मे भी वह सफल रहे है। निज संप्रदाय के विचारो को प्रकृत्या महत्व देकर उनका इसमे समावेश अधिक किया है और इसी कारण बहुत से अंश छोड़ भी दिए हैं। श्रीकृष्ण की बालक्रीड़ा का इन्होने कुछ विस्तार किया है, जैसे माता का उन्हे चलना सिखाना आदि। बीसवे अध्याय में वर्षा तथा शरद ऋतुओं का सुंदर वर्णन है और इसी के अनंतर इक्कीसवे अध्याय मे गोपिका गीत है। प्राकृतिक शोभा के बीच श्रीकृष्ण की वंशी सुनकर गोपियो ने उनके रूप-माधुर्य तथा अपने अनुराग का आपस में अच्छा वर्णन किया है।

गोवर्द्धनलीला तथा सुदामाचरित

ये दोनो रचनाएँ भी साधारण है और चौपाइयों मे अति संक्षेप मे दोनों लीलाएँ कह दी गई है। भाषा के सरल सुगम होते भी इसमे काव्य-कौशल प्रायः नही-सा है। वर्णन भी जहाँ कही आए है वे अत्यत संक्षेप मे है और उनमें कुछ वैचित्र्य भी नही है। भाषा दशम स्कंध मे चौबीसवे तथा पचीसवे अध्यायो मे गोवर्धनलीला वर्णित है। दोनों रचनाओं की सत्रह-अठारह पंक्तियाँ एक सी है पर स्वतंत्र गोवर्धनलीला की अन्य बची पक्तियाँ दशम स्कंध भाषा की चौपाइयो से हीन है। ऐसा ज्ञात होता है कि नंददासजी ने पहिले गोवर्द्धनलीला लिखी होगी और जब वह दशम स्कंध की भाषा करने लगे तब इसकी अच्छी पंक्तियाँ उससे ले लीं।

गोवर्द्धनलीला मे आरंभ में वंदना तथा अंत मे माहात्म्य भी दिया है पर सुदामाचरित में वंदना नही है और अंत मे केवल इतना कहा गया है

भक्ति मुक्ति पावै सोई तूरन।

सुदामाचरित लोकप्रिय तथा प्रसिद्ध कथा है और इससे भगवान श्रीकृष्ण की दयालुता, मित्रवत्सलता आदि प्रगट होती है। कथा अति संक्षिप्त है, विस्तार नहीं किया गया है। सुदामा जी अपनी पतिव्रता पत्नी के दारिद्रय से कष्ट पाने के कारण कहने पर श्रीकृष्ण के पास द्वारिका जाते हैं, वहाँ उनका बड़े प्रेम से स्वागत होता है, बाल्यकाल की पाठशाला की बातें स्मरण आती हैं और फिर दूसरे दिन सुदामा जी अपने घर लौटते हैं। श्रीकृष्ण ने प्रत्यक्ष रूप में सुदामा की कुछ सहायता नहीं की इससे वह कुढ़ते हुए लौटे पर जब गृह पर पहुँचकर वहाँ का वैभव देखा तब आश्चर्यचकित तथा विमुग्ध हो गए।

नंददासजी की यह एक साधारण रचना है। वर्णन की कमी के साथ साथ भाषा में लालित्य भी इनके योग्य नहीं है। भावात्मक तथा वर्णनात्मक अंशों को इन्होंने प्रायः छोड़ ही दिया है। यह भी इनकी आरंभिक रचना हो सकती है।

पदावली

यों तो सुना जाता है कि नंददासजी ने बहुत से पद बनाए हैं पर नित्य-कीर्तन पद-संग्रह, अन्य भजन-संग्रह तथा हस्तलिखित पद संग्रहों से खोजकर केवल दो सौ के लगभग पद्य संकलित किए जा सके हैं। आरंभ में बीस पद स्तुति के रखे गए हैं, जिनमें एक श्रीकृष्ण तथा दो राम-कृष्ण के हैं। श्रीरामचंद्र तथा श्रीकृष्णचंद्र दोनों का साथ साथ वर्णन करते हुए कहा है—

नंददास के ये दोउ ठाकुर दशरथ-सुत बाबा नंद-किशोर।

इसके अनंतर नौ पद गुरुस्तुति, चार पद यमुना-स्तव, एक गंगा-स्तव तथा दो श्री हनुमान जी की वंदना पर हैं। ऐसा ज्ञात होता है कि अपने भाई गोस्वामी तुलसीदास जी के प्रभाव के कारण ही इन्होंने ऐसा किया है क्योंकि अष्टछाप के अन्य कवियों ने ऐसे पद नहीं बनाए हैं। दो पदों में ब्रज महिमा कहकर आठ पदों में कृष्णजन्म तथा बधाई कही गई है। इनके अनंतर बालक्रीड़ा, श्रीराधा-जन्म, पूर्वानुराग, राधाकृष्ण-विवाह तथा प्रेमलीला का वर्णन है। अंतिम के अंतर्गत

कुछ नायिकाओं खंडिता, अभिसारिका आदि का वर्णन भी आ गया है। माखन-चोरी, छाक तथा दधि-दान के पदों के अनंतर गोवर्द्धन तथा रास की लीलाओं के कुछ पद हैं। मानलीला के बारह तेरह पदों के बाद कुछ त्योहारों को लेकर पद कहे गए हैं। मलार, वर्षा, हिंडोला, वहार तथा फाग के भी वहुत से पद बनाए हैं। परंतु आश्चर्य है कि नंददास जी के विनय, भक्ति, भ्रमरगीत, दुष्ट संहार लीला आदि पर एक भी पद नहीं प्राप्त हो सके।

नंददास जी के संकलित पदों में कुछ तो भापा तथा भाव दोनों ही दृष्टि से वहुत सुंदर बन पड़े हैं पर कुछ ऐसे भी है जो साधारण हैं। कृष्ण-जन्म बधाई पर कई पद अनूठे हैं। व्रज की सुंदरियाँ एकत्र होकर बधावा ले नंद जी के घर चली उस समय उनके मुखो पर कैसी प्रसन्नता झलक रही है, उनके चाल की आतुरता, गान सभी से प्रसन्नता उमड़ी स'।पड़ती है। बालक का मुख देखकर वलैया लेना, गोपो के झुंड का आना और सब का आनंद प्रकट करना सभी का नंददासजी ने अलंकृत भापा मे सुंदर वर्णन किया है।

जुरि चली हैं बधावन नंद महर घर सुंदर व्रज की बाला।
(प० सं० २६)

श्री राधाजी मे श्रीकृष्ण की प्रशंसा सुनकर ही पूर्वानुराग उत्पन्न होने पर उनकी क्या दशा हुई इसे नंददासजी वर्णन कर कहते हैं कि

'नंददास' जाके नाम सुनत ऐसी गति
माधुरी मूरति है धौं कैसी दई री।

यह रूप-माधुरी कैसी थी और इसका प्रभाव व्रजांगनाओं पर कैसा पड़ता था इसका प्रायः सभी कृष्ण-भक्त कवियों ने अपने सामर्थ्य के अनुसार वर्णन किया है। नंददासजी ने भी इसका वर्णन वड़ी सरस भापा में किया है। एक गोपी यमुनाजी से पानी भरकर आ रही थी कि मार्ग में कही उसने 'स्याम रूप काहू को ढोटा' को देख लिया और ऐसा आकर्पण हुआ कि

ठगिसी रही, चेटक सों लाग्यो, तब तैं व्याकुल फुरत न बानी।
जा दिन तै चितयो री मो तन तादिन तैं उन हाथ बिकानी।

'नंददास' प्रभु यों मन मिलि गयो ज्यों सारँग मे पानी ॥

इस रूप-माधुरी को देखने में पलके जब बाधा डालती हैं तो वह उन्हीं पर चिढ़ सी जाती है और पलको से कहती है—

देखन दै मेरी बैरन पलकै ।

नँदनंदन मुख ते यों आली बीच परत मानो वज्र की सलकैं ॥
ऐसो मुख निरखन को आली कौन रची विच पूत कमल कैं ।
'नंददास' सब जड़न की इहि गति मीन मरत भाये नहि जल कैं ॥

श्री राधिकाजी की रूप माधुरी का भी अत्यंत सरस वर्णन दिया है। मान करने पर जब सखी उन्हे बुलाने जाती है तब उनकी मुखश्री पर वह स्वयं ऐसी लुब्ध हो जाती है कि वह निश्चय नही कर पाती कि स्वयं देखा करे या श्रीकृष्ण को बुलाकर दिखलावे। कहा है कि 'नारि न मोह नारि के रूपा' पर यहाँ की मुखशोभा उसका अपवाद है। सुनिए—

तेरे ही मनायवे तें नीकौ री लगत मान
तौ लौं रहि प्यारी जौं लौ लालहि लै आऊँ ।
औरन को हँसोहौं मुख तेरौ तौ रुखाई आली
सोरह कला कौ पूरौ चंद वलि जाऊँ ॥

चलि न सकत उत, पग न परत इततैं
ऐसी सोभा छाँड़ि फिरि पाऊँ धौं न पाऊँ ।
नंददास-प्रभु दोउ विधि ही कठिन परी
देखिवौ करौं किधौं लालहि दिखाऊँ ॥

जैसा अनूठा भाव है वैसी ही सरस भाषा मे वह प्रकट भी किया गया है। सखी का विकल्प कितना सहज स्वाभाविक है, वह चाहती है कि स्वयं देखा करे और 'लाल' को भी लाकर दिखलावे ।

नंददासजी ने सावन के झूले तथा फागुन के हिंडोले पर भी बहुत से पद लिखे हैं और सुंदर सरस लिखे हैं। यमुनाजी के किनारे पर ब्रजवधुओं से घिरे हुए राधाकृष्ण झूला झूल रहे हैं। बादल गरज रहा है, पपीहा, दादुर, मोर शोर मचा रहे हैं और उन्हीं मे स्वर मिलाकर सखियाँ भी मलार गा रही हैं।

झूलत मोहन रंग भरे गोप बधू चहुँ ओर।
'नंददास' आनंद भरे अति निरखत जुगुल किसोर ॥
(प० सं० १५७)

रासलीला पर भी नंददासजी ने कई बड़े सरस पद कहे हैं। राधा-कृष्ण हाथ पकड़े हुए गोपी-मंडल के बीच नृत्य कर रहे हैं तथा अनेक प्रकार के बाजे बज रहे हैं, जिन्हें देखकर सभी मुग्ध हो गए। इस सुंदर चित्र का वैसा ही सरस भाषा में वर्णन किया है—

वृंदावन, बंसीबट, जमुना तट, बंसी-रट,
रास मै रसिक प्यारो खेल रच्यो वन में।
राधा-माधो कर जोरें, रवि-ससि होत भोरें
मंडल मे निरतत दोउ सरस सघन में ॥
मधुर मृदंग बाजै, मुरली की धुनि गाजै,
सुधि न रही री कछु सुर मुनि जन में।
'नंददास' प्रभु प्यारो रूप-उजियारो अति
कृष्णक्रीड़ा देखि भये थकित जन मन में ॥

———

नंददास-ग्रंथावली

रास पंचाध्यायी

प्रथम अध्याय

वंदन करौं कृपानिधान श्री शुक सुभकारी।
शुद्ध जोतिमय रूप सदा सुंदर अविकारी ॥ १ ॥
हरि-लीला रस मत्त मुदित नित विचरत जग मैं।
अद्भुत गति कतहूँ[1] न अटक ह्वै निकसत[2] नग मैं ॥ २ ॥
नीलोत्पल-दल स्याम अंग नव-जोवन भ्राजै।
कुटिल अलक मुख-कमल मनों अलि-अवलि विराजै ॥ ३ ॥
ललित बिसाल सुभाल दिपत जनु निकर निसाकर।
कृष्ण-भगति-प्रतिबंध[3] तिमिर कहुँ कोटि दिवाकर ॥ ४ ॥
कृपा-रंग-रस-ऐन नैन राजत रतनारे।
कृष्ण-रसासव[4]-पान-अलस[5] कछु घूम घुमारे ॥ ५ ॥
उन्नत नासा अधर बिम्ब सुक की छबि छीनी।
तिन बिच[6] अद्भुत भाँति लसति कछु इक मसि भीनी ॥ ६ ॥
स्रवन कृष्ण-रस-भवन गंड-मंडल भल दरसै।
प्रेमानंद मिली[7] सुमंद मुसकनि मधु वरसै ॥ ७ ॥
कंबु कंठ की रेख देखि हरि-धरमु प्रकासै।
काम क्रोध मद लोभ मोह जिहि निरखत नासै ॥ ८ ॥
उर-बर पर अति छबि की भीर कछु वरनि न जाई।
जिहि अंतर[8] जगमगत निरंतर कुँवर कन्हाई ॥ ९ ॥
सुंदर उदर उदार रोमावलि राजति भारी।
हिय-सरवर रस पूरि चली मनु उमगि पनारी ॥१०॥
ता[9] रस की कुंडिका नाभि अस सोभित गहरी।
त्रिवली ता महँ ललित भाँति मनु उपजति लहरी ॥११॥

---

१. कहुँ नहि न। २. निकले मग। ३. प्रतिबिंब। ४. रसामृत। ५. करत। ६. मधि। ७. मलिंद मंद। ८. भीतर। ९. जिहि।

गूढ़ जानु आजानुबाहु मद-गज-गति लोलैं।
गंगादिकनि पवित्र करत अवनी पर डोलैं ॥१२॥
जब दिनमनि श्रीकृष्ण दृगनि ते दूरि भए दुरि।
पसरि पर्यो अँधियार सकल संसार घुमड़ि घुरि ॥१३॥
तिमिर ग्रसति सब लोक-ओक[1] लखि दुखित दया कर।
प्रगट कियो अद्भुत-प्रभाउ भागवत-विभाकर ॥१४॥
ताहू मैं पुनि अति रहस्य यह पंचाध्याई।
तन महँ जैसे पंच प्रान अस सुक मुनि गाई ॥१५॥
परम रसिक इक मीत मोहि तिन आज्ञा दीन्ही।
तातैं मैं यह कथा जथामति भाषा कीन्ही[2] ॥१६॥

श्रीवृंदावन वर्णन

श्रीवृंदावन चिद्घन कछु छबि बरनि न जाई।
कृष्ण-ललित लीला के काज धरि रह्यौ जड़ताई ॥१७॥
जहँ नग खग मृग कुंज लता बीरुध तृन जेते।
नहिन काल गुन-प्रभा[3] सदा सोभित रहे तेते ॥१८॥
सकल जंतु अविरुद्ध जहाँ हरि मृग सँग चरहीं।
काम-क्रोध-मद-लोभ-रहित लीला अनुसरहीं ॥१९॥
सब[4] दिन रहत बसंत कृष्ण-अवलोकनि-लोभा।
त्रिभुवन[5] कानन जा बिभूति करि सोभित सोभा ॥२०॥

---

१. बिकल जब देखि दया कर। २. ह० प्र० ख व ग तथा लीथो की प्रति में इस रोला के और कलकत्ते की छपी प्रति मे १४ वे रोला के बाद यह दोहा है—

(श्री) शुक मुनि रूप अनूप है, सो बरन्यो कवि नंद।
अब वृंदावन बरनिहौं, जहँ वृंदावन-चंद ॥

३. प्रभउ (प्रभाव)। ४. (ह० प्र० क, ख, ग व मु०)

सब रितु संतत बसत लसत तहँ दिन प्रति ओभा।
(अन्य पाठा०) सब दिन रहत बसंत लसै तहँ दिन दिन ओभा ॥

५. (ह० प्र० क, ख व मु०)

आन बनन जाकी बिभूति करि सोभित सोभा।

ज्यों[1] लक्ष्मी निज रूप अनूप चरन सेवत नित।
भ्रू बिलसति जु बिभूति जगत जगमगि रहि जित कित ॥२१॥
श्री अनंत महिमा अनंत को बरनि सकै कवि।
संकरपन सों कछुक कही श्रीमुख जाकी छवि ॥२२॥
देवन मैं श्रीरमारमन नारायन प्रभु[2] जस।
बन मैं बृंदावन सुदेस सब[3] दिन सोभित अस ॥२३॥
या बन की वर-बानिक या बन ही बनि आवै।
सेस महेस सुरेस गनेस न पारहि पावै ॥२४॥
जह जेतिक द्रुम जाति कलपतरु सम सब लायक।
चिंतामनि सम[4] भूमि सकल[5] चिंतित फल-दायक ॥२५॥
तिन मधि इक जु कलपतरु लगि रहि जगमग जोती।
पत्र मूल फल फूल सकल हीरा मनि मोती ॥२६॥
तिन[6] मधि तिन के गंध लुब्ध अस गान करत अलि।
बर किन्नर गंधर्व अपछरा तिन पर करि वलि ॥२७॥
अमृत फुही सुख गुही अति सुही परति रहति नित।
रास रसिक सुंदर पिय को स्रम दूर करन हित ॥२८॥
वा सुर तरु महँ अवर एक अद्भुत छवि छाजै।
साखा-दल-फल-फूलनि हरि-प्रतिबिंब बिराजै ॥२९॥
ता पर कोमल कनक-भूमि मनिमय मोहति मन।
दिखियत सब प्रतिबिंब मनों घर महँ दुसरो वन ॥३०॥
तहँ[7] इक मनि मय अंक चित्र को संख सुभग अति।
तापर पोडस दल सरोज अद्भुत चक्राकृति ॥३१॥
मधि कमनीय करिनिका सब सुख सुंदर कंदर।
तहँ राजत ब्रजराज-कुँवर-वर रसिक पुरंदर ॥३२॥

श्रीकृष्ण की शोभा

निकर बिभाकर दुति मेटत सुभ मनि कौस्तुभ अस।
सुंदर[8] नंद कुँवर उर पर सोइ लागत उडु जस ॥३३॥

---

१. जौं। २. जैसे। ३. सोभित हैं ऐसे। ४. मय। ५. सबनि। ६. तहँ सुनियन के या तहँ सुतिअन के। ७. बितत बिसद सत कोस। (ह० प्र० क, ख, ग व मु०) में 'इक बितस्ति' 'अंक चित्र' का पाठांतर है। ८. हरि-उर रुचिर निबिड बिपै या हरि जू के उर निबिड़ बिपै।

मोहन अद्भुत रूप कहि न आवति छबि ताकी।
अखिल अंड व्यापी जु ब्रह्म आभा है जाकी ॥३४॥
परमातम[1] परब्रह्म सबन के अंतरजामी।
नारायण भगवान धरम करि सब के स्वामी ॥३५॥
बाल कुमार पुगंड धरम आसक्त जु ललित तन।
धरमी नित्य किसोर कान्ह मोहत सब को मन ॥३६॥
अस अद्भुत गोपाल लाल सब काल बसत जहँ।
याही ते बैकुंठ-बिभव कुंठित लागत तहँ ॥३७॥

शरद् रजनी वर्णन

जदपि[2] सहज माधुरी बिपिन सब दिन सुखदाई।
तदपि रँगीली सरद समय मिलि अति छबि पाई ॥३८॥
ज्यौं अमोल नग जगमगाय सुंदर जराय सँग।
रूपवंत गुनवंत भूरि[3] भूपन भूषित अँग ॥३९॥[4]
रजनी मुख सुख देत ललित मुकुलित[5] जु मालती।
ज्यो नव जोवन पाइ लसति गुनवती बाल ती ॥४०॥
नव[6] फूलनि सों फूलि फूलि अस लगति लुनाई।
सरद[7] छबीली छपा हँसत छबि सों मनु आई ॥४१॥
ताही छिन उडुराज उदित रस[8]-रास-सहायक।
कुमकुम-मंडित प्रिया बदन जनु नागर नायक ॥४२॥
कोमल किरन अरुनिमा[9] बन मैं व्यापि रही अस।
मनसिज खेल्यो फागु घुमड़ि घुरि रह्यौ गुलाल जस ॥४३॥

---

१. मरत्र आतमाराम। २. सहज माधुरी वृंदावन। ३. बहुरि। ४. सं० १७५७ की प्रति में निम्नलिखित पद अधिक है।

नित्त रास रसमत्त जदपि रम नव रंग भीनो।
तदपि लोक निस्तार हेत करिबैं मन दीनो ॥४०॥

५. प्रफुलित। ६. छबि सों फूले अवर फूल (ह० प्र० क, ख व ग) छबि सों फूले फूल अतुल (अन्य)। ७. मनहुँ सरद की छपा छबीली बिहँसति आई। (ह० प्र० क व ख व ग)। ८. रितुराज। ९. अरुन या घर मैं।

फटिक छरी सी किरन कुंज-रंध्रनि जब आई।
मानो बितनु बितान सुदेस तनाउ तनाई ॥४४॥
मंद मंद चलि चारु चंद्रिका अस छवि पाई।
उझकति हैं पिय रमा-रमन कौ मनु तकि आई॥४५॥

मुरली-वर्णन

तब लीनी कर-कमल जोगमाया सी मुरली।
अघटित घटना चतुर बहुरि अधरासव[1] जुर ली॥४६॥
जाकी धुनि ते अगम निगम प्रगटे बड़ नागर।
नाद ब्रह्म की जननि मोहिनी सब सुख सागर॥४७॥
नागर[2] नवल किसोर कान्ह कल-गान कियो अस।
बाम बिलोचन बालन को मन हरन होइँ जस॥४८॥

ब्रजबालाओं की विरह-दशा

सुनत चलीं ब्रजबधू गीत-धुनि को मारग गहि।
भवन भीति द्रुम कुंज पुंज कितहूँ अटकीं नहि॥४६॥
नाद[3] अमृत को पंथ रँगीलो सूछम भारी।
तिहि[4] ब्रज तिय भले चलीं आन कोउ नहि अधिकारी॥५०॥[5]
जे रहि[6] गईं घर अति अधीर गुनमय सरीर वस।
पुण्य पाप प्रारब्ध सँच्यौ तन नहिंन पच्यौ रस॥५१॥
परम दुसह श्री कृष्ण-बिरह-दुख व्याप्यो तिन मैं।
कोटि बरस लग नरक भोग अघ भुगते[7] छिन मैं॥५२॥
जिय[8] पिय को धरि ध्यान तनिक आलिंगन किय जब।
कोटि स्वर्ग सुख भोग छीन कीने मंगल सब॥५३॥

---

१. अधरन रस। २. पुनि मोहन सो मिली कछू कल गान कियो अस। (ह० प्र० क, ग व मु०) ३. राग अमृत। ४. तिहिं मगब्रज तिय चलैं। ५. इस पुस्तक का ५७ वाँ पद प्राचीन हस्तलिखित प्रतियो में इसी पद के अनंतर है। एक मे 'जोतिमय' के स्थान पर प्रेममय है। ६. रुकि। ७. भोग्यो। ८. पुनि रचक धरि ध्यान पियहिं परिरंभ दियो जब।

इतर[1] धातु पाहनहिं परसि कंचन ह्वै सोहै।
नंद सुअन सो परम-प्रेम इह अचरज को है॥५४॥
तेउ पुनि तिहि मग चलीं रँगीली तजि गृह संगम।
जनु पिंजरनि ते उड़े छुटे नव प्रेम विहंगम॥५५[2]॥
सावन-सरित न रुकै करै जौ जतन कोऊ[3] अति।
कृष्ण गहे जिनको मन ते क्यो रुकहिं अगम गति॥५६॥
सुद्ध जोति-मय रूप पाँच भौतिक ते न्यारी।
तिनहि कहा कोउ गहै जोति सी जगत उज्यारी॥५७॥
जदपि कहूँ के कहूँ वधुनि आभरन वनाए।
हरि पिय पैं[4] अनुसरत जहीं के तहिं चलि आए॥५८॥

राजा परीच्छित का प्रश्न

परम भागवत रतन रसिक जु परीछित राजा।
प्रश्न कर्‌यो रस पुष्ट करन निज सुख के काजा॥५९॥
परम[5] धरम को पात्र जानि जग को हितकारी।
उदर दरी में करी काह्न जाकी रखवारी॥६०॥
जाकों सुंदर श्याम-कथा छिन छिन नइ[6] लागै।
ज्यौं लंपट पर-जुवति-बात सुनि अति अनुरागै॥६१॥
हो मुनि क्यौं गुनमय सरीर परिहरि पाए हरि।
जानि भजे कमनीय कान्ह नहि ब्रह्म-भाव करि॥६२॥

प्रश्न का समाधान

तब कहि श्री शुकदेव देव यह अचिरज नाहीं।
सर्व भाव भगवान कान्ह जिनके हिय माहीं॥६३॥
परम दुष्ट सिसुपाल बालपन ते निंदकु अति।
जोगिन कौं जो दुर्लभ सुलभहिं पाई सोइ गति॥६४॥

---

१. पीतर, पितलि। २. सं० १७५७ की हस्तलिखित प्रति में इसके अनंतर निम्नलिखित पद दिया है, जो परिशिष्ट मे सं० १२ पर दिया गया है।

कोउक सुख गुनमय सरीर तिन सहित चली ढुकि।
मात पिता पति बंधु नेह छुकि नहिन रही रुकि॥

३. कोटि। ४. पैय। ५. श्री भागवत। ६. प्रिय।

हरि-रस-ओपी गोपी ये सब तियनि ते न्यारी।
कँवल-नैन गोविद-चंद की प्रान-पियारी ॥६५॥

कृष्ण-गोपी-मिलन

तिनके नूपुर नाद सुने जब परम सुहाए।
तब हरि के मन नैन सिमिटि सब स्रवननि आए ॥६६॥
झुनक मुनक पुनि छबिलि भाँति सब प्रगट भईं जब।
पिय के अँग अँग सिमटि मिले[1] छबिले नैननि तब ॥६७॥
सुभग[2] बदन सब चितवन पिय के नैन बने यों।
बहुत[3] सरद ससि माहिं अरबरे ह्वै चकोर ज्यों ॥६८॥
अति आदर करि लईं भईं पिय[4] पैं ठाढ़ी अनु।
छबिलि छटनि मिलि छेक्यौ मंजुल घन मूरति जनु ॥६९॥
नागर-गुरु नँद-नंद चंद हँसि मंद मंद तब।
बोले बाँके वैन प्रेम के परम ऐन सब ॥७०॥
उज्जल रस कौ यह सुभाव बाँकी छबि छावै।
बंक चहनि पुनि कहनि बंक अति रसहि बढ़ावै ॥७१॥
अहो तिया कहा जानि भवन तजि कानन डगरीं।
अर्द्ध गई सर्वरी कछुक डर डरीं न सगरी[5] ॥७२॥
लाल[6] रसिक के बंक बचन सुनि चकित भईं यौं।
बाल-मृगिन की माल सघन बन भूलि परी ज्यौं ॥७३॥
मंद परसपर हँसीं लसीं तिरछी अँखियाँ अस।
रूप उदधि उतराति रँगीली मीन पाँति जस ॥७४॥
जब पिय कह्यो घर जाहु अधिक चित चिंता बाढ़ी।
पुतरिन की सी पाँति, रह गईं इक टक ठाढ़ी ॥७५॥
दुख के बोझ छबि-सींव ग्रीव नै चली नाल सी।
अलक अलिन के भार नमित[7] मनु कमल माल सी ॥७६॥

---

१. मिले हैं रसिक नैन तब। २. सब के मुख अवलोकत। ३. स्वच्छ। ४. चहुँ दिसि। ५. ७२ वाँ पद हस्त० प्र० ख० में है, क या ग या मु० में नहीं है पर आवश्यक है। ६. लाल रसाल के व्यंग्य। ७. निहुरि या भ्रमित।

हिय भरि विरह हुतासन सासन सँग आवत झर।
चले कछुक मुरझाइ मधु भरे अधर बिंब बर ॥७७॥
तब बोली ब्रज[1] बाल लाल मोहन अनुरागी।
गद्‌गद सुंदर गिरा गिरिधरहि मधुरी लागी ॥७८॥
अहो[2] अहो मोहन प्राननाथ सोहन सुखदायक।
क्रूर[3] वचन जनि कहौ नहिन ये तुम्हरे लायक ॥७९॥
जो कोउ बूझै धरम तबहिं तासों कहिए पिय।
बिन ही बूझे धरम कहत क्यों, कहि दहिए हिय ॥८०॥
नेम धर्म जप तप ये[4] सब कोउ फलहि बतावैं।
यह कहुँ नाहिन सुनी जो फल फिरि धरम सिखावैं ॥८१॥[5]
अरु[6] यह तुम्हरौ रूप धरमि के धरमहिं[7] मोहै।
पर मैं को तिय भरम धरमज्ञहि आगे को है ॥८२॥
नगनि (न) कों धरम न रह्यौ पुलकि तन चले ठौर ते।
खग मृग गो बछ मच्छ कच्छ ते रहे कौर तें ॥८३॥
त्यौं ही[8] पिय की मुरली जुरली अधर-सुधा-रस।
सुनि निजु धरम न तजै तरुनि त्रिभुवन महिं को अस ॥८४॥
सुनि गोपिन के प्रेम वचन सी आँच लगी जिय।
पिघरि चल्यो नवनीत-मीत नवनीत[9]-सद्दस हिय ॥८५॥
बिहँसि मिले नँदलाल निरखि ब्रजबाल बिरह बस।
जदपि आतमाराम रमत भए परम प्रेम बस ॥८६॥[10]

वन-विहार

विहरत[11] विपिन विहार उदार नवल नँद-नंदन।
नव कुमकुम घनसार चारु चरचित तन चंदन ॥८७॥
गोपीजन मन[12]-मोहन-मोहन लाल बने यौं।
अपनी दुति के उडुगन उडुपति वन खेलत ज्यौं ॥८८॥

---

१. ब्रज नवल बाल लालहिं अनुरागी। २. अहो मोहन अहो प्राननाथ सुंदर सुखदायक। (ह० प्र० क ख ग) ३. निठुर। ४. व्रत। ५. चंद्रिका में यह पद नहीं है। ६. पिय। ७. भरमहिं। ८. तैसिय। ९. सुंदर मोहन हिय। १०. यह पद चंद्रिका में नहीं है। ११. विलसत। १२. गन।

कुंजनि कुंजनि डोलनि मनु घन ते घन आवनि।
लोचन तृषित चकोरन के चित चोप बढ़ावनि ॥८६॥
सुभग सरित के तीर धीर बलबीर गए तहँ।
कोमल मलय समीर छबिन की महा भीर जहँ ॥६०॥
कुसुम धूरि धूँधरी कुंज छवि पुंजनि छाई।
गुंजत मंजु अलिंद बेनु जनु बजति सुहाई ॥६१॥[1]
इत महकति मालती चारु चंपक चित चोरत।
इत घनसार तुसार मलय[2] मंदार झकोरत ॥६२॥
इत लवंग नवरंग एलि इत झेलि रही रस।
इत कुरुवक केवरा केतकी गंध-बंधु बस ॥६३॥
इत तुलसी छबि हुलसी छाँड़ति परिमल लपटैं।
इत कमोद आमोद गोद भरि भरि सुख दबटै[3] ॥६४॥
उज्जल[4] मृदुल बालुका कोमल[5] सुभग सुहाई।
श्री जमुना जू निज तरंग करि यह[6] जु बनाई ॥६५॥
बिलसत बिविध बिलास हास नीवी कुच परसत।
सरसत प्रेम अनंग रंग नव घन ज्यौं बरसत ॥६६॥

मदन-मद-हरण

तहँ[7] आयो यह मौन पंचसर कर हैं जाके।
ब्रह्मादिक कों जीति बढ़ि रह्यौ अति मद ताके ॥६७॥
निरखि ब्रजवधू संग रँग भरे[8] नव किसोर तन।
हरि[9]-मनमथ करि मथ्यौ उलटि वा मनमथ को मन ॥६८॥
मुरछि पस्यौ तब मैन कहूँ धनु कहुँ निपंग[10] सर।
लखि[11] रति पति की दसा भीत भइ मारति उर कर ॥६६॥
पुनि पुनि पियहि अलिंगति रोवति अति अनुरागी।
मदन के वदन चुवाइ अमृत भुज भरि लै भागी ॥१००॥

---

१. यह पद चंद्रिका में नहीं है। २. मिली। ३ दपटैं या लूटैं। ४. यह पद ह० प्र० क व चंद्रिका में नहीं है। ५. सुंदर। ६ अयन या आपु बिछाई। ७. तब। ८. भोने किसोर तनु। ९. हरि जू तब मन मथ्यौ। १०. बिसिप बर। ११. रति देखत पति-दसा।

गोपी-गर्व

अस अद्भुत पिय मोहन सों मिलि गोप-दुलारी।
नहिं[1] अचरजु जौ गरव करहि गिरिधर की प्यारी ॥१०१॥
रूप भरीं गुन भरीं भरी पुनि परम प्रेम रस।
क्यौं न करैं अभिमान कान्ह भगवान किए[2] बस ॥१०२॥
जहँ नदि नीर गँभीर तहाँ भल भँवरी परई।
छिल छिल सलिल न परै परै तौ छवि नहि करई[3] ॥१०३॥
प्रेम-पुंज वरधन के काज ब्रजराज कुँअर पिय।
मंजु कुंज मैं नेकु[4] दुरे अति प्रेम भरे हिय ॥१०४॥

श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे रासक्रीडा वर्णने रसिक-जन प्राणनाम प्रथमोऽध्यायः।

दूसरा अध्याय

मधुर[5] वस्तु ज्यो खात निरंतर सुख तौ भारी।
वीचि-वीचि कटु अम्ल तिक्त अतिसय रुचिकारी ॥ १ ॥
ज्यों पटु पट के दिए निपट ही[6] रसहिं परै रँग।
तैसेहि[7] रंचक विरह प्रेम के पुंज वढ़त अँग ॥ २ ॥
जिनके नैन निमेष ओट कोटिक जुग जाहीं।
तिनके गृह वन कुंज ओट दुख अगनित[8] आहीं ॥ ३ ॥

विरह दशा-वर्णन

थकि[9] सी रहीं व्रजवाल लाल गिरिधर पिय विनु यौं।
निधन महानिधि पाइ वहुरि ज्यों[10] जाइ भई त्यौं ॥ ४ ॥

---

१. अचरज नहिं जो गरव होइ। २. भए। ३. धरई। ४. तनिक।
५. ज्यों कोउ परम मधुर मिली सो खात निरंतर।
वीचि वीचि संधान तिक्त रस अतिसय रुचिकर॥
६. अति। ७. रंच विरह के वढ़े प्रेम के पुंज प्रगट अँग। ८. गनना नाहीं। ९. ठगि। १०. फिरि जात भयो ज्यों। या तवहिं पुनि जाय भई ज्यों (ए० प्र० ग्र)।

ह्वै गई बिरह बिकल तब बूझत द्रुम बेली-बन।
को जड़ को चैतन्य कछु न जानत बिरही जन॥ ५॥
हे मालति! हे जाति! जूथिके! सुनियत[1] दै चित।
मान-हरन मन-हरन गिरिधरन लाल लखे[2] इत॥ ६॥
हे केतकि! इत कितहूँ तुम चितए पिय रूसे।
किधौं नंद-नँद (न) मंद मुसकि तुमरे मन मूसे॥ ७॥
हे मुकताफल बेलि! धरे मुकता-मनि माला।
देखे नैन बिसाल मोहनै नंद के लाला॥ ८॥
हे मंदार उदार बीर करवीर महामति!
देखे कहुँ बलबीर धीर मन-हरन धीर गति॥ ९॥
ए चंदन! दुखकंदन सब कहुँ जरत सिरावहु[3]।
नँद-नंदन-जगबंदन-चंदन हमहि मिलावहु॥१०॥
बूझहु[4] री इन लतनि फूलि रहीं फूलनि सोही[5]।
सुंदर पिय कर परस बिना अस फूल न होहीं[6]॥११॥
हे सखि ये मृगबधू इनहिं किन बूझहु अनुसरि।
डहडहे इनके नैन अबहि कतहूँ[7] चितए हरि॥१२॥
अहो कदंब, अहो अंब, निंब, क्यों रहे मौन गहि।
अहो बट! तुंग सुरंग बीर कहुँ इत[8] उलहे लहि॥[9]१३॥

---

१. सुनि इत। २. लहे। ३. जुडावहु। ४. पूछहु री इहि लतहि। ५. सोई। ६. होई। ७. कहुँ देखे हैं हरि। ८. तुम इत उत लहि। ९. इस पद के अनंतर ह० प्र० ख मे चार पद निम्नलिखित अधिक हैं—

हे कुरवक बक-बकी-बिनासन पिय कहुँ देखे।
हे लवंग नवरंग कान्ह कहुँ तैं इत पेखे॥
अहो बँस बर बंस संजो देखे हैं तुम।
गोपबंस-अवतस बिना अति भई संस हम॥
अहो पवन सुभ-गवन चकित हे जु रह्यो चल।
सुख के भवन दुखदवन रवन कितहूँ चितए बल॥
हे अशोक हरि सोक लोकमनि पियहिं बतावहु।
अहो पनस सुभ मनस तीय सब मरत जियावहु॥

जमुन निकट के विटप पूछि भई निपट उदासी ।
क्यों कहिहैं सखि महाकठिन ये तीरथ-बासी ॥१४॥
हे अवनी ! नवनीत-चोर चित-चोर हमारे ।
राखे कितहिं दुराइ बतावहु प्रानपियारे ॥१५॥
अहो तुलसी कल्यानि ! सदा गोबिंद-पद-प्यारी ।
क्यो न कहति तू नँद-नंदन[1] सो दसा[2] हमारी ॥१६॥
अपने मुख चाँदने चलैं सुंदरि तिन माहीं ।
जहँ आवै तम पुंज कुंज गहबर तरु छाहीं ॥१७॥
इहि विधि वन घन बूझि ढूँढ़ि उन्मत की नाईं ।
करन लगीं मन-हरन-लाल-लीला मन भाईं ॥१८॥
मोहन लाल रसाल कि लीला इनहीं सोहैं ।
केवल तनमय भईं कछु न जानति हम को हैं ॥१९॥
भृंगी भय ते भृंग होत इक[3] कीटु महा जड़ ।
कृष्ण भगति[4] ते कृष्ण होन[5] कछु नहि अचरज बड़ ॥२०॥
तब पायो पिय पद-सरोज को खोज रुचिर तहँ ।
जव, गद, अंकुस, कुलिस, कमल छबि जगमगात जहँ ॥२१॥
जो रज सिव अज कमला खोजत जोगी-जन-हिय ।
ते[6] सब वंदन करन लगीं सिर धरन लगीं तिय ॥२२॥
देखे[7] ढिग जगमगत तहाँ प्यारी तिय के पग ।
चितय परस्पर चकित भईं जुरि चलीं तिही मग ॥२३॥
आगे चलि पुनि[8] अवलोकी नवपल्लव सैनी ।
जहँ पिय सुसुम कुसुम लै सुकर[9] गुही है वेनी ॥२४॥
तहँ पायो इक मंजु मुकुर मनि-जटित विलोलै ।
तिहि बूझैं ब्रजबाल बिरह भरि सोउ न बोलै ॥२५॥
तर्क करत आपमाहि[10] अहो यह क्यों कर लीन्ह्यौ ।
तिन में तिनके हिय की जानि उन उत्तर दीन्ह्यौ ॥२६॥
बेनी गुहन समय छबिलो पाछैं बैठो जब ।
सुंदर बदन विलोकनि पिय[11] के अंतरु भयो तब ॥२७॥

---

१. नंदन । २. विथा । ३. वर । ४. प्रेम । ५. होयँ । ६. सो रज ।
७. निरखे । ८. एक । ९. सुहथ । १०. आपुन में । ११. मुख को ।

तातें मंजुल मुकुर सुकर लै वाल दिखायो।
श्री मुख को प्रतिबिंब सखी तब सनमुख आयो ॥२८॥
धन्न कहत भईं ताहि नाहिं कछु मन मैं कोपी।
निरमत्सर जे संत तिनकि चूड़ामणि गोपीं ॥२९॥
इन[1] नीके आराधे हरि ईश्वर बर जोई।
तातें निधरक अधर सुधारस पीवत सोई ॥३०॥
आगे चलि पुनि तनक दूरि देखी सो ठाढ़ी।
जासो सुंदर नंद कुँअर[2] पिय अति रति बाढ़ी ॥३१॥
गोरे तन की जोति छूटि कबि छाय रही धर।
मानहुँ ठाढ़ी कुँअरि सुभग कंचन अवनो पर ॥३२॥
जनु घन ते बिजुरी बिछुरी मानिनि-तनु काछे।
किधौं चंद्र सों रूसि चंद्रिका रहि गइ पाछे ॥३३॥
नयननि ते जलधार हार धोवत धर धावत।
भँवर उड़ाइ न सकति बास-बस मुख ढिग आवत ॥३४॥
'कासि कासि पिय महाबाहु' यो बदति अकेली।
महाबिरह की धुनि सुनि रोवत खग द्रुम[3] बेली ॥३५॥
दौरि[4] भुजनि भरि लईं सबनि लै लै उर लाईं।
मनहुँ महा निधि खोइ मध्य आधी निधि पाईं ॥३६॥
जित[5] तित ते सब अहुरि बहुरि जमुना तट आईं।
जहँ नँद-नंदन जग-बंदन पिय लाड़ लड़ाईं ॥३७॥

श्री भागवते महापुराणे दशमस्कंधे रासक्रीडाया गोपीविश्लेप
वर्णनो नाम द्वितीयोऽध्यायः।

तीसरा अध्याय

कहन लगीं अहो कुँअर कान्ह ब्रज प्रगटे जब ते।
अवधि[6] भूत इंद्रादि इहाँ क्रीड़त है तब तें॥ १॥

---

१. यह चंद्रिका मे नहीं है। २. सुवन। ३. मृग। ४. धाइ। ५. तिहि लै तहँ ते। ६. अवधि भूत इंदिरा अलंकृत ह्वै रही तब तें।

नैन-मूँदिबो महा शस्त्र लै हाँसी हाँसी[1] ।
मारत हौ कित सुहृथ नाथ बिनु मोल की दासी ॥ २ ॥
विष तैं जल तैं व्याल अनल तै चपला[2] झर तैं ।
क्यो राखी, नहिं मरन दई नागर, नगधर तैं ॥ ३ ॥
जब[3] तुम जसुदा-सुवन भये पिय अति इतराने ।
विश्व कुसल के काज विधिहि विनती कै आने ॥ ४ ॥
अहो मीत, अहो प्राननाथ यह अचरज भारी ।
अपननि[4] जौ मरिहौ करिहौ काकी रखवारी ॥ ५ ॥
जब पसु चारन चलत चरन कोमल धरि बन मैं ।
सिल त्रिन कंटक अटकल कसकत हमरे मन मैं ॥ ६ ॥
प्रनत मनोरथ करन[5] चरन सरसीरुह पिय के ।
कहा[6] घटि जैहै नाथ हरत दुख हमरे हिय के ॥ ७ ॥
फनी फनन पर अरपे डरपे नहिन नैकु तब ।
छबिली[7] छातिन धरत डरत कत कुँअर कान्ह अब ॥ ८ ॥
जानत[8] है हम तुम जु डरत ब्रजराज-दुलारे ।
कोमल चरन-सरोज उरोज कठोर हमारे ॥ ९ ॥
हरे[9] हरें धरि पीय हमहिं तौ प्रान-पियारे ।
कत अटवी महि अटत गड़त तृन कूट[10] न न्यारे ॥१०[11]॥

श्री भागवते महापुराणे दशमस्कंधे रासक्रीडायां नंददासकृतौ
गोपिका गीत उपालंभ वर्णनोनाम तृतीयोऽध्यायः ।

---

१. फाँसी । २. दामिनि । ३. जनु । ४. अपने जन । ५. करत । ६. रंचक रंचक काटि न हरियै दुख या ही के । ७. छतियन पर पग । ८. हम समझीं यह । ९. सनैं सनैं धरिए पिय हम को अधिक । १०. कूप अन्यारे । ११. हस्तलिखित प्र० ख मे इनके बाद दो पद निम्नलिखित अधिक हैं—

या परि तुम्हरी कथा अमृत सब ताप मिटावहि ।
अमर अमृत को तुच्छ करै ब्रह्मादिक गावहिं ॥

या परि जिन (करि) तुमने सुंदर (मोहन) मुख अवलोक्यो पिय ।
तिनकौं तार न मिटिहि रमिय नचिद कोविद हिय ॥

चौथा अध्याय

यहि विधि प्रेम-सुधानिधि में[1] अति वढ़ी कलोलैं।
ह्वै गई विह्वल वाल लाल सो अलवल बोलैं॥ १॥
तब तिनहीं में ते[2] निकसे नँद नंदन पिय यौं।
दृष्टि बंध कै दुरै वहुरि प्रगटै नटवर ज्यौं॥ २॥
पीत बसन बनमाल वनी[3] मंजुल मुरली हथ।
मंद मधुरतर[4] हँसत निपट मनमथ के मनमथ॥ ३॥
पियहि निरखि तिय बृंद उठीं सब इकै वार यों।
परि[5] घट आए प्रान बहुरि उझकत[6] इंद्री ज्यौं॥ ४॥
महा छुधित को जैस[7] असन सो प्रीति सुनी है।
ताहू तें सतगुनी सहस गुनि कोटि गुनी है॥ ५॥
कोउ चटपटि सो उर लपटी कोउ कर बर लपटी।
कोउ गल लपटी कहति भलैं भलै कान्हर कपटी॥ ६॥
कोउ नगधर[8]-वर पिय की गहि रहि परिकर पटुकी।
जनु नवघन ते सटकि दामिनी छटा[9] सु अटकी॥ ७॥
बैठे पुनि तिहिं पुलिन परम आनंद भयो है।
छबिली अपने छादन छवि सो बिछा दयो है॥ ८॥[10]
एक एक हरि देव सवहि आसन पर बैसे।
किए मनोरथ पूरन जिन मन उपजे जैसे॥ ९॥

स० १७५७ की प्रति मे दो पद और अविक दिए हुए हैं—

बुध जन मन हरनी बानी बिनु जरत सबै तिय।
अधर सुधासव सहित तनक प्यावहु ज्यावहु पिय॥
जो कैसे हूँ साँझ समै सुंदर मुख देखैं।
तौ यह विधना कूर करी कितनै न...॥

१. मधि वढि गईं। २. प्रगट भये। ३. धरे। ४. मुसुकात। ५. फिरि आए घट। ६. जागहिं। ७. जैसे भोजन। ८. नागर नगधर। ९. दामन या दामिनि। पाठा०—घन तें। १०. इसके अनंतर के दो पद केवल चार हस्त-लिखित प्रतियो में हैं।

ज्यों अनेक जोगीस्वर हिय में ध्यान धरत हैं।
इकहि बेर इक मूरति सब को सुख बितरत हैं॥१०॥
कोटि कोटि ब्रह्मांड जदपि इकली[1] ठकुराई।
ब्रज-देविन की सभा साँवरे अति छवि पाई॥११॥
त्यों[2] सब गोपिन सनमुख सुंदर श्याम बिराजै।
ज्यों नवदलनि[3] मंडलहिं कमल कर्णिका भ्राजै॥१२॥
बूझन लागी नवल[4] बाल नँदलाल पियहि तब।
प्रीति रीति की बात मनहिं मुसकाति जाति सब॥१३॥
इक भजते को[5] भजै एक अनभजतनि भजहीं।
कहो कान्ह ते कवन आहिं जे दुहुँअनि तजहीं॥१४॥
जदपि जगत-गुरु नागर जसुमति[6]-नंद-दुलारे।
पै[7] गोपिन के प्रेम अग्र अपने मुख हारे॥१५॥
तब बोले पिय[8] नव किसोर हम ऋनी तिहारे।
अपुने हिय[9] ते दूरि करौ सब[10] दोस हमारे॥१६॥
कोटि कलप लगि तुम प्रति प्रति उपकार करौं जौं।
हे मनहरनी तरुनी उऋन[11] न होउँ तबौ तौ॥१७॥
सकल विश्व अप बस करि मो माया सोहति है।
मोह[12]-मई तुम्हरी माया सोइ मोहिं मोहति है॥१८॥[13]

इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे रासक्रीडायां गोपी विरह तापोपशमन नाम चतुर्थोऽध्यायः।

---

१. एकहि। २. सब सुंदरि के। ३. नव दल मंडल मैं कमल करनिका।
४. ब्रज-जुवति जुगतिहिं जुगति। ५. कहुँ भजहिं बिनु भजेहूँ इक। ६. नगधर।
७. गोपिन-प्रेम के आगे अपने हौं। ८. ब्रजराज कुँवर हौं रिनी तुम्हारौ।
९. मन। १०. सब दोस हमारो। ११. उऋनी नहिन होउँ तौ। १२. प्रेम।
१३. सं० १७५७ की प्रति में पाँचवें अध्याय के आरंभ के दो पद देकर चतुर्थ अध्याय समाप्त किया गया है।

पाँचवाँ अध्याय

सुनि पिय के रस वचन सवनि[1] गँसि छाँड़ि दयौ है।
बिहँसि आपने उर[2] सों लाल लगाय लयौ है॥ १॥
कोटि कलपतरु लसत बसत पद पंकज छाँही।
कामधेनु पुनि कोटि कोटि बिलुटत रज माँही॥ २॥
सो पिय भए अनुकूल तूल कोउ भयो न है अब।
निरबधि सुख को मूल सूल उनमूल करी सब॥ ३॥
आरंभित अद्भुत सु रास उहि कमल-चक्र पर।
नमित[3] न कितहूँ होइ सबै निरतत विचित्र बर॥ ४॥
नव मर्कत-मनि स्याम कनक-मनिगन ब्रज बाला।
बृंदाबन कौं[4] रीझि मनहुँ पहिराई माला॥ ५॥
नूपुर,[5] कंकन, किंकिनि करतल मंजुल मुरली।
ताल मृदंग उपंग चंग एकै[6] सुर जुरली॥ ६॥
मृदुल मुरज टंकार तार झंकार मिली धुनि।
मधुर जंत्र की सार[7] भँवर गुंजार रली पुनि॥ ७॥
तैसिय मृदु पद पटकनि चटकनि कठतारन की।
लटकनि मटकनि झलकनि कल कुंडल हारन की॥ ८॥
साँवरें पिय सँग निरतत चंचल ब्रज की बाला।
मनु घन-मंडल खेलत मंजुल चपला[8] माला॥ ९॥
चंचल रूप लतनि सँग डोलति जनु अलि-सैनी।
छबिली तियन के पाछे आछे विलुलित बेनी॥१०॥
मोहन पिय की मलकनि ढलकनि मोर मुकट की।
सदा बसौ मन मेरे फरकनि पियरे पट की॥११॥
कोउ सखि कर पर तिरप बाँधि निरतत छबिली तिय।
मानहुँ करतल फिरत लट्टू लखि लट्टू होत पिय॥१२॥
कोउ नायक को भेद भाव लावन्य रूप सब।
अभिनय करि दिखरावति गावति गुन पिय के जब॥१३॥

---

१. क्रोध सब। २. कंठनि। ३. फिरि आए तिहि सुरतरु तर मोहन गिरिवर धर। ४. गुन। ५. बाजत नूपुर करतल कंकन। ६. बीना धुनि। ७. तार। ८. दामिनि।

तब नागर नँदलाल चाहि चित चकित होत यो।
निज प्रतिबिंब बिलास निरखि सिसु भूलि रहत ज्यौ ॥१४॥
रीझि परस्पर वारत अंबर भूषन अँग के।
और तबहिं बनि रहत तहाँ अद्भुत रँग रँग के ॥१५॥
कोउ मुरली सँग रली[1] रँगीली रसहि[2] बढ़ावति।
कोउ मुरली को छेकि छबीली अद्भुत गावति ॥१६॥
ताहि साँवरो कुँअर रीझि हँसि लेत भुजनि भरि।
चुंबन करि सुख-सदन बदन तैं दै तमोल ढरि[3] ॥१७॥
जग मै जो संगीत नृत्य सुर नर रीझत जिहि।
सो ब्रज तियन को सहज गवन आगम गावत तिहि ॥१८॥
जो[4] ब्रज देवी निरतत मंडल रास, महा छबि।
सो[5] रस कैसे बरनि सके इहँ ऐसो को कवि ॥१९॥
राग रागिनी समुझन कौं बोलिबौ सुहायो।
सो कैसे कहि आवै जो ब्रज-देविन गायौ ॥२०॥[6]
ग्रीव ग्रीव भुज मेलि केलि कमनीय बढ़ी अति।
लटकि-लटकि वह निर्त्तनि कापै कहि आवै गति ॥२१॥
अद्भुत रस रह्यो रास गीत धुनि सुनि मोहे मुनि।
सिला सलिल ह्वै चली सलिल ह्वै[7] रह्यो सिला पुनि ॥२२॥
पवन थक्यो, ससि थक्यौ, थक्यौ उडु-मंडल सिगरौ।
पाछे रवि रथ थक्यौ चलै नहिं आगे डगरौ ॥२३॥
थकित शरद की रजनी न जनी केतिक बाढ़ी।
बिहरत[8] सजनी स्याम जथा रुचि अति रति बाढ़ी[9] ॥२४॥
इहि बिधि बिबिध बिलास बिलसि निसि कुंज सदन के।
चले जमुन जल क्रीड़न ब्रीड़न बृंद[10] मदन के ॥२५॥
उरसि मरगजी माल चाल मद गज जिमि मलकत।
घूमत[11] रस भरे नैन गंडस्थल श्रमकन झलकत ॥२६॥

---

१. मिली। २. रँगहिं। ३. हरि। ४. यह पद हस्त० प्र० ख में कुछ पाठांतर के साथ सं० २२ के बाद है पर सं० १७५७ की प्रति में नहीं है। ५. तिहि कोउ कैसे बरनै अस इह आहि कौन कवि। ६. १८–२० तक तीन पद चंद्रिका में नहीं हैं। ७. सिल होइ गई। ८. बिलसत। ९. गाढ़ी। १०. कोटि। ११. राजत।

धाय जमुन जल धँसे लसे छबि परति न बरनी।
बिहरत मनु गजराज संग लिये तरुनी करनी ॥२७॥
तियनि के तन जल-मागन बदन तहुँ यों छबि छाये[1]
फूली हैं जनु जमुन कनक के कमल सुहाये[2,3] ॥२८॥
मंजुल[3] अंजुलि भरि भरि पिय को तिय जल मेलत।
जनु अलि सों अरविंद-बृंद मकरंदनि खेलत ॥२९॥
यह अद्भुत रस-रासि कहत[4] कछु नहिं कहि आवै।
सुक[5] सनकादिक नारद सारद अतिशय[6] भावै ॥३०॥
सिव मन ही मन ध्यावै काहू नाहि जनावैं।
सेस सहसमुख गावैं अजहूँ अंत न पावैं ॥३१॥
अज अजहूँ रज बांछित सुंदर वृंदाबन को।
भो न तनक कहुँ पावत सूल मिटत नहि तन को ॥३२॥[7]
जदपि पद[8]-कमल कमला अमला सेवत निसिदिन।
यह रस अपनै सपनै कबहूँ नहि पायौ तिन ॥३३॥
बिनु अधिकारी भए नहिन बृंदाबन सूझै।
रेनु कहाँ ते सूझै जब लौं बस्तु न बूझै ॥३४॥
निपट निकट घट मे ज्यो अंतरजामी आही।
विषय बिदूषित इंद्री पकरि सकै नहि ताही ॥३५॥
जो यह लीला गावै चित दै सुनै सुनावै।
प्रेम-भगति सो पावै अरु सब कै मन भावै ॥३६॥
हीन असर्धा निंदक नास्तिक धरम-बहिर्मुख।
तिन सों कबहुँ न कहै, कहै तौ नहिन लहै सुख ॥३७॥
भगत जनन सो कहु जिनके भागवत धरम बल।
ज्यों जमुना के मीन लीन नित रहत जमुन जल ॥३८॥
जदपि सप्त-निधि भेदक जमुना निगम बखानै।
ते तिहि धारहि धार रमत न छुअत जल आनै ॥३९॥
यह उज्जल रस-माल कोटि जतनन कै पोई।
सावधान ह्वै पहिरौ यहि तोरौ जिनि कोई ॥४०॥

---

१. छाजे। २. विराजे। ३. यह पद चंद्रिका में नही है। ४. कछुक छबि कहत न आवै। ५. सनक सनंदन। ६. अति जिय या अतिहीं। ७. ३२–४ तक पद चंद्रिका में नही हैं। ८. रमा रमनी कमनी पद सेवति।

श्रवन-कीर्तन सार सार सुमिरन को है पुनि।
ज्ञान-सार हरि-ध्यान-सार स्तुतिसार गहत गुनि ॥४१॥
अघ हरनी मन-हरनी सुंदर प्रेम वितरनी।
'नंददास' के कंठ बसौ नित मंगल-करनी ॥४२॥

इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे रासक्रीडाया नंददास
कृतौ पंचमोऽध्यायः।

परिशिष्ट

अति सुदेस कटि देस सिंह[1] सोभित जंघन[2] अस।
जोवन[3]-मद आकरसत बरसत प्रेम-सुधा-रस[4] ॥ १ ॥
सुंदर पद अरविंद-मधुर मकरंद मुक्त जहँ।
मुनिजन-मधुकर निकर सदा सेवत लोभी तहँ ॥ २ ॥[5]
जे संसार-अँधार-अगर मैं मगन भए वर।
तिन हित अद्‌भुत दीप प्रगट कीनो जू कृपा कर ॥ ३ ॥
श्री भागवत सुनाम परम-अभिराम परम मति[6]।
निगम सार सुकुमार[7] बिना गुरु कृपा अगम गति[8] ॥ ४ ॥
अब सुंदर श्री वृंदावन गुन गाइ सुनाऊँ।
सकल सिद्धिदायक नायक पै सब सिधि पाऊँ ॥ ५ ॥[9]
तिहिं सौरभ सों मत्त मुदित अलि धाए आवत।
सुक सारिका रतनमय श्री गोविंद-गुन गावत ॥ ६ ॥
थलज जलज झलमलत ललित बहु भँवर उड़ावै।
उड़ि उड़ि परत पराग कछू छवि कहति न आवै ॥ ७ ॥

---

१. सिंह सुंदर सोभित अस। २. मधन। ३. जुवतिन-मन। ४. मूल के ११ वें पद के बाद। ५. १२ वें के बाद। ६. गति। ७. सुखसार। ८. अति। १४ वें पद के बाद तीसरा व चौथा। ९. यह पद ह० प्र० क व ख में नहीं है पर ग के कोर पर १६ वें के बाद लिखा हुआ है अतः परिशिष्ट में रखा गया है।

जमुना जू अति प्रेम भरी नित बहैं सुगहरी।
मनि-मंडित महि माहिं दौरि जनु परसति लहरी[१] ॥८॥
कंठ मोति की माल ललित वनमाल धरे पिय।
मंद मधुर हरि पीत बसन फरकत करषत हिय॥ ९॥[२]
मोहन मुरली नाद कियो सुसुन्यो सब किनहीं।
जथा सुखद सुख रूप तथा बिधि परस्यो तिनहीं ॥१०॥
तरनि-किरन ज्यो मनि पषान सबहीं सो परसै।
सूयकांत मनि बिना नहिंन कहुँ पावक दरसै[३] ॥११॥
कोउक तरुनि गुनमय सरीर तन[४] सहित चली डकि।
मातु-पिता-पति-बंधु रहे झुकि न रही रुकि[५] ॥१२॥
चलत अधिक छबि फबी स्रवन मैं कुंडल झलकैं।
संकित लोचन चपल ललित[६] छबि बिलुलित अलकैं ॥१३॥
कहुँ दिखियरा क नाहिं सखी बन बीच बनी यौं।
बिजुरिन की सी छटा सघन बन माँझ चली ज्यौं ॥१४॥
आइ उमगि सो मिली रँगीली गोप-बधू अस।
नंद-सुअन सागर सुंदर सो प्रेम-नदी जस ॥१५॥
कृष्ण तुष्टिकर कर्म करैं जो आनि प्रकारा।
फल बिभचारि न होत होय सुख परम अपारा[७] ॥१६॥
कुंजन प्रति निकसत सोभित सुंदर आनन अस।
तमकि कुटी ते निकसत नव राका मयंक जस[८] ॥१७॥
कैक बचन कहे नर्म कैक रसवर-कर्मनि पर।
एक कहे तिय धर्म परम भेदक सुंदर-वर ॥१८॥

---

१. ६–८ तक पद मूल के ३० वें के बाद थे। अंतिम पंक्ति का पाठा० मनि मंदिर दोउ तीर उठत छबि अद्भुत लहरी। २. ३६ वें पद के बाद। ३. ४८ वे पद के बाद १०व११ वाँ पद थे। इनके अनतर एक छपी प्रति मे १५ पद नए मिलते हैं, ऐसा कहा जाता है पर उन्हें मैंने नहीं देखा। ४. रति। ५. ५५ वें के बाद। ६. चारु तहँ। ७, १३–१६ तक पद ५८वें के बाद। ८. ६७वें के बाद।

ये सब नवल किसोरी भोरी भरीं नेह रस।
तातें समुझि न परी करी पिय प्रेम बिवस अस[१] ॥१९॥
अरु तुम्हरे कर-कमल महा दूती यह मुरली।
राखे सबके धरम प्रेम अधरन-रस जुरली ॥२०॥
सुंदर पिय को वदन निरखि को[२] सो जु न भूल्यौ।
रूप सरोवर माँहि सरद[३] अंबुज जनु फूल्यो ॥२१॥
कुटिल अलक मनु[४] अनबोले मधुकर मतवारे।
तिन[५] मैं मिलि गए चपल नयन पिय मीन हमारे ॥२२॥
चितवनि मोहन मंत्र भौंह जनु मनमथ-हाँसी।
निपट ठगौरी आहि मंद मृदु[६] मादक हाँसी ॥२३॥
अधर सुधा के लोभ भई हम[७] दासि तिहारी।
ज्यों लुबधीं पद-कमलनि कमला चंचल नारी ॥२४॥
जौ न देहु यह अधर[८]-अमृत सुनि हो मोहन हरि।
करिहैं यह तन भसम बिरह-पावक मों गिरि परि ॥२५॥
तब[९] पिय पदवी पाइ बहुरि धरिहैं सुंदर अँग।
निधरक ह्वै इह[१०] अधर-अमृत पैहैं फिरिहै सँग[११] ॥२६॥
अद्भुत साँवल अंग बन्यों अद्भुत पीतांबर[१२]।
मूरति[१३] धरि सिंगार प्रेम-अंबर ओढ़े हरि[१४] ॥२७॥
बिलुलित[१५] उर बनमाल लाल जब चलत चाल बर।
कोटि मदन की भीर उठत इत लुठित[१६] पगन तर[१७] ॥२८॥
ब्रज-जुवतिन-कर मंडित मंडन करत फिरत बन।
अपनी द्युति के उडुगन उडुपति मनु खेलत बन[१८] ॥२९॥

---

१. १८–९ पद ७१वें के बाद। २. कै को नहिं भूलै। ३. सरस। ४. मुख कमल मनो। ५. जिन महँ मिलि रहे लाल नैन मन मधुप हमारे। ६. मुसकनि मृदु। ७. हरि। ८. अधरामृत तो सुनि सुंदर हरि। ९. पुनि पद पिय के पाइ। १०. मद अधरामृत फिरि पीवत हैं संग। ११. २०–२६ तक पद ८४वें के बाद। १२. पीत बसन। १३. मुकुट धरे। १४. मनु। १५. बिगलित। १६. पुनि गिरत चरन। १७. २७–८ पद ८७वें के बाद। १८. यह मूल के ८८वें पद का पाठांतर मात्र है।

फूलनि-माल बनावन[1] लाल पहिरि[2] पहिरावनि ।
सुभग[3] सरोज सुधावन[4] जोत मनोज मनावन[5] ॥३०॥
राजबेल अरु एल गेल मृगमद की वेल इत ।
नव कुर्वक केवरा केतकी गंध-बंधु नित[6] ॥३१॥
बैठे तहँ सुंदर सुजान सब[7] गुननिधान हरि ।
बिलसत बिबिध बिलास रास रस अति हुलास भरि[8] ॥३२॥
अहो सुभग बन सुगँध पवन नैसुक[9] थिर ह्वै रहि ।
सुख के भवन दुख-दवन रवन कहुँ[10] इत उत है लहि[11] ॥३३॥
अहो चंपक अहो कुसुम तुम्है छबि सब सों न्यारी ।
नेकु बताय जु देव जहाँ हरि कुंज-बिहारी[12] ॥३४॥
अहो असोक हरि सोक लोकमनि पियहि बतावहु ।
अहो पनस सुभ सनस[13] तीय सब मरत जियावहु[14] ॥३५॥
हे जमुना सब जानि बूझि तुम हठहि गहत हौ ।
जो जल जग उद्धरन ताहि तुम प्रगट वहत हौ ॥३६॥
अहो कमल सुभ बरन बरन कहु कहुँ हरि निरषे ।
कमल माल बनमाल कमल कर अति ही हरषे[15] ॥३७॥
हरि की[16] चलनि बोलि[17] हरि की सी हरि की हेरनि ।
हरि की सी गाइ[18] निवेरनि टेरनि अंबर फेरनि ॥३८॥
हरि की सी बनि[19] बन ते आवनि गावन रस रंगी ।
हरि की सी गेंदुक[20] रचन नचन पुनि होन त्रिभंगी ॥३९॥
कोउ इक अंबर को गिरिवर कर धर बोलत तब ।
निहडर इहि तर रहौ गोप गोपी गाइन सब[21] ॥४०॥

---

१. बनाय । २. पहिरत पहिरावत । ३. सुमन । ४. सुधावर ओज । ५. मनावत । ८९वे के बाद । ६. ९२वे के बाद । ७. सुख के निधान । ८. ९५वे के बाद । ९. थिर जु रही चलि । १०. इत ते चितए बलि । ११. दूसरे अध्याय के १० वे के बाद । १२. १२वे के बाद । १३. सरस । १४. १३ वे के बाद । १५. ३५-६ पद १४ वें के बाद । १६. की सी । १७. विलोकनि । १८. गाइनि घेरनि । १९. बन तें आवनि गावनि अति रस रंगी । २०. कंदुक रचन सचन नित ललित । २१. ३७-९ पद १९वें के बाद ।

चकित भई सब कहतिं कौन यह बड़ भागिनि अस।
परम कंत एकांत पाय पीवत जु अधर रस[१] ॥४१॥
सोऊ पुनि अभिमान भरी जब कहन लगी तिय।
मों तें चलो न जाय जहाँ तुम चलन चहत पिय[२] ॥४२॥
तन की जोति जगमगै छूटि रही छाजत है धर।
मानहुँ ठाढ़ी ससि बिनु रोहिनि ससि मंडल पर ॥४३॥
वा सुंदरि की दसा देखि कहत न बनि आवै।
विरह भरी पुतरी जु होइ तौ कछु छवि पावै[३] ॥४४॥
कोउ चुंवति मुख-कमल कोऊ भुअ[४] भाल सु अलकैं।
जा मँह पिय[५] संगम की मंजुल श्रमकन झलकैं ॥४५॥
पोछति अपने अंचल रुचिर[६] दृगंचल ती के।
पीक भरे जु कपोल लोल रद[७] छद जहँ पी के[८] ॥४६॥
सक कों सब[९] सुख बरसत सरसत[१०] बड़ हितकारी।
तिन महि पुनि ये गोप वधू प्रिय निपट तिहारी[११] ॥४७॥
जब पुनि[१२] वन को जात सात[१३] जुग सम बीतत छिनु।
दिन बीतत जिहि भाँति हमहिं जानति पिय तुम बिनु ॥४८॥
जब पुनि विपिन ते आवत सुंदर आनन देखैं।
तब इन विधिना कूर रची[१४] लै नैन निमेखैं[१५] ॥४९॥
कहाँ हमारी प्रीति कहाँ तुमरी निठुराई।
मनि पपान सों छेकि दई सो कछु न बसाई[१६] ॥५०॥
दौरि लपटि गईं ललित पियहिं[१७] बनि कहत न आवै।
मीन उछरि जस परहिं पुलिहिं पुनि पानी पावैं[१८] ॥५१॥
कोउ पिय भुज लिपटाय रहीं नव नारि नवेली।
जनु सुंदर सिंगार विटप लपटी छवि वेली ॥५२॥

---

१. ५३ वें के बाद। २. ३० वें के बाद। ३. ४२-३ पद ३३ वें के बाद। ४. भुज। ५. सुंदर स्याम। ६. सों दृग चंचल। ७. मुख चंद सों। ८. ४४-५ पद ३६ वें के बाद। ९. सों। १०. ससि जो बढ़त इढारी। ११. तीसरे अध्याय के पहिले के बाद। १२. कानन कों। १३. सहस। १४. फर धरी। १५. ४७-८ पद छठे के बाद। १६. ७ वें के बाद। १७. लाल मुख के। १८. चौथे अध्याय के १६ के बाद।

कोउ कमल[1]-पद कमल-कुचन बिच राखि रही यों।
परम कृपन धन पाइ हिये[2] सो लाइ रहत ज्यों ॥५३॥
कोउ पिय रूप नयन भरि[3] उर मै धरि धरि ध्यावति।
मधु माँखी[4] लौ डीठि दुहूँ दिसि अति छबि पावति ॥५४॥
कोउ दसननि दल[5] अधर विंब गोविदहिं ताड़ति।
कोउ इक चारु[6] चकोर चखनि मुख चंद निहारति[7] ॥५५॥
कहुँ काजल कहुँ कुमकुम कहुँ कहुँ पीक लीक[8] वर।
तहँ राजत नँदनंद कंद कंदर्प-दर्प-हर ॥५६॥
जोगी जन बन जाइ जतन करि कोटि[9] जनम पचि।
अति निर्मल करि राखत हिय रुचि आसन रचि ॥५७॥
कछु[10] धिनात तहँ जात नवल नागर मोहन[11] हरि।
व्रज[12] की तियन के अंबर पर बैठे अति रुचि करि[13] ॥५८॥
जे भजतन को भजैं सजैं अपने स्वारथ हित।
जैसे पसु जु परस्पर चाटत सुख मानत चित ॥५९॥
जे अनभजतनि भजैं तौन धरमी सुखकारी।
जैसे मातु पितादि करैं सुत की रखवारी ॥६०॥
जे दुहुअनि को तजै अहै ते गुरुद्रोही मै।
आत्म राम कै पूर्ण काम कै अकृतज्ञी हैं ॥६१॥
अकृतज्ञी हौ नाहि तुमरे चित प्रेम बढ़ावन।
निधन महाधन लाभ सरिस चित चोप लगावन[14] ॥६२॥
तुम जु करी सो कोउ न करी हे नवल किसोरी।
लोक वेद की सुदृढ़[15] स्रिखला तृन सम तोरी[16] ॥६३॥
कलपवृच्छ जड़ सुनिय सकल चितनि फलदायक।
यह व्रजराज-कुमार सबै सुखदायक नायक[17] ॥६४॥

---

१. कोमल। २. छाति। ३. मग। ४. मधुर मिष्ट ज्यो वृष्टि दसौं दिसि। ५. दिए। ६. भैन चकोर चारु। ७. ५१–४ पद ७ वें के बाद। ८. लगी। ९. अनत जतन पचि। १०. कछु छिन तहाँ न जात। ११. सुंदर। १२. जुवतिन के आसन पर ऐसे वैठे रुचि करि। १३. ५५–७ पद ८ वें के बाद। १४. ५८–६१ पद १४ वें के बाद। १५. दृढ़ साकर। १६. १८ वें के बाद। १७. पाँचवें अध्याय के प्रथम के बाद।

एक[1] बार ब्रजबाल लाल सब चढ़े जोर कर।
नव तन इत उत होत सबै निर्तत विचित्र बर ॥६५॥
मनि[2] दर्पन सम अवनि[3] रमनि तापर छवि देहीं।
बिथुरित[4] कुंडल अलक तिलक झुकि[5] झाई लेहीं ॥६६॥
एकहि मूरति ललित लाल आलात की नाईं।
सबके अंसन धरी साँवरे बाँह सोहाईं ॥६७॥
कमल कर्णिका मध्य जु स्यामा[6] स्याम बनी छवि।
द्वै द्वै गोपिअन बिच पुनि[7] मंडल माहि लखे फबि ॥६८॥
मूरति एक अनेक लगत[8] अद्भुत सोभा अस।
अविकल[9] दरपन मॅडल माहि विधु आनि परत जस ॥६९॥
सकल तियन के मध्य साँवरो पिय सोभित अस।
रत्नावलि सधि नील मनी अद्भुत झलकै जस[10] ॥७०॥
मिलि जु भई इक अद्भुत धुनि तिहि सुनि सुनि मोहें।
सुर-नर-गन-गंधर्व कछु न जानत हम को हैं[11] ॥७१॥
अनाधिकारी जिते तिते सुनि सुनि मुरझाए।
अद्भुत रास-विलास सुरस देखन नहिं पाए ॥७२॥
वृन्दावन को त्रिगुन[12] पौन सो[13] बिजन बिलोलै।
जहँ जहँ श्रमित बिलोकै तहँ तहँ रंग[14] भरयो डोलै ॥७३॥
राग-रागिनी-मंडल ढिग तहँ ठाढ़े गावत।
ताल पखावज आवज बीना मुरज बजावत ॥७४॥
ललना अद्भुत राग लेति सोभित सोभा यों।
सुभग घटा पर छटा छबीली थिरकि रहत ज्यों ॥७५॥
उड़े[15] अरुन पट बास रास मंडल मंडित अस।
मनो सघन अनुराग घटा उमड़त[16] घुमड़त रस ॥७६॥

---

१. एकै बार ब्रजबाल फिरनि जा पर सहसन वर। निहुरनि कतहूँ होइ सबै नर्तन विचित्र वर। २. पुनि। ३. अवनी रमनी अति। ४. बिलुलित। ५. भइ झलकन। ६. राधिकालाल। ७. जु मोहनलाल बने फबि। ८. देखि। ९. मंजुल मुकुर मंडली बहु प्रतिबिंब वधू जस। १०. ६४-६ पद ४ थे के बाद। ११. ७०-८१ तक ७वें के बाद। १२. त्रिविध। १३. जुत। १४. रस। १५. उडुगन अरुन अधीरन अद्भुत ससि मंडल सी। १६. घन उमड़नि जैसी।

ताकी घूँघरि-मत मधुप बन भ्रमत जु ऐसें।
प्रेम जाल के गोल कछुक कवि उपजत जैसे ॥७७॥
श्रम भरि सुंदर बुंद रंग भरि कहुँ[1] कहुँ बरसत।
प्रेम[2] भजत जिनके जिय तिनके हिय अति सरसत ॥७८॥
पिय के मुकुट की लटकनि मटकनि[3] मुरली-रव अस।
कुहुकि कुहुकि मनो[4] नाचत मंजुल मोर भयो रस ॥७९॥
अपन[5] अपन जतगती भेद नर्तन लागति जब।
अलि गँधर्व-नृप से सब सुंदर गान करत तब ॥८०॥
कबहुँ[6] परस्पर निर्तत लटकनि मंडल डोलनि।
कोटि अनृत सम मुसकनि मंजुल ततथेइ बोलनि ॥८१॥
कल किंकिनि गुञ्जार तार नूपुर बीना पुनि।
मृदुल मुरज टंकार भँवर झंकार मिली धुनि ॥८२॥
सिर ते कुसुम जु सुंदर बरसत अति आनँद भरि।
जनु पद गति पर रीझि अलक पूजति पुहपनि करि[7] ॥८३॥
कोउ तिनहूँ ते अधिक अमिस्रित सुर जुत गति नइ।
सबको छेकि छबीली अद्भुत गान करत भइ[8] ॥८४॥
गंडन[9] सो मिलि ललित गंड-मंडन मंडित छबि।
कुंडल सो कच उरुझे मुरुझे जहँ वड़े कबि ॥८५॥

---

१. कछु कछु सरसत। २. प्रेम भक्ति विरला जिनके। ३. मुरली नाद भरी रस। ४. पै बाजत मंजुल सोर भयो अस।

५. आपु आपुनी जाति भेद तहँ नृतन लगीं सब।
गंधरब मोहे ता छिन सुंदरि गान करति जब ॥

६. छबि सो निरतति लटकति मटकति मंडल डोलति।
कोटि अमृत मुसकाति मृदुलता थेइ थेइ बोलति ॥

७. १०वें के बाद।

८. १६वे के बाद।

पाठा० कोउ उन ते अति गावत सुर लय लेत तान नइ।
सब संगीत छकै जु सुंदरी गान करत भइ ॥

९. भुजदंडनि सो मिलति ललित मंडल निरतत छबि।
कुंडल कच सो उरझ सुरझि नहि बरनि सकै कवि ॥

अद्भुत रस रह्यो रास कहत कछु नहिं कहि आवै ।
ज्यों मूकै रस को चसको मनहीं मन भावै ॥८६॥
कही न परै महेस सेस पैं गुरु गनेस पैं ।
चकित जहाँ सरसुती इती मति कहँ सुरेस पैं ॥८७॥
कुसुम धूरि धूँधरे कुंज मधुकरन पुंज जहँ ।
ऐसे ही रस अलस लटकि कीनौ प्रवेस तहँ ॥८८॥
नव पल्लव कर सैनी अति सुख दैनी तिहँ तर[1] ।
तापर[2] सुमन उसेसी मधुर निरेसी तिहि पर ॥८९॥
कबहुँ परस्पर छबि सों भरावत प्रेम-मदन भर ।
प्रकृत काम छाती अजहूँ धरकत जाके डर ॥९०॥
बिलसति[3] अति रति जुद्ध रुद्ध सों रत रस-सागर ।
उज्ज्वल प्रेम उजागर सब गुन आगर नागर ॥९१॥
हार हार में उरझि उरझि बहियाँ में बहियाँ ।
नील पीत पट उरझि उरझि बेसर नथ महियाँ[4] ॥९२॥
श्रम भरि सुंदर अंग रास[5] रस ललित-बलित गति ।
अंसनि पर भुजबर[6] दीने सोभित सोभा अति ॥९३॥
कमल वदन पर अलकनि[7] कहुँ कहुँ श्रम जल[8] झलकनि ।
सदा बसौ मन मेरे मंजु[9] मुकुट की लटकनि[10] ॥९४॥
टूटि मुकुति की माल छूटि रहि साँवरे उर पर ।
जनु[11] सिंगार पहार ते सुरसरि धाइ धसीं धर ॥९५॥
घूमत रस भरे नैन चलनि मलकनि मनहरनी ।
जनु गजराज बिराजै सँग लिये तरुनी करनी ॥९६॥
जहँ काहू को गम ना जमुना अति सुख दैनी ।
जगमगाति तट घाट महा मनिजटित निसैनी ॥९७॥
कल बिटपनि सों लपटि लता फूली झूली जल ।
बिलसत सारस हंस बंस बिगसत अंबुज दल ॥९८॥

---

१. गिरसैं । २. सुंदर सुमन सु निरखत अति आनंद हिय बरसैं । ३. बिहँसति रति अयरुद्ध जुद्ध सुरत रस सागर । ४. ८४–२१ तक २१वें के बाद । ५. स्रम अति सिथिल ललित गति । ६. दिए लटक सोभा सोभित अति । ७. अलक छूटि । ८. की । ९. मोर । १० २७ वें के बाद । ११. मनु गिरि तें सुरसरी जु है बिधि गिरी धाइ धर ।

तहँ अद्भुत जल-केलि वनी छबि कही न परई।
जिहि चितवत चित रंचक बंचक कलिमल हरई॥६६॥
कोउ आपुन ही धँसी लसी पिय सों रति मानी।
कोउ पट गहि कोउ लट गहि छनि सो पानी आनी[1]॥१००॥
मुख कमलनि के आगे जल अरबिंद लगे अस।
भोर भएँ भौननि के दीपक मंद परत जस॥१०१॥
कबहुँ परस्पर[2] छिरकत मंजुल अंजुल भरि भरि।
अरुन कमल मंडली फाग खेलत रस रँग[3] अरि॥१०२॥
रुचिर दृगंचल चंचल अंचल मैं[4] झलकत अस।
सरस कनक के कंजन खंजन जाल परत जस॥१०३॥
कमलनि तजि तजि अलिगन मुख-कमलनि आवति जब।
छबि सो छबीली वाल छिपति जल मैं बुड़कनि तब॥१०४॥
जमुना जल में दुरि सुरकामिनि करत कलोलैं[5]।
जनु[6] घन भीतर भीतर ससि गन तारे डोलैं॥१०५॥
अलिगन कमलनि तजि कै मुख-कमलनि पर आवत।
छबि सो छबिले छैल भेटि तेहि छिनहि उड़ावत॥१०६॥
कवहुँक सब मिलि बाल लाल को छिरकति, छबि अस।
मनसिज पायो राज आजु अभिपेक होत जस॥१०७॥
निकसि[7] सुंदरी भाँति कांति मन ही मन भावै।
बाल-बैस छबि जैसे[8] कबि पैं कही न आवै॥१०८॥
भीजि बसन तन लपटि निपटही[9] अद्भुत छबि सब।
नैननि के नहिं बैन बैन के नहिन[10] नैन तब॥१०६॥
रुचिर निचोरनि चुवत नीर लखि भे अधीर तनु।
तन बिछुरन की पीर चीर अँसुअन रोवत जनु॥११०॥
तब इक द्रुम-तन चितै कुँअर अस[11] अज्ञा दीनी।
निरमोलक[12] अंबर भूपन तिहिं[13] बरपा कीनी॥१११॥

---

१. ६४-६६ तक ११ वें के वाद। २. छिरकति छेलि जु। ३. मानो। ४. वर जगमग। ५ विलोलैं। ६. मानों तब घन मध्य दामिनी दामिनि डोलैं। ७ तिनकी सुंदर काति भाँति मनमोहन भावै। ८. कवि पैं कबहूँ कहत न आवै। ६. जु छवि नहिं जाइ कही है। १०. नेन नहीं है। ११. वर। १२. निरमल। १३. तिनही।

अप[1] अपनी रुचि के पहिरे छबि[2] परत न बरनी।
जग[3] मोहिनी जिती तिनकी मोहिनि ब्रज-घरनी ॥११२॥
ब्रह्म मुहूरति कुँअर कान्ह निज[4] घर आए तब[5]।
गोपनि अपनी गोपी अपने ढिग पाईं[6] सब ॥११३॥
ऐसे ही जीति सरद की परम मनोहर रातैं।
क्रीड़त हैं पिय रसिक सुदिन दिन अन अन भातैं ॥११४॥
नित्त रास-रसमत्त नित्त गोपीजन-वल्लभ।
नित निगम यों कहत नित्त नव तन अति दुर्लभ[7] ॥११५॥
यह लीला गोपाल लाल की परम रसावधि।
सिव सुक नारद सारद तिनको इहै महानिधि[8] ॥११६॥
नैन[9] हीन के हेत नवल नागरि नारी जस।
मंद हँसनि सुकटाच्छ लसनि वह का जानै रस[10] ॥११७॥
हरि[11] दासन को संग करै हरि-लीला गावै।
परम कांत एकांत भगति[12] रस तौ भल पावै[13] ॥११८॥

---

१. अपनी। २. बसन बनी छबि। ३. जग में मोहन आए तिनकों ब्रजतिय मोहिनी सब। ४. सब। ५. जब। ६. जानीं तब। ७. १००–१४ नम्बर २६ वें के बाद। ८. २६ वें के बाद। ९. नैन होन रसिनायक। १०. ३६ वें के बाद। ११. रसिक जननि के संग रहे। १२. परम रस सोई। १३. ३८ वें के बाद।

श्रीकृष्ण-सिद्धांत-पंचाध्यायी

जै जै जै श्रीकृष्ण रूप गुन कर्म अपारा।
परम धाम जग धाम परम अभिराज उदारा॥ १॥
आगम निगम पुराण स्मृती गन जे इतिहासा।
अवर सकल विद्या विनोद जिहि प्रभुक उसासा॥ २॥
रूप, गंध, रस, शब्द, (स्पर्श) जे पंच विपय वर।
महाभूत पुनि पंच पवन पानी अंबर धर॥ ३॥
दस इंद्रिय अरु अहंकार महँ तत्व त्रिगुन मन।
यह सब माया बर विकार कहैं परमहंस मन॥ ४॥
सो माया जिनकै अधीन नित रहत मृगी जस।
विश्व-प्रभव-प्रतिपाल-प्रलय कारक आरसु-बस॥ ५॥
जागृति स्वप्न सुपुप्ति धाम पर-ब्रह्म प्रकासे।
इंद्रियगन, मन, प्रान इनहिं परमातम भासें॥ ६॥
षटगुन अरु अवतार. धरन नारायन जोई।
सबकौ आश्रय अवधि भूत नँदनंदन सोई॥ ७॥
शिशु कुमार पौगंड धर्म पुनि वलित ललित लस।
धर्मी नित्य किशोर नवल चितचोर एकरस॥ ८॥
जे जग में जगदीस कहै अति रहे गर्व भरि।
सब कर कियौ निरोध अपुन निज सहज खेल करि॥ ९॥
महा-मोहनी-मय माया मोहे तिरसूली।
कोटि कोटि ब्रह्मांड निरखि विधि हू गति भूली॥१०॥
महाप्रलै कौ जल बल लै गिरि पर बरस्यौ हरि।
न जनो गरब गिरि ते गिरि कत गयौ धूरि मूरि ररि॥११॥
ब्रह्मादिक को जीति महामद मदन भरयौ जब।
दप्प-दलन नँद-ललन रास-रस प्रगट कस्यौ तब॥१२॥
अवधि-भूत गुन रूप नाद तर्जन जहँ होई।
सब रस कौ निर्त्तास रास रस कहिए सोई॥१३॥
ननु विपरीत धरम यह परम सुंदर परसन करि।
कवन धर्म रखवारो अनुसर जीव सदृश हरि॥१४॥

काल-कर्म-माया-अधीन ते जीव बखानें।
विधि-निषेध अरु पाप पुन्य तिन में सब सानें ॥१५॥

परम धरम परब्रह्म ज्ञान विज्ञान प्रकासी।
ते क्यों कहिए जीव-सदृश प्रति शिखर-निवासी ॥१६॥
कर्म काल अनिमादि योगमाया के स्वामी।
ब्रह्मादिक की टांत जीव सर्वांतरजामी ॥१७॥

वहे जात संसार धार जिय फंदे फंदन।
परम तरुन करुना करि प्रगटे श्रीनँदनंदन ॥१८॥
सघन सच्चिदानंद नंदनंदन ईश्वर जस।
तैसेई तिनके भगत जगत में भये भरे रस ॥१९॥

श्री वृंदावन चिद्घन घन घन घन छवि पावे।
नंद सूनु को नित्य सदन श्रुतिगन जिहि गावे ॥२०॥
सुंदर सरद सुहाई रितु जहँ सदा बिराजै।
नव अखंड मंडल ससि सब ही रजनी भ्राजै ॥२१॥

जमुन तीर वलवीर चीर हरि वरु जिहि दीनौं।
तिन सँग विविध विलास रास रमिवे मन कीनौं ॥२२॥
तिहि छिन सोइ उडुराज उदित सुरराज-सहायक।
कुंकुम मंडित प्रिया-वदन जनों रंजित नायक ॥२३॥

कमल नैन पिय को हिय सुंदर प्रेम समुद जस।
पूरन शशितनु निरषि हरषि वाढ़ी तरंग-रस ॥२४॥
अरुन किरन मिलि अरुन भयौ छवि कहि नहिं जाही।
जनु हरि-हिय अनुराग निकसि विकस्यो वन माँही ॥२५॥

शब्द-ब्रह्म-मय वेनु बजाय सवै जन मोहे।
सुर-नर-गन गंधर्व कछु न जानैं हम को हैं ॥२६॥
परम मधुर मादक सुनाद जिहि व्रज-जुव मोही।
त्यों हीं धुनि सुनि चलीं छटा सी अतिसय सोही ॥२७॥

इक पहिलिये गगन मन सुंदरि घन मूरति हरि।
अब मधुराधर मधु मिलाय बोली सुनाय करि ॥२८॥
सुनि उमगीं अनुराग भरी सावन-सरिता-जस।
सुंदर नगधर नागर-सागर मिलन वढ़ी रस ॥२९॥

कोइ गमनी तजि सौंहन, दौंहन, भोजन, सेवा।
अंजन, मंजन, चंदन, द्विज-पति-देव निषेवा ॥३०॥

धर्म, अर्थ अरु काम कर्म इह निगम निदेसा।
सव परिहरि हरि भजति भई करि वड़ उपदेसा ॥३१॥

प्रीतम सूचक शव्द सुनत जव श्रुति रति बाढ़ै।
होत सहज सब त्याग नाग जिमि कंचुकि छाँड़ै ॥३२॥

जदपि कहूँ के कहुँ बहु अभरन (आनि) बनाए।
हरि पिय पै अनुसरन जहाँ क तहाँ चलि आए ॥३३॥

कृष्ण तुष्ट करि कर्म करै जो आन प्रकारा।
फल बिभचार न होइ होइ सुख परम अपारा ॥३४॥

मातु, पिता, पति-कुल-पति, सुत, पति रोक रहे सब।
नहिंन रुकीं रस धुकीं जाय सो मिलीं तहाँ सब ॥३५॥

मोहन नंद-सुवन पिय हिय हरि लीनौ जाकौ।
कोटि कोटि बिघनेश बिघन करि सकै न ताकौ ॥३६॥

जे अरबर में अति अधीर रुकि गईं भवन जब।
गुनमय तनु तजि चित्स्वरूप धरि पियहिं मिली तब ॥३७॥

ज्ञान बिना नहिं मुकति इह जु पंडित गन गायो।
गोपिन अपनो प्रेम-पंथ न्यारोइ दिखरायो ॥३८॥

ज्ञान आतमानिष्ठ गुनत यों आतमगामी।
कृष्ण अनावृत परम ब्रह्म परमातम स्वामी ॥३९॥

नाहिंन कछु शृङ्गार कथा इहि पंचाध्याई।
सुंदर अति निरवृत्त परा तें इती वड़ाई ॥४०॥

जिन गोपिन कौं प्रेम निरखि शुक भये अनुरागी।
ब्रह्मानंद मगन ते निकसे ह्वै वैरागी ॥४१॥

पुनि तिनकी पद-पंकज-रज अज अजहूँ छिछै।
उद्धौ बुद्धि बिशुद्धनु सौं पुनि सो रज इंछै ॥४२॥

संकर नीकैं जानत सारद नारद गानत।
ताते सबै जगत-गुरु गोपिन गुरु करि मानत ॥४३॥

ब्रजरवनी गजगवनी कानन में जव आईं।
सुंदर बृंदावन घन पन पन घन वृधि पाई ॥४४॥

त्रिगुन पवन लै आगैं ह्वै अलि धाए आए।
अवर सहेली चेली तिनहूँ अति सुख पाए ॥४५॥
मनिमय नूपुर कंकन किंकिनि के झनकारा।
तैसिय अलि झंकारी चंचल कुंडल हारा ॥४६॥
आनि हरि निकट बाढ़ी सोहति प्रेम नवेली।
मानहुँ सुंदर सुरतरु चहुँ दिसि आनँद बेली ॥४७॥

नागर गुरु नँदनंदन बोले अति अनुरागे।
काम बिपै पै वचन कहे सब रस के पागे ॥४८॥
जे पंडित शृङ्गार ग्रंथ मत यामैं सानैं।
ते कछु भेद न जानै हरि को बिपई मानैं ॥४९॥

अनाकृष्ट मन कृष्ण दुष्ट-मद-हरन पियारे।
जहँ जहँ उज्जल परम धरम ताके रखवारे ॥५०॥
धर्म अर्थ पर वचन कहे ते काहे ते इत।
ब्रज देविन के शुद्ध प्रेम रस प्रगट करन हित ॥५१॥

सुनि पिय के अस वचन चकित भईं ब्रज की बाला।
गद्गद कंठ रसाला बोलीं यौं तिहिं काला ॥५२॥
अहो अहो जसुमति-प्यारे (तुम) नँदलाल दुलारे।
जिनि कहो वचन अन्यारे तुम तौ प्रान पियारे ॥५३॥
धर्म कह्यो दृढ़ता कौं जो धर्म (हि) रत होई।
जा धर्महिं आचरन समल मन निर्मल होई ॥५४॥
मन निर्मल भये सुबुध तहाँ विज्ञान प्रकासै।
सत्य ज्ञान आनंद आत्मा तब आभासै ॥५५॥
तब तुम्हरी निज प्रेम भगति रहि सेई आवै।
तौ कहुँ तुम्हरे चरन कमल कौं निकटहिं पावैं ॥५६॥

तिन कहुँ हो तुम प्रान नाथ फिरि धर्म सिखावहु।
समुझि कहौ पिय बात चतुर-सिरमौर कहावहु ॥५७॥

अरु जे शास्त्र-निपुन जन ते सब करहिं तुमहि रति।
तुम अपने आतमा नित्य-प्रिय नित्य परमगति ॥५८॥
दार गार सुत पति इन करि (कहो) कवन आहि सुख।
बढ़ै रोग सब दिन दिन छिन छिन देहिं महा दुख ॥५९॥

ब्रह्मादिक जा चितवनि लगि नित सेव करी है।
सो लक्ष्मि सब छाँड़ि तिहारै पाँइ परी है ॥६०॥
तैसेहि हम सब छाँड़ि तिहारे चरननि आईं।
नहिन तजौ, पिय भजौ, तजौ ए सब निठुराई ॥६१॥
सुनि गोपिन के प्रेम-बचन हँसि परे भरे रस।
जदपि आत्माराम रमन भए नवल नेह बस ॥६२॥
बिहरत बिपिन विहार कहत कबु नहि कहि आवै।
वार वार तन पुलकित शुक मुनि तिहि (तहँ) गावै ॥६३॥
अवधिभूत नागर नगधर कर पारस पायो।
अधिक अपनपौ जानि तनक सौभग-मद छायो ॥६४॥
गर्वादिक् जे कहे काम के अंग आहि ते।
शुद्ध प्रेम के अंग नहिंन जानहिं प्राकृत जे ॥६५॥
कमलनयन करुनामय सुंदर नंदसुवन हरि।
रम्यो चहत रस रास इनहिं अपनी समसरि करि ॥६६॥
तातै तिनहीं माहिं तनक दुरि रहे ललन यौं।
दृष्टिबंध करि दुरै वहुरि प्रगटै नटवर ज्यौं ॥६७॥
अलक पलक की ओट कोटि जुग सम जिन जाहीं।
तिन कहुँ पल छिन ओट कोट दुख गनना नाहीं ॥६८॥
सुधि न रही कछु तन मैं बन मै बूझति डोलैं।
निगम-सार सिद्धांत बचन ते अल वल वोलै ॥६९॥
कृष्णविरह नहि विरह-प्रेम उच्छलन कहावै।
निपट परम सुख-रूप इतर सब दुख बिसरावै ॥७०॥
ढूँढ़न लगि ब्रजवाल लाल मोहन पिय को तहँ।
नूत, प्रयाल, कदंब, निंब अरु अंब, पनस जहँ ।७१॥
आवहु री ए बड़ महान वट पीपर बूझैं।
मोहन पियहि बतैहौ जौ कहुँ इन कौं सूझै ॥७२॥
आगै चलि ब्रज युवती सेवति आनि परी तहँ।
नूत, प्रयाल, कदंब, निंब् अरु अंब, पनस जहँ ॥७३॥
सखि ए तीरथ वासी पर-उपकारी सब दिन।
बूझहु री नँदनंदन मगु इक सूझत है किन ॥७४॥

रूप गुन भरी लता जे जु सोहत बन माँही।
नँदनंदन इन बूझौ निरखे हैं किधौं नाहीं ॥७५॥
इहि विधि बन घन बूझि प्रेम बस लगति सुहाई।
करन लगीं मनहरन लाल लीला मन भाई ॥७६।
सिसु कुमार पौगंड वलित अभिनय दिखराए।
कमलनैन-प्रापत्ति उपाइ सब लोक सिखाए ॥७७॥
अरु जे आहि उपासक तिनहिं अभेद बतायौ।
सिसु कुमार पौगंड कान्ह एकै दिखरायो ॥७८॥
अवतारी अवतार-धरन अरु जितक बिभूती।
इह सब आश्रय के अधार जग जिहि की ऊती ॥७९॥
ताते जग गोपी पुनि पुनि सुक मुनि हू गावैं।
सनक सनंदन जगवंदन तेऊ सिर नावैं।।८०॥
नँद-नंदन लीला करि ललना धन्य भईं जब।
सुंदर चरन सरोज खोज निकटहिं पायौ तब ॥८१॥
सुनि सब धाईं आईं जीवनिमूरि सी पाई।
पुनि पुनि लेहि बलाइ आपुनी करति बड़ाई ॥८२॥
सखि इह कृष्ण-चरन-रज अज शंकर शिर धारैं।
रमा रमन पुनि धारैं अपनें दोप निवारैं ॥८३॥
पुनि पेखे पिय-ढिग प्यारी प्रिय अंक (लगी) जब।
कवन आहि इह बड़-भागनि यों कहन लगी तब।।८४॥
इन नीकें आराधे हरि ईश्वर वर जोई।
तौ पिय-अधर-सुधा रस पीवत निधरक होई ॥८५॥
सोऊ पुनि अभिमान भरी तन कहन लगी तिय।
मो पैं चल्यो न जाइ जहाँ तुम चल्यौ चहत पिय ॥८६॥
जब जब जो उद्गार होइ अति प्रेम विध्वंसक।
सोइ सोइ करैं निरोध गोप-कुल केलि-उतंसक ॥८७॥
नहिं कछु इन्द्रिय-गामी कामी कामिनि कैं बस।
सब घट अंतरजामी स्वामी परम एक रस ॥८८॥
नित्य, आतमानंद, अखंड स्वरूप, उदारा।
केवल प्रेम सुगम्य अगम्य अवर परकारा ॥८९॥

तातें तिनहीं माहिं पुह्यो परि दूरि न भायौ।
सा बाला अति बिलपि अखंडित प्रेम दिखायौ ॥९०॥
जैसोइ कृष्ण अखंड-रूप चिद्रूप उदारा।
तैसोइ उज्जल रस अखंड तिन कर परिवारा ॥९१॥
जगत-उधारन कारन गुरु भये मधु दिखरावै।
कामी कामिन समझावै ज्यों जिनि इह गावै ॥९२॥
सो तब तिनहूँ देखी ठाढ़ी सोहति ऐसी।
नव अंबुज ते अबही बिछुरी बिजुरी तैसी ॥९३॥
सोचै चितवै वन मै मन मै अचरज भारी।
किन कीनी चंद्र ते चारु चंद्रिका न्यारी ॥९४॥
धाय भुजन भरि लै पुनि तिहि जमुना तट आई।
कृष्ण दरस लालसा सु तरफै मीन की नाई ॥९५॥
अपुनैं ई प्रेम-सुधानिधि बढ़ि गई (प्रेम) कलोलैं।
बिह्वल ह्वै गई बाल बाल सों अलबल बोलै ॥९६॥
तब प्रगटे नँदनंदन सुंदर सब जग-बंदन।
गोपी-ताप-निकंदन कोहैं कोटिक चंदन ॥९७॥
मधुर मधुर मुसकात विलोलित उर बनमाला।
केवल मनमथ मन मथ चंचल नैन बिसाला ॥९८॥
पियहिं निरखि ब्रजबाल उठीं सब एकहि काला।
ज्यों प्रानन्हि कैं आये उझकहिं इंद्रियजाला ॥९९॥
साँवरे पिय कर परस पाइ सब सुखित भईं यौं।
परमहंस भागवत मिलत संसारी-जन ज्यौं ॥१००॥
जैसे जागत स्वप्न सुषुप्ति अवस्था मे सब।
तुरिय अवस्था पाइ जाइ सब भूलि भई तब ॥१०१॥
मिलि जमुना तट विहरत सुंदर नंद के लाला।
तैसिय ब्रज की बाला भरी अति प्रेम रसाला ॥१०२॥
जदपि अखंडानंद नंदनंदन ईश्वर हरि।
तदपि महाछवि पाइ छबीली ब्रज देविन करि ॥१०३॥
पुनि ब्रज-सुंदरि सँग मिलि सोहै सुंदर वर यों।
अनेक शक्ति करि आवृत सोहै परमातम ज्यौं ॥१०४॥

पुनि जस परम उपासक ज्ञानादिक करि सोहै।
यौं रस वोपी गोपी मिलि मनमोहन मोहै॥१०५॥

कृष्ण-दरस आनंद बरस दुख दूरि भयो मन।
पाय मनोरथ अपुनौ जैसें हरषैं श्रुति गन॥१०६॥

जब लगि श्रुति कर कर्मकांड कर्मेहि परमानैं।
तब लगि इंद्र वरुण रवि इनहीं ईश्वर गानैं॥१०७॥

ज्ञानकांड मैं परमेश्वर विज्ञान परम सुख।
विसरि गयो सब काम्य कर्म अज्ञान महादुख॥१०८॥

तैसेइ गोपी प्रथम काम अभिराम रसीं रस।
पुनि पाछै निःसीम प्रेम जिहि कृष्ण भए बस॥१०९॥

जेन केन परकार होइ अति कृष्ण मगन मन।
अनाकर्ण चैतन्य कछु न चितवै साधन तन॥११०॥

महाद्वेष करि महाशुद्ध शिशुपाल भयौ जब।
मुकुत होत वह दुष्टपनौ कछु सँग न गयौ तब॥१११॥

अरज्यौ मरवा श्रुवा यज्ञ साधन अवशेषै।
स्वर्ग जाइ सुख पाइ बहुरि को तिन तन देखै॥११२॥

योगी जिहिं अष्टांग साधनाहू साधन ते।
पाइ परम परमातम बहुरि का बहुरि करत ते॥११३॥

तैसेहिं ब्रज की बाम काम रस उत्कट करि कै।
शुद्ध प्रेममय भई लई गिरिधर उर धरि कै॥११४॥

आरंभित तब रुचिर रास अद्भुत सुलास जहँ।
अमल अष्टदल कमल महामंडल मंडित तहँ॥११५॥

मधि कमनीय करनिका तापर थिरि किसोर वर।
पुनि द्वै द्वै गोपी करि हरि-मंडित मंडल पर॥११६॥

एक मूरति ललित लाल आलात की नाईं।
सब के अंसनि धरी साँवरी बाँह सुहाई॥११७॥

जदपि बच्छस्थल रमति रमा रमनी वर कामिनि।
तदपि न यह रस पायो पायो जौ ब्रज-भामिनि॥११८॥

जित कहुँ तीं ब्रजबधू कोटियन कोटि भरी रति।
तिनहँ जहाँ रागिनी राग संगीत भेद गति॥११९॥

काहू के काहू न गीत संगीत छुयो जहँ।
भिन्न भिन्न अपनाय अनागत प्रगट कियो तहँ ॥१२०॥

बनिता जहँ शत कोटि कहत कछु नहिं कहि आवैं।
अपनै गुन गति नृत्त नाद कोउ पार न पावै॥१२१॥
जग मैं जो संगीत नाटि जिहि जगत रिझायौ।
अस व्रज-तियन कौ सहज गमन यौं आगम गायौ॥१२२॥

जो व्रजदेवी निरतति मंडल रास महा छवि।
तिहि कोउ कैसैं बरनै ऐसो कौन आहि कवि॥१२३॥
राग रागिनी सम जिनकौ बोलिबौ सुहायौ।
सु कवन पै कहि आवै जो व्रजदेविन गायौ॥१२४॥

जैसे कृष्ण अमित महिमा कोउ पार न पावै।
ऐसै ही व्रजवनिता गुनगन गनत न आवै॥१२५॥
जव नायक के भेद भाय लावन्य रूप गुन।
अभिनय दिखरावे गावे अद्भुत गति उन॥१२६॥
तहाँ साँवरे कुँवर रीझि कैं रीझि रहत यौं।
निज प्रतिबिंव बिलास निरखि सिसु भूलि रहत ज्यौं॥१२७॥
जिनकी गति धुनि छटा सकल जग छाइ रही है।
जिमि रंचक लक्ष्मी कटाक्ष सव विभव कही है॥१२८॥

ते तौ मदन मोहन पिय रीझि भुजन भरि लीन्ही।
चुंबन करि मुख सदन बदन ते बीरी दीन्ही॥१२९॥
लटकि लटकि व्रजवाला लाला उर जव फूलीं।
उलटि अनंग अनंग दह्यौ तब सव सुधि भूली॥१३०॥
रीझि सरद की रजनी न जनी केतिक वाढ़ी।
बिहरत सजनी स्याम यथारुचि अति रति काढ़ी॥१३१॥
थके उडुप अरु उडुगन उनकी कौन चलावै।
कालचक्र पुनि चकित थकित भयौ (कछु) मरम न पावै॥१३२॥

निरखत सारद नारद संकर सनक सनंदन।
हरषत बरखत फूलन जै जै जै नँदनंदन॥१३३॥
अद्भुत रस रह्यौ रास कहत कछु नहिं कहि आवै।
शेष सहस मुख गावै अजहूँ अंत न पावै॥१३४॥

हो सज्जन जन रसिक सरस मन कै यह सुनियौ।
सुनि सुनि पुनि आनंद ह्वै है नीके गुनियो ॥१३५॥
सकल शास्त्र सिद्धांत परम एकांत महा रस।
जाकै रंचक सुनत गुनत श्रीकृष्ण होत बस ॥१३६॥
रास सकल मंडल रस के जे भँवर भए हैं।
नीरस विषय विलास छिया करि छाँड़ि दए हैं ॥१३७॥
'नंददास' सौं नंद-सुवन जौ करुना कीजै।
तिन भक्तन की पदपंकज रस सो रुचि दीजै ॥१३८॥

श्रीनंददासेन कृत श्रीकृष्ण-सिद्धांत पंचाध्यायी समाप्त

— —

अनेकार्थ-ध्वनि मंजरी

जो प्रभु जोति जगत मय, कारन करन अभेव।
विघन[1]-हरन सब सुभ[2]-करन, नमो नमो ता देव ॥ १ ॥
एकै वस्तु अनेक हैं, जगमगात जगधाम।
जिमि कंचन तें किंकिनी, कंकन, कुंडल नाम ॥ २ ॥
उचरि सकत नहिं संस्कृत, अर्थ[3] ज्ञान असमर्थ।
तिन हित 'नंद' सुमति जथा, भाषा कियो सुअर्थ ॥ ३ ॥

(गो)

गो इंद्री, दिवि, वाक, जल, स्वर्ग, सुदृष्टि[4] अनिंद।
गो धर, गो तरु, गो किरन, गो-पालक गोविंद ॥ ४ ॥

(सुरभी)

सुरभी चंदन, सुरभि मृग, सुरभी बहुरि वसंत।
सुरभी[5] चंपक बन कहै, जो जग कर्ता कंत ॥ ५ ॥

(मधु)

मधु वसंत, तरु, चैत्र, नभ, तिय, मदिरा, मकरंद।
मधु जल, मधु पय, मधु सुधा, मधु-सूदन गोविंद ॥ ६ ॥

(कलि)

कलि कलेस, कलि सूरमा, कलि निषंग, संग्राम।
कलि कलियुग जहँ और नहि, केवल केशव नाम ॥ ७ ॥

(आत्मा)

मन, बुधि, चित्त, सुभाव, तनु, धर्म, जीव, अहँकार।
इनको[6] कहियत आतमा, परमातम आधार ॥ ८ ॥

(अर्जुन)

अर्जुन द्रुम, कंचन, धवल, सहसार्जुन, दिग तत्थ[7]।
अर्जुन केकी, पांडु सुत, हरि खेलत जेहिं सत्थ ॥ ९ ॥

---

१. अशुभ। २. सुख। ३. समुझन को। ४. वज्र, खग, छंद। ५. सुरभी चारत बन सुने जो जग कमला-कंत। ६. ये सब। ७. अथ्थ।

(धनंजय)

अग्नि धनंजय कहत[1] कवि, पवन धनंजय आहि।
अर्जुन बहुरि धनंजय, कृष्ण सारथी जाहि ॥१०॥

(पत्र)

पत्र परन औ पत्र सर, वाहन पत्र सुचित्त।
पत्र पंख विधि ना दिए, जिन उड़ि मिलते मित्त ॥११॥

(पत्री)

पत्री तरु, पत्री कमल, पत्री बहुरि विहंग।
पत्री सर कर चित्र जिमि, इमि सेवहु श्रीरंग ॥१२॥

(वरही)

वरही द्रुम, वरही अगिन, वरही कुरकुट नाम।
वरही मोर किशोर के, चंद्र धरे सिर स्याम ॥१३॥

(धाम)

धाम तेज औ धाम तनु, धाम किरन, गृह धाम।
धाम जोत जो ब्रह्म है, घनीभूत हरि स्याम ॥१४॥

(काम)

काम भोग, अभिलाष पुनि, मन्मथ कहिए काम।
काम काज, जनि भूलि मन, भजिले हरि अभिराम ॥१५॥

(वाम)

वाम कुटिल औ[2] वाम शिव, वाम काम, स्तन वाम।
वाम मनोहर कों कहत, जैसे मोहन श्याम ॥१६॥

(भव)

भव शंकर, संसार भव, भव कहिए कल्यान।
भव सुंदर[3] जस जगत फल, जब भजिये भगवान ॥१७॥

---

१. फोन इफ।

२. कुच, धनुष, शिव, जुवति काम कर वाम। ३. पूजन जग सफल तब।

(कं)

कं सुख, कं[1] जल, कं अनल, कं शिर, कं पुनि काम ।
कं कंचन ते प्रीति तजि, सदा कहो हरि-नाम ॥१८॥

(कल्प)

कल्प[2] कुशल औ दिवस जो, कल्प समर्थ जु होय ।
कल्प कपट तजि हरि भजो, कल्पवृक्ष सम सोय ॥१९॥

(कर)

कर गज-सुंड, सुहस्त कर, कर जु किरन, कर दान ।
कर विष जैसे तजि विषय, भजि हरि अमीनिधान ॥२०॥

(दर)

दर जु कहत कवि शंख को, दर ईषत कौ नाम ।
दर उर तें राखो कुँअर, मोहन गिरधर श्याम ॥२१॥

(वर)

बर सुंदर, बर श्रेष्ठ पुनि, बर जु देवता देत ।
बर दूलह से कान्ह नित, बर तिय हरि हरि लेत ॥२२॥

(वृष)

वृष सुरपति, वृप[3] कर्ण पुनि, वृष जु वृषभ, वृष काम ।
वृप सुधर्म करि हरि भजो, जौ चाहौ सुखधाम ॥२३॥

(पतंग)

तरनि पतंग, पतंग खग, पावक बहुरि[4] पतंग ।
सब जग रंग पतंग को, हरि एकै नव रंग ॥२४॥

(दल)

दल कहिए नृप कौ कटक, दल पत्रन कौ नाम ।
दल बरही के चंद सिर, धरे श्याम अभिराम ॥२५॥

---

१. पथ जल तन अनिल विधि द्युति सिर सठ काम ।
कं कंचन चित प्रीति ज्यो यो भजिए हरि नाम ॥
२. कल्प जु विधि दिवि कल्प सम ।
३ गो कर्म वर इंद्र वृपभ बल काम । ४. चंग ।

(पल)

पल को[1] मॉस कहत कवी, पल उन्मानहि सोय।
पल जु पलक हरि बिच परे, गोपिन जुग सत होय ॥२६॥

(वल)

वल वीरज, धीरज, धरम, वल नृप दल कौ नाम।
वल साहस, वल दैत्य पुनि, वल कहिए वलराम ॥२८॥

(अल)

अल अत्यर्थ, समर्थ अल, अल पूरन कौ नाम।
अल अभरन, अल अलस तजि, भजौ[2] मनोहर श्याम ॥२८॥

(वयस)

वयस विहंगम को कहत, वयस कहिय पुनि काल।
वयस जु यौवन जात है, भजि लै मदनगोपाल ॥२६॥

(जीव)

जीव वृहस्पति को कहत, जीव कहावै चंद।
जीव आतमा नित जिये, जग-जीवन नँद-नंद ॥३०॥

(मार)

मार विघ्न, विष मार पुनि, मार कहावै काम।
मार अमृतहू ते अमृत, सुंदर गिरिधर नाम ॥३१॥

(सार)

सार वीर्ज, धीरज, धरम, सार[3] वज्र, घृत सार।
सार जु[4] सबको सॉवरो, जिन मोह्यो संसार ॥३२॥

(कलभ)

कलभ कहत करि-सावक कौं, कलभ[5] बहुरि उत्ताल।
कलभ कलुष कलिक्लेश[6] तें, काढ़हु दीनदयाल ॥३३॥

---

१. अगिन मूरख उद्ध पद उगास पल होय। २. भजि मनमोहन।
३. थिर बल पनि घृत सार। ४. चित्त उर। ५. कोढ़ी ऊँट उताल।
६. काल तें राखहु।

(नभ)

नभ आश्रय, नभ भाद्रपद, नभ श्रावण कौ मास।
नभ अकास, नभ निकटही, घट घट रमा-निवास ॥३४॥

(वसु)

अष्टम बसु है वह्नि अरु, बसु सूरज, बसु नीर।
बसु धन जग में सो धनी, जाके धन बलवीर ॥३५॥

(पटु)

पटु तीछन, पटु वज्र कहि, पटु आरोग्य कहंत।
पटु प्रवीन सोइ जगत में, भजे जो रुकमिनि कंत ॥३६॥

(तुरंग, कुरंग)

गरुड़[1] तुरंग, तुरंग मन, वहुरि तुरंग तुरंग।
हरिन कुरंग, कुरंग सो, रँग्यो न हरि-हर रंग ॥३७॥

(आत्मज)

आत्मज कहिए रुधिर-अंग, आत्मज कहिए काम।
आत्मज पूत सपूत सो, भजे जो सुंदर श्याम ॥३८॥

(कबंध)

विन सिर कहत कबंध को, कह कबंध पुनि नीर।
राच्छस-राज कबंध जिहि, गति दीन्ही बलवीर ॥३९॥

(हंस)

हंस तुरंगम, हंस रवि, हंस मराल सु छंद।
हंस जीव को कहत कवि, परमहंस गोविंद ॥४०॥

(पयोधर, भूधर)

मेघ, अर्क, कुच, शैल, द्रुम, एजु पयोधर आहि।
भूधर गिरि, भूधर नृपति, भूधर आदि वराह ॥४१॥

(वाण)

बान कहावै बलि-तनय, विशिप आहि पुनि बान।
बान कहत कवि स्वर्ग को, श्रीहरि पद निर्वान ॥४२॥

---

१. गगन।

(वरुण)

वरुन कहत पति नीर कों, वरुन स्याम[1] को नाम।
वरुन हरे जब नंद तब, कैसे धाये स्याम ॥४३॥

(गोत्र)

गोत्र नाम कों कहत कवि, गौत्र सैल सुनियंत।
गोत्र बंधु सो धन्य जहँ, विद्यायुत[2] गिनियंत ॥४४॥

(तन)

तन शरीर, विस्तार तन, तन सूक्षम, तन तात।
तन विरलो कोउ जगत में, सुनै जु हरिहर[3] वात ॥४५॥

(वाल)

वाल सिरोरुह, वाल सिसु, मूक कहावे वाल।
वाल सोई है जगत में, भजै न वाल गोपाल ॥४६॥

(जाल)

जाल झरोखा जाल गन, जाल दंभ औ मंद।
जाल फाँस विद्या जगत, दिखि न भूल नँद-नंद ॥४७॥

(काल)

काल अग्नि पुनि काल वय, धर्मराज पुनि काल।
काल व्याल के काल हरि, मोहन मदनगोपाल ॥४८॥

(ताल)

ताल ताल हरिताल पुनि, दोइ कर सो करताल।
ताल वृक्ष फल खाय कर, हत्यो दनुज नँदलाल ॥४९॥

(व्याल)

व्याल कहत हैं क्रूर नर, दुष्ट स्वपद गज व्याल।
व्याल सर्प-सिर चढ़ि नचे, नटवर वपु नँदलाल । ५०॥

---

१. स्याव ।
२. गोबिंद गुन गुनियंत ।
३. हरि-रस ।

(जलज)

जलज मीन, मोती जलज, जलज शंख अरु चंद ।
जलज जु कमल फिरावते, ब्रज आवत नँदनंद ॥५१॥

(तम)

तम तामस गुन, राहु तम, तमजु तिमिर, तम क्रोध ।
तम अज्ञान को हरहु हरि, उर धरि दीप प्रबोध ॥५२॥

(गुन)

गुन राजस, गुन सूत्र पुनि, गुन कमान की जेह ।
गुन चरित्र गोविंद के गावहु उर धरि नेह ॥५३॥

(अवि)

अवी शैल, अवि मेष पुनि, अवि सविता को नाम ।
अवि रच्छक सब जगत कों एकै सुंदर श्याम ॥५४॥

(वन)

वन पानी को कहत कवि, वन वारिद को जाल[1] ।
वन कानन तें सुरभि सँग, घनि आवत नँदलाल[2] ॥५५॥

(घन)

घन दृढ़, घन विस्तार पुनि, घन जिहिं गढ़त लोहार ।
घन अंबुद. घन सघन घन, घन-रुचि नंदकुमार ॥५६॥

(बरन)

बरन स्तुति, आखर बरन, बरन द्विजादिक चार ।
बरन अरुन सित पीत है, अबरन नंद कुमार ॥५७॥

(पोत)

पोत गेह[3] अरु निपट सिसु, पोत जु वस्त्र अनूप ।
पोत नाव जिमि जलधि मधि, श्याम नाम सुखरूप ॥५८॥

(बुध)

बुध पंडित कों कहत हैं, बुध ससि-सुतहिं वखान ।
बुध हरि को अवतार इक, बोध भयो जिहिं ज्ञान ॥५९॥

---

१. नाम । २. घनश्याम । ३. कहावै ।

(अनंत)

गगन अनंतहि कहत वुध, वहुरि अनंत अनेक।
शेष अनंत कहत कवी, हरि अनंत अरु एक।।६०।।

(क्षय)

क्षय निवास को कहत कवि, क्षय कहिए क्षय रोग।
क्षय परलय संधि हरि विषै, लीन होत सव लोग।।६१।।

(राजिव)

राजिव शशि, राजिव अनिल[1], राजिव मुक्ता मीन।
राजिव नाभि गोविंद की, होइ रहिए मन लीन।।६२।।

(लोक)

लोक व्याकरन, लोक जन, लोक देह, रस मूल।
तीन लोक सुत-उदर लखि, रही जसोमति भूल।।६३।।

(शुक)

शुक्र वीर्य अरु अग्नि पुनि, शुक्र जेठ को मास।
शुक्र अजहुँ वावनहिं प्रति, पल पल भरत उसास।।६४।।

(खग)

खग रवि, खग ससि, खग पवन, खग अंवुद, खग देव।
खग विहंग हरि सुतरु तजि, भज जड़ सेंवल सेव।।६५।।

(कलाप)

गुन कलाप, तूनीर वहु, अभरन आहि कलाप।
वरही वृंद[2] कलाप पुनि, हरि हरि-भजन कलाप।।६६।।

(ब्रह्म)

ब्रह्म ब्रह्म-कुल, ब्रह्म विधि, ब्रह्म वेद औ जीय।
ब्रह्म नंद के सदन में, जाहि नचावति तीय।।६७।।

(उडु, उडुप)

उडु विहंग, उडु नखत गन, उडु कैंवर्तक आहि।
उडुप चंद्र, नौका उडुप, उडुप गरुड़ वड़ आहि।।६८।।

---

१. सलिल २. चंद्र।

(मंद)

मंद[1] सनीचर, मंद खल, मंद अल्प, अघ मंद।
मंद[2] अभागी मूढ़ ते, जे न भजहि नँद-नंद ॥६६॥

(बारन)

बारन कहिये बरजिबो, बारन पुनि सन्नाह।
बारन गज हरि उद्धर्यौ, आनि गह्यो जब ग्राह ॥७०॥

(स्यंदन)

स्यंदन जल कहँ कहत कवि, स्यंदनचित्र तुरंग।
स्यंदन रथ चढ़ि रुक्मिणी, लै आये श्रीरंग ॥७१॥

(मंथी)

मंथी ससि, मंथी मदन, मंथी ग्राह प्रचंड।
मंथी बहुरो राहु है, जो हरि कर त्रित्रि खंड ॥७२॥

(कौसिक)

कौसिक गुग्गुल, इंद्र पुनि, कौसिक घूघू नाम।
कौसिक विश्वामित्र हैं, जिन जाचे श्रीराम ॥७३॥

(पुष्कर)

पुष्कर जल, पुष्कर गगन, पुष्कर शुंड गयंद।
पुष्कर तीरथ पाप-हर, पुष्कर नाम गोविंद ॥७४॥

(अंबर)

अंबर अमृत को कहत, अंबर गगन सुभाइ।
अंबर पीत जु श्याम तन, रही जु तड़ित लुभाइ ॥७५॥

(संबर)

संबर जल, संबर[3] असुर, संबर सैल अनूप।
संबर बाँधहु गाढ़ गहि, कृष्ण नाम सुख रूप ॥७६॥

(कंबल)

कंबल जल परवाह पुनि, कंबल गुग्गुल चाम।
कंबल बहुरो ऊन है, कंबल मंगल नाम ॥७७॥

---

१. मंद सतत सनि। २. मंद मूढ नर तजु जगत। ३. बातप।

(नग)

नग कहियतु द्रुम, रवि, रतन, नग कहियत पुनि धाम।
नग गिरि जिहि ते कान्ह को, भयो सु नगधर नाम ।।८७।।

(नाग)

नाग पत्र औ नाग गज, नाग दुष्ट नर वाम।
नाग सर्प संसार को, सिद्ध मंत्र हरि नाम ।।९७।।

(करन)

करन कहावै रवि-तनय, करन कहत पुनि कान।
करन नाव जिहि खेइये, करन-धार भगवान ।।८०।।

(द्विज)

द्विज पंछी को कहत कवि, द्विज कहिए पुनि दंत।
तीन वरन तें द्विज वड़ो, जब जाने[1] भगवंत ।।८१।।

(अज)

अज वकरा, अज पितामह, अज कहिए पुनि ईस।
अज जीवन भर नर कहत, अज एकै जगदीस ।।८२।।

(सिव)

सिव सुख, सिव कल्यान पुनि, श्रेष्ठ पुरुष सिव होय।
शिव शंकर अरु शिव सलिल, कृष्ण सदा शिव सोय ।।८३।।

(विरोचन)

अग्नि[2] विरोचन, सूर्य पुनि, चंद्र विरोचन रात।
दैत्य विरोचन धन्य सो, जाके वलि सों तात ।।८४।।

(वलि)

वलि हरि-पूजा, असुर कहि, वलि भोजन, वलि भाग।
वलि राजा, वलि[3] लच्छमी, जा हिय हरि अनुराग ।।८५।।

(वृक)

वृक पावक कों कहत कवि, वृक भिड़हा को नाम।
वृक दानव दलि देव शिव, राखे सुंदर स्याम ।।८६।।

---

१. मेरहिं भौंर। २. अग्नि। ३. फौं जाऊँ वलि।

(रज)

रज राजस, आकाश[1] रज, रज युवती में होय।
रज धूली, रज पाप कहि, रज[2] जल निर्मल धोय ॥८७॥

(कुस)

कुस सीता-सुत, दर्भ कुस, कुस कहिए पुनि नीर।
कुस दानव-दल[3] छार कर, तहाँ बसे बलबीर ॥८८॥

(कंबु, भुवन)

कंबु संख औ कंबु गज, कंबु दुष्ट को नाम।
भुवन गगन औ भुवन जल, त्रिभुवन नायक स्याम ॥८९॥

(कूट)

कूट बहुत उर कूट गिरि, अहि नर कूट कहंत।
कूट कपट कहँ निपट तजि, भजि ले मन भगवंत ॥९०॥

(खर)

खर राक्षस खर, सांन खर, खर तीक्षन को नाम।
खर गरदभ जग मैं सोई, जो न भजै हरि स्याम ॥९१॥

(कुज, जम)

कुज मंगल, कुज अन्न द्रुम, कुज भौमासुर नाम।
जम जग, जम जमराज ते, राखहु सुंदर स्याम ॥९२॥

(हरिनी)

हरिनी प्रतिमा हेम की, हरिनी मृग की तीय।
हरिनी जूथी जासु की, फूल-माल हरि-हीय ॥९३॥

(धात्री)

धात्री कहिए आँवरो, धात्री धाय बखान।
धात्री धरती सेस सिर, सोहै तिल परमान ॥९४॥

(सिवा)

सिवा शंभु की सुंदरी, सिवा स्यार की वाम।
सिवा हरड़ जिमि रोग हर, इमि अघ-हर हरि नाम ॥९५॥

---

१. आरक्त। २. हरि। ३. दलि द्वारिका।

(रसना)

रसना काँची कहत कवि, रसना बहुरो दाम।
रसना जिह्वा तासु की, जो भज लै हरि नाम ॥९६॥

(रंभा)

रंभा कहिए अप्सरा, रंभा कदली नाम।
रंभा गोकुल गाय-धुनि[1] जिहि मोहे घनस्याम ॥९७॥

(माया)

माया छल, माया दया, माया नेह कहंत।
माया मोहन लाल की, जिन मोहे सब संत ॥९८॥

(इला)

इला मही बुध-ती इला, इला उमा अभिराम।
इला सरस्वति से भली[2], जामें हरि को नाम ॥९९॥

(जोती)

जोति नखत गन जोति दुति, जोति नेत्र अरु आग।
जोति ब्रह्म में[3] थिर रहे, रहे जगत जिहि लाग ॥१००॥

(सुमना)

सुमना कहिये मालती, सुमना मुदिता तीय।
सुमना रति सोइ स्याम सों, करि ले लंपट जीय ॥१०१॥

(इडा)

इडा आहि नभदेवता, इडा भूमि अभिराम।
इडा अंबिका मातु मोहि, प्रीति देहि घनस्याम ॥१०२॥

(अजा, निशा)

अजा छाग, माया अजा, जिहि मोहे अजवाम।
निसा जामिनी कहत कवि, निसा हरिद्रा नाम ॥१०३॥

(विधि)

विधी काल[4], विधि देवता, विधि कहिए जु विधान।
विधि की विधि जो हरि रची, सोई विधि परमान ॥१०४॥

---

१. धी रधू। २. भलै जो जाने अभिराम। ३. मोह नंदगृह रह्यो अलि-रहि लागि। ४. केग।

(जृंभ)

जृंभ अलस करि बलित नर, जृंभ कहावै मूढ़।
जृंभ कपट तजि हरि भजो, घट घट परगट मूढ़ ॥१०५॥

(हस्त)

हस्त कहत गज सुंड कों, हस्त नछत्र सुभाइ।
हस्त हाथ तें डारि जिन, हरि-हीरा तन पाइ ॥१०६॥

(कृतांत)

आगम शास्त्र कृतांत सब, पुनि सिद्धांत कृतांत।
जम कृतांत के त्रास तें, राखहु कमलाकांत ॥१०७॥

(मित्र)

मित्र भानु कों कहत कवि, मित्र अगिन कों नाम।
मित्र मीत सब जगत के, एकै सुंदर श्याम ॥१०८॥

(सारंग)

पिक, चामर, कच, संख[1], कुच, कर, बाइस, ग्रह होय।
खंजन, कंजल खातमद, काम बिसन है सोय ॥१०९॥

क्षिति, तालाब, भुजंग पुनि, को बड़ मानस मान।
सारंग श्री भगवान को, भजिए आठो जाम ॥११०॥

सारंग सुंदर को कहत, रात दिवस बड़ भाग।
खग, पानी अरु धन कहिय, अंबर, अबला, राग ॥१११॥

रवि, ससि, दीपक, गगन, हरि, केहरि, कंज, कुरंग।
चात्रिक, दादुर, दीप, अलि, ये कहिए सारंग ॥११२॥

(हरि)

इंद्र, चंद्र, अरविंद, अलि, कपि, केहरि आनंद।
कंचन, काम, कुरंग, बन, धनुष, दंड, नभ चंद ॥११३॥
पानी, पावक, पवन, पथ, गिरि, गज, नाग, नरिंद।
ये हरि इनके मुकुट-मनिं, हरि ईश्वर गोविंद ॥११४॥

---

१. हंस।

(ध्रुव)

ध्रुव निसचल, ध्रुव जोग पुनि, ध्रुव जो ध्रुव-पद ताल ।
ध्रुव तारे तिहि अटल गुन, गुन गोविंद गोपाल ॥११५॥

(सुमन)

सुमनसु सुर, सुमनस पुहुप, सुमनस वहुरि वसंत ।
सुमनस जेहि मन में वसहिं, केसव कमला-कंत ॥११६॥

(बिटप)

विटप अरग, पल्लव विटप, विटप कहत बिस्तार ।
विटप वृच्छ की डार गहि, ठाढ़े नंदकुमार ॥११७॥

(दान)

दान द्विजन को देत सो, गजमद कहिये दान ।
दान साँवरे लेत वन, गोपी-प्रेम-निधान ॥११८॥

(रस)

रस नव, रस घृत, रस अमृत, रस विषया अरु नीर ।
रस वर को रस प्रेम रस, जाके वस वलवीर ॥११९॥

(स्नेह)

तेल सनेह, सनेह घृत, वहुरो प्रेम सनेहु ।
सो निज चरनन गिरधरन, 'नंददास' कहँ देहु ॥१२०॥

परिशिष्ट (क)

(रामहरि-कृत)

(गो)

गो दिक रवि मृग सत दया अग्नि प्रसू चष बाल।
जग्य निगम सर चिह्न गिर गो सुष भजि गोपाल ॥ १ ॥

(सुरभी)

सुरभी चंपक धीर पुनि मंत्री कंचन भाम।
बिल्व प्रसस्तऽरु जायफल सुरभी ललित सुस्याम ॥ २ ॥

(अर्थ)

अर्थ पदारथ वस्तु वसु भाव प्रयोजन काज।
अभिप्राय चेष्टा जनम अर्थ कृस्न सो साज ॥ ३ ॥

(तीर्थ)

तीरथ वक्ता पात्र श्रुति मुनिवर पुन्य अरन्य।
प्रवचन सत्यऽरु सुचि सलिल तीरथ हरि व्रज धन्य ॥ ४ ॥

(ललाम)

संष ललाम प्रभावना ध्वज लांगूल ललाम।
सत्र प्रधानऽरु चिह्न हय नृप के नृप श्रीराम ॥ ५ ॥

(खं)

खं नभ पुर भू द्यौ नखत ज्ञान रंध्र सुख धाम।
खं इंद्रिय दुख देत हैं दया करौ हरि स्याम ॥ ६ ॥

(सं)

सं संसय संगति सभा सं कहिए रणभूमि।
संजु समय फिरि है कहाँ भजौ कृष्ण रस भूमि ॥ ७ ॥

(सर)

सर सायक सरकंड सर सर सरसी सरजीत।
सर सम हरि की कोन जग भजि लै मोहन मीत ॥ ८ ॥

(गुरु)

गुरु विद्या जेष्ठऽरु पिता गुरू बृहस्पति नाम।
मंत्र देंन श्री गुरु वड़े जिन तें पैये स्याम ॥ ६ ॥

(शृंग)

शृंग कहत सींगऽरु चतुर शृंग जुनाद प्रधान।
शृंग सिखर गिरिराज को कर धरयौ भगवान ॥१०॥

(भंग)

भंग जु भंजन भाँग पुनि किरण रुवीची नाम।
भंग भाजिवौ जब मिटै करि हरि पद विश्राम ॥ ११॥

(सोम)

सोम सुधा वल्ली कनक गलौ जुगादि नृप सोम।
वार वार मन सोम गहि हरि भजि जग दुख होम ॥१२॥

(सुचि)

सुचि जु अग्नि द्विज मंत्र वर ब्रह्मचर्य सित ज्ञान।
सुचि असाढ़ सुचि सुद्ध सो भजन कृष्ण को जान ॥१३॥

(हार)

हार कहत अध्वा रजत मान पराजय हार।
हार जु माला हाथ लै भजि मन नंद-कुमार ॥१४॥

(वार)

वार वेर प्रतिवार कच द्वार जलण न्यौछार।
कॉंट वारि जल मूक सिसु कृष्ण सीस सिखि वार ॥१५॥

(सूर)

सूर विद्रुप भट सिंह किटि अंध अग्नि रवि सूल।
सूर उदर की जब मिटै भजिए हरि अनुकूल ॥१६॥

(धर्म)

धर्म अहिंसा धनुष वय उपमा जज्ञ स्वभाव।
धर्म वेद अरु पुन्यकरि हरि भजि बहुरि न दाव ॥१७॥

(संपूर्ण)

संपूरन बैराग जस प्रभुता लक्ष्मी रूप।
संपूरन जु प्रबोध मन भजि लै कृष्ण अनूप ॥१८॥

(प्रवाल)

प्रवाल जु मूँगा बीन पुनि पल्लव कहत प्रवाल।
है प्रवाल बलवान हरि जगत करें प्रतिपाल ॥१६॥

(कीलाल)

कीलाल जु जल पय रुधिर भूषण अरु मकरंद।
कीलाल जु जम त्रास तें छुटैं भजैं गोविंद ॥२०॥

(अच्छ)

अच्छ कहत पासे नयन चमू बहेड़े सोइ।
अच्छ चक्र हरि कर सदा रच्छा भक्तिहि होइ ॥२१॥

(काण्ड)

कांड कहत पादप अखिल तुला बाण बल काल।
कांड मूल सबके हरी जगत रच्यौ इक ख्याल ॥२२॥

(पख)

पख हाख्यौ पाँसू विपुन अर्ध मास बल जान।
पख जु पक्ष हरि राखिए जातें होइ कल्यान ॥२३॥

(दण्ड)

दंड काठ कौ न्याय कर दंड विधानऽरु तूल।
दंड सरीरहि पाइ कें हरि न भजे मुख धूल ॥२४॥

(षिण)

षिण जु मुहूरत त्रिवस्था उच्च समय पिण नाम।
षिण जु नियम हरि भजन कौ कीजै आठौं जाम ॥२५॥

(गुन)

गुन प्रधान इंद्रिय ललित त्यागऽरु सीतल उष्ण।
नटी गवइया सूर जे ए गुन गुनि श्रीकृष्ण ॥२६॥

(पुंडरीक)

पुंडरीक है केसरी सितऽरु कमंडल नाम।
पुंडरीक पंकज नयन वसै नंद के धाम ॥२७॥

(मंडल)

मंडल कहि भूभाग कों घिल्ला गोलऽरु वृंद।
सर्वोपरि व्रजमंडलहि रहत जहाँ नँदनंद ॥२८॥

(अंत)

अंत धर्म अंतर्निकट अंत पदारथ नाम।
अंत सत्य मति धारियै जौ चाहत हरि स्याम ॥२९॥

(वहुल)

वहुल तर्क अतिशय वहुल, वहुल प्रभूत अरु प्राय।
वहुल जु उपमा दीजियै लजित कुँवर नँदराइ ॥३०॥

(चक्र)

चक्र अखिल चकवा फिरन चक्र देस कौ नाम।
चक्र सुदर्शन हाथ हरि दुष्टन मारन स्याम ॥३१॥

(पुष्कर)

वाद्य खड्ग फल भांड ह्रद प्रात चक्र गद च्यार।
पें निमित्त गिर द्वीप तरु पुष्कर मुख हरि सार ॥३२॥

(वालक)

वालक सिंह सुगंध पुनि जूटी खेचर नाम।
वालक सिसु घर नंद के खेलत सुंदर स्याम ॥३३॥

(पलास)

हरौ रंग पल्लव वहुरि छाया ढाक पलास।
असुर पलासहि मार वहु व्रज हरि किए विलास ॥३४॥

(कीनास)

कीनास क्षुधित हरु अनुग दानव जम कीनास।
कीनास जु अघ कृपण कें हरिन घमावें वास ॥३५॥

(कदंब)

निबड कदंब विशेप पुनि निर्गुन नर कौ नाम।
तरु कदंब चढ़ि कूदि दहि काली नाथ्यौ स्याम ॥३६॥

(शंकु)

संकु स्वैर संख्या विवर कीलऽरु मंद स्वछंद।
शंकु संकीरन दाब नल बन लगि पी नँदनंद ॥३७॥

(भ्रूण)

भ्रूण जु बालक द्विज कहत पक्षी भय चांडाल।
भ्रूण विकल संजोग तें रक्षक श्री गोपाल ॥३८॥

(भूत)

भूत असुर अरु भूतजन पंच तत्व गति काल।
भूत प्रेत तें हरि बिना कौन करै प्रतिपाल ॥३६॥

(सिंह)

सिह सूर वर रात इक बहुरि सिंह को सिंह।
सिंह पौरि में दैत्य हत सिंह नाह नर-सिंह ॥४०॥

(फणा)

फणासींग अहि फण जटा· मथिवौ फणा कहाय।
फणा मंडली सखा सँग मोहन माखन खाय ॥४१॥

(वेला)

वेला तट वेला समय वेला पुनि आगार।
वेला पथ हरि अनुसरौ मिलें जु नंदकुमार ॥४२॥

(कला)

कला महल नटकी कला ग्लौ घट वड़ विज्ञान।
कला अंग प्रभुता तजौ भजौ कृष्ण करि ध्यान ॥४३॥

(गौरी)

गौरी गोरोचन सिवा गौरी हलदी नाम।
गौरी रागहि गावते वन ते· आवत स्याम ॥४४॥

(स्यामा)

स्यामा कांगणि अस्म निसि स्यामा पीपल नाम ।
स्यामा राधा नाम जप सहज मिलें घनस्याम ॥४५॥

(सुधा)

सुधा कहत अवनी तड़ित इक भोजन धन धाइ ।
सुधा असी ते असर जग कृष्ण नाम गुन गाइ ॥४६॥

(सुभा)

सुभा हरड़ थोहर सुभा सुभा कहत कल्याण ।
सुभा जु सोभावान हरि और न दूजो जान ॥४७।

(अमृत)

अमृत जल विष देवता जज्ञ सेस अनयास ।
अमृत सुधा तें सरस है भजन कृष्ण व्रजवास ॥४८॥

(अमर)

अमर स्वर्ग पवि तरुन तरु अमर जु नास गिलोइ ।
अमर देव के देव हरि प्रभु सम अमर न कोइ ॥४९॥

(अष्टापद)

अष्टापद सों नौ सरभ समय रसभ पुनि काल ।
अष्टापद क्रम जोनि ते छुटयो मोहनलाल ॥५०॥

(सारंग)

ललित पवन घन तड़ित तृन अहि निसि चख नख काम ।
धन पट कपि विष करट खर ओज कठिन तिय श्राम ॥५१॥
द्विज लव कच धनु अग्नि सर खंजन वीन मराल ।
मृगमद पय पिक कमल छवि है सारँग नँदलाल ॥५२॥

(हरि)

हरि चंदन चातिक किरणि शुक्र सत्य सिव कील ।
शुक्र दादुर जम भय मिटै हरि भजि गहि मन सील ॥५३।

(रस)

हर्ष सिक्त सिंगार रस द्रवी सुगंधऽरु राग ।
पारद वीरज कोकनद ए रस हरि रस पाग ॥५४॥

(स्नेह)

बीस ऊपरें एक सौ नंददास जू कीन।
और दोहरा रामहरि कीने हैं जु नवीन ॥५५॥
श्री मत श्री नॅंददास जू रस मय आनँदकंद।
रामहरी की ढीठता छिमियौ हो जग बंद ॥५६॥
कोश मेदिनी आदि औ कछू शब्द अधिकाइ।
मन रुचि लखि बिच संधि दिय बाँचौ जाचित भाइ ॥५७॥
जोइहि अनेका अर्थ कों पढ़ै सुनै नर कोइ।
सो अनेक अर्थहि लहै पुनि परमारथ होइ।५८॥

———

परिशिष्ट (ख)

शव्द एक नाना अरथ मोतिन कैसो दाम।
जो नर करिहै कंठ सो ह्वैहै छवि के धाम ॥ १ ॥

(गौरी)

गौरी है अंबा-सुता, गौरी हरदी होइ।
गौरी गिरिजा सुंदरी, शिव अर्धंगी सोइ ॥ २ ॥

(स्यामा)

स्यामा तिय जो रज बिना, स्यामा रजनी होइ।
स्यामा कहिए प्रीति को, करो स्याम सों सोइ ॥ ३ ॥

(हरिद्रा)

कहिय हरिद्रा वनथली, सिसा हरिद्रा होय।
मंगल वहुरि हरिद्रा, हरद हरिद्रा सोय ॥ ४ ॥

(वारुनी)

गजगति कहिए वारुनी, सुरा वारुनी नाम।
पच्छिम दिसि है वारुनी, वरुन बसहिं तेहि ठाम ॥ ५ ॥

(सुधा)

सुधा दूध, विजुरी सुधा, सुधा वल्ली निज धाम।
सुधा वधू, पुत्री सुधा, सुधा अमृत को नाम ॥ ६ ॥

(सुभा)

सुभा सुधा, सोभा सुभा, सुभा सिद्धु[1] पर नारि।
वहुरो सुभा हरीतकी, हरि पद की रज धारि ॥ ७ ॥

(कनक)

राजत वृष जु रहे सदा, वहुरो कनक खजूर।
कनक धतूरे को कहत, कनक स्वर्ण सुख-मूर ॥ ८ ॥

(तात, केतकी)

तात पिता अरु भ्रात कहि, तात पुत्र कहँ जान।
फूल, चंद्र, रवि, काम, सर, पंच केतकी नाम ॥ ९ ॥

(सीता)

सीता निधि, सीता क्षमा, सीता गंगा होय।
सीता सिय[2] औ देवता, जेहि जाचे सब कोय ॥१०॥

(क्षुद्रा)

क्षुद्रा विश्वा कहि नटी, मधु माखी औ लाख।
इनको क्षुद्रा कहत हैं, मूरख नर औ दाख ॥११॥

(चला)

चला सैन[1], धरनी चला, चला औपध होय।
चला चंचला लक्ष्मी, जेहि जाचे सब कोय ॥१२॥

(चक्र)

चक्र चरन रथ चक्र गन, चक्र विहंग विसेस।
चक्र सुदर्शन कृष्ण को, चक्र नृपति कौ देस ॥१३॥

---

१. सिन्धु । २. स्त्रि ।

(पुंडरीक)

पुंडरीक सायक कहत, पुंडरीक आकास।
पुंडरीक हरि कमल जहँ, तहँ कमला को बास ॥१४॥

(परिघ)

परिघ वज्र, परवत परिघ, अवसर सर्व विशेस।
परिघ बान जल थल नदी, परिघ सूर ससि सेस ॥१५॥

(नेत्र)

नेत्र नयन औ नेत्र पट्ट, मृगमद नेत्र कहंत।
नेत्र ज्ञान जब जगमगे, तब कहिए भगवंत ॥१६॥

(पंथी)

पंथी हरिनी को कहत, पंथी माया जीव।
पंथी बहुरो ईश्वरी, जिहि सब छिति बस कीव ॥१७॥

(कह)

कह ब्रह्मा, कह पवन घन, कह कहिए पुनि धाम।
कह छिति में नर ऊपजे, भजे न सुंदर स्याम ॥१८॥

(हार)

हार कुसुम मोतियान कौ, हार छेत्र विस्तार।
हार बिरह कानन कहे, रजत उमाया हार ॥१९॥

(अहि)

अहि बासर, अहि रुधिर पुनि, अहि एक दानव नाम।
अहि भुजंग जमुना पर्यो, सो नाथ्यो घनश्याम ॥२०॥

(तंत)

तंत तार औ तंत सुख, सिद्ध औषधी तंत।
तंत कहत संतान कहँ, हरि रस जानहु तंत ॥२१॥

(छिन)

छिन उत्सव अरु नेम छिन, छिन जु मुहूर्त कहंत।
छिन यह समय न पाइये, भजले मन भगवंत ॥२२॥

(काष्ट)

काष्ट काल या विसखई, काष्ट अमर पुर काष्ट ।
काष्ट जु बहुरि वसुंधरा, बुद्धि हीन नर काष्ट ॥२३॥

(पलास)

हरति जु बरन पलास कहि, रच्छस बहुरि पलास ।
द्रुम दल सैल पलास कहि, बहुरो काठ पलास ॥२४॥

(सित)

सित रूपो, सित ज्ञान पुनि, सित सुकृतहिं कहंत ।
सित तीक्षन सित सुक्र पुनि, सित उज्जल भगवंत ॥२५॥

(गुरु)

गुरु नृप, गुरु माता पिता, गुरु प्रोहित, गुरु छंद ।
त्रिहफे गुरु, दीरघ गुरू, सब के गुरु गोविंद ॥२६॥

(नंदन)

नंदन चंदन कों कहत, नंदन वन धन दात ।
नंदन कहिये पुत्र कहँ, जेहि हरषें पितु मात ॥२७॥

(अवतंस)

भ्रात पुत्र अवसंस कहि, अल अवतंस सुजान ।
सोरह बरसी वयस को, अभिनव कत सुमान ॥२८॥

(कुंतल)

सूत्रधार कुंतल कहत, कुंतल कपटी वेस ।
खंडपान कुंतल कहें, कुंतल बहुरो केस ॥२९॥

(कोन, द्रोन)

कोन मही अरु कोन दिस, गृह अंतर कहि कोन ।
द्रोन काक अरु द्रोन गिरि, कर कहि वारिज द्रोन ॥३०॥

(कातर)

कातर कानन कों कहत, कातर कहिए द्वार ।
कातर कहि दुरभिच्छ पुनि, अस्तुति करी विचार ॥३१॥

(कुथ)

कुथ सुकथा कुथ कोय पुनि, कुथ करि कमल निसोइ।
प्रातः स्नाई विप्र कुथ, कमल कली बिध होइ ॥३२॥

(कुंत)

कुंत सलिल औ कुंत सह, कुंत अनिल, वसु, काल।
कुंत कमल पुनि कुंत सुख, कुंत सुरंग कराल ॥३३॥
अनेकार्थ की मंजरी पढ़ै सुनै नर कोय।
अर्थ भेद जानै सबै पुनि परमारथ होय ॥३४॥

———

नाममाला

(दोहा)

तन्नमामि पद परम गुरु, कृष्ण कमल-दल-नैन।
जग-कारन करुनायतन[1], गोकुल जाको ऐन ॥ १ ॥
उचरि सकत नहिं संस्कृत, जान्यो चाहत नाम।
तिन हित 'नंद' सुमति जथा, रचत नाम के दाम ॥ २ ॥
गूंथनि नाना नाम को, अमरकोष के भाय।
मानवती[2] के मान पर, मिले अर्थ सब आय ॥ ३ ॥
नाम रूप गुन भेद के, सोइ प्रगट सब ठौर।
वा विन तत्व न और कछु, कहै सु अति बड़ बौर ॥ ४ ॥

(मान)

अहंकार, मद, दर्प, पुनि, गर्व, स्मय[3], अभिमान।
मान राधिका कुँवरि को, सब को करु कल्यान ॥ ५ ॥

(सखी)

वयसा[4]; सुमुखी, सखी पुनि, हितू, सहचरी आहि।
अली कुँवरि वृषभानु की, चली मनावन ताहि ॥ ६ ॥

(बुद्धि या प्रज्ञा)

बुद्धि, मनीषा, सौमुखी, मेधा, धिसना, धीय।
मति सौं मति[5] करतै चली, भली विचच्छन तीय ॥ ७ ॥

(सरस्वती)

बानी, बाक, सरस्वती, गिरा[6], शारदा नाम।
चली मनावन भारती, वचन चातुरी काम ॥ ८ ॥

(शीघ्र)

आशु, झटिति, द्रुत, तूर्ण, लघु, छिप्र, सत्वर, उत्ताल।
तुरत चली चातुर अली, आतुर लखि नँदलाल ॥ ९ ॥

---

१. [illegible] । २. मानमती । ३. सचहि । ४. वेस्या, सारंधी, सखी ।
५. मती सु कर चली । ६. इला ।

(धाम)

सदन, सद्म, आराम[1], गृह, आलय, निलय, स्थान[2]।
भवन भूप बृषभानु के, गई सहचरी[3] ल्यान ॥१०॥

(सुवर्ण)

कंचन, अर्जुन, कार्त्तसुर, चामीकर, तपनीय।
अष्टापद, हाटक, पुरट, भर्म्म[4], रजत, रमणीय ॥११॥

(रूपा)

रुक्म, रजत, दुर्वान पुनि, जातरूप, खर्ज्जूर।
रूपे के गोशाल तहँ, भूप-भवन ते दूर ॥१२॥

(उज्ज्वल)

शुक्ल, शुभ्र, पांडुर विशद, अर्जुन, सित, अवदात।
धवल नवल ऊँचे अटा, करत छटा सो बात ॥१३॥

(शोभा)

भा, आभा, शोभा, प्रभा, सुषमा, परमा, कांति।
छबि[5], द्युति अति लखियत जहाँ, सुरन होत मन भ्रांति ॥१४॥

(किरण)

अंशु, गभस्ति, मयूख, कर, गो, मरीचि, बसु, ज्योति।
रश्मि परत ससि-सूर की, जगमग जगमग होति ॥१५॥

(मयूर)

नीलकंठ, केकी, बरहि, शिखी, शिखंडी होय।
शिव-सुत-बाहन, अहिभषी, मोर, कलापी सोय ॥१६॥
नटत मयूर अटान चढ़ि, अतिहि भरे आनंद।
निस[6] दिन उनए रहत हैं, नव नीरद नँद-नंद ॥१७॥

(सिंह)

पुंडरीक, हरि, पंचमुख, कंठीरव, मृगराय।
सिंह पौरि बृषभानु की, सहचरि पहुँची जाय ॥१८॥

---

१. आगार या संकेत। २. निकेत। ३. सखी इहि हेत। ४. महारजत।
५. दुति न परत कहि भौन की सुर भूले दिखि भाँति। ६. छिन छिन।

(अश्व)

बाजी, बाह, तुरंग, हय, सैंधव, अश्व, गँधर्व[1] ।
तरल तुरंगम जहँ[2] बँधे हयशाला वे सर्व ॥१६॥

(हस्ती)

हस्ती, दंती, द्विरद, द्विप, पद्मी, बारन, व्याल ।
इभ, कुंभी, कुंजर, करी, स्तम्बेरम, सुंडाल ॥२०॥
सिंधुर, मदवर[3], नाग, कपि, गज सावज, मातंग ।
हरि, गयंद झूमत खरे, रंजित नाना रंग ॥२१॥

(सिद्धि)

अणिमा, महिमा, गरिमता, लघिमा, प्राप्ति, प्रकाम ।
वशीकरन अरु ईशिता, अष्ट सिद्धि के नाम ॥२२॥
एकहु सिद्धी वस करे, तेहि सिध कह संसार ।
ते वृषभानु भुआल के, द्वार बोहारनहार ॥२३॥

(नवनिधि)

महा पद्म अरु पद्म पुनि, कच्छप, मकर, मुकुंद ।
शंख, खर्व अरु नील ये, कपर कहावत नंद ॥२४॥
ये नवनिधि जे जगत में, विरले काहू दीख ।
ते वृषभानु भुआल के, परत भिखारिन भीख ॥२५॥

(मुक्ति)

मुक्ति, अमृत, कैवल्य पद, अपुनर्भव, अपवर्ग ।
निश्रेनी, निर्वान सुख, महा सिद्धि वर स्वर्ग ॥२६॥
मुक्ति जु चार प्रकार की, नहिं पैयत जप जोग ।
ते वृषभानु भुआल के, पावत पामर लोग ॥२७॥

(राजा)

स्वामी, अधिपति, प्रभु बड़े, नरपति, छितिपति, भूप ।
बाहुज[4], भूपति, नृपत्ति, नृप, श्री वृषभानु अनूप ॥२८॥

---

१. विमान । २. और जहँ, नेकु न पैयं जान । ३. पन्नग ।
४. राजा जहँ वृषभानु नृप बैठे सभा अनूप ।

(इंद्र)

शक्र, शतक्रतु, शची-पति, सक्रंदन, पुरहूत ।
कौशिक, बासव, वृत्रहा, मघवा, मातलि-सूत ॥२९॥
जिष्णु, पुरंदर, बज्रधर, आखंडल, रिपु पाक ।
शोभित जहँ वृषभानु नृप, को है इंद्र बराक ॥३०॥

(देव)

देव, अमर, निर्जर, बिबुध, सुर, सुमनस, त्रिदिवेश ।
वृंदारक, सु बिमानगति, अग्निजिह्व, अमृतेश ॥३१॥
दिविप, दलेषा, वन्हिमुख, गीरवान, अति ओप ।
कौन देवता रम जहाँ, वनि बैठे सब गोप ॥३२॥

(अमृत)

शोम, सुधा, पीयूप, मधु, अगदराज, सुरभोग ।
अमी[1], अमृत जहँ हरि-कथा, मत्त रहत सब लोग ॥३३॥

(भृत्य)

विधिकर, किंकर, दास पुनि, अनुचर, अनुग, पदाति ।
भृत्य फिरत जहँ मैंन से, छवि वरनी नहिं जात ॥३४॥

(दासी)

भृत्या, दासी, किंकरी, चेरी भरै जु अंभ ।
राजति मनिमय अजिर में, को उरवसि को रंभ ॥३५॥

(अंतःकरण)

स्वांत, हृदय, मनमथ-पिता, आत्मा, मानस नाउँ ।
चित मे सोचति सहचरी, भीतर कैसे जाउँ ॥३६॥

(अंजन)

कज्जल, गज पाटल, मखी, नाग, दीप-सुत सोय ।
लोपांजन दृग दै चली, ताहि न देखै कोय ॥३७॥

(हीरा)

निष्क, पदिक अरु वज्र पुनि, हीरा बनै जु ऐन ।
सकुची तिय मन निरखि तन, भूप भवन छवि मैन ॥३८॥

---

१. अमी जहाँ कान्हर-कथा मस्त ।

(मोती)

शशि-मोती, मोती, गुलिक, जलज, सीप-सुत नाम ।
मुक्ता वंदनवार तहँ, शोभित सुंदर धाम ॥३९॥

(मंगल)

कुज, अंगारक, भौम पुनि, लोहितांग, महि-बाल ।
मंगल से ठाढ़े उदित, धरे जु दीपक लाल ॥४०॥

(शुक्र)

उशना, भार्गव, काव्य, कवि, असुर-पुरोहित सोहि ।
गजमुक्तन को माल यह, शुक्र धरे जनु पोहि ॥४१॥

(लक्ष्मी)

श्री, पद्मा, पद्मालया, कमला, चपला होय ।
सिंधु-सुता, मा, इंदिरा, विष्णु-वल्लभा सोय ॥४२॥
जाकी नैन-कटाक्ष-छवि, रही सकल जग छाय ।
सो लक्ष्मी वृषभानु-गृह, आपुहि प्रगटी आय ॥४३॥

(माता)

अंबा, सावित्री, प्रसू, जननी, माता नाम ।
जननी राधा कुँवरि की, बैठी मंगल-धाम ॥४४॥

(नमस्कार)

बंदन, अभिवादन,[1] प्रनति, नमस्कार करि ताहि ।
आगे[2] अलि सकुचत चली, जहाँ कुँवरि-वर आहि ॥४५॥

(सीढ़ी)

आरोहन, आरोह पुनि, निःश्रेनी, सोपान ।
मनिमय सीढ़ी सखि चढ़ी, लखी न काहू आन ।४६॥

(शय्या)

फलिहु, तल्प, शय्या, शयन, संस्तर[3] पुनि शयनीय ।
दुग्ध फेन सी सेज पर, बैठी तिय कमनीय ॥४७॥

---

१. अति वंदन । २. अंग प्रनाम करत । ३. संस्तर ।

(तकिया)

उपबर्हन, उपधान पुनि, कंदुक सोई छीन[1]।
मृदुल उसीसो उटँगि कै, बैठी[2] तिय रिसनीय ॥४८॥

(बेटी)

पुत्री, दुहिता, कन्यका, तनया, तनुजा होय।
सुता जहाँ वृषभानु की, तहाँ गई सखि सोय ॥४९॥

(फूल)

कुसुम, प्रसून, सुमनसु पुनि, पुष्प, फलपिता नाम।
फूल मंजरी गेंद कर, खेलत छवि सों बाम ॥५०॥

(बंसी)

बंसी, कुंभिर, मीनहा, मच्छ-घातिनी नाम।
वेसर सों उरझी जु लट, मानों बंसी काम ॥५१॥

(श्रवण)

श्रवण, श्रोत्र, श्रुति, शब्द-गृह, कर्ण खुभी छवि भीर।
मनु बिविरूप सु कमल-कलि, फूली ससि - मुख-तीर ॥५२॥

(केश)

अलक, सिरोरुह, चिकुर, कच कुंचित कुटिल सुढार[3]।
कुंतल[4] कब्ररि ललाट जनु, चंदहि गई दरार ॥५३॥

(ललाट)

मस्तक[5], अलिक, ललाट पर, वेंदी बनी जराय।
मनों भाल ते भाग्य-मनि, प्रगटी बाहर आय ॥५४॥

(नेत्र)

लोचन, अंबक, चक्षु, दृग, ईछन रूप अधीन।
कछु रिस राते नैन जनु, जावक भींजे मीन ॥५५॥

---

१. उसीर। २. वैठी भानिक नीर। ३. सुवार। ४. लटके ललित।
५. शेपर अलिकऽरु गोधिका पट वेंदीय जराय।

(अधर)

वनित, ओष्ठ पुनि रदन छद, अधर मधुर एहि भाय ।
नाम लिखत जाको तुरत, किलक ऊख होइ जाय ॥५६॥

(दशन)

रदन, दसन, द्विज, दंत, रद, मदन[1] करत रँग भीज ।
जनु नव नीरद मध्य में, शीतल विद्युत वीज ॥५७॥

(बृहस्पति)

धिषण, शिखंडी, आंगिरस, सुराचार्य, गुरु, जीव ।
वाचस्पति जनु[2] ससि तरे, वनी निवौरी ग्रीव ॥५८॥

(मुख)

आनन, आस्य जु पुनि वदन, वक्त्र, तुंड छवि-भौन ।
मुख रूखो ह्वै जात इमि, जिमि दरपन मुख-पौन ॥५९॥

(ग्रीवा)

गल, कंधर, ग्रीवा बहुरि, कंठ कपोती कौन ।
पीक-लीक जहँ झलमलइ, ससि-छवि कीनी जौन ॥६०॥

(हाथ)

हस्त, बाहु सुख पानि, कर, कबहूँ[3] धरत कपोल ।
वर अरविंद बिछाय जनु, सोवत इंदु अडोल ॥६१॥

(उरोज)

उरज, पयोधर, कुच कहिय[4], अस्तन उर छवि-ऐन ।
कंचन-संपुट देव जनु, पूजि छिपाए मैन ॥६२॥

(किंकिणी)

रसना, काँची, किंकिनी, क्षुद्र मेखला जाल ।
अट्टावलि जनु मयन-गृह, बाँधी वंदनमाल ॥६३॥

---

१. इमि दमकन्त । २. ससि तरि उदित । ३. कबहुँक धरे । ४. स्तन, उर मंडन छवि ऐन ।

(नूपुर)

तुला, कोटि, मंजीर पुनि, नूपुर रुनकत पाय।
रुनकि उठी जनु मयन की, बीना सहज सुभाय ॥६४॥

(अंबर)

चोल, निचोल, दुकूल, पट, अंशुक, बासस, चीर।
पिय तन बास जु बसन मे, छिन छिन होत अधीर ॥६५॥

(कीर)

रक्त-चंचु, शुक, कीर जब, पढ़न लगत पिय नाम।
झुकि झहरावति मुसुकि तब, अति छवि पावति बाम ॥६६॥

(दर्पन)

प्रतिबिंबऽरु आदर्श पुनि, मुकुर स्वकर तिय लेति।
पियमूरति नैनन निरखि, फेरि डारि तेहि देति ॥६७॥

(वीणा)

तंत्री वीणा, वल्लकी, बहुरि विपंची आहि।
यंत्र बजावति सहचरी, बहुरो वरजति ताहि ॥६८॥

(अंतरध्यान)

गुप्त, तिरोहित, अंतरित, गूढ़, दुरूह, निलीय।
लोपांजन सो लुकि सखी, देखि एहि विधि तीय ॥६९॥

(पान)

नागबल्लि[१]-दल, पान, द्विज, तामबूल सखि चाहि।
भौंह उमेठत बितनु जनु चाप चढ़ावत आहि ॥७०॥

(समय)

सामय, समय, अनीह वय, बेला, अनिमिप, काल।
वड़ी बेर लौं सखिन यों, देखी वाल रसाल ॥७१॥

(पानी)

अंबु, कमल, कीलाल जल, पय, पुष्कर, वन, वारि।
अमृत, अर्ण, जीवन, भुवन, घन रस अरु पापारि ॥७२॥

---

१ मुखवासन ताबूल द्विज पान सखी करि चाहि।

मेघ-पुष्प, विष सर्वमुख, कं, कबंध, रस, तोय।
उदक, पाथ, संवर, सलिल, आप[1] पीठ पुनि सोय ॥७३॥
पानी नैन पखारिकै, अंजन हाथै लीन।
प्रगट भई पिय की सखी, निपट सुसंकित दीन ॥७४॥

(भय)

साध्वस, डर, आतंक, भय, भीति, भीर, भी,[2] त्रास।
डरत सहचरी सकुच तें, गई कुँवर के पास ॥७५॥

(चरण)

चरन, चलन, गतिवंत पुनि, अंध्रि, पाद, पद, पाय।
पग वंदन करि सहचरी, ठाढ़ी सन्मुख जाय ॥७६॥

(हरिद्रा)

पीता, गौरी, कांचनी, रजनी, पिंडा नाम।
हरदी चूनो परत जिमि, इमि देखत भइ वाम ॥७७॥

(टेढ़ा)

वक्र, असित, कुंचित, कुटिल, टेढ़ी भौहन ठौर।
अरुन कमल पर प्रात जनु, पंख पसारे भौंर ॥७८॥

(भौंह)

भ्रू, तंद्री, भृकुटी, कुटिल, भौंह सतर करि भाल।
बहुत काल बीते तनक, बोली बाल रसाल ॥७९॥

(क्रोध)

कोप, क्रोध, आमर्ष, तम, रोष पाय रिपु होय।
छोभ भरी तिय को निरखि, डरी सहचरी सोय ॥८०॥

(क्षेम)

क्षेम[3], भद्र, मंगल, शुभम, संशिव, शिव, कल्यान।
कित डोलत है कुशल कहु, पूछति कुँवरि सुजान ॥८१॥

---

१. अपु कपीठ। २. पुनि। ३. क्षेम, अनामय, भद्र, भव।

(संज्ञा)

संज्ञा आवै गोत्र पुनि, छेम धाम तुअ नाम।
अमिय बरस बर दरस तें, सब परिपूरन काम।८२॥

(स्त्री)

स्त्री, ललना, सीमंतिनी, दारा, बनिता, बाम।
अबला, बाला, अंगना, प्रमदा, कांता नाम।८३॥
तरुनी, रमनी, सुंदरी, तनु[1] ऊरज पुनि सोइ।
तिय तोसी तिहुँ लोक में, रची बिरंचि न कोइ॥८४॥

(ब्रह्मा)

अज, कमलज, बिधि, जगपिता, धाता, सतधृत होइ।
स्रष्टा, चतुरानन, धिपण, द्रुहिण, स्वयंभू सोइ॥८५॥
लै लै सत सब छबिन की, जिती हुती जग माँझ।
तोहि रची बिधिना निपुन बहुरयो ह्वै गयो बाँझ॥८६॥

(सुंदर)

सुभग, सुसम, बंधुर, रुचिर, कांत, काम, कमनीय।
रम्य, सुवेसऽरु भव्य पुनि, दर्शनीय, रसनीय॥८७॥
तैसोइ[2] सुंदर बर कुँवर, नागर नगधर पीय।
जोरि रची विधना निपुन, एक प्रान तनु बीय॥८८॥

(युधिष्ठिर)

धर्मराज, आजातरिपु, कौनतेय, कुरुराय।
नृपति युधिष्ठिर सम प्रिया, तेरे[3] पीय सुभाय।८९॥

(अर्जुन)

जिष्णु, धनंजय, विजय, नर, फाल्गुन, क्रीटी होय।
गुड़ाकेश, गांडीवधर, पार्थ, कपिध्वज सोय॥९०॥
अर्जुन सो धनुधर अवधि, तिहि सम और न होय[4]।
तिमि तुव प्रेम अवधि सुबिधि, रची बिरंचि न कोय[5]॥९१॥

---

१. तनूदरी। २. कम्र मनोज्ञ मनोहरऽरु। ३. तेरे सौति अभाव।
४. वीय। ५. तीय।

(गंगा)

विष्णुपदी, निर्जर-नदी, निगम-नदी, हरि-रूप।
ध्रुवनंदा, मंदाकिनी, भागीरथी अनूप ॥९२॥
सुरसरि ज्यों तिहुँ लोक में, पाप-हारि सुभ-कारि।
तिमि तुव कीरति-सरित बिय, किय पुनीत नर-नारि ॥९३॥

(दीर्घ)

प्रथुल, प्रासु, परिणाह, प्रथू, आरत, तुंद, बिशाल।
दीर्घ स्वाँस जो भरति बलि, का कारन है बाल ॥९४॥

(शरीर)

काय, कलेवर, कुणप, बपु, देह, आतमा, अंग।
विग्रह, उपघन, संहनन, धाम, सरीर पतंग ॥९५॥
तुव तन समसरि करन हित, कनक आगि झपि लेइ।
कोमल सरस सुगंध नहिं, को कवि उपमा देइ ॥९६॥

(कमल)

पुंडरीक, पुष्कर, कमल, जलज, अब्ज, अंभोज।
पंकज, सारस, तामरस, कुवलय, कंज, सरोज ॥९७॥
मकरंदी[1], अरविंद पुनि, पद्म, कुसेसय नाँउँ।
क्यों[2] मुख-नलिन मलिन कछू, देखति हौं बलि जाउँ ॥९८॥

(चंद्रमा)

इंदु, कलानिधि, सुधानिधि, जैवात्रिक, ससि, सोम।
अब्ज अमीकर, छपाकर, विधु, कहियत[3] हिम रोम ॥९९॥
बिछुरि चंद ते चंद्रिका, रहति न न्यारी होइ।
इमि अवलोकति बाल कहुँ, कहि बलि कारन सोइ ॥१००॥

(काम)

मदन जु मन्मथ, मनोभव, अतनु, पंचसर, मार।
मीनकेतु, कंदर्प पुनि, दर्पक विरह विदार ॥१०१॥
पुष्प-चाप, मनसिज, वितनु शंबरारि, स्मर, काम।
पति सों रति जिमि मैंन रुठि, इमि दिखियति तोहि भाम ॥१०२॥

---

१. सतपत्री औ सहसदल। २. पंकेरुह अरविंदमुख लखि मलीन तेहि बाम। ३. हिमकर।

(मेघ)

धाराधर, जलधर, मिहिर, जग-जीवन, जीमूत ।
मुहिर, बलाहक, तड़ितपति, कामुक[1], धूम-सपूत ॥१०३॥

(भौंर)

मधुकर, भ्रमर, द्विरेफ, अलि, अलिन, शिलीमुख, भृंग ।
चंचरीक, रोलंब पुनि, कीलालप सारंग ॥१०४॥
मधुप, मधुव्रत, मधुरसिक, इंदीवर-मधु-चौर ।
भँवर[2] नाम जुरि मौरवी होत काम सिरमौर ॥१०५॥

(दामिनी)

छण-रुचि, छटा, अकालकी[3], तड़ित, चंचला होइ ।
विद्युत, संप, विजाग, विजु, दामिन घन विन सोइ ॥१०६॥

(सेना)

प्रतनी, ध्वजनी, वाहिनी, चमू, बरूथिन ऐन ।
साधक, डंड, अनीक, बल, नृप विन वनै न सैन ॥१०७॥

(धनुष)

सरासनऽरु कोदंड, धनु, कार्मुक, रिपु-संताप ।

(प्रत्यंचा)

प्रत्यंचा, गुन, मौरवी, जेह, पनिच सँग चाप ॥१०८॥

(प्रिया)

इष्टा, दयिता, वल्लभा, प्रिया, प्रेयसी होइ ।
पिय कें तोसी प्राणपति, और न देखी कोइ ॥१०९॥

(लता)

व्रतती, विशती, वल्लरी, विशनी, लता, अतान ।
अमरबेलि जिमि मूल विन, इमि देखत तुव मान ॥११०॥

(मित्र)

सुहृद, दयत, वल्लभ, सखा, प्रीतम परम सुजान ।
सहकारी, सहकृत पिय न, करै अकारन मान ॥१११॥

---

१. परजन, जग्य-सपूत । २. भ्रमर विना केतकि न कछु केतकि विना न भौंर । ३. अकास की ।

(पुत्र)

आत्मज, सूनु, अपत्य पुनि[1], तनुज, तनय कहि तात।
नंद,[2] के नंद गोविंद सों, न करु गर्व की बात ॥११२॥

(मनुष्य)

मानुप, मर्त्य[3] ऽरु पुरुप, नर, मानव, मनुज, पुमान।
नर जनि जानहु नंदसुत, हरि ईश्वर भगवान ॥११३॥

(जोगीश्वर)

रिपि, भिच्छुक, तपसी, जती, व्रती, तपी, मुनि आहि।
संजति[4] वरनी संजमी, जोगी खोजत ताहि ॥११४॥

(वेद)

आम्नाय, श्रुति, ब्रह्म पुनि, धर्म मूल सव काम।
निगम, अगम जाकौ कहत, सोई सुंदर स्याम ॥११५॥

(शेप)

शेप, महाअहि, सर्पपति, धरनीधरन, अनंत।
सहस-वदन करि गुन गनत, तदपि न पावत अंत ॥११६॥

(धर्मराज)

वैवस्वत, मृतु, पितरपति, संजमनी-पति होइ।
महिपध्वज, नरदंडधर, समवर्ती[5] पुनि सोइ ॥११७॥
अंतक, काल, कृतांत, जम, जाते जग डरपंत।
सो तौ पिय भ्रूभंग ते, थरथर अति काँपंत ॥११८॥

(कुवेर)

पुन्य जनेश्वर, वैश्रवन, धनद, ऐलविल होइ।
गुह्यकपति, त्र्यंबक-सखा, राजराज पुनि सोइ ॥११९॥
नर-वाहन, किंनर-अधिप, द्रव्याधीस कुवेर।
हरि-पद-पंकज परस कों, पावत नाहिन वेर ॥१२०॥

(वरुण)

वरुण, प्रचेता, पांसुपति, जलपति, जलचर-ईस।
सो सुनि तुव पिय पगनि पर, परथौ घसत नित सीस ॥१२१॥

---

१. तनुज, तनय, तनंधयु तात। २. नँदनंदन। ३. परम पवित्र वपु।
४. जोगीजन मिलि तप करैं नितही। ५. सूरज-सुत।

(दुर्गा)

उमा, अपरना, ईश्वरी, गवरी, गिरिजा होइ।
मृड़ा, चंडिका, अंबिका, भवा, भवानी सोइ ॥१२२॥
अर्प्या, मेनकजा, अजा, सर्व-मंगला नाम।
माया जहाँ[1] अधीन जग, विस्तारति है भाम ॥१२३॥

(गणेश)

लंबोदर, हेरंब पुनि, द्वैमातुर, इकदंत।
मूषक-वाहन, गज़-बदन, गनपति, गिरिजा तंत ॥१२४॥
कोटि विनायक जो लिखें, महि से कागर कोटि।
ता परि तेरे पीय के गुन नहिं आवै टोटि ॥१२५॥

(धूर्त)

व्याजी, जिह्म, कुटिल, कितव, छद्मी, कुहक छली जु।
कपटी कान्हर कुँवर की, केती, कहत भली जु ॥१२६॥

(कुरंग)

ऐण, हरिण, वातप, प्रपद, हरि, सारँग पुनि आहि।
करसायल[2] मृग दृग लियें, वलि थोरौ इतराहि ॥१२७॥

(पाप)

एन, वृजिन, दुहकृत, दुरित, अव, अमीव पुनि पंक।
किल्विष, कल्मष, कलुष, कलि, कष्मल, समल, कलंक ॥१२८॥
पाप[3] महावन दहन दव, जाकौ रंचक नाम।
ताकौं तू कपटी कहति, कहा कहौं तोहि भाम ॥१२९॥

(पाषान)

ग्राव, अस्म, प्रस्तर, उपल, सिल, पषान अति भार।
पानी पर पाथर तिरें, जाके नाम अधार ॥१३०॥

(नौका)

उडुप, पोत, नवका, पलन, तरि, वहित्र, जल-जान।
नाम-नाँव चढ़ भव-उदधि, केते तरे अजान ॥१३१॥

---

१. अपने हेत करि जग विस्तारति वाम।
२. मृग-सिसु ऐसे दृग लिए चलि। ३. पाप हारि ज्यों नीर कर।

(रुधिर)

श्रोणित, रक्त, ककोणि पुनि, रुधिर, असृक, क्षतजात।
लोहू पीयत पूतना, पूत भई छ्वै गात ॥१३२॥

(राक्षस)

कोनप, अश्रप पुन्य जन, निपका-सुत, दुर्नाद।
कर्बुर, असुर, निसाचरऽरु जातुधान, क्रव्याद ॥१३३॥
ऐसे राक्षस पातकी, हौं देषी गति होति।
उलटि समानी पीय में, परगट जाकी जोति ॥१३४॥

(धूरि)

धूलि, धूसरी, खेह, रज, पांश्रु शर्करा मंद।
हरिपद-सिकता, रेनु कौं वांछत सनक-सनंद ॥१३५॥

(महादेव)

गंगाधर, हर, शूलधर, ससिधर, शंकर, वाम।
शर्व, संभु, शिव, भीम, भव, भर्ग, काम-रिपु नाम ॥१३६॥
त्रिनयन, त्रिबंक, त्रिपुर-अरि, ईस, उमापति होइ।
जटी, पिनाकी, धुर्जटी, नीलकंठ, मृड सोइ ॥१३७॥
वामदेव से देव बलि, जाकौ धरत धियान।
ताकों तू कपटी कहत, यह धौं कौन सयान ॥१३८॥

(सूर्य)

देव, दिवाकर, विभाकर, दिनकर, भास्कर, हंस।
मिहर, तिमिरहर, प्रभाकर, विवस्वान, तिग्मंस ॥१३९॥
रवि-मंडल मंडन जु को, कहत जु मुनि-जन जाहि।
सो यह नागर नंद को, क्यों वलि कपटी आहि ॥१४०॥

(मिथ्या)

मिथ्या, मोघ, मृषा, अमृत, वितथ, अलीक, निरत्थ।
ऐसे पिय सों झूठ वलि, क्यौं वोलिये अकत्थ ॥१४१॥

(निकट)

अती पार्श्व, अवि दूर, तट उप, समीप, अध्यास।
अवसि अनादर होइ जो, रहै निरंतर पास ॥१४२॥

(चंदन)

गंध-सार, श्री खंड, हरि, मलयज, भद्र, पटीर।
चंदन कौं इंधन करति, मलया-वासी भीर ॥१४३॥

(मीन)

सफरी, अनमिष, मत्स्य, तिमि, पृथरोमा, पाटीन।
मकर, उलूपी, अंडभव, वैसारन, झप, मीन ॥१४४॥
केत[1] नाम जुरि मदन है, सिंध चंद ढिग जाइ।
चंदहिं मंद न जानहीं जलचर मानहिं ताहि ॥१४५॥

(सागर)

सिंधु, सरितपति, सलिलपति, अंभोनिधि, कूपार।
इरावान, अर्णव, उदधि, कौस्तुभ-अवधि, अपार ॥१४६॥
रतनाकर गुन रूप कौं, सुंदर गिरिधर पीय[2]।
तिहि मिलि प्रेम कलोलिये, यों न वोलियै तीय[3] ॥१४७॥

(मर्कट)

कपि, साखामृग, वलीमुख, प्लवग, कीस, लंगूर।
वानर के कर नारियर, दयो विधाता कूर ॥१४८॥

(वलभद्र)

रौहिणेय, वलभद्र, वल, संकर्षण, वलिराम।
नीलांवर, रेवतिरमण, मुसली, पालक काम ॥१४९॥
अव रंचक क्यों चुप करै, कितै वैठ जिउ लेत।
हरि हलधर के वीर कौं, कितक वड़ाई देत ॥१५०॥

(पृथ्वी)

पृथ्वी, छिति, छौनी, छिमा, धरनी, धात्री गाइ।
उर्वी, जगती, वसुमती, वसुधा सर्व सहाइ ॥१५१॥
अचला, विपुला, सागरा, धरा, लोर्वरा होइ।
गोत्रा, अवनी, कुंभिनी, मही, मेदनी, सोइ ॥१५२॥

---

१. छीर समुद के तीर अलि वसत जु जलचर आहि।
२. लाल। ३ बाल।

विश्वंभरा, वसुंधरा, थिरा, कास्यपी आहि।
रसा, अनंता, भू, इला, विला कहत पुनि ताहि ॥१५३॥
सब धर जिन इक सीस पर, सोहति जिमि कन हीर।
क्यों आनहि तुव ऑखितर, ता हलधर के बीर ॥१५४॥

(बाण)

तोमर, खग, जिह्मग, असुग, विशख, शिलीमुख, बाण।
कण, मार्गण, नाराच, इषु, पत्री सोखन प्राण ॥१५५॥
सायक घाय पिराइ पुनि, सिमिटि सरीर मिलाइ।
वचन-तीर की पीर बलि, मिटै न जो जुग जाइ ॥१५६॥

(वैश्वानर)

पावक, वन्हि, दहन, ज्वलन, शिखी, धनंजय होइ।
सक्र, उपवुंध, वायु-सख, वीतहोत्र पुनि सोइ ॥१५७॥
जात वेद, ज्वल जोति, हरि, चित्रभानु, बृहभानु।
अनल, हुतासन, विभावसु, निर्जर-जीभ, कृसानु ॥१५८॥
अगनि दगध जे[1] द्रुम लता, फिरि फल फूल[2] न देत।
वचन-दग्ध जे जीव बलि, बहुरि न अंकुर लेत ॥१५९॥

(मूर्ख)

मुग्ध, मंद, जड़, मूक, नड़, अज्ञ, कटुक-वद संठ।
मूरख नर जाने कहा, मनि जैसे कपि-कंठ ॥१६०॥

(विज्ञ)

कृती, कुशल, कोविद, निपुन, पटु, प्रवीन, निष्णात।
पर विदग्ध नागर, कोऊ, जानै रस की बात ॥१६१॥

(अपराध)

अघ, आगस, हेलन, अहित, अवगुन जो हैं पीय।
कूप छाँह जिमि राखिए,[3] यौं न भाखियै तीय ॥१६२॥

(प्रेम)

दोहद, हार्द सनेह, हित, प्रनय, राग, अनुराग।
कित गो तेरो प्रेम वह, हे भामिनि बड़भाग ॥१६३।

---

१. बलि। २. फूलहिं। ३. राखि उर।

(पर्वत)

अग, नग, भूभृत, दरीभृत, शृंगी, सिखरी होइ।
सैल, सिलोच्चय, गोत्र, हरि, अचल, अद्रि पुनि सोइ ॥१६४॥
गिरि गोबर्धन बाम कर धर्‌यौ स्याम अभिराम।
तुव उर तै वह धुकधुकी, अबलौं मिटत न भाम ॥१६५॥

(भुजंग)

पन्नग, नाग, भुजॅग, उरग, जिम्हग, भोगी, सर्प।
चक्षुश्रव, हरि, सरीसृप, काकोदर, गर दर्प ॥१६६॥
आसी-विप, विषधर, फनी मनी, बिलेशय, व्याल।
चक्री, दर्वी, गूढपा, लेलिह, केवल काल ॥१६७॥
काली अहि-गंजन समै, नै राखी गहि बॉहि।
नदनंदन पिय-प्रेम वस, परत हुती दह मॉहि ॥१६८॥

(पीड़ा)

बाधा, बिथुरा, बिथा, रुज, आरति, पीड़ा, ग्लानि।
अब जु न परसति पीर वलि, कित सीखी यह बॉनि ॥१६९॥

(असुर)

दानव, दनुज, दैत्य, पुनि, सुर-रिपु, निपट असंत।
माया-रूपी रैनि दिन, डोलत असुर अनंत ॥१७०॥

(संध्या)

संध्या, निसिमुख, पितृ-पसु, सायंकाल, प्रदोप।
सॉझ परी है छैल चलि, छिमा करिहु तजि रोष ॥१७१॥

(कानन)

कानन, विपिन, अरन्य, वन, गहन, कक्ष, कांतार।
अटवी मे इकलै दई, मोहन नंद कुॅवार ॥१७२॥

(विप)

गरल, हलाहल, गर, अमृत, कालकूट, रस, मार।
रस मे विप जिन घोरि वलि, चलि अब करि न अवार ॥१७३॥

(पपीहा)

कल सुकंठ, दात्यूह, हरि, चातिक, सारँग नाँउ।
घन सो रूठै पपिहरै, नहिंन बनै बलि जाउँ ॥१७४॥

(रजनी)

छनदा, छपा, तमस्वनी, तमी, तमिश्रा होइ।
निसि, सर्वरी, विभावरी, रात्रि, त्रिजामा सोइ ॥१७५॥
सुखद सुहाई सरद की, कैसी रजनी जाति।
चलि बलि मोहन लाल पै, कत बैठी अनखाति ॥१७६॥

(आकाश)

अंबर, पुहकर, नभ[1], बियत, अंतरिक्ष, घनबास।
व्योम, अनंत, विहायसी, प, सुर-वर्त्म, आकास ॥१७७॥
गगन जु उडुगन बनि रहे, नेंक चहौ तजि रोष।
देखन तेरौ रूप जनु, सुरतिय किए झरोष ॥१७८॥

(अल्प)

तुच्छ, अल्प, लव, सूक्ष्म, तनु, निपट कृशोदर तोर।
कहि बलि एतौ मान सँचि राख्यौ है किहि ओर ॥१७९॥

(नख)

करज, पुनर्भव, नखर, नख, हे रँगभीनी भाम।
कचकी छितहि जु खनति बलि, नहिं कछु नख सों काम ॥१८०॥

(संग्राम)

आयोधन, रन, आजि, मृध, आहव, संग, समीक।
संपराइ, संगर, समर, संजुग, कलह, अनीक ॥१८१॥
सुरति जुद्ध जब पीय सो, तोहि बनैगो भाम।
नख नाराचनि बिनि कुँवरि, करिहौ कहा प्रनाम ॥१८२॥

(मकरी)

लूता, सुत्रा, मर्कटी, उर्णनाभि पुनि होइ।
जनु कहुँ मकरी गुरु करी, पकरी विद्या सोइ ॥१८३॥

---

१. विष्णुपद।

(मार्ग)

वर्त्तम, अध्वा, सरणि, पथ, संचर, पदवी, हार ।
मग देखत ह्वैहै दई, मोहन नंदकुमार ॥१८४॥

(कृपा)

मया, दया, किरपा, घृणा, अनुकंपा, अनुक्रोस ।
करुना करि करुनानिधे, राधे जिन करि रोस ॥१८५॥

(षड्ग)

रिष्ट, कुशेय, कृपाण, असि, मंडलाग्र, करवाल ।
दृग जेतौ तेतौ कहा, घाइकरन कह्यौ वाल ॥१८६॥

(दिशा)

कान्या, काष्टा, ककुभ, गो, आसा, दिसि वहि ओर ।
कबके चितवत हैं दई, नागर नंद किसोर ॥१८७॥

(नदी)

सरिता, धुनी, तरंगिणी, तटिनी, ह्रदिनी होइ ।
श्रोता, श्रवती, निम्नगा, पगा, द्विरेफा सोइ ॥१८८॥
शैवालनि, श्रोतस्वनी, द्वीपंती, जलमाल ।
आपगान को वाट में, सोच कहा है वाल ॥१८९॥

(तात)

तात, जनक, सविता, पिता, वव्रा तोर गुनधाम ।
तोहिं पहिले नॅद-नंद कौ, देत हुतौ हे भाम ॥१९०॥

(विवाह)

पाणिग्रहण[1] अरु परिणयन, उद्वह, विहित विवाह ।
सांति परी जु भयौ नही, दुख देती उहि नाह ॥१९१॥

(मदिरा)

मधु, माध्वी, मदिरा, इरा, सुरा, वारुणी होय ।
आसव, मय, कादंवरी, मधुवारा मैरेय ॥१९२॥

---

१. कर पीड़न पानिग्रहन ।

मिरा, प्रसन्ना, बुद्धिहा, हाला, सिंधु-प्रसूति ।
मद पीये ज्यों बकत कोउ, कहा बकति है दूति ॥१९३॥

(स्वभाव)

प्रकृति, निसर्ग, सहज अति, विश्वस सील सुभाव ।
कवन टेव टेढ़ी परति, सुंदरि सरल कहाव ॥१९४॥

(अंधकार)

अंध, तिमिर, अनकाव, तम, ध्वांत, कुहर, नीहार ।
सो तेरें देख्यौ कुँवरि, सौ मन, तेल, अंध्यार ॥१९५॥

(वृक्ष)

पत्री, दली, फली, वरहि, वृक्ष, महीरुह गोइ ।
शाखी, विटपी, अनोकह, कुज, द्रुम, पादप होइ ॥१९६॥
कल्पतरु तरे तल्प रचि, कब के बिलपत[1] पीय ।
तदपि न तनिक दया कहूँ, उपजति[2] निर्दय हीय ॥१९७॥

(पत्र)

पत्र, पर्ण, दल, वर्ह, छद, खरकत जब तरु-पात ।
तुव आगम-भ्रम चौंकि पिय, उठि उठि उत लौ जात ॥१९८॥

(पवन)

श्वसन, सदागति, मरुत अरु, मारुत जगत परान ।
अनिल, प्रभंजन, गंधवह, विवस्वान, पवमान ॥१९९॥
तुव तन परिमल परसि जब, गवनत धीर समीर ।
ताकौ बहु सनमान करि, परिरंभत बलबीर ॥२००॥

(ध्वनि)

नाद, निनद, निश्वन[3], सबद, सुखर[4] मुखर तरु, राव ।
वे वंशी मे कहत प्रिय, हे प्रानेश्वरि आव ॥२०१॥

(आज्ञा)

वय, आदेश, निदेश पुनि, आज्ञा, शासनि योग ।
आयसु है अब जाहु फिरि, लहै प्रीति[5] के लोग ॥२०२॥

---

१. हेरत । २. आवत निरदय जीय । ३. धुनिरव । ४. स्वन सुघोष ।
५. सुप्रीतम सोग ।

(अति)

भृस, अतिसय अलबेलि अलि, अधिक, अत्यंत, नितंत ।
अति सर्वत्र भलो नहीं, कहि गे संत अनंत ॥२०३॥

(समूह)

निकर, प्रकर[1], निकुरंब, व्रज, पूर, पूग, चय, व्यूह ।
कंदल[2], जाल, कलाप, कुल, निवह, निचय[3], संदूह ॥२०४॥
व्रात, अनेक, कदंब, गन, ग्राम, तोम, वहु, वृंद ।
ह्यौं अनेक वाते कहीं, भई तवा को बुंद ॥२०५॥

(थोरा)

दर, स्तोक, ईखत, अलप, रंचक, मंद, मनाक ।
तब प्रिय सहचरि तन चितै, मुसकी कुँवरि तनाक ॥२०६॥

(दुख)

कदन, विधुर, अक, दून, तुद, गहन, व्रजिन पुनि आहि ।
दुख जिनि दै, अब जान दै, जिन[4] वैठी इतराहि ॥२०७॥

(अर्द्ध रात्रि)

निशि, निशीथ अरु महानिशि, हौंन लगी अध रात ।
कौंन चलै सखि सोइ रहु, जैहैं उठि परभात ॥२०८॥

(वज्र)

असनि, कुलिश, निर्घात, पवि, उलका सी तैं नाहिं ।
परौ बुरे के वज्र सिर, विरस करै रस माहि ॥२०९॥

(लज्जा)

ह्री, लज्जा, व्रीडा, त्रपा, सकुच, न करि विनु काज ।
चलि वलि प्यारे पीय पैं, ओखद खात न लाज ॥२१०॥

(उपानह)

पादत्रान, उपानही, पाद-पीठ मृदु भाइ ।
पनही मनही भावती, आगे धरी वनाइ ॥२११॥

---

१. व्यूह संदोह, व्रज नि स्तोम समुदाय । २. चय दल । ३. जूथ समवाय । ४. कत ।

(अटा)

सौध, हर्म्य, प्रासाद ते, चली जु[1] तिय गति मंद ।
महल[2] धौरहर ते मनों, अवनी उतरत चंद ॥२१२॥

(हिमकर चांदनी)

जोतिस्ना पुनि कौमुदी, वहुरि चंद्रिका नाँउ ।
जोन्ह सि परसति वदन ते, थोरौ हँसि वलि जाँउ ॥२१३॥

(वीथी)

पुन्य प्रतोली, वीथिका, रथ्या कहियै ताहि ।
इहि वीथी बलि जाउँ चलि, निपट निकट पिय आहि ॥२१४॥

(उपवन)

कृत्रिम[3] वन, उद्यान पुनि, उपवन सो आराम ।
यह वृंदाबन वाग तुव, दिखि वलि छवि कौ धाम ॥२१५॥

(वसंत)

कुसुमाकर, रितुराज, मधु, माधव, सुरभि, वसंत, ।
माली जिमि जुगवत सदा, यातें अधिक लसंत ॥२१६॥

(खग)

द्विज, संकुत, पक्षी, शकुनि, अंडज, बिहग, बिहंग ।
त्रियग, पतत्री, पत्ररथ, पत्री, पतग, पतंग ॥२१७॥

रटत[4] विहंगम रँग भरे, कोमल कंठ सुजात ।
तुव आगम आनंद जनु, करत परस्पर बात ॥२१८॥

(पीपर)

चलदल, पीपल, गजअसन, वोधिवृक्ष, अश्वत्थ ।
पीपर दै वलि दाहिनौ, जोरि हत्थ धरि मत्थ ॥२१९॥

(पाडर)

थाली, पाटलि, फलरुहा, स्यामा, वामा नाम ।
अंवु-वसा, मधु दूति यह पाडर करति प्रणाम ॥२२०॥

---

१. जुवति । २. शोभित मुख जनु गगन ते । ३. कृतारण्य । ४. नटत विहंग अनंग भरि ।

आम्र)

पिक-वल्लभ, कामांग पुनि, मदरासख, सहकारि।
यह रसाल की माल बलि, नै जु रही फल भार ॥२२१॥

(महुवा)

माधव, मधुद्रुम, मधुश्रवा, मधुष्ठीव, गुड़फूल।
ये बंधूक के फूल बलि, कछु तुव गंडन तूल ॥२२२॥

(दाड़िम)

रक्तबीज, हालिक, करक, शुक-प्रिय, कुट्टिम, मार।
ए दाड़िम इत देखि बलि, कछु तुव दसन अकार ॥२२३॥

(कदली)

रंभा, मोचा, गजवसा, भानु-फला सुकुँवार।
ए कदली जिनमे कछू, तुव ऊरू उनहार ॥२२४॥

(बिल्व)

सुरभि, शिलूषी, सदाफल, ताल, बिल्व, मालूर।
ए श्रीफल तुव कुचन सम, कहत बहुत कवि कूर ॥२२५॥

(तमाल)

कालकंध, तापिच्छ पुनि तिंडुक सहज तमाल।
बैठे हे जहँ कान्हि बलि तुम्र अरु मोहनलाल ॥२२६॥

(कदंब)

तूल, नीप, प्रिय-अंग सो, मदिरा-गंध, सुवाह।
यह कदंब बलि कान्ह जिहि, चढ़ि कूदे दह माँह २२७॥

(किंसुक)

वात, पोथ पुनि ब्रह्मद्रुम, किंसुक, पर्ण, पलास।
टेसू बिरही जननि कों, नाहर नहन बिलास ॥२२८॥

(बहेरा)

अक्ष, विभीतक, कर्पफल, संवर्त्तक, कलिवृक्ष।
भूतावास बहेर तर, है जिमि चलि मृग-अक्षि ॥२२९॥

(नारियल)

वानरमुख, लांगूर पुनि नारिकेलि, शुभ काम।
अहो नारि वर नारियर, तोहिं करत परनाम ॥२३०॥

(सुपारी)

घोटा, क्रमुक, गुवाक पुनि पूँग, सुपारी आहि।
वारी वारी कहत बलि रंचक इन तन चाहि ॥२३१॥

(केंवाच)

कोलि वल्लिका, कपिलता, ब्रिसर श्रेयसी नाउँ।
कंडु करति यह अंग में, कै छिन छू बलि जाउँ ॥२३२॥

(मिर्च)

तिक्ता, उष्णा, कोलिका, कृष्णफला पुनि नाउँ।
मिरच लता पाँ परि कहति, भली करी बलि जाउँ ॥२३३॥

(पीपर)

कोला, कृष्णा, मागधी, तिग्म, तुंडला होइ।
वैदेही, स्यामा, कणा, श्रूटी कहियै सोइ ॥२३४॥
यह पीपरि बलि पग गहै, कहति बहुत परकार।
अब ते इतनी करि कुँवरि, प्रीतम प्रान-अधार ॥२३५॥

(हरैं)

अभया, पथ्या, अव्यथा, अमृता, चेतक होइ।
कायस्था, विजया, जया, शिवा, श्रेयसी सोइ ॥२३६॥
यहि हरीतकी पग गहति, हरति उदर के रोग।
ज्यौं तू गिरिधर लाल कौ, वाल सकल सुख जोग ॥२३७॥

(सोंठि)

विश्वा, नागर, जगभिषक, महा औषधी नाउँ।
यह सोंठी लुटि पगन तर, कहति कि बलि बलि जाउँ ॥२३८॥

(विद्रुम)

सुखिरा, नटी, नलीधमणि, कपोतांधि, परवाल।
तुव अधरन सम कहत कवि, पै नहि मृदुल रसाल ॥२३९॥

(दाष)

माठी, मॅडुका, मधुरसा, कालमेखका होइ।
गुडा, प्रयाला, गोस्तनी, चारु फला पुनि सोइ ॥२४०॥
यह द्राक्षा वलि पाँ परति, रंचक इहि तन चाहि।
नहिंन गुसीली वाल सी, निपट रसीली आहि ॥२४१॥

(केसरि)

काशमीर, कुंकुम, रुधिर, देववल्लभा नाउँ।
यह केसरि द्दग भरि कहति, भली करी वलि जाउँ ॥२४२॥

(जूथी)

हरिनी, गनिका, जूथिका, हेम पुष्पका, जाइ।
यह जूथी गूॅथी छबिनि, ठाढ़ी लेत वलाइ ॥२४३॥

(राजवल्ली)

अंविष्टा, प्रिय-वादिनी, राजपुत्रिका आहि।
तुवहि देखि फूली जु वलि रंचक इन तन चाहि ॥२४४॥

(मालती)

सुमना, जाती, मल्लिका, उत्तम-गंधा आस।
कछु इक तुव तन वास सो मिलति जासु की वास ॥२४५॥

(संजीवनी)

जीवा, जीवनि, मधुश्रवा, जीवंती पुनि नाउँ।
यह संजीवनी-मूरि बलि, जैसी तू वलि जाउँ ॥२४६॥

(दुपहरी)

बंधुजीव, वंधूक पुनि, जपा, कुसुम पुनि आहि।
दुपहरिया के फूल वलि, निसि फूले तुहि चाहि ॥२४७॥

(गुंजा)

काकचिंचिका, कृष्णला, गुंजा करति प्रनाम।
मुख[1] जु स्याम जनु स्याम कौं, लेति नाम अभिराम ॥२४८॥

---

१. सुखद स्याम छबि धाम को।

(क्रेतकी)

ताल खजूरी[1], तृनद्रुमा, केतकि पकरति पाइ।
तुव आगम आनंद वलि फूली अँग न समाइ ॥२४६॥

(लवंग)

देवकुसुम, श्री संग्य पुनि, जाचक[2] जाकौ राउ।
ललित लवंगलता इतहि, पगनि परति बलि जाउँ ॥२५०॥

(एला)

चंद्र-कन्यका, निष्कुटी, त्रिपुटी पुलकनि बेलि।
इत एला पग परति बलि, इहि रंचक मुख मेलि ॥२५१॥

(माधवी)

बासंती पुनि पुंडका, मुक्तफला अरु नाउँ।
इतहि माधवी पाँ परति, तनक चितै बलि जाउँ ॥२५२॥

(नागवल्ली)

तांबूली, अहि-वल्लरी, द्विजा, पान की बेलि।
सरस भई तुव दरस तें, बलि रंचक मुख मेलि ॥२५३॥

(बट)

जटी, कपर्दी, रक्तफल, वहुपद, ध्रुव, निग्रोध।
यह वंशीवट देखि बलि सब सुख निरवधि रोध ॥२५४॥

(सरोवर)

ह्रद, पुष्कर, कासार, सर, सरसी, ताल, तड़ाग।
यह देखौ वलि मानसर, फूल्यौ तुव अनुराग ॥२५५॥

(कालिंदी)

जम-अनुजा, रविजा, जमी, कृस्ना, स्यामल-आप।
यह जमुना सब समुद फिरि आवति तुव परताप ॥२५६॥

(तरंग)

भंग तरंग, कलोल पुनि वीची, ऊर्मि सुभाइ।
लहरी हाथ पसारि जनु जमुना पकरति पाइ ॥२५७॥

---

२. क्रकचच्छद । ३. जायक जाकौ नाउँ

(उपकंठ)

कूल, पुलिन, उपकंठ, तट, घोष, रोध अभ्यास।
वेला[1], सीमा, तीर चलि ये आये पिय पास ॥२५८॥

(वेत)

वेत, सीत, विदुलरथी, अभ्रपुष्प, वानीर।
मंजुल बंजुल कुंज तर, बैठे हैं बलवीर ॥२५९॥

(कोकिला)

परभृत, कलरव, रक्तदृग, पिक ध्वनि तहँ रस पुंज।
जनु पिय-आरति निरखि तुहि टेरति बलि एहि कुंज ॥२६०॥

(इंद्री)

गो, हृषीक, स्व, करन, गुन, इंद्री ज्यौं असु पाइ।
यों राधा माधव मिले परम प्रेम हरषाइ ॥२६१॥

(माला)

माला, स्रक्, स्रज, गुनवती, यह जु नाम की दाम।
जो नर कंठ कहैं सुनैं जानैं श्री घनश्याम ॥२६२॥

(जुगल)

जमल, जुगल, जुग, द्वंद्व, द्वै, उभय, मिथुन, त्रिवि, वीय।
जुगल-किशोर सदा बसौ, 'नंददास' के हीय ॥२६३॥
बिन जाने घनस्याम के आवागमन न जाइ।
ताते हरि, गुरु, वैष्णवन, भज निसि दिन चित लाइ ॥२६४॥

इति श्री मानमंजरी नाममाला संपूर्ण

---

१. नीर तीर चलि जाउँ बलि।

परिशिष्ट (क)

(शीघ्र)

अवलंवत, रव, जव, चपल, रंहसि, रय, त्वर, वाज ।
सहसा, सत्वर, रभ, तुरा, तुरन, वेग के साज ॥ १ ॥

(धाम)

गेह, वेस्म, संकेत, लय, मंडप, धिस्म, आसपद्य ।
मठ, निकाय, मंदिर, अवन, निकेतायतन पद्य ॥ २ ॥
निवृति, निसांतऽरु उद्वसित, सरण, परुय, आवास ।
अवसथ, वसतिऽरु आवसति, धॉम, कुंज सुपवास ॥ ३ ॥

(स्वर्ण)

रुक्म, रुद्र-रोदन, कनक, जांवूनदऽरु सुवर्ण ।
हेम, हिरन्य, कलधौत हरि, सातकुंभ पुनि स्वर्ण ॥ ४ ॥
जातरूप के सदन सब मानिक-गच छबि देत ।
जहॉं निरपि नर नारि सब झॉई झुकि झुकि लेत ॥ ५ ॥

(सिंघ)

वाघऽरु हरि, जछ, केसरी, द्वीपी, व्याघ्र, गजारि ।
सेर सूर भनि सारदुल पल-भछ, सिंघ, मृगारि ॥ ६ ॥

(राजा)

नर नामन तें पति जुरे, परवृढ, इन, ईसान ।
भू-भुज, धरनी-कंत, विभु, नरपति, ईस सुजान ॥ ७ ॥

(देवता)

सूपर्पक, अदितिज, दिधौ (कस), दानवारि, रिभु सोइ ।
कृत-भुज, अरिभव, अम्रत्या, सुप्ना, आदित होइ ॥ ८ ॥

(स्वर्ग)

स्वर्ग, नाक, स्त्रर, द्यौ, त्रिदिवि, दिव, तिरिविष्टप होइ ।
तहॉं वास कहियैं अमर तिन पति इंद्र जु कोइ ॥ ९ ॥

(दूत)

सहस्राक्ष, अपसर्प, चर, गूढ़ परप पुनि चारु।
प्रणिधि, दूत, जासूस ए छबि पावत हलकार ॥१०॥

(तिलक)

सन्नर अरु पुन्नाग कहि, तिलक विशेषक नाम।
उत्तमांग, कं, मूरधा, मस्तक छवि अभिराम ॥११॥

(स्याम)

काल, श्याम, मेचक, असित, चिवुक नीलकन ऐंन।
मनो रसीले आंत्र की मुहकरि मूँदी मैंन ॥१२॥

(पानी)

नीर, छीर चर जुरि मकर, दजुरें जलद उदोत।
जः रुह जल जोरत कमल, धि जुरें सागर होत ॥१३॥

(जुवती)

जोपा, कुल्या, गेहनी, वामलोचना, दार।
वधू, भीरु, जोषत, चपल, रामा, महिला, नारि ॥१४॥

(ब्रह्मा)

क, परमेष्ठी, प्रजापति, कमलासन, हंसेश।
विरंचि, विधाता, आत्मभू, हिरणगर्भ, लोकेश ॥१५॥

(सुंदर)

हृद्य, सौम्य, मंजुल, मधुर, चारु, ललित, सुकुँवार।
मुग्ध, प्रसस्त, अपीच्य पुनि सुष्ठु मंजु रससार ॥१६॥

(अर्जुन)

सव्य-साँच अरु स्वेत-हय, सव्द-भेदि वृपसेन।
दैत्य-रिपु रु कहि कर्ण-रिपु, कृष्ण-मित्र सुप देन ॥१७॥

(भीम)

भीम, वृकोदर, वायु-सुत, गदा-पाणि, रिपु-साल।
ज्यौं सोहै वलकी अवधि, त्यौं तुव रूप रसाल ॥१८॥

(कमल)

उत्पल, राजिव, कोकनद, सितांभोज, जलजात।
इंदीवरऽरु महोतपल, विस-प्रसून सतपात ॥१६॥
सरसीरुह, जलरुह, वनज, अंबुज, वारिज सोइ।
सहसपत्र, षरदंड कहि नीरज; सरसिज होइ ॥२०॥

(चंद्रमा)

ग्लौ, मृगांक, आत्रेय, हरि, जीव, उडुप, उडुराज।
चंद्र, चंद्रमा, निसाकर, तारापति, द्विजराज ॥२१॥
औसधीस, सुरपेय पुनि, रोहिणि-धव, श्री-बंधु।
शसधर, मयँकऽरु सिंधु-सुत, सारँग, कुमुद जु बंद ॥२२॥

(मेघ)

नीरद, क्षीरद, अंबुवह, वारिद, जलद, प्रजन्य।
घनाघनऽरुघन विछुरि बिजु, इमि देखति वलि धन्य ॥२३॥

(समान)

सदृस, सजाति, सवर्ण, सम, सदृकु, सदृक्ष, सधर्म्म।
तुल्य, सरूप, समान पुनि, उपमा भिद, सम कर्म्म ॥२४॥

(मैत्री)

सौहृद अरु सौहार्द पुनि, हृद्य, सख्य कहि नाँऊ।
मैत्री, सौरभ, इष्टता, मति सहास्य रसठाँऊ ॥२५॥

(पुत्र)

तन नामन सों ज जुरें, बालक, अर्भक होत।
प्रजा, तोक, उत्तानसय, उद्वह, दारक, पोत ॥२६॥

(भर्ता)

प्रिय, कॉमी, कामुक, रमण, इष्ट, प्राणपति, कंत।
भर्ता, प्यो, धव, प्रेष्ट, वर, है ब्रजराज अनंत ॥२७॥

(गरुड़)

गरुत्मान, तारक्ष, गरुड़, वैनतेय, शकुनीश।
सुपरण, अहि-रिपु, इंद्रजित, ताहि चढ़ै जगदीस ॥२८।

(उग्र, सूँड़)

उल्वण दारुण, घोर अरु, उत्कट, उग्र, कराल ।
पुष्पकर, हस्तऽरु पद्मकर, काढ्यौ गहि नंदलाल ॥२६॥

(नक्षत्र, कीर्तन)

धिष्ण, तार, नक्षत्र, उड्, तारक, अच्छ भिरात ।
साहस-धातुक-गुणावलि, साध बाध ज्यौं ख्यात ॥३०॥

(जन्म)

भव, उद्भव, उद्गम, जनन, जनि, उत्पति हे भाम ।
जन्म सुफल तबही जबै, भजिये सुंदर स्याम ॥३१॥

(सत्रु)

वैरि, अराति, अमित्र, अरि, द्विट्, सपत्न, द्विप, द्वेप ।
रिपु, दुर्जन, भ्रातृव्य, खल, सत्रु अहित ए लेपि ॥३२॥

(उद्धत)

उद्धत, मानी, स्तब्ध पुनि, उज्जीवन, सौंडीर ।
दृप्त, अहंकृत, गर्वगरु, उद्धऽरु गर्व-सरीर ॥३३॥

(कुरंग)

कृष्णसार, गोकर्ण, रिस, रोहत, संवर, न्युंक ।
अष्टापद, रौहस, सिरभ, चँवर प्रसत रुरु अंकु ॥३४॥

(महादेव)

उग्र, कपर्दी, भूत-पति, कृतवासो, शितकंठ ।
ईसानऽरु मृत्युंजयऽरु, वृपभध्वज, श्रीकंठ ॥३५॥

(स्वामिकार्तिक नाम)

सक्तिमानु, गुह, षट-वदन, सिषि-वाहन, पट-मात ।
क्रौंचि-भेदि, गिरिजातनय, महासेन, सिवतात ॥३६॥
कार्तिकेय, सरवन-जनम, स्कंद, विसाप, कुमार ।
सेनानी, स्वामी, सदा, ध्यान न पावत पार ।३७॥

(सूर्य)

विध, विरोचन, विभावसु, मार्तंड त्रयि-अंग ।
अंबरमनि, दिनमनि, तरनि, सविता, सूर, पतंग ॥३८॥

अर्क, अंसुमाली, तपन, आतप, आदित जानि।
दिनेसर्जमा पूपनऽरु द्युमणि, चंडकर भानु ॥३९॥

(सागर)

वारिधि, अगम, अमृतोद्भव, पारावार, पयोधि।
जलधि, समुद्, जल-रासि, दधि, नाम नदी-पति सोधि ॥४०॥

(चोर)

आगारिक, तस्कर, प्रणधि, स्तेन, निसाचर, चोर।
प्रतिरोधक अरु गूढ़ नर, हेरिक फिरै किशोर ॥४१॥

(पृथ्वी)

औनि, ओक, गो, गह्वरी, धर जोरें गिरि ठॉम।
पति जोरे राजा प्रगट, रुह जोरें तरु नॉम ॥४२॥

(कर्कस नाम)

स्तब्ध, कठिन, कर्कस, परुष, अरु कठोर, अश्लील।
दृढ़ काहल पुनि फल्गु जो होति तिर्य तजि सील ॥४३॥

(पंडित)

मेधावी, विद्वान, अभि-रूप, विचच्छन, सूर।
प्राज्ञ, विदुप, वुध, वागमी, आचारज दुख दूर ॥४४॥

(वलवंत)

वली, मनस्वी, तेजस्वी, सूर, तरस्वी जानि।
ऊर्ज, प्रवणि, भास्वर, सुभट, राधे जिन करि मान ॥४५॥

(धन)

द्रविण, द्रव्य, वसु, वित्त, वल राय अर्थ सुष ओक।
धन जेतौ व्रज नंद कें तितौ नहीं तिहुँ लोक ॥४६॥

(गुफा)

कंदर, गह्वर, कंदरा, गुहा, गुफा, दरि जानि।
सांन प्रस्थ तजि सिखर कूँ, करि वैठी मन मानि ॥४७॥

(भिल्ल नाम)

दुर्गम चिर जोरें सवर, दस्यु, निपाद, पुलिंद।
धानुक, भिल्ल, किरात ये फिरत पाप के वृंद ॥४८॥

(नीचे)

निम्न, निगातन, कुब्ज, अध, अवच, अजस की खानि ।
नीचे नार न डारि बलि नैंक कह्यौ तौ मानि ॥४६॥

(उपाय)

विक्रम अरु उत्साह भनि, अध्यवसाय, उद्योग ।
अभिजोगऽरु व्यवसाय पुनि उद्यम करि हरि जोग ॥५०॥

(दूती)

सपरसाऽरु अभिसारिका, संबल, स्वैरिणि, दूति ।
परऽपदेसनि, कुट्टनी, फिरै जु परघर कूत ॥५१॥

(वेश्या)

दासी, दारिक, लज्जका, खला, पुंश्चली होइ ।
रूपा, जीवा, कामुका, पुन्य-ज्योपिता सोइ ॥५२॥
वारमुखी, जग-वल्लभा, कहत संभली जाहि ।
मुँह सम्हारि किनि वोलियै, इहँ कोउ गनिका नाहि ॥५३॥

(पतिव्रता)

साध्वी, सती, मनस्विनी, सूचरिता, सुचिहीय ।
पतिव्रता तुव नाम लै, होत जगत मे तीय ॥५४॥

(दिशा)

कन्या, काष्टा, कुकुभ, गो, आशा, दिशा, प्रतीचि ।
प्राच, वाच, प्राची, हरित, दक्षसुताऽरु उदीचि ॥५५॥
गज पावक अंवर जुरे दिग सो नाम समाज ।
कव के चितवत हैं दई, कृष्ण कुँवर ब्रजराज ॥५६॥

(समूह)

कूट, समाज, सँदोह, घन, व्रात, जूथ, संघात ।
अखिल, निवड़, समुदय, विरभ, सन्वय, ओघऽरुजात ॥५७॥

(चंपक)

चांपेय, चंपक, सुरभि, हेम-पुष्प सुकुँवार ।
यह चंपा पा परति वलि लिये पुष्प उर हार ॥५८।

दो सत पैंसठ ऊपरें, दोहा श्री नँद्दास।
रामहरी वाकी किये, कोश धनंजय तास ।।५९।।
संतन की वानी वड़ी, रामहरी मतिमंद।
अपने समुझन को लिपे, वनते बिच दिये संद ।।६०।।
मान विना नहिं नेह कछु, नेह बिना नहिं मान।
लोन संग लागै रुचिर, जे हैं रस मिष्टान ।।६१।।
जितौ नेह तित मान वन नितहि मेह विन भांन।
रसना रस छूवत कठिन मान सरकरा जान ।।६२।।

———

परिशिष्ट (ख)

(हृदय)

उर वत्सल पुनि वच्छ कहि, पिय हिय लखि निज काय।
यातें वढ्यो जो मान हित, आन तिया के भाय ॥ १ ॥

(धाम)

मंदिर मंडप, आयतन, वसति, नीक अस्थान।
भवन भूप वृषभानु के, गई सहचरी ल्यान ॥ २ ॥

(सुवर्ण)

सोने ही के सदन सब, मानिक गच सज देत।
जहाँ तहाँ नरनारि सब, झाँई झुकि झुकि लेत ॥ ३ ॥

(इन्द्र)

सहस्राक्ष, वृद्धश्रवा, तुराषाह, सुर-भूप।
सुनासीर पुनि दिवसपति, लेखर्षभ सु अनूप ॥ ४ ॥

(ठोढ़ी)

चिबुक चारु मधि नीर[1] कन, यों राजत छवि ऐन।
मनहुँ रसीले आम को, मुहकर मूँदे मैन ॥ ५ ॥

(पानी)

अपक, अमय अरु वारि पुनि, पानी पुष्कर होय।
लिखे यथा मति नाम ये, संख्या चौतिस जोय ॥ ६ ॥

(स्त्री)

श्यामा, महिला, भावती, मत कामिनी जान।
वामलोचना नारि पुनि, योषित, योषा मान ॥ ७ ॥

(ब्रह्मा)

शतधृति, द्रुहिण, स्वयंभु पुनि, वेधा, ब्रह्मा जोय।
छवि सुंदरता जगत की, रही सो वैधी खोय ॥ ८ ॥

---

१. नील।

(चंद्रमा)

विधु सुधांसु, सुभ्रांसु पुनि, औपधीश, निसिनाथ।
रजनीकर, निसिकर, शशी, कुमुदबंधु, हरमाथ ॥ ९ ॥
दुजराजा, शशधर, उदधि-तनय, ससांक, मृगांक।
नक्षत्रेश, कलंकधर, तुव मुख उपमा शंक ॥१०॥

(मेघ)

घन बिछुरी ज्यों बीजुरी, रही अनलमनि होय।
मै तोहि देखत भामिनी, कहु बलि कारन सोय ॥११॥

(जोगेश्वर)

सन्यासी वर व्याज अनि, जटली, मुंडी होय।
दण्डजारु भगवान भनु, निर्बानी पुनि सोय ॥१२॥

(दुर्गा)

अजा, शिवा, मैना-सुता, सिंहेश्वरि अति कांत।
ते तुअ पिय-परताप ते, रचत विश्व बहु भाँत ॥१३॥

(सूर्य)

भानु, विभाकर, बिभावसु, सविता, सूर्य, पतंग।
अंबरमनि, दिनमनि, रवी, सूर, पुत्र त्रयअंग ॥१४॥

(अग्नि)

बृहद्भानु आश्रय बहुरि, अहै वसन्तर जोय।
वीतिहोत्र पुनि उपर्बुध, धूमकेतु कह सोय ॥१५॥

(पवन)

मरुत, वात अरु गंध-वह, विश्वासन, पवमान।
वायू बहुरि समीर कहि, पवन नाम ये जान ॥१६॥

रूपमंजरी

दोहा

प्रथमहि प्रनऊँ प्रेममय, परम जोति जो आहि।
रूपउ पावन रूपनिधि, नित्य कहत कवि ताहि॥ १॥

चौपाई

परम प्रेम पद्धति इक आही। 'नंद' जथामति बरनत ताही॥
जाके सुनत गुनत मन सरसै। सरस होय रस वस्तुहि परसै॥
रस परसे बिनु तत्व न जानै। अलि बिनु कँवलहिं को पहिचानै॥
पुनि प्रनऊँ परमातम जोई। घट घट विघट पूरि रह्यो सोई॥
ज्यों जल भरि वहु भाजन माहीं। इंदु एक सबहीं मैं छाँहीं॥
इह न कहइ अस ईहाँ ऐसे। जैसिय वस्तु प्रकासक तैसे॥
जो कछु मान सरसि की झाँई। सो न छुद्र छीलर छबि पाई॥
तरनि-किरन सब पाहन परसै। फटिक माँझ निज तेजहिं दरसै॥
स्वाति बूँद अहि-मुख विप होइ। कदली-दल कपूर होइ सोइ॥
जुबन रूप सँग सोभा पावै। सोइ कुरूप ढिग बदन दुरावै॥
एकै पट अनेक रँग गहै। सुरँग रंग सँग अति छबि लहै॥
पुनि जस पवन एक रस आही। वस्तु कै मिलत भेद भयो ताही॥
रवि-कर परसि अगिनि जिहि होई। सोइ दर्पन जग बिरलौ कोई॥

दोहा

जगमग जगमग करै नग, जौ जराय सँग होइ।
काच करकचन बिचि खचे, भलौ कहै नहिं कोइ॥१५॥

चौपाई

पैबे कों प्रभु के पंकज-पग। कविन अनेक प्रकार कहे मग॥
तिन मैं इह इक सूखिम रहै। हौं तिहि बलि जो इहि चलि चहै॥
जग मैं नाद अमृत मग जैसौ। रूप अमीकर मारग तैसौ॥
गरल अमृत इकंग करि राखै। भिन्न भिन्न कै बिरलै चाखै॥

छीर नीर निरवारि पिवै जौ। इहि मग प्रभु पदई पावै सो॥
दृष्टि अगोचर कमल जु होई। बास खोज परि पैये सोई॥

दोहा

इंदुमती मतिमंद पैं, अवर नहिंन निबहंति।
नागर नगधर कुँवर-पग, इहि मग छुट्यौ चहंति॥२२॥

चौपाई

रसमय सरसुति कै पग लागौं। अस अक्षर द्यो इहि बर माँगौं॥
सुंदर कोमल वचन अनूठे। कहत सुनत समुझत अति मीठे॥
नाहिंन उघरे गूढ़ न ऐसे। मरहठ देस-बधू-कूच जैसे॥
पुनि कवि अपनै मन मैं गुनै। मो कबित्त कोउ निरस न सुनै॥
रस विहीन जे अच्छर सुनही। ते अच्छर फिरि निज सिर धुनहीं॥
वाला-स्मित कटाच्छ अरु लाजा। अँधरे बालम कै किहि काजा॥
ज्यो तिय सुरत समय सितकारा। निफल जाहिं जौ बधिर भतारा॥
कवि-अच्छर अरु तरुनि-कटाछै। ए दोहु सुलग लगै हिय आछै॥
जो हिय अच्छर-रस नहिं भिदै। सो हिय अर्जुन-बान न छिदै॥
कवि तौ तेइ पाहन सम मानै। नहिंन पखान पखान बखानै॥
इहि प्रसंग हौं जु कछु बखानौं। प्रभु तुम अपनौ जस कै मानौ॥
तुव जस रस जिहि कवि न होई। भीति-चित्र सम चित्र है सोई॥

दोहा

हरि जस रस जिहि कवित नहिं, सुनै कवन फल ताहि।
सठ कठपूतरि संग घुरि, सोए कौ सुख आहि॥३५॥

चौपाई

अब हौं वरनि सुनाऊँ ताही। जो कछु मो उर-अंतर आही॥
धर पर इक निर्भयपुर रहै। ताकी छवि कवि का कहि कहै॥
नए धौरहर सुखद सुपासा। जनु धर पर दूसर कैलासा॥
ऊँचे अटा घटा बतराहीं। तिन परि केकी केलि कराहीं॥
नाचत सुभग सिखंड डुलत यौं। गिरिधर पिय की मुकुट-लटक ज्यौं॥

दोहा

गुड़ी उड़ी छवि देत अति, अस कछु बनि रह्यो बान।
देखन आवत देव जनु, चढ़ि चढ़ि विमल विमान॥४१॥

चौपाई

आसपास अमराय बरारी। जहँ लग फून तिती फुलवारी॥
चुनहि फूल मालिनि छबि भरी। अवनी उतरि परी जनु परी॥
बोलहि सुक सारिक पिक तोती। हरिहर चातक-पोत कपोती॥
मीठी धुनि सुनि अस मन आवै। मैन मनौ चटसार पढ़ावै॥
फलन कै भार नमित द्रुम ऐसे। संपति पाय वड़े जन जैसे॥
का कहिये कासार निकाई। सारस हंस बंस छवि छाई॥
निर्मल जल जनु मुनि-मन आही। परसत छन तन-पातक जाही॥
फूल फूलि रहे जलज सुदेसे। इंदीबर, राजीव कुसेसे॥
पानी पर पराग परि ऐसी। वीर फुटक भरी आरसि जैसी॥
पदमिनि कहुँ जब पौन डुलावै। तब लंपट अलि बैठि न पावै॥
जनु ननुकारति मानिनि तिया। आन जुवति रत जान्यौ पिया॥

दोहा

कंज कंज प्रति पुंज अलि, गुंजत इमि परभात।
जनु रवि उर तम तजि भज्यो, रोवत ताके तात॥५३॥

चौपाई

धर्मधीर तहँ कर बड़ राजा। प्रगट्यो धर्म धरन कै काजा॥
जस कौ धनुप राव कर सोहै। कीरति-पनिच-भनक मन मोहै॥
अनगन गुनिजन बान बखाने। निसदिन रहहि पनिच संधाने॥
पनिच जाय उत देसहि पारा। सर आवहि इत राजदुवारा॥
अस अहेर दिन खेलै सोई। जो देखै सो अचरिज होई॥
ताकैं इक कमनीय सुकन्या। जिहि अस जनी जननि सो धन्या॥
नाम अनूप रूपमंजरी। अंग अंग सुभ लच्छिम भरी॥
सो सोहति अस बैस कुमारी। हिम गिरिवर जनु हिमवत वारी॥
लटकि लटकि खेलत लरिकाई। लरिक समै जनु भूपन पाई॥
मृग की मानौं चंचल छौनी। पावन करति फिरति छवि औनी॥
देखि रूप घन छाया करहीं। पसु पंछी सब गौहन फिरहीं॥
अस कछु लखिये लखन लपेटी। दुसरी मनहुँ समुद की वेटी॥

दोहा

ता भूपन के भवन कोऊ, दीप न वारत साँझ।
विन ही दीपहि दीप जिमि, दिपय कुँवरि घर माँझ॥६६॥

चौपाई

सहज सुगंध साँवरी अलकैं। बिनहिं फुलेल उलेल सो झलकैं॥
नीरस कवि जे रसहिं न जानैं। व्याल-बाल सम वाल बखानैं॥
भौंहन की छवि रहि मो मनही। बालक मनमथ की जनु धनुही॥
छुट्टी खुभी सुभी जगमगी। काम कलभ जनु दँतिया उगी॥
उज्जल हौन लगे अँग नीके। कंचन भूषन ह्वै चले फीके॥
सब कोउ कहै कि अजहूँ होनौं। अंग अंग कछु अबहीं टोनौं॥
जब कोउ या तन तनक निहारै। ताकौं निधरक पँचसर मारै॥
लोग कहैं कोउ काम-पियारी। तनुजा आहि कि अनुजा वारी॥
बाला वैसंधि मैं छबि पावै। मन भावै मुँह कहत न आवै॥
नाहिंन उलहे उरज उदारा। पै मधि लुठन लगे मोति हारा॥
कुच अंकुर अंचल नहिं बलै। नैनन माँझ लाज गहि चलै॥
खेलत कान तहाँ दै रहै। जहँ कोउ काम कथा कछु कहै॥
गुड़ा गुड़ी के व्याह बनावै। लाज गहै जब सेज सुवावै॥

दोहा

बाला बैसँधि रूप जनु, दीप जग्यो जग ऐन।
उड़ि उड़ि परहिं पतंग जिमि नर नारिन के नैन ॥८०॥

चौपाई

व्याहन जोग जानि पितु माता। कीन्हेउ मंत्र बोलि सब ज्ञाता॥
रूपवंत गुनवंत उदारा। सीलवंत जसवंत सुढारा॥
अस कोउ पइये राजकुमारा। ताकों दीजिय इहै बिचारा॥
करि विचार निज बिप्र बुलायो। बार बार सब विधि समुझायो॥
अहो बिप्र धन लोभ न कीजै। या लाइक नाइक कौं दीजै॥
लोभी द्विज कुबुद्धि अस कीनी। कूर कुरूप कुँवर कहुँ दीनी॥
सत्रु भलौ जौ होय सयाना। मूरख मित्र जु अहित समाना॥
सहस गुन भरयो जो नर आही। रंचक लोभ बिगारै ताही॥
कर मीड़ै सहचरि पछिताई। कूर बिधाता कौन बनाई॥

दोहा

सब जन जुरि चिंतन करत, परव न कछू विचार।
करम करी किधौं द्विज करी, किधौं करी करतार। ९०॥

चौपाई

तिय तन रूप बढ़त चल्यो ऐसे। दुतिया चंद कलनि करि जैसे॥
जुवन-राव जब उरपुर लयो। सैसव-राव जघन-बन गयो॥
अरन लगे तब दोऊ नरेसा। छीन पर्यौ तब तिय-मधि देसा॥
तिय-तन-सर बालापन पानी। जोबन तरनि किरनि अधिकानी॥
जिमि जिमि सैसव-जल उथुराने। तिमि तिमि नैन-मीन इतराने॥
सो अज्ञात जोबन वर बाला। राजत नख सिख रूप रसाला॥
सखि जब सर स्नानहि लै जाहीं। फूले अमलनि कमलनि माहीं॥
तिय तन परिमल जौ लखि पावै। अंबुज तजि सब अलि चलि आवै॥
इंदुमती जब भँवर उड़ावै। इंदुवदनि अन्हान तब पावै॥
पौंछे डारति रोम की धारा। मानति वाल सिवाल की डारा॥
चंचल नैन चलत जब कौनै। सरद कमल दल ही तै लौनै॥
तिनहि श्रवन विच पकर्यौ चहै। अंबुज दल से लागे कहै॥

दोहा

नवला निकसत तीर जब, नीर चुअत वर चीर।
जनु अँसुअन रोवत वसन, तन बिछुरन की पीर॥१०३॥

चौपाई

अब कछु ताकौ सहज सिंगारा। वरनौ जगपातक खैकारा॥
गौर वरन तन सोभित नीकौ। औटे कंचन कौ रँग फीकौ॥
चंपक कुसुम कहा सरि पावै। वरनहु हीन वास बुरि आवै॥
उबटन उवटि अँगन अन्हवाई। वोपी दामिनि लोपी माई॥
सीस-पुहुप गुंथिन छवि ताही। मनहुँ मदन मृग कानन आही॥
वैनी बनी कि सँपनि सुहाई। वुरी दृष्टि देखै तिहि खाई॥
सोहत बैंदि जराय की ऐसी। भाल भाग-मनि प्रगटी जैसी॥
भ्रुव-धनु देखि मदन पछितयो। हर के समर समय किन भयो॥
अब याकै वल करउँ लराई। हरउँ छनक मैं हर हरताई॥
लरिकपना - पग - चंचलताई। चली छबीली नैननि आई॥
इत उत चहनि चलनि अनुरागे। बात करन कानन सौं लागे॥
मुहियत द्रगनि के अचरिज भारे। चलहि आन तन आनहिं मारे॥

दोहा

मृगज लजे, खंजन लजे, कंज लजे छबि छीन।
दृगन देखि दुख दीन ह्वै, मीन भये जल लीन ॥११६॥

चौपाई

नासिक नथ जनु मनमथ पासी। हासी हरि देव कि माया सी॥
मृदु कपोल छवि बरनि न जाही। झलकै अलक खुभी जिन माँही॥
अधर मधुर मधि रेख सुढारी। अरुन पाट जनु पुई पवारी॥
लसति जु हँसत दसन की जोती। को है दारिम, को है मोती॥
चिवुक-कूप-छवि उझकै जोई। जगत-कूप पुनि परइ न सोई॥
कंठ लीक छबि पीक की धारा। फीक परी सब छवि संसारा॥
छरा निबोरी दिखि भई बौरी। जगत ठगौरी जनु इक ठौरी॥
ससि समान जे बदन कराँही। अस क्यौं कहो कि तिन बुधि नाहीं॥
बाँके नयन मुसकि जब चाहै। ए छबि ससि मैं कहहु कहा है॥

दोहा

रूपमंजरी बदन-बिधु बिधना जग मैं टेकि।
परसन वाह्यो ससि नभसि मानो डार्यो छेकि ॥१२६॥

चौपाई

सुंदर कर राजत रँग भीने। एक कमल के जनु बिबि कीने॥
मंडल दै जु उठे कुच दोऊ। आव न उपमा अँखि तर कोऊ॥
श्रीफल कुंभ संभु सम माने। सरस कबिन तेऊ परवाने॥
तब की सुख कि रासि बिबि करी। रवनी-उर-अवनी पर धरी॥
रोम-राजि अस दीन्हि दिखाई। जनु उत ते वेनी की झाँई॥
किधौं नीलमनि किंकिनि माँही। रोमावलि तिहि जोति की छाँही॥
किधौं लटी कटि दिखि करतारा। रोम-धार जनु धर्यो अधारा॥
राजत कटि किंकिनी रसाला। मदन-सदन मनु वंदनमाला॥
पाइन मनिमय नूपुर धुनी। कंज पिंजर मनु मनमथ-मुनी॥

दोहा

जहँ जहँ चरन धरै तरुनि, अरुन होति सो लीह।
जनु धरती धरती फिरै, तहँ तहँ अपनी जीह ॥१२६॥

चौपाई

द्युति लावन्य रूप मधुराई । कांति रमनता सुंदरताई ॥
मृदुता सुकुमारता जे गाई । नहिं जनियत इत कित ते आई ॥
द्युति तिय तन अस दीन्हि दिखाई । सरद चंद जस झलमलताई ॥
ललना तन लावन्य लुनाई । मुकताफल जस पानिप झाँई ॥
बिनु भूपन भूषित अँग जोई । रूप अनूप कहावै सोई ॥
निरखत जाहि तृपति नहि आवै । तन मैं सो माधुरी कहावै ॥
ठाढ़ी होति अँगन जब आई । तन की जोति रहति छिति छाई ॥
राजति राजकुँवरि तहँ ऐसी । ठाढ़ी कनक अवनि पर जैसी ॥
देखत अनदेखी सी जोई । रमनीयता कहावै सोई ॥
सब अँग सुमिल सुठौनि सुहाई । सो कहिए तन सुंदरताई ॥
परसत ही जनु नाहिंन परसी । अस मृदुता प्रमदा-तन सरसी ॥
अमल कमल-दल सेज बिछैये । ऊपर कोमल वसन डसैये ॥
तापर सोवत नाक चढ़ावै । सो वह सुकुमारता कहावै ॥

दोहा

रूपमंजरी छवि कहन, इंदुमती मति कौन ।
ज्यों निर्मल निसिनाथ कौ, हाथ पसारै बौन ॥१५०॥

चौपाई

सखि अस अद्भुत रूप निहारै । मोसति मन कोसति करतारै ॥
कहत कि कछु इक करउँ उपाई । जो इह रूप अफल नहि जाई ॥
रसनि मैं जो उपपति रस आही । रस की अवधि कहत कवि ताही ॥
सो रस जौ या कुँवरिहि होई । तौ हौं निरिखि जिऊँ सुख सोई ॥
ए परि जो या लाइक पैये । सो नाइक दिखि आनि मिलैये ॥
जाहि मिलत पुनि ऐसियौ रहै । दइ अस नाइक कोऊ कहै ॥
जहँ जहँ नरवर सुरवर सुने । देखि फिरी अरु मन मन गुने ॥
देखत के सब उज्जल गोरे । हार काम नहि आवत बोरे ॥

दोहा

सुर नर चाम के धाम सब, चुवहि बीच त्रिकराल ।
तिन मैं इह कैसे बसै, छैल छबीली बाल ॥१५१॥

चौपाई

इक सुनियत सव लायक नायक। गिरिधर कुँवर सदा सुखदायक ॥
हौ तिय तिनहिं कवन बिधि पाऊँ। क्यो या कुँवरिहि आनि मिलाऊँ ॥
जा कहुँ संभु समाधि लगावै। जोगी-जन मनहूँ नहिं आवै ॥
निगमहि निपट अगम जो आही। अबला किहि वल पावै ताही ॥
इक वौना अरु नीचै आवै। ऊँचे फल कौं हाथ चलावै ॥
क्यो फल पैये दूरि निवासी। हेरनहार करहिं सव हाँसी ॥
जो चढ़ि जानै सो फल पावै। कै फल आप दया करि आवै ॥
सखि इक दिन गिरि गोधन जाई। गिरिधर पिय प्रतिमा दिख आई ॥
तव तें यौ उर अंतर राखी। ज्यों गुरुदेव दया करि भाखी ॥
साखा ढिग ह्वै चंद बतैये। सो सूछिम तबई लखि पैये ॥
ये तौ उनही की उनहारी। नहि अचिरज हितु चहिए भारी ॥
सहचरि कै चित चैन न परै। अनुदिन तिन सौं विनती करै ॥
अहो अहो गिरिधर परम उदारा। करताहू के तुम करतारा ॥
भवसागर तरिवे कहुँ यहु तरि। पाइ हुती कहुँ कहुँ क्रम क्रम करि ॥
सो तरि बूड़ति है मधि धारा। गिरिधर लाल लँघावहु पारा ॥

दोहा

निसिदिन तिय विनती करति, और न कछू सुहाय।
मन के हाथनि नाथ के पुनि पुनि पकरति पाय ॥१७५।

चौपाई

इक निसि सखि सँग राजकुमारी। पौढ़ी हुती कनक चितसारी ॥
सपुन माँझ इक सुंदर नाइक। पायो कुँवरि आपुनी लाइक ॥
तनमन मिलि तासौं अनुरागी। अधर सधर खंडन मैं जागी ॥
लै सितकार सखिहि घुरि गई। सहचरि निरखि ससकित भई ॥
क्यो वलि वलि कहि छतियनि लाई। दसा देखि अति संभ्रम पाई ॥
भूत लगाय मनो है आई। कै कछु क्रूर ग्रहगत माई ॥
इह संसार असार अपारा। तामहि तनक हुती आधारा ॥
अव किहि धरिहौं परिहौं पारा। वैर पर्यो पापी करतारा ॥
प्रात उठी तिय ललिन लजौंही। चितइ न सकै सहचरी सौंही ॥
पूछति प्यार भरी सखि ग्याता। कहि वलि आज कहा इह वाता ॥

तोइन लौने ललित लजौने। चलि चलि हँसत ह्वै काननि कौने ॥
देखति हौं बलि नहिं तुव बसके। जस कहुँ प्रीतम रस के चसके ॥

दोहा

को सुकृती अस जगत मै, जो निरख्यो इन नैन।
मो हिय जरत जुड़ाय बलि, सींचि अमीरस बैन ॥

चौपाई

जब अति सखिन बूझनी लई। तब हँसि कुँवरि गोद लुठि गई ॥
बात कहन कछु मान ह्वै आवै। बहुरि लजाय जाय छवि पावै ॥
कुँवरि कौ अस सुंदर मुख रहै। मुँह तै बात न निकस्यो चहै ॥
निरखि सहचरी कौ अति तपनौ। कहन लगी तब अपनौ सपनौ ॥
इकै ठाँव इक वन है मानौं। ताकी छबि हौं कहा बखानौं ॥
आनहि रंग पुहुप मैं देखे। अपनी बारी नहिंन सुपेखे ॥
औरहि भाँति भँवर रव राजै। ठौर ठौर कछु जंत्र सो बाजै ॥
रूखन देखि भूख भजि जाई। इह उपखान साँच है भाई ॥
रटहि बिहंगम इमि मन हरै। जनु द्रुम अपमैं बातैं करै ॥
गहवर कुंज मंजु अति सोहै। मनिमय मंडप छबि तहँ को है ॥
पुहुप वितान बान अस बाने। चंद चखौडे कौ जनु ताने ॥
तिन तर सेज सुपेसल ऐसी। आल वाल रति-बेलि की जैसी ॥
नीली नदिया निकटहि वही। फूलि फूलि नव अंबुज रही ॥

दोहा

इक अंबुज जनु तोरि कै दीनौं मेरे हाथ।
सूँघत सूँघत ताहि हौं चली अली कै साथ ॥२०२॥

चौपाई

तामैं अ त कछु बास बसाई। सूँघत मोहि ऊँघसी आई ॥
तू जनु आगै तें कछु भई। हूँ अकिली ठाढ़ी रहि गई ॥
चकित भई परि भय नहिं पाई। द्रुम बेली कछु मीत से माई ॥
इत तें इकु कोउ नवकिसोर सो। मनमथ हू के मन को चोर सों ॥
मुसकत मुसकत मो ढिग आयो। नैनन मैं कछु चौंध सो लायो ॥

मोहि हँसि बूझन लाग्यौ तहाँ। इंदुमती तेरि सहचरि कहाँ ॥
हौं लजाय मुरि रही अबोली। बहुत करी पै नाहिंन बोली ॥
तव इक सुखम कुसम लै माई। मो कपोल पै ऐंचि लगाई ॥
मन जनु उनहीं सौं अनुराग्यो। गुरुजन डर डरि चोर सौं भाग्यो ॥
मधुर वचन लगि आच सुहाई। धीरज राग सौं ढरक्यौ माई ॥
आगै सुधि वुधि रही न मोही। का हौ वरनि सुनाऊँ तोही ॥

दोहा

गड़्यो जु मन पिय प्रेम रस क्यो हूँ निकस्यो जाय।
कुंजर ज्यों चहलै पर्‍यो छिन छिन अधिक समाय ॥२४१॥

चौपाई

सखि कह वारि फेरि हौं डारी। रंचक कहि वलि पिय उनहारी ॥
जिन लछिननि ढूँढ़हुँ हौं पाऊँ। अपनी प्यारिहिं तुरत मिलाऊँ ॥
कहति है कुँवरि मुसकि मधु वानी। किन पाई या सपन कहानी ॥
विजननि वातनि कवन अघाये। काके हाथ मनोरथ आये ॥
मृगतृष्णा कव पानी भई। काकि भूख मन-लडुवन गई ॥
तव वोली सहचरि सुखदाता। क्यो कहिए वलि ऐसी वाता ॥
जौ अनुकूल होय करतारा। सपने साँच करत नहि बारा ॥
मृगतृष्णा हू पानी करै। मन के लडुन भूख पुनि हरै ॥
इक हुती ऊषा मेरी अली। सपनै काम-कुँवर सौं मिली ॥
ऐसे लछिनन जौ लखि पाई। तौ सखि सौं सब बात जनाई ॥
ताकी सखि विचित्र चित्ररेखा। गई द्वारिका सूखिम वेषा ॥
वुधि ही बुधि अनिरुध लै आई। परतछि आनि कै उषा मिलाई ॥
ऐसे ही जौ तोहि मिलाऊँ। इंदुमती तौ नाम कहाऊँ ॥

दोहा

प्रेम वढ़ावै छिनहिं छिन, पूछि पूछि उनहारि।
ज्यों मथि काढ़ी अगनि कन, क्रम क्रम देइ पजारि ॥२४२॥

चौपाई

कुँवरि कहे सखि किहि विधि कहिये। रूप वचन कै नाहिंन लहिये ॥
रूप कौ रस जानैं ये नैना। तिनहि नहिंन विधि दीनै वैना ॥

अरु वह रूप अनूपम जेतौ। नैननि गह्यो गयो नहिं तेतौ ॥
ज्यों सुंदर घन स्वाति कौ माई। चातक चंचुपुटी न समाई ॥

दोहा

कह्यो चहति पुनि नहिं कहति, रहति डरपि इहि भाय।
मोहन मूरति हीय तें, कहति निकसि जिनि जाय ॥२२३॥

चौपाई

चटपटि परी सहचरी हिये। पूछति बहुरि बलैया लिये ॥
कहन लगी तब पिय-उनहारी। राजत लाज सौं राजकुमारी ॥
स्याम बरन तन अस रस भीनौ। मरकत रस निचोय जस कीनौ ॥
मोर चंद सिर अस कछु लौनौ। मानहुँ अली टटावक टौनौ ॥
सोहति अस कछु बाँकी भौंही। मो मन जानै कै पुनि हौंही ॥
चुनि चुनि सरद कमल दल लीजै। तिन कहुँ मोती पानिप दीजै ॥
ता मोहन कै नैनन आगैं। अलि तेऊ अति फीके लागैं ॥
नासिक मोती जगमग जोती। कहती तौ मति होती औती ॥
पीत बसन दुति परति न कही। दामिनि सी कछु थिर ह्वै रही ॥
लाल कै लाल कछनि छबि ऐसी। लालनि चोप रँगी होय जैसी ॥
मुरली हाथ सुहाई माई। तिनिहि बजाई राग चुचाई ॥

दोहा

ताकै रूप अनूप रस बौरी हौं मेरी आलि।
आज तनक सुधि परन दै सबै कहौंगी कालि ॥२४५॥

चौपाई

सुनतहि मुरझि परी सहचरी। आनँद भरी अचंभै भरी ॥
बड़ी बेर जागी अनुरागी। मनहीं माँझ कहन यौं लागी ॥
कहँ हौं कुटिल कुचील कुहिय की। कहँ इह दया साँवरे पिय की ॥
अनेक जनम जोगी तप करै। मरि पचि चपल चित्त कहुँ धरै ॥
सो चितु लै उहि बोर चलावै। तौ वह नाथ हाथ नहि आवै ॥
अब गोपिन कौं सो हितु होई। तब कहुँ जाय पाइये सोई ॥
कवन पुन्य या तिय कै माई। नंद-सुवन पिय सौं मिलि आई ॥

निरवधि रमारमन बिश्रामा । तातैं वसी लसी इह बामा ॥
ब्रज जुवतिन कौ दर्पन जोई । तामै मुँह झँकि आई सोई ॥

दोहा

सहचरि भूली सी रही, फूली अंगन आय ।
अंध रहै चकचौंधि जिमि, सुंदर नैना पाय ॥२५५॥

चौपाई

कुवरि कहति हे सजनि सयानी । सपन की बातनि क्यों मुरझानी ॥
सखी कहै इह सपन न होई । सत्य आहि अब सुनि लै सोई ॥
तेरौ रूप अनूप सुभाइक । जान्यो जात बिरथ बिनु नाइक ॥
तौ मैं इह इक देव मनायो । सो वलि तो कहुँ सपनै आयो ॥
वहुतनि बहुत भाँति तप तायो । पैं इह नाइक बिरलै पायो ॥
देखि कैं वलि तुव भाग बड़ाई । तातै मो कहुँ मुरछा आई ॥
मुसकि कुँवरि सहचरि सौं कहै । तौ वह देव कहा है रहै ॥
सखी कहै जिहि वन तैं पायो । तै ही बन एक गाँव सुहायो ॥
गोकुल गाँउ जाउँ वलिहारी । जगमगाय छबि जग ते न्यारी ॥
तहँ कौ नंद गोप बड़ राजा । सदा सरबदा एकहि राजा ॥
जसुमति रानी सब जग जानी । भाग भरी सुर नरनि बखानी ॥
रमा उमा सी दासी जाकी । ठकुराइति का कहिये ताकी ॥
तिनकौ सुत सो कुँवर कन्हाई । का कहौं छबि तू देखिहि आई ॥

दोहा

तिय-हिय-दर्पन तन-रुई रही हुती पुट पागि ।
प्रीतम-तरनि-किरनि परसि लागि परी तिहि आगि ॥२६६॥

चौपाई

निर्विकार तिय-हिय मैं सपनैं । उपज्यो भाव सुभावहि अपनै ॥
प्रथमहि प्रिय सौं प्रेम जु आही । कवि जन भाव कहत हैं ताही ॥
रूपमंजरी तिय कौ हियो । गिरिधर अपनौ आलय कियो ॥
इंदुमती तहँ अति अनुरागी । ताही मैं प्रभु पूजन लागी ॥
जहँ जहँ जो कछु उत्तम पावै । सो सव आनि कै ताहि चढ़ावै ॥
वान वान वै पान खवावै । मंद हिंडोरहिं डोर झुलावै ॥

छिन छिन भाव बढ़त चलो ऐसे। सरद द्वैज ससि कलानि जैसे ॥
भाव बढ़्यो क्यो जानिय सोई। और वस्तु कहुँ ठौर न होई ॥
भाव तैं बहुरि हाव छबि भई। सहचरि निरखि बलैया लई ॥
रूप जोति सी लटकति डोलै। सब सौं बचन मनोहर बोलै ॥
अँग अँग पेम उमँग अस सोहै। हेमछरी जराय जरि को है ॥
नैन बैन जब प्रगटै भाव। ताकहुँ सुकवि कहत हैं हाव ॥
हाव ते बहुरि जु उपजै हेला। ससि कहुँ परम अमी रस वेला ॥
बार बार कर दर्पन धरै। कुंतलहार सँबास्यो करै ॥
अति शृंगार मगन मन रहै। ता कहुँ कवि हेला छबि कहैं ॥
ता पाछै उपजी रति नई। सखिन वारि मनिमाला दई ॥
उचित सु धाम काम तौ करै। जानै नहिंन कवन अनुसरै ॥
भूख पियास सबै मिट गई। खाय कछू गुरजन की लई ॥
मन की गति पिय पै इहि ढारा। समुद मेलि जस गंग की धारा ॥
डभक दै नैन नीर भरि आवहि। पुनि सुखि जाय महा छबि पावहि ॥
पुलक अंग स्वरभंग जनावै। बीच बीच मुरझाई आवै ॥
बिबरन तन अस देइ दिखाई। रूप बेलि जस घाम मैं आई ॥
तनक बात जौ पिय पै पावै। सौ बेरियाँ सुनि तृपति न आवै ॥

दोहा

रूपमंजरी तिय हियहिं, पिय झलकै इमि आय।
चंद्रकांति मनि माँझ जिमि, परति चंद की झाँय ॥२६२॥

चौपाई

प्रगट मिलन कौं अति अरबरै। रहसि बैठि तिय जतननि करै ॥
दर्पन लै उर आगैं धरै। मति इहँ झाँई पिय की परै ॥
बाल अर्क सम विरह जनायो। तिय तन तनक तपति ह्वै आयो ॥
आन की ढिग उसास नहि लेई। मूँदे मुँह तिहि ऊतरू देई ॥
तपत उसासनि जौ कोउ लहै। बाला विरहिनि का तब कहै ॥
जो कोउ कमल फूल पकरावै। हाथ न छुवै निकट धरवावै ॥
अपने कर जु विरह जुर ताते। मति झुरि जाहि डरति तिय याते ॥
सहचरि मन में करइ विचारा। कह कीजै अब हो करतारा ॥
यह अब प्रगट पीय कहुँ चहै। निगमहि अगम सु निकट न अहै ॥

दोहा

मन मन बूझै सहचरी, सूझै नहिं कछु और।
आर्नव-नाव-विहंग जिमि, फिरि आवै तिहि ठौर ॥३०३॥

चौपाई

ऐसहि मैं पावस ऋतु आई। सहचरि निरखि महा भय पाई ॥
घूँघरि दिसनि देखि भय वढ़ी। मैन-सैन-खुर रेनु सी चढ़ी ॥
पावस गहरी गरजनि सुनी। जनु कंदर मै केहरि-धुनी ॥
सखी-अंक मैं दुरि गई ऐसी। मृगी-अंक मृगछौनी जैसी ॥
उमड़े वादर कारे कारे। बड्डे वहुरि भयानक भारे ॥
घुमड़नि मिलनि देखि डर आवै। मनमथ मानौं हथी लरावै ॥
पवन-महावत लै लै धावै। अंकुस-छटनि छोह उपजावै ॥
भामिनि भागि भवन दुरि जाई। गिरि परिहै कोउ कुंजरु माई ॥
घन मै तनक जो पिय-उनहारी। तिहि लालच देखै वर नारी ॥
वगनि की माला नैन विसाला। मानत पिय-उर पकजमाला ॥
दामिनि दमक देखि दृग नावै। पिय पट पीत छोर सुधि आवै ॥
दिन तौ इहि अवलंव वरावै। रैनि मैं रवनि महा दुख पावै ॥
घन हरधौरै पवन झकोरै। दादुर झींगुर कानन फोरै ॥
पटविजना तहँ अधिक सतावै। छटनितें उछटि चिनग जनु आवै ॥
पुनि तहँ पापी पपिहा दहै। तासौं इंदुमती इमि कहै ॥
अरे सकुनि, विनु अगिनि दहै रे। वंचक रंचक चुपकै रहि रे ॥
मरतु तृषा वरषा वरसे ही। तौ सठ चातक पातक ये ही ॥
कुँवरि कहै सखि को यह आही। पिउ पिउ बोलत वरजत नाहीं ॥
सखि कह वलि इक पंछी अहै। भाषा इहै जु पिउ पिउ कहै ॥
ऐ परि याकौ नेम सुनहि जौ। लाडिली अचिरज लाड़ रहै तौ ॥
जव कव तव घन स्वातिन वरसै। तव भल जाय चुंचु जल परसै ॥

दोहा

प्रेम एक इक चित्त सौं, एकहि संग समाय।
गंधी कौ सौंधौ नहीं, जन जन हाथ विकाय ॥

चौपाई

कुँवरि कहै कछु साँच है अली। किधौं सपन की सपनहि मिली ॥
सखी कहै वलि वरखा वीतै। तव हौं लाय मिलाऊँ मीतै ॥

अब निसि दिन घन बरस्यो करै। ऊँच नीच कछु सुधि नहिं परै॥
बाट घाट तृन छादित ऐसे। बिनु अभ्यास बलि बिद्या जैसे॥
अरु बलि जाउँ कहै सब कोई। धीरै धीरै सब कछु होई॥
कवन भाँति धनि धीरज धरै। आँवा अगिनि जिमि अंतर जरै॥
सब निसि प्रान निहोरत बीते। का कहिये दुख या दुखही ते॥
राजकुँवरि जब अति दुख पावै। सहचरि लै तब बीन वजावै॥
पानी होय तौ जाय बुझाई। घी सींची किन आगि सिराई॥
पिय मूरति जु आनि उर अरै। कामिनि कलमल कलमल करै॥

दोहा

सूधौ जौ कछु उर गड़ै, सो न कढ़ै दुख होय।
ललित त्रिभंगी जिहि गड़ै, सो दुख जानै सोय॥३३६॥

चौपाई

जबई सरद उवानी जानी। कुँवरि सहचरी तन मुसुकानी॥
सखी कहै मैं पठये चारा। आजि कालिह ऐहै समचारा॥
कुँवरि कहै सुकवन दिसि अहै। जहँ वह साँवर पीतम रहै॥
जो दिसि हाथ कै सखिन वताई। सो दिसि जीवनि मूरि सी पाई॥
पंकजपत्रनि पंख बनावै। उड़न लगै सो क्यो उड़ि आवै॥
मन सौं कहै कुटिल तू आही। अकिलौई उठि पिय पै जाही॥
रंचक नैनन हू सँग लै रे। मोहन-मुख दिखि आवन दै रे॥
साँवरे पियहिं सुमिरि बर बाला। भरइ उसास दुसास विहाला॥
ते ऊसास अगिनि की उषी। कुँवरि क देवी ज्वालामुखी॥
अंजन विनु दिखि नैन सुहाये। खंजन दुरे कहूँ ते आये॥
निरखि कुँवरि कौ बदन उदासा। इंदु मुदित ह्वै उदित अकासा॥

दोहा

निरखि मलिन मुख नलिन कहुँ, फूले कमल कसार।
वैरी चीत्यौ जगत मै, तू जिनि करि करतार॥

चौपाई

द्वैज चंद दिखि भै भरि भारी। उगी गगन जनु काम कटारी॥
टूटि तार अंगार वगावै। कामभूत जनु मोहिं छरावै॥

पुनि पूरन ससि कहुँ दिखि डरी। आवत मैन लिये जनु फरी ॥
कवन समय आयो इह सजनी। इंदु अनल बरसै सब रजनी ॥
भली करहि जौ इन दिन माँहीं। प्रानपियारे आवहि नाहीं ॥
कुँवरि कहति सखि वा ससि राँड़ै राहु राउ क्यो गिलिगिलि छाँड़ै ॥
सखि कह राहु अमृत जब पियो। तेरे कंत खंड विवि कियो ॥
उदर नहिन जामैं इह पचै। निकसि निकसि बिरही जन तचै ॥
कुँवरि कहै दुहु खंडनि माई। जरा आनि किन लेहि जुराई ॥

दोहा

कै अहरनि पर धरि मुकुर, सुकर लोह धनु लेहि।
जबई आनि परै तहाँ, तबई ता सिर देहि ॥३५८॥

चौपाई

इमि इमि करतहि हिम रितु आई। तामै तरनि तरुन दुखदाई ॥
बड्डी रैनि तनक से दिना। क्यो भरिए पिय प्यारे बिना ॥
जाड़ राँड़ जब अति तन दहै। साँवरे उर धुरि सोयो चहै ॥
नैन मूँदि निसि नींद अनावै। मति वह सुपन बहुरि हू आवै ॥
नींद न आवै तब कहै दई। नींद मनो कहुँ सोय है गई ॥
अति सिसु जोबन कैसै रहै। पीतम अधर दूध कहुँ चहै ॥
बिलपत देखि दया जब आवै। भरि भरि नैना नीर पिवावै ॥
कबहूँ मृगमद लै मृगनैनी। रहसि बैठि रचि मूरति मैनी ॥
मीन करै कर साइक धरै। पाइन परि परि बिनती करै ॥
अहो अहो मैन, देव तुम बड़े। जाके सर सिव के उर गड़े ॥
ते सर छाँड़त अबलन माँही। पुरुष-राव इह पौरुष नाहीं ॥

दोहा

तिय तन बितन जु पंच सर, लगे पंच ही वाट।
चुंबक साँवरे पीय बिनु, क्यों निकसहिं ते नाट ॥३७०॥

चौपाई

हिम रितु बीत सीत रितु आई। भीत भई जिमि बाघ तें गाई ॥
इक दिन तिय निज जिय सौं कहै। इहि तुसार तू कहूँ न रहै ॥

विधि सौं पूत मीत रवि ताकौ। जल सौं जनक जगत जस जाकौ ॥
तू को आहि हितू को तेरौ। एक मीत सो नाहिन नेरौ ॥
पुनि सहचरि कर बचन सँभारा। बोली मुलकि सुधा की धारा ॥
कहति कि तू जौ पावस वीते। तब हौं आनि मिलैहौं मीते ॥
पावस वीति सरद ऋतु वीती। हिम रितु बीती सीत समीती ॥
अब वसंत रितु आगम आयो। कापै जैहै जीव जिवायो ॥
बितन बसंत सखा दोउ ऐसै। पावक पवन मिले जग जैसै ॥

दोहा

अकथ कथा मनमथ बिथा, तथा उठी तन जागि।
किहि बिधि राखै, क्यों रहै, रुई लपेटी आगि ॥३८०॥

चौपाई

सबई लोगनि होरी धरी। सुनतहि निपट डरी सहचरी ॥
चाँचरि दैन लगे नर नारी। बाजै डफ अरु करतल तारी ॥
पट नारिनि रँगु अस उपजायो। फाग मनौ पहपटिया आयो ॥
बन बन फूले फूल सुहाये। मानहुँ सिगरे लोग हँसाये ॥
कुँवरिहि साथिन बोलन जाही। होरी खेलन खेल उमाही ॥
खेलन चली नवीन किसोरी। होरी कहत धन्य हो होरी ॥
रँग रँग रली चली सँग अली। छबि सों छिरकत पुर की गली ॥
कंठनि हीरा आनन वीरा। पाइन वाजत मंजु मँजीरा ॥
छबि सौं छुटै कनक पिचकाई। मनहुँ मैन-फुलझरी सुहाई ॥
बाजहिं सुरमंडल डफ छीना। ताल पखावज आवज वीना ॥

दोहा

रंग रंग छिरके वसन, वरनत बनति न वात।
जनु रति व्याहन रहसि भरि, आई वितनु-वरात ॥३८१॥

चौपाई

भरहिं परसपर नर अरु नारी। ठाढ़ी निरखै राजकुमारी ॥
किहि छिरकै कापै छिरकावैं। पुरुप न कोउ आँखी तर आवैं ॥
दिनमनि जगमगाय ढिग जाकै। दीपक कहाँ आँखि तर ताकै ॥

नगर के लोग सवै वड़ भागे। मिलि व्रज लीला गावन लागे ॥
तिन मैं गिरिधर पिय उनहारी। चकित भई सुनि राजकुमारी ॥
माथै मोर के चंदा सुने। कुँवरि के मन मैं घुन जिमि घुने ॥
मुरली पीत बसन जब गाये। चपरि कै चपल नैन भरि आये ॥
सखि तन कुँवरि कनापन चहै। मन मन मुरझै अ० इमि कहै ॥

दोहा

इक तौ गिरवर-धर कुँवर, मेरे प्रीतम जौन।
जाकौं गावति ये जुवति, सो गिरिधर धौं कौन ॥४००॥

चौपाई

इक कोउ नारि निकट जगमगी। ताहि कुँवरि दूरि पूछन लगी ॥
सुंदर गीत सुहावन माई। काके है, को कुँवर कन्हाई ? ॥
सो सब कहन लगी व्योहारा। जाकौ है इह सब संसारा ॥
धर अंबर ससि सूरज तारे। सर सरिता साइरि गिरि भारे ॥
हम तुम अरु सब लोग लुगाई। रचना तिनही देव बनाई ॥
वहुरि कुँवरि हँसि तासौं कहै। तौ वह देव कहाँ है रहै ॥
तब तिन मैं कोउ और सयानी। वोली परम मनोहर बानी ॥
वह देखै उहि लखै न कोई। पंडित कहहिं कि सब ठॉ सोई ॥
ज्यो बलि दृष्टि कुंभ कहुँ देखै। कुंभ तौ नहिंन दृष्टि कहुँ पेखै ॥
कुंभ मै दृष्टि होय जब जाई। दृष्टि भलै तब देय दिखराई ॥
ऐपरि कवि इक ठौर बतावै। जब बलि ये कछु गाथा गावैं ॥
गोकुल गॉव कहूँ इक कोई। तामै वसत सदा सखि सोई ॥
नंद पिता जसुमति है माता। गिरिधर लाल जगत बिख्याता ॥

दोहा

सो सखि मुख अरु सपन सुख सोई सुनि जग जागि।
कितहि बुझावै का करै तिहि घर तेती आगि ॥४१४॥

चौपाई

फिरि गये नैन मूरछा आई। वहुरि सहचरी कंठ लगाई ॥
घिरि आईं तिय लईं वलाई। कहा भयो या कुँवरिहिं माई ॥
सहचरि चतुर वात वहरावै। टेव है याहि मूरछा आवै ॥

कह जानौं कछु छाया पाई। दूध भात घर खाय ही आई॥
साथिनि हाथनि पाइनि मीजै। पुनि पुनि इंदुमती पर खीजै॥
जुवति कहैं जिहिं देखे जीजै। नागर नगधर नीकैं कीजै॥
सब कोउ कहै डीठि है लागी। निपट अनूप रूप रस पागी॥
घैर ते डरपि सखी घर लाई। घरहू बड़ी बेर सुधि आई॥

दोहा

भूत छिये मदिरा पिये, सब काहू सुधि होय।
प्रेम सुधारस जो पिवै, तिहि सुधि रहै न कोय॥४२३॥

चौपाई

बात सुनत जननी उठि धाई। वाछी पर जस आछी गाई॥
इंदुमती पर अति रिसि आई। आलि कालिह तैं कहाँ खिलाई॥
चतुर सहचरी बात दुरावै। बात की बात मात नहिं पावै॥
मोहि वरजत बहेर तर गई। ना जानौं कछु तहँ तै भई॥
छाति लगाय जननि इमि कहै। कवन भूत जो तो तन चहै॥
गोकुलनाथ कौ पूत हमारै। भूत के भूतनि ही धरि मारै॥
एक पहर यों अबुध ह्वै रही। पुनि निज मात बात अस कही॥
जस कोउ मदिरा मत अस आही। तामै भूत लगै पुनि ताही॥
वहुरि नारि नौहरि सी लई। जननी निरखि ससंकित भई॥
भूतावेस अवसि है भाई। दौरहु कछु इक करहु उपाई॥
सखी कहै कहु बोलि किहि आनौ। एक मंत्र अरु हौंहू जानौ॥
कहति है दुख अकुलानी रानी। तब लग तूही झारि सयानी॥

दोहा

कान लागि सहचरि कहै, जागि छबीली बाल।
वै आये बलि देखि उठि, मोहन गिरिधर लाल॥४२६॥

चौपाई

उठि बैठी भइ राजकुमारी। ढिग बैठी देखी महतारी॥
मा-तन चितै निपट लजि गई। जानी होय बात जिनि दई॥
निरखि सुता कौ सहज सुहायो। जननी जठर जीव तब आयो॥
सहचरि निपट सयानी जानो। रानी तिहि छिन अति सनमानी॥

उर ते काढ़ि हार पहिराई । हित अनहित सब वात जनाई ॥
सखि कहँ मोहिं दोस कछु नाहीं । निपट अनूप रूप इन माहीं ॥
छिन छिन माँझ डीठि ह्वै जाई । छिन नीकी छिनही मुरझाई ॥
सौधौ याकै अँग न लगाऊँ । फूल फुलेल न मूँड़ चढ़ाऊँ ॥
दर्पन देखि न दै उन सौंही । डरौं आपनी डीठि तैं हौंही ॥
मा कहै मेरी कौ रूप सुभाइक । सुंदर गिरिधर लाल की लाइक ॥
ऐ पर अपनौ करम री माई । भुगते विनु न तीर ह्वै जाई ॥
विहँसि कुँवरि जनु हिय घुरि जाई । जनु याही मैं कुँवर कन्हाई ॥

दोहा

हौं जानौं पिय-मिलन ते, विरह अधिक सुख होय ।
मिलतै मिलियै एक सौं, विछुरें सव ठाँ सोय ॥

चौपाई

ता पाछे वसंत रितु महा । आई सो दुख कहिए कहा ॥
तामैं मैन नृपाई पाई । पिक वोली जनु फिरत दुहाई ॥
किसुक कलिन देखि भय पाई । नाहर की सी नहुरै माई ॥
रातो राती रुधिर भरी सी । विरही जन उर ह्वै निकरी सी ॥
सव वन फूल फूलि अस भयो । आनि अनंग राव जनु छयो ॥
वड्डे कुंज महल अस वनें । ऊँचे द्रुम वितान जनु तनें ॥
वन वाहिरि जु कुंज छुट छुटी । ते जनु उठी नटिन की कुटी ॥
अकिले घूमत नर अस अंधे । मनु मदमाते हाथी वँधे ॥
इक दिन राव अखेटक चढ्यो । विरही मृग मारन रिस वढ्यो ॥
पुहुप कौ चाप पनिच अलि किये । पंच वान पाँचौ कर लिये ॥
सोखन दहन उचाटन छोभन । तिन मै निपट बुरौ संमोहन ॥
त्रिगुन पवन तुरंग चढ़ि धायो । दलमलि देस कुँवरि ढिग आयो ॥
रूपमंजरी दिखि हँसि परी । वदन सुवास निकसि अनुसरी ॥
सो सुवास जव भौंरन पाई । टूटि पनिच सव तहँ चलि आई ॥
इतनेहिं माँझ उवरि गई माई । नातरु मार मारि तिहिं जाई ॥

दोहा

कुसुम धूरि धूँघरि दिसा इंदु उदै रस पौन ।
कुहु कुहु जो कोकिल करै विरही जीवै कौन ॥४६५॥

चौपाई

तातैं बहुरि जु ग्रीषम आई। अति भीषम कछु बरनि न जाई॥
बड़े तपत पहार से दिना। चढ़े जायँ पिय प्यारे बिना॥
दुपहरि तहँ डाइन सी आवै। ताहि निरखि तिय अति दुख पावै॥
बाल के बालक जिय कहुँ लहै। कब लग बाल दुकाये रहै॥
अति निदाघ मैं अस सुधि नाहीं। दादुर रहत फनी-फन-छाँहीं॥
तातैं सतगुन बिरह कि आगी। रूपमंजरी तब मन लागी॥
चंदन चरचें अति परजरै। इन्दु-किरनि घृत बुंद सी परै॥
घनसारहिं दिखि मुरझति ऐसै। मृगीवंत जल दरसै जैसै॥
हार के मुतिया उर झर माँहीं। तचि तचि तरकि लवा ह्वै जाँहीं॥
दिखि दिखि इन्दुमती अरबरै। थोरे जल जिमि माछरि फिरै॥
सहचरि अति अकुलानी जानी। करति समोध कुँवरि मधु बानी॥
कत सोचति सखि तू बड़ ज्ञाता। तू जस आहि अस न पितु माता॥
दोस न तेरौ दोस न मेरौ। यह सब बान विधाता केरौ॥
अब मोपै जितु जियो न जाई। जो हौं कहौं सु करहि री माई॥
सुंदर सुमनन सेज बिछाई। अरगज मरगजि डसनि डसाई॥
चंदन चरचि चंद उगवाई। मंद सुगंध समीर वहाई॥
पिक गवाय केकी कुहकाई। पपीहा पै पिउ पीउ बुलाई॥
मधुर मधुर तू बीन बजाई। मोहन नंदसुवन गुन गाई॥
यौं कहि कुँवरि ग्रीव जब गोई। घरहराय तब सहचरि रोई॥
कहत कि अहो अहो गिरिधर लाला। प्रभु तुम कैसे दीनदयाला॥
माछरि उछरि पुलिन जौ परै। जल जड़ तदपि दया अनुसरै॥
बूड़त रुंड गहै जो कोई। ताहि बहत गहि राखै सोई॥
तुम सब लाइक त्रिभुवन नाइक। सुखदाइक सुभकरन सुभाइक॥
अरु तुमहूँ अपने मुख कही। सौ सब पूरि रही है मही॥
जिहि जिहि भाय भजै जो जोई। तिहि तिहि विधि सो पूरन होई॥
उतनी कहत कुँवरि उपरानी। सहचरि दौरि उसीसी आनी॥
दै उसीस पर सुंदर बाँही। सुंदरि सोय गई सुख माहीं॥
जौ देखै तौ वह बन आही। सपन की संपति सब अवगाही॥
जमुना पुलिन कल्पतरु तरै। ठाढ़े कर कल बंसी धरै॥
देखे मोहन गिरिधर पिया। साँवरे जगत-सदन के हिया॥

पियहिं निरखि तिय लज्जित भई। सखि पाछै आछै दुरि गई॥
हँसत हँसत पिय तिहि ढिग आये। काम ते कोटिक ठाँव सुहाये॥
सखि सौं वह लपटनि अलबेली। अरुझी हेमपेम जनु बेली॥
ताहि कै रस ताहि मनावै। मोहनलाल महा छवि पावै॥
वनिता लता सहजि सुखदाई। ऐंचे सरस निरस ह्वै जाई॥

दोहा

नेह नवोढ़ा नारि कौं बारि-आरुका न्याय।
थलराये पै पाइये नीपीड़े न रसाय॥५०१॥

चौपाई

वोलि वोलि मादक मधुबानी। कुँवरि निहोरि कुंज मैं आनी॥
का कहिये तिहि कुंज निकाई। जनु सुख पुंजन ही करि छाई॥
तामै सेज सुपेसल ऐसी। आल बाल रति-बेली जैसी॥
कछु छल कछु बल कछु मनुहारी। लै बैठे तहँ लालबिहारी॥
मन चह रम्यो चहै तन भग्यो। कामिनि के इक कौतुक लग्यो॥
जो पारद कहुँ कर थिर करै। सो नवोढ़ बाला उर धरै॥
पुहपनिही के दीपग जहाँ। जगमग जोति लगी रही तहाँ॥
प्रथम समागम लज्यति तिया। अंचल पवन सिरावति दिया॥
दीप न बुझहि विहँसि बर वाला। लपटि गई पिय उरसि रसाला॥
भोजन भूख मिलत मैं लहै। ऐ परि इन सरि परत न कहै॥
प्रेम पुलक अंतर तिहि काला। सो अंतर सहि सकति न बाला॥
चित विवधान सहति नहिं सोई। रूपमंजरी अस रस भोई॥

दोहा

चुंबन समै जु नासिका वेसरि मुती झुलाय।
अधर छिड़ावन पीव पै मानो हाहा खाय॥५१४॥

गाथा

गुणि गण गुणाण गणियं मज्झमगा विहॅग मारेहा।
तिय रस पेम पमाणं जाणं जीघणं जपियं जीहा॥५१५॥

चौपाई

सब निसि के जागे अनुरागे। रंचक सोय गए उर लागे॥

तबहीं भोर के लच्छिन भये। तार हार सीतल ह्वै गए ॥
दीपग फीके फूल ऐलाने। परकिय तियनि के हिय अकुलाने ॥
कुरकुट सुनि चुरकट भई बाला। लीनै उससि उसास बिसाला ॥

दोहा

जात न उठि लपटात सुठि, कठिन प्रेम की वात।
सूर उदोत करोत सम, चीरि किये बिबि गात ॥५२०॥

चौपाई

जागि कुँवरि अपने घर आई। अपने गौने कुँवर कन्हाई ॥
सेज ते उठति सुरत रस माती। सखि तन मधुर मधुर मुसकाती ॥
सगबगि अलकैं श्रमकन झलकैं। सोहति पीक पगी द्रग-पलकैं ॥
राजत नैन पीक रस पगे। हँसि हँसि हरि प्रीतम सुख लगे ॥
फूलमाल जो पिय पै पाई। कुँवरि के कंठ चली सो आई ॥
तब तें रूपमंजरी बाला। छिन छिन औरै रूप रसाला ॥
'पारस परसि पितल होय सोनू। पाहन ते परमेश्वर औनू ॥

दोहा

तिहूँ काल मैं प्रगट प्रभु प्रगट न इहि कलि काल।
तातैं सपनो ओट दै भेटे गिरिधर लाल ॥५२८॥
जो वाँछित ही रैनि दिन सो कीनी करतार।
महामनोरथ-सिधु तरि सहचरि पहुँची पार ॥५२९॥

चौपाई

इहि बिधि कुँवरि रूपमंजरी। सुंदर गिरिधर पिय अनुसरी ॥
इंदुमती ताकी सहचरी। सो पुनि तिहि संगति निस्तरी ॥
तिनकी इह लीला रस भरी। 'नंददास' निज हित कै करी ॥
जो इह हित सौं सुनै सुनावै। सो पुनि परम प्रेम पद पावै ॥

दोहा

जदपि अगम तें ,अगम अति, निगम कहत है जाहि।
तदपि रँगीले प्रेम ते, निपट निकट प्रभु आहि ॥५३४॥
कथनी नाहिंन पाइये, पाइये करनी सोय।
वातन दीपग नां वरै, वारे दीपग होय ॥५३५॥

———

रसमंजरी

दोहा

नमो नमो आनंदघन, सुंदर नंद-कुमार।
रस-मय, रस-कारन, रसिक, जग जाके आधार॥ १॥

चौपाई

है जो कछू रस इहि संसार। ताकहुँ प्रभु तुम ही आधार॥
ज्यों अनेक सरिता जल बहै। आनि सबै सागर मैं रहै॥
जग मैं कोउ-कबि बरनौ काही। सो जसु-रस[1] सब तुम्हरी आही॥
ज्यों जलधर तैं जलधर जल लै। बरषै हरपि आपनैं कलै[2]॥
अगनि तें अनगन दीपक बरैं। बहुरि आनि सब तिन मै ररैं॥
ऐसेहि रूप प्रेम रस जो है। तुम तैं है तुम ही करि सोहै॥

दोहा

रूप प्रेम आनंद रस, जो कछु जग मैं आहि।
सौ सब गिरिधर देव कौं, निधरक बरनौं ताहि॥ ७॥

चौपाई

एक मीत हम सों अस गुन्यो। मैं नाइका-भेद नहिं सुन्यो॥
अरु जु भेद नाइक के गुनें। ते हू मैं नीके नहि सुनें॥
हाव भाव हेलादिक जिते। रति समेत समझावहु तिते॥
जब लग इनके भेद न जानै। तब लग प्रेम न तत्व पिछानैं॥
जाको जहँ अधिकार न होई। निकटहि वस्तु दूरि है सोई॥
मीन कमल के ढिग ही रहै। रूप रंग रस मधुलिह लहै॥
निकटहि निरमोलिक नग जैसैं। नैन हीन तिहि पावै कैसैं॥
तासौं 'नंद' कहत तब ऊतर। मूरख जन मन मोहित दूतर॥

---

१. पाठा०—जु सुरस। २. पाठा०—आप मैं मिलै।

बात अवर कछु अवरहि बूझै। अलप ग्यान गुनि अनमन दूझै ॥
अब सुनि लै मूरख मन कैसौ। बरनि सुनाऊँ तो कहुँ तैसौ ॥
महा नक्र-मुख जो मनि होई। ताही कर करि काढ़ै कोई ॥
कुपित भुजंगम सिर पग धरै। हाथनि पाथ-रासि पुनि तरै ॥
तेल लहै करि धूरि-की धानी। मृगतृष्णा तैं पीवै पानी ॥
खोजि ससा के शृंगनि पावै। पै मूरख मन हाथ न आवै ॥
तू तौ सुनि लै रसमंजरी। नख सिख परस प्रेम रस भरी ॥

दोहा

रसमंजरि अनुसार कै, 'नंद' सुमति अनुसार।
बरनत बनिता-भेद जहँ, प्रेम सार बिस्तार ॥२४॥

चौपाई

जग मैं जुवती त्रय परकार। करि करता निज रस-बिस्तार ॥
प्रथम स्वकीया पुनि परकीया। इक सामानि बखानी तिया ॥
ते पुनि तीन तीन परकार। मुग्धा, मध्या, प्रौढ़ बिहार ॥
मुग्धा हू पुनि द्वै बिधि गनी। ज्यों उत्तर उत्तर रस सनी ॥
प्रथमहि मुग्ध नऊढ़ा होय। पुनि बिश्रब्ध नऊढ़ा सोय ॥

मुग्धा नवोढ़ा

जिहि तन नव जोबन अंकुरै। लाज अधिक तन मन संकुरै।
अलि आधीन होय रति जाकै। भूपन रुचि तैसी नहि ताकै ॥
प्रीतम जब कर-पंकज धरै। बल करि सेज निवेसित करै ॥
क्रोड़ी करि सब अंगनि गहै। तदपि सुतिय वह गवन्यो चहै ॥
तन करि भागै मन करि रमै। कहि न जाय जस बैसँधि समै ॥
जो पारिदि कहुँ कर थिर करै। सो नऊढ़ बाला उर धरै ॥

बिश्रब्ध-नवोढ़ा

अँग अँग जोबन जोति संचार। कंचन ढरी[1] मनो नग जरी ॥
उपजी कछुक दृगनि आतुरी। लज्जित जहँ खंजन चातुरी ॥
तन लावन्य झलक परि ऐसी। मुक्ताफल नव पानिप जैसी ॥

---

१. पाठा०—छरी।

पिय सँग सोवति अति छबि लहै। कर करि कलित कुचस्थल गहै॥
नीवी बंधन दृढ़ कैं धरै। ऊरू जमल बाँधि इक करै॥
अध मुंदित नैनन छवि पावै। मृग छौनहिं मनौ आँघ सी आवै॥
कोमल कोप कबहुँ जो गहै। कूप छाँह जिमि हिय ही रहै॥
इहि परकार परखिये जोई। है बिश्रब्ध नवोढ़ा सोई॥

दोहा

गाढ़ालिंगन पीय सौं, दै न सकै तिय सोय।
नव अनंग अंकुर हिये, डरति भंग जिमि होय॥४४॥

अज्ञात यौवना

सखि जब सर-स्नान लै जाहीं। फूले अमलनि कमलनि माँहीं॥
पौंछे डारति रोम की धारा। मानति बाल सिवाल की डारा॥
दीरघ नैन चलति जब कोने। सरद कमल-दल हू तैं लौनें॥
तिनहि श्रवन बिच पकर्यो चहै। अंबुज-दल से लागे कहै॥
इहि परकार तिया जो लहिये। सो अज्ञात जौवना कहिये॥

ज्ञात यौवना

सहचरि के उरजन-तन चहै। अपनै चहै मुसकि छबि लहै॥
सखी कहै वलि तुव कुच नये। इकठे उभय संभु से भये॥
सो सुकृती वह निज नख धरिहै। इन कहुँ चंद्रचूड़ जो करिहै॥
मुसकि सखी कौं मारै जोई। ज्ञातजोबना कहिये सोई॥

मध्या

लज्जा मदन समान सुहाई। दिन दिन प्रेम चोप अधिकाई॥
पिय सँग सोवत सोय न जाई। मनमन इमि सोचै सुखदाई॥
सोये प्रीतम सोहन मुख की। हानि होय अवलोकनि सुख की॥
सोइ न सकै न जागन कहै। अति मध्या सु नवोढ़ा अहै॥

प्रौढ़ा

पूरन जोबन है गहगोरी। अधिक अनंग लाज तिहि थोरी॥
केलि कलाप कोविदा रहै। प्रेम भरी मद-गज जिमि चहै॥

दीरघ रैनि अधिक कै भावै। भोर कौं नाम सुनत दुख पावै॥
अति प्रगल्भ बैनी रस रैंनी। सो प्रौढ़ा प्रीतम सुख दैनी॥

अन्य भेद

तहँ केई धीरा केइ अधीरा। केइ धीराधीरा रस भीरा॥
मुग्धा मैं धीरादिक लच्छिन। प्रगट नहीं पै लखैं बिचच्छिन॥
ज्यों सुंदर तरु अंकुर माँही। दल फल फूल डार सब ताहीं॥
मध्या मै ते प्रगट जनावै। पल्लव कली फूल होय आवै॥

मध्या धीरा

सापराध पिय कौं जब लहै। विंगि कोप के वचननि कहै॥
जगत-निकुन्ज-पुंज मैं मोहन। तुम अति श्रमित भये पिय सोहन॥
बैठहु वलि काहे कौं खीजौ। नलिनी दल बिजना करि वीजौ॥
रंचक भौंह करेरी लहिये। सो तिय मध्या धीरा कहिये॥

मध्या अधीरा

जागे तुम निसि प्रानपियारे। अरुन भये ये नैन हमारे॥
अधर सुधा सब पिय तुम पियो। घूमत है इह हमरो हियो॥
प्रखर नखन सर लगे तिहारै। पीर होत पिय हिये हमारै॥
वन मैं श्रीफल बनि गये तुमकौं। काम क्रूर मारत है हमकौं॥
वचन अबिंग्नि कहै रिस भोय। है अधीर मध्या तिय सोयं॥

मध्या धीराधीरा

प्रीतम कौं जब सागस लहै। व्यंगि अव्यंगि वचन कछु कहै॥
अहो अहो मोहन सोहन पिया। नव अनुराग चुचात है हिया॥
चतुर-सिरोमनि नंद के लाला। नव जोवन गुन रूप रसाला॥
यौं कहि दृग भरि आवै जोंय। धीराधीरा मध्या सोये॥

प्रौढ़ा धीरा

सागस जानि साँवरे पिया। गूढ़ मान करि वैठी तिया॥
प्रीतम तासों विनय जु करैं। वार वार कर-अंबुज धरैं॥
वोलति क्यों न सुधा सी धारा। डोलति क्यों न रूपसी डारा॥

केतकि कुस मग रभस प्रगोरी। सेज मान लाजसि क्यों भोरी॥
भृकुटि भ्रमर जिमि भ्रमनिजु लहिये। सो तिय प्रौढ़ा धीरा कहिये॥

प्रौढ़ा अधीरा

पिय उर मुकुर समान सुहाय। तामैं निरखि आपनी झायँ॥
अन तिय की जिय संका मानै। रंचक पिय सों रूठन ठानै॥
पुनि अवधारै को पुनि हारै। हँसि हँसि ता प्रतिबिंबहि मारै॥
इहि परकार परखिये जोई। है अधीर प्रौढ़ा तिय सोई॥

प्रौढ़ा धीराधीरा

सागस जानि रसीले लाला। कोमल मान, गहे बर बाला॥
प्रेम भरे सुनि बचन पियाके। हँसहि कपोल सलोल तिया के॥
राते दृग रिस रस सों भोये। मानहुँ मीन महावर धोये॥
कछु मन दिढ़ कछु अदिढ़ लहीये। प्रौढ़ा धीराधीरा कहिये॥

सुरतिगोपना

सखि सौं कह सखि उहि गृह अंतर। अब ते हौं सोऊँ न सुतंतर॥
सासु लरौ मैया किन लरौ। मैया जो भावै सो करौ॥
आँपु धरन हित दुष्ट मँजारी। मो परि उचरि परी दइमारी॥
दै गई तीखन नख दुखदाई। कासौं कहौं दरद सो माई॥
इहि छल छतनि छिपावै जोई। परकिय सुरतगोपना सोई॥

परकीया वाग्विदग्धा

अहो पथिक अति बरसत घामा। रंचक कहूँ करौ बिश्रामा॥
इहँ ते निकट कलिंदी तीर। सीतल मंद सुगंध समीर॥
गहवर तरु तमाल है तहाँ। प्रफुलित बल्लि मल्लिका जहाँ॥
छिनक छाँह लीजै रस पीजै। बहुस्यो उठि मारग मन दीजै॥
पियहिं सुनाय पथिक सों कहै। वाक् विदग्धा परकिय सु है॥

लक्षिता परकीया

लच्छन चिह्नन जो लखि पाई। बुधि बल छल न छिपाई जाई॥
सतर भौंह गुरजन की सहै। जो पूछै तासौं इमि कहै॥
जु कछु भई सुभई गति भली। हौंनी आहि सु ह्वैहै अली॥

अरु जु होति है होहु सु सिरपर। पेट पातरैं नहिंन बचै सर॥
निधरक भई कहति इम लहिये। सा परकिया लच्छिता कहिये॥

नायिका भेद

प्रोपितपतिका अरु खंडिता। कलहंतरिता, उत्कंठिता॥
अवर विप्रलब्धा नाइका। वासकसज्जा, अभिसारिका॥
पुनि स्वाधीन-वल्लभा गुनी। नवमी प्रीतम-गवनी सुनी॥

प्रोषितपतिका

जाको पति देसांतर रहै। अति संताप विरह-जुर सहै॥
दुर्वल तन मन व्याकुल होई। प्रोपितपतिका कहिये सोई॥

मुग्धा प्रोषितपतिका

मुग्धा विरहविथा हिय सहै। सखि जन हूँ सौं नाहिन कहै॥
सीतल सेज सँवारि बिछावै। सोय न सकै लाज जिय आवै॥
गद्‌गद कंठ रहै अकुलानी। नैनन मॉह न आनै पानी॥
जामिनि सँग मनसिज दुख पावै। सो मुग्धा प्रोपिता कहावै॥

मध्या प्रोपितपतिका

मध्या पिय जब विरह जुर दहै। इहि परकार सखी सों कहै॥
सखि हो वहै वहै कर वलै। ऐपरि कर करिये नहि चलै॥
वसन तेई कटि किंकिनि सोई। छिन छिन आधि अधिक क्यों होई॥
कवन समय आयो इह सजनी। इंदु अनल वरपै सब रजनी॥
इहि परकार कहति जो लहिये। मध्या प्रोपितपतिका कहिये॥

प्रौढ़ा प्रोषितपतिका

पिय परदेस धीर नहि धरै। पीर भीर कछु सुधि नहिं परै॥
तरुन अनंग तरुन दुख वढ़्यो। अँग अँग महा गरल जिमि चढ़्यौ॥
विरह लहरि जब उठि मुरझावै। वाहु की वलय ढरकि कर आवै॥
जनु इह वलय नाड़िका लहै। जियति है किधौं मरि गई अहै॥

परकीया प्रोपितपतिका

प्रानपियारे पियहिं न पेखै। सो तिय सब जग सूनो देखै॥
आन की ढिग उसास नहिं लेई। मूँदै मुख तिहि ऊतरु देई॥

तपत उसासन जो कोउ लहै। परकिय विरहिनि कातब कहै॥
सखि जौ कमल फूल पकरावै। हाथ न छूवै निकट धरावै॥
अपने कर जु विरह-जुर तातें। मति जरि जाँहि डरति तिय यातें॥
अँवा अगनि जिमि अंतर दहिए। सा परकीया प्रोषित कहिए॥

दोहा

प्रेम मिटै नहि जनम भरि, उत्तम मन की लागि।
जौ जुग भरि जल मे रहै बुझै न चकमक आगि॥१२६॥

खंडिता

प्रीतम अनत रैनि सव जागे। अंग अँग रति-रस-चिन्हन पागे॥
भोर भये जाकै गृह आवै। सौ वनिता खंडिता कहावै॥

मुग्धा खंडिता

अंकन पिय उर उरज पिछानै। कुंभ चिन्ह से कछु जिय जानै॥
नख छत छती चितै चकि रहै। ते प्रीतम कौं पूछयौ चहै॥
पिय हँसि ताहि कंठ लपटावै। सो मुग्धा खंडिता कहावै॥

मध्या खंडिता

प्रीतम-उर कुच-चिन्हन चहै। जानै परि कछु वैन न कहै॥
पुनि तिन मै नख रखै देखै। साँस न भरै कनाखिन पेखै॥
चपरि चखनि तें जो जल आवै। इहि परकारि तिया जु जनावै॥
मुख धोवन मिस ताहि मिलावै। इहि प्रकार तिय प्रीति जनावै॥
सा मध्या खंडिता कहावै। सुनै सुनावै सो सुख पावै॥

प्रौढ़ा खंडिता

भोर ही आये मोहन लाल। तिय-पद-जावक अंकित भाल॥
नैन नीर नैनन अवधारै। प्रात अमंगल तें नहिं डारै॥
दर्पन लै पिय आगै धरै। व्यंगि वचन वोलै नहिं डरै॥
ढँकहु छती नख दिखि इत ऐसो। राति प्रीति कौ अंकुर जैसो॥
ऐंपरि इमि दिखि इत रँग भख्यो। गाढ़ालिंगन टूटि है पख्यो॥
इहि परकार कहति रिस सानी। सो प्रौढ़ा खंडिता वखानी॥

परकीया खंडिता

पिय कर कंकन मुद्रा लहै। गंडनि श्रम-कन पुनि पुनि चहै ॥
नमित बदन कै ठाढ़ी रहै। प्रीति-भंग भय कछुव न कहै ॥
दूती-तन करि नैनन तारे। भरइ उसास ढुसासन डारे ॥
टपक टपक दृग अँसुवा परै। कमलदलनि जनु मोती झरै ॥
इहि परकार प्रेम रस सानी। सा परकिय खंडिता बखानी ॥

दोहा

सब काहू सों देखिये लाल तिहारी प्रीति।
जहाँ डारिए तहँ बढ़ै अमर बेलि की रीति ॥१५१॥

कलहांतरिता

प्रथमहिं पीय अनादर करै। पीछै फिरि पछितावै भरै ॥
साँस भरै उर अति संताप। अरुझै मुरुझै करै प्रलाप ॥
सोचति सीस धुनति जब लहिए। सो तिय कलहंतरिता कहिए ॥

मुग्धा कलहांतरिता

प्रीतम अनुनय करि कर गहै। वह लजि लपटि न तासों रहै ॥
पाछै मलय पवन जब बहै। तब पिय उर घुरि सोयो चहै ॥
मन मन सीस धुनति जो लहिये। मुग्धा कलहांतरिता कहिये ॥

मध्या कलहांतरिता

रवन आनि अनुनय अनुसरै। रूप कै गरब अनादर करै ॥
पाछै वह दुख कहत लजाई। कहें विना हिय पीर न जाई ॥
चकित भई सहचरि सौं कहै। बात आन अधरन मै रहै ॥
बैठि अधोमुख सोचै जोई। मध्या कलहंतरिता सोई ॥

प्रौढ़ा कलहांतरिता

आये जब मोहन रँग भरे। क्यों मो नैन तरारे करे ॥
कच लट गहत अनखि क्यों परी। क्यों कुच छुवत कलह मै करी ॥
अली अदिष्ट नष्ट बड़ कोई। पाई निधि जिहि कर तैं खोई ॥
इहि परकार प्रलापति लहिये। प्रौढ़ा कलहंतरिता कहिये ॥

परकीया कलहांतरिता

जाकै लिये पतिन मैं पेषे। गरुए गुर हरुये करि देषे॥
धीरज धन मै दीन्ह लुटाई। नीति सहचरी सो बिरराई॥
लाज तिनक जिमि तोरि ही दीनी। सरिता-बारि बुंद सरि कीनी॥
सुपिय आज मैं अति अवमाने। सखि अब बिधि बिकूल पै जाने॥
इहि बिधि बिलपति प्रलपति लहिये। सा कलहंतर परकिय कहिये॥

दोहा

रसहूँ लगि कल कंत सौं, कलह न कीजै काउ।
का नहिं जो ऊनौ करै, सो सोनौ जरि जाउ॥१७१॥

उत्कंठिता

उहि संकेत पीव नहिं आवै। चिता करि तिय अति दुख पावै॥
आरति कंप सँताप जुड़ाई। तनु तोरति अरु लेत जँभाई॥
भरि भरि नैन अवस्था कहै। उत्कंठिता नायिका सुहै॥

मुग्धा उत्कंठिता

प्रानपियारे पिय जु न आये। हूँ जानौं किन ही बिरमाये॥
लाज तें सखि कौं नाहिंन बूझै। चिता करि मन ही मन मूझै॥
चकित भई घर आँगन फिरै। कौंने जाय उसासनि भरै॥
दुख ते मुख पियरी परि आवै। मुग्धा उत्कंठिता कहावै॥

मध्या उत्कंठिता

करि विचार मन ही मन भई। क्यों नहिं आये प्रीतम दई॥
कै इह सखी गई नहिं लैना। कै कछु डरपे पंकज-नैना॥
भरि आवे जब लोचन पानी। धूम पर्‌यो तब कहै सयानी॥
सोचति इमि जल मोचत लहिये। मध्या उत्कंठिता सु कहिये॥

प्रौढ़ा उत्कंठिता

प्रीतम अन आये जव लहै। ठाढ़ी कुंज-सदन मैं कहै॥
अहो निकुंज, भ्रात इत सुनि धौं। हे सखि जूथि-वहन, मन गुनि धौं॥
हे निसि मात, तात अँधियारे। पूछति हौं तुम हितू हमारे॥

हो तमाल, हो बंधु रसाला। क्यौं नहिं आये मोहन लाला ॥
ऐसे बिलपति प्रलपति लहिये। प्रौढ़ा उत्कंठिता सो कहिये ॥

परकीया उत्कंठिता

जिहि मनमोहन पिय-हित माई। अकिली बन घन बसि न डराई ॥
कवन कवन तप मै नहि कियो। वारि दबारि अन्हैवौ लियो ॥
मनसिज देव सेव दृढ़ कीनी। लाज तहाँ मैं दक्षिना दीनी ॥
सुपिय आज दृग अतिथि न भये। भोरे किनहू भोरे लये ॥
यौधन मै मन मैं दुख पावै। परकिय उत्कंठिता कहावै ॥

विप्रलब्धा नायिका

पिय संकेत आप दुख पावै। तहँ प्रीतम कहुँ नाहिंन पावै ॥
साँस भरै लोचन जल भरै। प्रिय सहचरि सौं झुकि झुकि परै ॥
मन वैराग धरै दुख पावै। जुवति विप्रलब्धा सु कहावै ॥

मुग्धा विप्रलब्धा

कपट सौंह करि करि सखि जाकौं। लै आवहि निकुंज मँह ताकौं ॥
तहँ प्रीतम कौं नाहिन पावै। छुभित होय छवि नहिं कहि आवै ॥
सतर भौंह मौरनि झहरावै। मुग्धा विप्रलब्ध सु कहावै ॥

मध्या विप्रलब्धा

पिय संकेत आय वर वाला। पावै पियहि न रूप रसाला ॥
अध मूँदित नैंनन चकि रहै। आधी बात वदन छवि चहै ॥
आधी बीरी दसनन धरै। ठाढ़ी गूढ़ उसासन भरै ॥
कछु इक मन बैरागहि पावै। मध्या विप्रलब्ध सु कहावै ॥

प्रौढ़ा विप्रलब्धा

कुंज सदन सूनौं जब देखै। सखि जनहू कौं संग न पेखै ॥
कुटिली कामदेव ते डरै। कामदेव सौं बिनती करै ॥
भो संभो सूलिन सिव संकर। हर हिमकर-धर उग्र भयंकर ॥
मदन-मथन मृड़ अंतरजामी। त्राता होहु जगत के स्वामी ॥
भरि भरि नैन त्रिनैन मनावै। प्रौढ़ा विप्रलब्ध सु कहावै ॥

परकीया विप्रलब्धा

धीरज-अहि कै सिर पग धरै। लज्जा तरल तरंगिनि तरै॥
तिमिर-महागज हाथनि ठेलै। पति-डर-नाहर पाइन पेलै॥
इहि बिधि कुंज-सदन चलि आवै। तहँ मनमोहन पियहि न पावै॥
लता कर धरै चिंता करै। साँस भरै लोचन जल भरै॥
इहि परकार परपिये तिया। सु है बिप्रलब्धा परकिया॥

दोहा

धीर सघन वन माँझ ह्वै गुरु-डर गैवर ठेलि।
पति डर नाहर पेलि पग करै कवर सो केलि॥ २१३॥

वासकसज्जा

पिय आगमन जानि वर वाला। सुरत समग्री रचै रसाला॥
दूती पूछै सखि सौं हँसै। करै मनोरथ विकसै लसै॥
नैननि निपट चटपटी लहिये। सा तिय वासकसज्या कहिये॥

मुग्धा वासकसज्जा

छिपी हार गूँथै छवि पावै। छल करि कटि किंकिनी बनावै॥
दीपहि वारि सदन मैं धरै। तिन महिं तेल अधिक नहिं करै॥
सखि कहुँ सेज बिछायति लहै। घूंघट पट मैं मुसकै चहै॥
छिन छिन प्रीतम को मग जोहै। मुग्धा वासकसज्या सोहै॥

मध्या वासकसज्जा

पुहुप हारि गुहि सखिहि बतावै। कहइ कि मो सम तोहि न आवै॥
मिस ही मिस पट भूषन धरै। सहचरि के अभरन सो अरै॥
द्वार चित्र देखन मिस वाला। पिय मग देखै रूप रसाला॥
जाके चरित बिलोकि मनोज। हँसि हँसि चूमै वदन-सरोज॥
इहि प्रकार हिय हुलसति लहिये। मध्या वासकसज्या कहिये॥

प्रौढ़ा वासकसज्जा

प्रगटहिं अंगनि अभरन सजै। सखि जन तें रंचक नहिं लजै॥
सेज वसन सब धूपित करै। सौरभ करि दुर्दिन सौं अरै॥
सखि सो सबै मनोरथ कहै। प्रौढ़ा वासकसज्या सो है॥

परकीया वासकसज्जा

छल करि सुमुखि सास कौ स्वावै। छल ही छल गृह दीप सिरावै ॥
सोवत छल कैं बचन सुनावै। ता प्रिय कहु संकेत जनावै ॥
बार बार हँसि करवटि लेय। जौन्ह सौ बदन दिखाई देय ॥
सेज परी नूपुर रुनकावै। कर के कल कंकन कुनकावै ॥
इहि परकार जुवति जो लहिये। परकिय वासकसज्या कहिये ॥

अभिसारिका

समय जोग पट भूपन धारै। पिय अभिसारि आप अभिसारै ॥
रूप अधिक बुधि की अधिकाई। अधिक चोप ते अधिक सुहाई ॥
उठि चलै कहति पिया पै जोई। अभिसारिका कहावै सोई ॥

मुग्धा अभिसारिका

बोलनि आई दूती दामिनि। चलिहै संग सहचरी जामिनि ॥
भूत भविष कौं जाननिहारा। कहतु है बन सुभ गवन की बारा ॥
झींगुरि मुख करि रटनि अधारा। मंगल ह्वैहै करि न विचारा ॥
त्रपा मुंच मुग्धे अभिराम। अभिसर बलि जहँ सुंदर स्याम ॥
इहि विधि ताहि सखी लै आवै। मुग्धा अभिसारिका कहावै ॥

मध्या अभिसारिका

निरखि सुमुखि अभिसार की बारा। सखि सँग गवने रुचिर विहारा ॥
तिमिर मैं नील निचोल बनावै। बदन-चंद पट वोट दुरावै ॥
मग के सर्पन ते नहि संकै। तिनकी फनि मनि हाथ न टंकै ॥
चंद उदै चदन तन धरै। जौन्ह सी आपुहि हँसि हँसि परै ॥
रीझि मदन जा तिय के आनै। सो पुनि कुंद कुसुम सर तानै ॥
इह परकार जुवति जो लहिये। मध्या अभिसारिका सु कहिये ॥

प्रौढ़ा अभिसारिका

एकाकी पिय पै अभिसरै। धनुधर मदन सहायक करै ॥
रजनी कौ बासर सम जानै। तामै घन तिहि दिनमनि आनै ॥
तिमिरहि तरनि किरनि सम देखै। गहवर वन सुभवन करि लेखै ॥
दुर्गम मगहि सुगम करि जानै। मदन मत्त डर की को आनै ॥

इहि बिधि कुंज सदन बलि आवै। प्रौढ़ा अभिसारिका कहावै॥

परकीया अभिसारिका

उरज भार भंगुर गति जाकी। परिहै तूटि लटी कटि ताकी॥
चल नहिं सकति प्रेम कै भारा। डारति काढ़ि मुक्त को हारा॥
धमिल खोलि सखि कहुँ पकरावै। केलि कमल गहि दूरि वगावै॥
जब अति सिथिल होति सुकुमारा। टेकत चलै बारिधर धारा॥
जौन मनोरथ रथ तहँ होई। क्यों पहुँचै पिय पैं तिय सोई॥
इहि विधि मोहन पिय पै आवै। परकिय अभिसारिका कहावै॥

स्वाधीनपतिका

जाकौं पारिस पिय नहि तजै। दिन दिन मदन महोत्सव सजै॥
नव नव अंबर अभरन धरै। बन विहार रुचि पिय सँग करै॥
सबै मनोरथ पूरन लहिये। सा स्वाधीनवल्लभा कहिये॥

मुग्धा स्वाधीनपतिका

मो कटि तैसी कृस नहि भई। अंग कांति कछु अति नहिं लई॥
उरजनि नहिंन गरिमता तैसी। बचन चातुरी फुरी न वैसी॥
गति न मंद कछु भई सुहाई। नैनन नहिंन बक्रिमा आई॥
ऐपरि पिय मनमोही कॉही। कारन कवन सुजानति नॉही॥
इहि बिधि सखि प्रति बरसै सुधा। है स्वाधीनवल्लभा मुग्धा॥

मध्या स्वाधीनपतिका

हौं कछु रति उत्सव नहिं करौं। अंक धरत धरनी पर परौं॥
सँग सोवत नीवी गहि रहौं। चुंबन करत लाज जिय गहौं॥
मेरी बात अमी जिमि भावै। मोहि गद्‌गद स्वर बात न आवै॥
तदपि न पिय पारिस तजि जाई। तो कहि कहा करौं री माई॥
अरग अरग इमि सखि सों कहै। मध्या स्वाधीनवल्लभा इहै॥

प्रौढ़ा स्वाधीनपतिका

हे सखि अवरन के जे पिया। बात सुनहि स्वकिया परकिया॥
मो प्रीतम मोहीं कहुँ जानै। आन जुवति सुपिनै न पिछानै॥
इहि परकार कहै रस बोढ़ा। सा स्वाधीन वल्लभा प्रौढ़ा॥

परकीया स्वाधीनपतिका

प्रीतम के घर बहुत सुकीया। मोहीं सों हित मानत पिया॥
मधुबैनी बारिज-बर ब्रैनी। हास बिलास रास रस रैनी॥
ऐपरि बन पुर अटा अटारी। पिय की दृष्टि न मों ते न्यारी॥
इहि परकार कहै जो तिया। है स्वाधीनपिया परकीया।

दोहा

अंजन मंजन पट पहिरि गरब करौ जिनि कोय।
अवरै प्रेम सुलच्छिनौ जिहि प्रीतम वस होय॥२७६॥

प्रीतमगमनी

जाको प्रीतम गवन्यो चहै। भीत भई कछु बैनहि कहै॥
गवन बिघन कहुँ मन मन सोचै। लोचन ते जल नाहिन मोचै॥
चित ही चित चिंता परि लहिए। सो तिय प्रीतम गवनी कहिए॥

मुग्धा प्रीतमगवनी

गवन बात पिय की जब सुनै। सुनतहि मन मैं घुन ज्यों घुनै॥
ताकी सखी गुपत भई डोलै। कुंजनि कल कोकिल ह्वै बोलै॥
रूप लता सी मुरझत लहिए। मुग्धा प्रीतमगवनी कहिए॥

मध्या प्रीतमगवनी

पिय कहुँ चलत जानि बर बाला। बोलै नहिं कछु रूप रसाला॥
भरइ न दीरघ स्वाँस सयानी। नैनन माँझ न आनै पानी॥
धरि रहै हाथ माथ कै धोरै। मनहुँ आप अक्षर टकटोरै॥
इहि परकार परखिये जोई। मध्या प्रीतमगवनी सोई॥

प्रौढ़ा प्रीतमगवनी

हो श्रीपति पति पूछति तोहि। सत्य कहो संदेहै मोहि॥
तन त्यागे हूँ जुवति न कहिया। इह त्रियोग जारत किन हिया॥
अरु ए कुसुमित वोर पटीर। देत जु वंधु मरे कहुँ नीर॥
जो परलोक हु गरल समान। क्यौं है देत वंधु अज्ञान॥
ऐसै कहिकै चुपकै रहै। प्रौढ़ा प्रीतमगवनी सु है॥

परकीया प्रीतमगमनी

आनपिया कहुँ गवन जु लहै। रहसि पाय पिय सौं इमि कहै॥
तुम हित कौन दुकृत नहिं किए। पन्नग-फन परि मैं पग दिये॥
पति द्विज देव सेव सब तजी। नीति तजी कुल लाज न लजी॥
तिनके फल ते नरक बताये। ते सब मोकहुँ जीवत आये॥
तपन जाचना आई तन कौं। कुंभीपाक पराभव मन कौं॥
महाघोर रौरव जु बतायो। क्रोध रूप ह्वै नैनन आयो॥
जुगत आहि पिय गवनत तोहि। क्यो न होय ऐसी गति मोहि॥
इहि परकार कहत तिय जोई। परकिय प्रीतमगवनी सोई॥

दोहा

चलन कहत है काल्हि पिय, का करिहौ मेरी आलि।
बिधना ऐसो करि कछू, जैसे होय न काल्हि॥२०३॥

नायक भेद

नाइक वरनें चारि प्रकार। प्रमदा प्रेम वढ़ावनहार॥
एक धृष्ट, इक सठ, इक दच्छिन। इक अनुकूल सुनहि अब लच्छिन॥

धृष्ट नायक

करि अपराध प्रिया ढिग आवै। निधरक भए बात वहरावै॥
ताकहुँ प्रिया कटाछिन तारे। हारनि बाँधे कमलनि मारे॥
मारि विठारि द्वार पहुँचावै। सोवति जानि वहुरि फिरि आवै॥
जो पिय कनक कहूँ करुनावै। पाटी तरै पर्‌यो तिहि पावै॥
चपरि सेज पर सोवै जोई। नाइक धृष्ट कहावै सोई॥

सठ नायक

वाल भाल में तिलक वनावै। गुहि गुहि फूल माल पहरावै॥
मकर पत्रिका रचै कपोल। वोलत जाय भावते बोल॥
किंकिनि बंधन मिस करि टोरै। छल करि नीवी बंधन छोरै॥
इहि विधि रमनी-रमन जु होई। कहत है कवि सठ नाइक सोई॥

दक्षिण नायक

जब ललना मंडल मैं आवै। अति अनुराग भर्‌यो छवि पावै॥
कहतु किए अनेक छवि ऐना। मेरे अनगन है विवि नैना॥

कित कित हुवै निवेसित कीजै। बदन बदन सुख कैसैं लीजै॥
नैन मूँदि तब तिन मै रहै। भीतर ही सब सुख सुख लहै॥
रोमांचित तन दिखिये जाकैं। दच्छिन नाइक लच्छिन ताकैं॥

अनुकूल नायक

नित ही तिय के रस बस रहै। अवर सुंदरी सपन न चहै॥
करकस ठौर प्रिया जब चलै। तिहि दुख ताकौ हिय कलमलै॥
ज्यो श्रीराम चले बन मैं। सिय कैं चलत कहत यौं मन मैं॥
हे अवनी तुम मृदु तन धरौ। हे दिनकर तुम तपति न करौ॥
अहो पवन तुम तृन न वहाऊ। रे नग मग ते बाहिर जाऊ॥
रे दंडक वन नियरो आय। चलि न सकति सिय कोमल पाय॥
इहि परकार रहै रससान्यो। सोइ नाइक अनुकूल वखान्यो॥

भाव

प्रेम की प्रथम अवस्था आई। कवि जन भाव कहत हैं ताई॥
भाव बढ्यो क्यों जानिए सोई। अवर वस्तु कहुँ ठौर न होई॥

हाव

नैन बैन जब प्रगटै भाव। ते भल सुकवि कहत हैं हाव॥

हेला

खन खन बॉन बनायौ करै। वार बार कर दर्पन धरै॥
अति शृंगार मगन मन रहै। ताकहु कवि हेला छवि कहै॥

रति

जाके हिय मैं रति संचरै। निरस वस्तु सब रसमय करै॥
जैसै निंबादिक रस जिते। मधुर हौंहि मधु मै मिलि जिते॥
जदपि बिघन आवहि बहु भारे। जारति रस के मेटनहारे॥
तदपि न भृकुटी रंचक मटकै। एक रूप चित रस कहुँ प्रगटै॥
स्तंभ स्वेद पुनि पुलकित अंग। नैननि जलकन अरु स्वरभंग॥
तब बिवरन हिय कंप जनावै। वीच वीच मुरझाई आवै॥
इहि प्रकार जाकौ तन लहिए। सो वह रंग भरी रति कहिये॥

दोहा

इहि विधि यह रस मंजरी, कही जथामति 'नंद'।
पढ़त वढ़त अति चोप चित, रसमय सुख कौ कंद ॥२३९॥

विरहमंजरी

दोहा

परम प्रेम उच्छलन इक, बढ्यो जु तन मन मैन।
व्रजवाला विरहिनि भईं, कहति चंद सौं वैन ॥ १ ॥
अहो, चंद रस-कंद[1] हो, जात आहि उहि देस।
द्वारावति नँदनंद सौं, कहियो बलि[2] संदेस ॥ २ ॥

चौपाई

चले चले तुम जैयौ जहाँ। वैठे हौंहि साँवरे तहाँ॥
निधरक कहियो जिय जिनि डरौ। हो हरि अब व्रज आवन करौ॥
तुम विनु दुखित भईं व्रजवाला। नागर नगधर नंद के लाला॥
प्रसन भये किधौं सुंदर स्यामा। सदा वसौ वृंदावन धामा॥
याकै विरह जु उपज्यो महा। कहौ नंद, सो कारन कहा॥
नंद समोधत ताकौ चित्त। व्रज कौ विरह समुझि लै मित्त॥
व्रज मैं विरह चारि परकारा। जानत हैं जो[3] जाननहारा॥
प्रथम प्रतच्छ विरह तू गुनि लै। तातैं पुनि पलकांतर सुनि लै॥
तिसरौ विरह वनांतर भए। चतुरथ देसांतर कै[4] गए॥
प्रतछि विरह के सुनि अब लच्छिन। चकित होत तहँ वड़े विचच्छिन॥

प्रत्यक्ष-विरह वर्णन

ज्यों नवकुंज सदन श्री राधा। विहरति पिय सँग रूप अगाधा॥
पौढ़ी पीतम अंक सुहाई। कछु इक प्रेम लहरि सी आई॥
संभ्रम भई कहत रस वलिता। मेरे लाल कहाँ री ललिता॥

---

१. प्रति ख में 'सुखकंद तुम'।

२. प्रति ख में 'जाइ'। ३. प्रति ख में 'उहि जे'।

४. प्रति ख में 'विरह देसांतर गए'।

दोहा

भूत छिये, मदिरा पिए, सब काहू सुधि होय।
प्रेम-सुधा-रस जो पिए, तिहि सुधि रहै न कोय ॥१०॥

पलकांतर विरह

सुनि पलकांतर विरह की बातैं। परम प्रेम पहिचानत तातैं॥
सोभा-सदन बदन अस लोनौ। कोटि मदन छबि करि नहि होनौं॥
सो मुख ब्रज अवलोकन करै। तब जु आइ बिचि पलकैं परै॥
व्याकुल ह्वै भारी ब्रजनारी। तिहि दुख देत विधातहिं गारी॥

दोहा

बड़ौ मंद अरबिंद-सुत, जिहि न प्रेम पहिचानि।
पिय-मुख देखत दृगन कै, पलक रची बिचि आनि ॥१३॥

वनांतर विरह

विरह बनांतर कौ सुनि लीजै। गोपिन के मन मैं मन दीजै॥
जब बृंदावन गोगन गोहन। जात हैं नंद-सुवन मनमोहन॥
तब की कहि न बनति कछु बात। इक इक पलक कलप सम जात॥
इक टक दृगनि लिखी सी डोलै। बोलै जब जनु पुतरी बोलै॥

दोहा

नैन बैन मन श्रवन सब, जाय रहत पिय पास।
तनक प्रान घट मैं रहै, फिरि आवनकी आस ॥१६॥

देशांतर विरह

सुनि देसांतर बिरह-विनोद। रसिक जनन-मन वढ़वन मोद[1]॥

१. प्रति ख मे पाठा०—'रसिकनि मनहिं बढावन मोद।

नंद सुवन की लीला जिती। मथुरा द्वारावति वहु भँती॥
सुमिरत तदाकार ह्वै जाहीं। इहि वियोग इहि विधि ब्रज माहीं॥
ज्यों मनि कंठ बाँधि कै कोई। बिसरै वन वन ढूँढ़ै सोई॥
सो यह वाला रूप रसाला। साँझ मिले हैं मोहनलाला॥
पियहि फूल माला ही दीनी। सुंदर अंग राग रस भीनी॥
ताहि पहिरि कै कनक अटारी। पौढ़ि रही भरि आनँद भारी॥

रही हुती रजनी कछु थोरी। जागि परी जु सहज वर गोरी ॥
द्वारावति लीला सुधि भई। ताही छिन जु बिकल ह्वै गई ॥
दृष्टि परि गयो चंदा गैन। लागी ताहि संदेसा दैन ॥
द्वादसमास बिरह की कथा। बिरहिनि कौं दुखदायक जथा ॥
छिनक माँझ बरनी तिहि बाला। महाबिरहिनी ह्वै तिहि काला ॥

दोहा

निपट अटपटौ चटपटौ, ब्रज कौ प्रेम बियोग।
सुरझाएँ सुरझे नहीं, अरुझे वड्डे लोग ॥२३॥

सोरठा, बारहमासा, चैत्र

चैत चलो जिनि कंत, बार बार पाँ परि कहौं।
निपट असंत बसंत, मैन महा मय मंत जहँ ॥२४।

चौपाई

तदपि न रहे चलेई चले। कहियो चंद भले जू भले ॥
तब ही कुहुक कोकिला कियो। सुनतहि दहकि बहकि गयो हियो ॥
जनु किलकार मैन मोहि दई। जु कछु कहत ही सोई भई ॥
मदन जाल गोलक से भौंरा। फिरि गए उपरि ठौर ही ठौरा ॥
सुखद जु हुतौ तुम्हारे संग। सो वह बैरी भयो अनंग ॥
नव पुहुपन के धनुष बनावै। मधुप-भाँति तिनि तंति चढ़ावै ॥
नूत के नूतन अंकुर बाना। तकि तकि मरम[1] करत संधाना ॥
अरु इह त्रिगुन पवन कितहू कौ। पुहुप पराग लिये कर बूकौ ॥
फागु सो खेलत वन मै फिरै। रस अनरस सब काहू भरै ॥
पंचबान के प्रान समान। तिन अति चंचल किये परान ॥

दोहा

जलचर ज्यों जलभीर मैं, जानत नाहिन पीर[2]।
बिछुरि परै जब नीर तैं, सच सचु जानै नीर[3] ॥३०॥

---

१. पाठा०—'मार मकर,। २. प्रति ख मे पाठा०—'परसति नहिं तन पीर।' ३. प्रति ख मे पाठा०—'तब जान्यो सचु नीर।'

सोरठा, वैशाख

आवहु बलि वैसाख, दुख-निदरन सुख-करन पिय।
उपज्यो मन अभिलाष, बन बिरहन गिरिधरन सँग ॥३१॥

चौपाई

कुसुम धूरि धूँधरी सुकुंजै। मधुकर निकर करत तहँ गुंजै॥
गुहि गुहि नवल मालती-माला। मोहि पहरावहु मोहनलाला॥
ललित लवंग लतनि की छाँही। हँसि बोलौ डोलौ गहि[1] बाँही॥
पुलिन कलिंदी कौ अति रम्य। त्रिगुन पवन ही को तहँ गम्य॥
किसलय सयन सुपेसल कीजे। सिर तर सुमन उसीसा दीजे॥
इक पट वोट वोटि सुख कीजै। आवहु बलि छिन छिन छवि छीजै॥
द्रुमनि सौ लपटि प्रफुल्लित बेली। जनु मोहिं हँसति है देखि अकेली॥
जौ कबहूँ पिय ध्यानहि धर्‍यो। परिरंभन चुंबन पुनि कर्‍यो॥
रंचक सुख बहुर्‍यो दुख भारी। काहि बिससिये दसा हमारी॥

दोहा

इहि विधि बलि वैसाख इह, बीत्यो दुख सुख लागि।
सँड़सी भई लुहार की, खिन पानी खिन आगि॥

सोरठा, ज्येष्ठ

रही न तनक अमेठ, तुम बिन नंदकुमार पिय।
निपट निलज़ इह जेठ, धाय धाय बधुवनि गहै ॥३२॥

चौपाई

बृष की तपति तपति अति बई। घर बन अनलमई सब भई॥
तैसिय बिरह बिथा तन नई। अगिन मै अगिन और ज्यों दई॥
चंदन चरचे अति परजरै। इंदु-किरनि घृत-बूँद सी परै॥
चंदन चंद तौ तिनकौं सियरे। जिन तै नंदसुवन पिय नियरे॥
अहो चंद, मो दुख तन झाँकौ। मंद मंद ए मृग जिनि हाँकौ॥
झमकि जाय हरि पियहिं सुनाई। करिहौ कहा बहुरि ब्रज आई॥
दावानल जु पान हो कर्‍यो। सो वह बहुरि बिपिन संचर्‍यो॥

---

१. प्रति ख में पाठा०—'गर'।

अरु कहियो सब ही दुख पायो। काली फिरि कालिंदी आयो॥
वेगि जाहु ब्रज-बिपतिहि हरौ। गुन अवगुन कछु[1] जिय जिनि धरौ॥

दोहा

छीर-समुद के मीन जिमि, वसत चंद ढिग आहि।
चंदहि मंद न जानहीं, जलचर मानत ताहि॥४४॥

सोरठा, आषाढ़

विपत न वरनी जात, दई जु मास असाढ़ मोहि।
औचक आधी राति, पीव पीव पपिहा कस्यौ॥४५॥

चौपाई

वह दुख वह रजनी ए जानै। कासौं कहौं कहें को मानै॥
कौनहि भाँति भोर जब भयो। दुख ही मैं दुख उपज्यो नयो॥
पावस-सैन मैन लै चढ़्यो। बिरही जन मारन रिस बढ़्यो॥
वदर वनैत चहूँ दिस धाये। बूँद वान घन बरसत आये॥
घन मैं चमकति अति दामिनि। भौन मैं भाजि दुरति है भामिनि॥
घेरी मैन-सैन दुखदाइक। तुम बिन कौन छुड़ावन लाइक॥

दोहा

मोर सोर निसि सुंदरी, डरी खरी सुनि ताहि।
काहू बिरहिनि पर मनौ, मैन पस्यौ रतवाहि॥४६॥

सोरठा, श्रावण

हो, मनभावन पीव, सावन आवन कहत सब।
अवगुन कवन जु तोय, आयो नहीं जुखन भवन[2]॥५०॥

चौपाई

अव देखिव उमगी घनमाला। जनु मदमत्त मदन की ढाला॥
छुटे जु वंधन तोरि मरोरी। धनुष घने जनु पँचरँग डोरी॥
वगनि की पाँती वडे दंत। धुरवा मद के पटा वहंत॥
गरजनि गूँजनि सुनि सुनि महा। दलकत[3] हिय दुख कहिये कहा॥

---

१. प्रति ख में पाठा० 'हि कछू जिय धरौ'।

२. प्रति ख में पाठा०—'नहिं जु खन भवन'। ३. प्रति ख० में पाठा०—वरकत।

भरि भरि सुंडनि डारत पानी। डारत मोहि करत नकवॉनी॥
घूमत चलत महा मतवारे। ढाहत पिय के अवधि करारे॥

दोहा

अवगुन होय जो मित्त मैं, मित्त न चित्त धरंत।
केतकि-रस बस मधुप जिमि, दुख-कंटक न गनंत ॥५४॥

सोरठा, भाद्रपद

भादौं अति दुख-ऐन, कहियो इंदु गोविंद सौं।
घन अरु तिय के नैन, होड़नि बरसत रैन दिन ॥५५॥

चौपाई

गति विपरीत रची तब मैन। गरजै घन बरसै तिय नैन॥
सींचत भुज-मूलनि दृग नाई[1]। छिन छिन[2] बिरह-बेलिअधिकाई॥
भादौं रैन अँध्यारी भारी। तिन मै तिय अति होति दुखारी॥
घन हर घोरै पवन झकोरै। दादुर झींगुर काननि फोरै॥
ऑगन बीज करत मनु चोटैं। घर मै अति अँधार घट घोटैं॥
इकली देहरी ठाढ़ी रहै। बढ़ि गई रैनि घटन नहिं कहै॥
अहो चंद गतिमंद न गहौ। सुंदर गिरिधर पिय सौं कहौ॥
इंद्र कोप कीनो पुनि अवै। जल व्याकुल गोकुल है सवै[3]॥
आवहु बलि बिलंब जिनि करौ। बहुखौ फिरि गोवरधन धरौ॥

दोहा

प्रान रहे घट आय इमि, जिमि जव अंकुर तोय।
अन आवन जु प्रबल पवन उर पर है पिय सोय ॥६१॥

सोरठा, आश्विन

कहियो उडुप उदार, सुंदर नंदकुमार सों।
अस कछु[4] कीनी कॉर, हार भार तैं डारि दिय ॥६२॥

चौपाई

खंजन प्रगट किये दुख दैना। संजोगिनि तिय के से नैना॥
निरमल जल महँ जलजहु फूले। तिन पर लंपत अलि-कुल भूले॥
सुधि आवत वा मोहन-मुख की। कुटिल अलक जुत सींवॉ[5] सुख की॥

---

१. प्रति ख० मे पाठा०—जाई। २. प्रति ख में पाठा०—त्यौं त्यों। ३. प्रति ख में पाठा०—जालगि व्याकुल गोकुल सबै। ४. प्रति ख में पाठा—कुछ। ५. प्रति ख में पाठा०—ग्रीवॉ।

मोरनि नव तन चंद्र धारे। देखि देखि दृग होत दुखारे॥
आवहु बलि वै सिर पर धरौ। पंख पुरातन ह्याँ ते करौ॥
साँझ समै वन तैं बनि आवो। गो-रज-मंडित बदन दिखावो॥
वा छबिबिन येनै न हमारे। जरत है महा बिरह-जुर जारे॥

दोहा

और ठौर की आगि पिय, पानी पाय बुझाय।
पानी मैं की आगि बलि, काहे लागि सिराय॥६७॥

सोरठा, कार्तिक

प्रीतम परम सुजान, कातिक जौ नहि आयहौ।
तौ ये चपल परान, पिय तुम ही पै आयहैं॥६८॥

चौपाई

अहो चंद बलि चलि जिनि मंद। जाहु वेग जहँ पिय नँदनंद॥
समौ पाय कहियो अरुगाई। जैसे बलि बलि उनहिं सुहाई॥
आई सरद सुहाई राती। प्रफुलित वलित मल्लिका जाती॥
उदित उहै उडुराज सदा कौं। रहत अखंडित मंडल जाकौं॥
छुटि रहि ज्योति बिमल चंदिनी। सुभग पुलिन कलिंद-नंदिनी॥
सीतल मृदुल वालुका सच्यो। जमुना सुकर तरंगनि रच्यो॥
कलपत कत[1] रे मंजुल मुरली। मोहन मधुर सुधा रस जुरली॥
ठाढ़े ह्वै पिय बहुरि बजाओ। ताकरि ब्रज सुंदरी बुलाओ॥
मिलि खेलो चलि[2] रास बिलासा। परिरंभन चुंबन परिहासा॥
सहज सुगंध रावरी बाहु। कंठनि मेलि मिटावो दाहु॥

दोहा

अजरि परत अब अंग सब, चोवा चंदन लागि।
बिधि-गति जब बिपरीत तब, पानी ही मैं आगि॥७४॥

सोरठा, मार्गशीर्ष

अगहन गहन समान, गहियत मोर सरीर-ससि।
दीजै दरसन दान, उगहन होय जु पुन्यबल॥७५॥

---

१. प्रति ख में पाठा०—'तरु तरें'। २. प्रति ख में पाठा०—'बलि'।

चौपाई

बिछुरन जोग बनि गयो आय। विरह-राहु को वनि गयो दाय ॥
पूरब बैर सुमिरि रिस भखौ। मो तन-चंद आनि कैं धख्यौ ॥
दिये जु दंत बिधुंतुद गाढ़े। ते[1] क्यो हूक कढ़त नहिं काढ़े ॥
वहत न रहत नयन इकसारा। ते जनु चलत अमृत की धारा ॥
पिय दरसन जु सुदरसन आही। रंचक आनि दिखावहु ताही ॥
हो ससि जौ पिय नंदकिसोर। अवगुन कहन लगै कछु मोर ॥
तौ तुम तिन सो कहियो ऐसैं। वहुरि कहूँ न अभ्यासै जैसे ॥

दोहा

मित्त जु अवगुन मित्त के, नहिंन अनत भाषंत।
कूप छाँह जिमि आपनी, हिय ही मधि राखंत ॥८०॥

सोरठा, पौष

विपत्ति[2] परी इहि पूस, अहो चंद नँदनंद बिन।
सबै तापनौ फूस, विन घुरि सोए स्याम उर ॥८१॥

चौपाई

बड़ी रैन तनक से दिना। क्यों भरिए पिय प्यारे विना ॥
महाबकी जिमि आवति राति। झट दै मोहिं लीलि है जाति ॥
मदन दाढ़ विच दै दै चंपे। तिहि दुख ताकौ तन मन कंपे ॥
रवि जौ तनक न लेय छुड़ाई। तौ मोहि निसा-बकी गिलि जाई ॥
मास दिवस के हे जब पीय। तव तुम हती हुती इह तीय ॥
अब तो बलि बलवंत पियारे। कंस केहि चाँनूर सँघारे ॥

दोहा

अहो चंद ब्रजचंद विनु, परे सबै दुख आय।
सदन अघासुर से भये, तिन तन चह्यो न जाय ॥८४॥

---

१. प्रति ख में पाठा०—'ताही पै अति कढत न काढे'।
२. प्रति ख में पाठा०—'विपरीतनि इहि यौंस'।

सोरठा, माघ

मकर जु दारुन सीत, कहियो ससि पिय सों रहसि ।
घर आवहु हरि मीत, छिन छिन छति सौ लागि कैं ॥८६॥

चौपाई

कपि गुंजा लौ जतन बनावै । तिन ते अधिक अधिक दुख पावै ॥
वेदन आन औषधी आन । क्यो दुख मिटै जान-मनि जान ॥
दिन अरु रजनी परै तुसारा । सीतल महा अगिनि की भारा ॥
मृदुल बेलि सी ब्रज की बाला । मुरझि चलीं हो गिरिधर लाला ॥
अरु कहियो बलि हरि सौ ऐसै । देखे जात दुखहि तुम जैसे ॥
जौ कबहूँ हठि नींद अनैये । साँवरे पिय सुपने मैं पैयै ॥
तदपि न सुख तहँ परिये जागि । प्रजरत महा आगि ते आगि ॥
ज्यो चकई निज झाँई चाहि । मुदित होत पति मानत ताहि ॥
प्रबल पवन पुनि आय डुलावै । चकई बिलपि परम दुख पावै ॥
तैसौ इह कहिये अब[1] कौन । दाधे पर जस लागत लौंन ॥

दोहा

मास मास के दिवस[2] करि, मास रह्यो नहिं देह ।
साँस रह्यो घट लागि कैं, बदन चहन कै नेह ॥६२॥

सोरठा, फाल्गुन

जौ इह फागुन पीय, फाग न खेलहु आय ब्रज ।
कै हौ कै इह जीय, कोउक तुम पै आय है ॥६३॥

चौपाई

मोहि तौ लै चलि चंदा मंदा । जहँ मोहन सोहन नँदनंदा ॥
कहा करैंगे गुरुजन मेरो । दुरजन क्यों न हँसो बहुतेरो ॥
जाके अंग रोग है महा । औषध खात लाज है कहा ॥
इह विधि धरि इक रही चटपटी । बात प्रेम की निपट अटपटी ॥
बहुरयो ब्रज लीला सुधि आई । जामैं नित्य किसोर कन्हाई ॥

---

१. प्रति ख में पाठा०—दुख । २. प्रति ख मे पाठा०—कदन ।

सुपनै कोउ दुख पावत जैसै। जागि परे सुख पावत तैसै॥
तबही कान्ह बजाई मुरली। मधुर मधुर पंचम सुर जुरली॥
गैयाँ मिलवन मिस उठि भोर। गहगोरी गवनी उहि वोर॥
ठाढ़े निकसि कुँवर वर पौरी। बन[1] हरि-भाल चँदन की खौरी॥
लटपटि पाग कछुक धुकि रही। सो छबि परति कौन पै कही॥
आरस रस भरे चंचल नैन। जिनहिं निरखि मुरझत मन मैन॥
इकले प्रानपियारे पाये। देखि हरष भरे नैन सिराये॥
ताकौ निरखि नैन अरबरे। सुंदर गिरिधर पिय हँसि परे॥
समाचार जाने तिहि तिय के। अंतरजामी सबके हिय के॥
इहि परकार बिरह मंजरी। निरवधि परम प्रेम रस भरी॥
जो इहि सुनैं गुनैं हित लावै। सो सिद्धांत तत्व को पावै॥

दोहा

अवर भाँति-व्रज को-बिरह, बनै न क्यौं हू 'नंद'।
जिनके मित्र-विचित्र हरि, पूरन परमानंद॥१०२॥

---

१. प्रति ख में पाठा०—बनि रहि निसि की चंदन खौरी।

भ्रमर-गीत

उद्धव का कृष्णसंदेश

ऊधौ को उपदेस सुनौ ब्रज-नागरी।
रूप, सील, लावन्य सबै गुन आगरी॥
प्रेम धुजा, रस-रूपिनी, उपजावनि सुख[1] पुंज।
सुंदर स्याम-विलासिनी, नव बृंदावन कुंज॥
सुनौ ब्रजनागरी![2] ॥ १ ॥

कहन स्याम-संदेस एक मैं तुम पै आयौ।
कहन समै संकेत कहूँ ओसर नहि पायौ॥
सोचत ही मन मैं रह्यौ कब पाऊँ एक-ठाँऊँ।
कहि सँदेस नँदलाल को, बहुरि मधुपुरी जाँऊँ॥
सुनौ ब्रजनागरी! ॥ २ ॥

ब्रजबालाओं का प्रेम

सुनत स्याम कौ नाम बाम[3] गृह की सुधि भूली।
भरि आनँद रस हृदय प्रेम बेली द्रुम फूली॥
पुलक रोम सब अँग भए भरि आए जल नैन।
कंठ घुटे गद्गद गिरा बोल्यो जात न बैन॥
विवस्था प्रेम की॥ ३ ॥

कथोपकथन

अर्घासन बैठाय बहुरि परिकरिमा दीनी।
स्याम-सखा निज जानि बहुरि हित सेवा कीनी॥
बूझत सुधि नँदलाल की विहँसत मुख ब्रज-पाल।
ब्रज०—नीके हैं बलबीर जू, बोलत बचन रसाल॥
सखा! सुनि स्याम के॥ ४ ॥

---

१. पाठा०—रस पुंज। २. पाठा०—क. बंदन करत हौ। ख. सुनौ ब्रजबासिनी। ३ पाठा०—ग्राम।

उद्धव—कुसल स्याम अरु राम कुसल संगी सब उनके।
जदुकुल सिगरे कुसल परम आनंद सबनि के॥
बूझन ब्रज कुसलात को हौ आयौ[1] तुम तीर।
मिलिहैं थोरे दिवस में जनि जिय होहु अधीर॥
सुनौ ब्रजनागरी! ॥ ५॥

सुनि मोहन-संदेस रूप सुमिरन ह्वै आयौ।
पुलकित आनन-कमल[2] अंग आवेस जनायौ॥
बिह्वल ह्वै धरनी परीं ब्रज-बनिता मुरझाय।
दै जल छीट प्रबोधहीं ऊधौ बैन सुनाय॥
सुनौ[3] ब्रजनागरी! ॥ ६॥

उद्धव—वे तुमते नहि दूरि ग्यान की आँखिन देखौ।
अखिल बिस्व भरि पूरि रूप[4] सब उनहि बिसेखौ॥
लोह दारु पाषान मे जल थल मही अकास।
सचर अचर बरतत सबै जोति ब्रह्म-परकास॥
सुनौ ब्रजनागरी! ॥ ७॥

ब्रज०—कौन ब्रह्म को जोति ग्यान कासों कहै ऊधौ?
हमरे सुंदर स्याम प्रेम को मारग सूधौ॥
नैन, बैन स्रुति, नासिका मोहन रूप दिखाइ।
सुधि बुधि सब मुरली हरी प्रेम-ठगौरी लाइ॥
सखा! सुनि स्याम के॥ ८॥

उद्धव—सगुन[5] सबै उपाधि रूप निर्गुन लै[6] उनकौ।
निराकार निर्लेप लगत नहि तीनो गुन कौ॥
हाथ पाँय नहि नासिका नैन बैन नहि कान।
अच्युत ज्योति प्रकासिका,[7] सकल विस्व कै प्रान॥
सुनौ ब्रजनागरी! ॥ ९॥

---

१. पाठा०—पठयौ। २. पाठा०—अलक। ३. पाठा०—प्रेमजुत ज्ञानमय। ४. पाठा०—ब्रह्म सब रूप बिसेखौ।

५. यह सब सगुन उपाधि। ६ है। ७. प्रकास है।

व्रज०—जो मुख नाहिंन हुतो कहौ किन माखन खायौ ?
पायन बिन गो संग कहौ को बन बन धायौ ?
आँखिन में अंजन दियौ, गोबरधन लियौ हाथ।
नंद-जसोदा पूत है कुँवर कान्ह व्रजनाथ॥
सखा सुनि स्याम के ॥१०॥

उद्धव—जाहि कहौ तुम कान्ह ताहि कोउ पितु नहि माता।
अखिल अंड ब्रह्मंड बिस्व इनहीं में जाता॥
लीला को अवतार लै धरि आए तन स्याम।
जोग जुगुत ही पाइयै पारब्रह्म-पद-धाम[1]॥
सुनौ व्रजनागरी ! ॥११॥

व्रज०—ताहि बताओ जोग जोग ऊधो[2] जेहि पावौ।
प्रेम सहित हम पास नंदनंदन गुन गावौ॥
नैन बैन मन प्रान में मोहन गुन भरपूरि।
प्रेम पियूषै छाँड़िकै कौन समेटे धूरि॥
सखा ! सुनि स्याम के ॥१२॥

उद्धव—धूरि बुरी जौ होइ ईस क्यों सीस चढ़ावै।
धूरि छेत्र में आइ कर्म करि हरिपद पावै॥
धूरिहि ते वह तन भयो धूरिहि सों ब्रह्मंड।
लोक चतुर्दस धूरि के सप्त दीप नव खंड॥
सुनौ व्रज नागरी ! ॥१३॥

व्रज०—कर्म-धूरि की बात कर्म-अधिकारी जानैं॥
कर्म-धूरि को आनि प्रेम-अमृत में सानैं॥
तबही लौं सब कर्म है जब लौं हरि उर नाहिं।
कर्म बंध[3] सब विस्व के जीव विमुख ह्वै जाहिं॥
सखा ! सुनि स्याम के ॥१४॥

उद्धव—कर्महि[4] निंदौ कहा कर्म तें सदगति होई।
कर्मरूप तें वली नाहिं त्रिभुअन मैं कोई॥

---

१. पर ब्रह्म पुर धाम। २. ऊधो तहँ जावौ। ३. बंधु ४. तुम कर्मैं कस निंदत।

कर्महि तें उतपत्ति है कर्महि तें सब नास।
कर्म किए तें मुक्ति होइ पारब्रह्म-पुर बास॥
सुनौ ब्रज नागरी! ॥१५॥

ब्रज०—कर्म, पाप अरु पुन्य, लोह सोने की बेरी।
पायन बंधन दोउ कोउ मानौ बहुतेरी॥
ऊँच कर्म तें स्वर्ग है, नीच कर्म ते भोग।
प्रेम बिना सब पचि मुये विषयवासना रोग॥
सखा! सुनि स्याम के॥१६॥

उद्धव—कर्म बुरो जो होई जोग कोउ काहे धारैं।
पद्मासन[1] सब द्वार रोकि इंद्रिन को मारैं॥
ब्रह्मअगिन जरि सुद्ध ह्वै सिद्धि समाधि लगाइ।
लीन होई साजुज्य में जोतै जोति समाइ॥
सुनौ ब्रज नागरी! ॥१७॥

ब्रज०—जोगी जोतिहिं भजै भक्त निज रूपहि जानै।
प्रेम पियूषै प्रगटि स्यामसुंदर उर आनै॥
निर्गुन गुन जो पाइयै लोग कहैं यह नाहि।
घर आए नाग न पुजैं बाँबी पूजन जाहिं॥
सखा! सुनि स्याम के॥१८॥

उद्धव०—जो हरि के गुन होइ वेद क्यो नेति बखानै[2]।
निर्गुन सगुन आतमा[3] उपनिषद जो गानै[4]॥
वेद पुराननि खोजिकै नहिं पायो गुन एक[5]।
गुनही के जो होहि गुन कहि अकास किहि टेक?॥
सुनौ ब्रज नागरी! ॥१९॥

ब्रज०—जो उनके गुन नाहिं और गुन भये कहाँ तें।
बीज बिना तरु जमें मोहि तुम कहौ कहाँ ते॥
वा गुन की परछाँह री माया दरपन बीच।
गुन ते गुन न्यारे नहीं अमल बारि मिलि कीच॥
सखा! सुनि स्याम के॥२०॥

---

१. बन बन आसन सेइ।

२. बतावै। ३. रिचा। ४. गावै। ५. पायौ किनहु न एक।

उद्धव०—माया के गुन और और गुन हरि के जानौ।
वा गुन को इन माँझ आनि काहे को सानौ॥
जाके गुन अरु रूप कौ जान न पायौ भेद।
तातें निर्गुन ब्रह्म कौ बदत उपनिषद बेद॥
सुनौ ब्रज नागरी!॥२१॥

ब्रज०—बेदहु हरि के रूप स्वास मुख तें जो निसरै।
कर्म क्रिया आसक्ति सबै पछिली सुधि बिसरै॥
कर्म मध्य ढूँढ़ै सबै किनहिं न पायौ देखि।
कर्म-रहित ही पाइयै तातें प्रेम बिसेखि॥
सखा! सुनि स्याम के॥२२॥

उद्धव—प्रेमहि[1] कै कोउ वस्तु रूप देखत लौ लागे।
वस्तु दृष्टि बिन कहो कहा प्रेमी अनुरागे॥
तरनि चंद्र के रूप कौ नहि पायौ गुन जान।
तौ उनकौ कहा जानियै गुनातीत भगवान॥
सुनौ ब्रज नागरी!॥२३॥

ब्रज०—तरनि अकास प्रकास जाहि में रह्यौ दुराई।
दिव्य दृष्टि विनु कहौ कौन पै[2] देख्यौ जाई॥
जिनके वे आँखें नहीं देखैं क्यो वह रूप।
क्यौं उपजै विस्वास जे परे कर्म के कूप॥
सखा! सुनि स्याम के॥२४॥

उद्धव—जब करियै नित कर्म भक्ति हू या मैं जाई।
कर्म रूप ते कहौ कौन पै छूट्यौ आई॥
क्रम क्रम कर्मै के कियै[3] कर्म नास ह्वै जाय।
तब आत्मा निहकर्म ह्वै निर्गुन ब्रह्म समाय॥
सुनौ ब्रज नागरी!॥२५॥

ब्रज०—जौ हरि के नहि कर्म कर्मबंधन क्यो आयौ।
तौ निर्गुन होइ वस्तु मात्र परमान बनायौ॥

---

१. ब्रह्महु। २. दृष्टि ही रूप भले वर। ३. कर्म कर्म ही किए तें।

जो उनको परमान है तौ प्रभुता कछु नाहिं।
निर्गुन भए अतीत के सगुन सकल जग माहिं॥
सखा! सुनि स्याम के ॥२६॥

उद्धव—जे गुन आवैं दृष्टि माहि नस्वर हैं सारे।
इन सबहिन ते वासुदेव अच्युत हैं न्यारे॥
इंद्री दृष्टि बिकार ते रहित अधोछज-जोति।
सुद्ध सरूपी ग्यान की प्रापति तिनको होति॥
सुनौ व्रज नागरी! ॥२७॥

ब्रज०—नास्तिक हैं जे लोग कहा जानैं निज रूपै।
प्रगट भानु कों छाँड़ि गहत परछाईं धूपै॥
हमरें तौ यह रूप बिन और न कछू सुहाय।
जो करतल आमलक के[1] कोटिक ब्रह्म दिखाय॥
सखा! सुनि स्याम के ॥२८॥

कृष्ण-प्रति उपालंभ

ऐसे में नँदलाल-रूप नैननि के आगे।
आय गयौ छवि छाय वने वीरी अरु बागे[2]॥
ऊधौ सों मुख मोरिकै कहत तिनहि सो वात।
प्रेम-अमृत मुख ते स्रवत अंबुज-नैन चुचात॥
तरक रसरीति की ॥२९॥

अहो! नाथ! रमानाथ और जदुनाथ गुसांई!
नँदनंदन बिडरात फिरत तुम बिनु बन गाईं॥
काहे न फेरि कृपाल ह्वै गौ ग्वालन सुख[3] लेहु।
दुख-जल-निधि हम बूड़हीं कर-अवलंबन देहु[4]॥
निठुर ह्वै कहा रहे? ॥३०॥

कोउ कहैं अहो दरस देत पुनि लेत दुराई।
यह छलविद्या कहौ कौन पिय तुमहि सिखाई॥

---

१. ज्यो करतल आभास को। २. बने पियरे उर बागे। ३. सुधि। ४. करि अवलंब न लेहु।

हम परवस[1] आधीन हैं तातें बोलत दीन।
जल बिनु कहि कैसै जियैं पराधीन जे मीन॥
बिचारौ रावरे! ॥३१॥

कोउ कहै पिय दरस देहु तौ बेनु सुनावौ[2]।
दुरि दुरि बन की ओट कहा हिय लोन लगावौ॥
हमकौं तुम पिय एक ही तुमकों हमसी कोरि।
बहुताइत के रावरे प्रीति न डारो तोरि॥
एकही वार यौं ॥३२॥

कोउ कहै अहो स्याम कहा इतराय गए हौ।
मथुरा[3] कौ अधिकार पाय महराज भए हौ॥
ऐसे कछु प्रभुता अहो जानत कोऊ नाहिं।
अबला बुधि सुनि डरि गई बली डरैं जग माहिं॥
पराक्रम जानिकै ॥३३॥

कोउ कहै अहो स्याम चहत मारन जो ऐसे।
गोवरधन कर धारि करी रच्छा तुम कैसे?
ब्याल, अनल, बिष, ब्वाल तैं राखि लई सब ठौर।
बिरह-अनल अब दाहिहौ हँसि हँसि[4] नंदकिसोर॥
चोरि चित लै गये[5] ॥३४॥

कोउ कहै ये निठुर इन्हैं पातक नहिं ब्यापै।
पाप पुन्य के करनहार ये ही हैं आपै॥
इनके निरदै रूप मै नाहिन कोऊ चित्र।
पय प्यावत प्रानन हरे पुतना बाल चरित्र॥
मित्र ये कौन के? ॥३५॥

कोउ कहै री आज नाहि आगे चलि आई।
रामचंद्र के रूप माहि कीनी निठुराई॥
जग्य करावन जात हे विस्वामित्र समीप।
मग में मारी ताडुका रघुबंशी-कुलदीप॥
वालही[6] रीति यह ॥३६॥

---

१. सबरस। २. पुनि वेनु बजावौ।
३. मधुपुरी। ४. हाँसी। ५. होयगी जगत में। ६. प्रथम की।

कोउ कहै ये परम धर्म इन्द्रीजित पूरे।
लछ[1] लाघव संधान धरैं आयुध के सूरे ॥
सीताजू के कहे ते सूपनषा पै कोपि।
छेदे[2] अंग बिरूप करि लोगनि लज्जा लोपि ॥
कहा ताकी कथा ॥३७॥

कोउ कहै री सुनौ और इनके गुन आली।
बलिराजा पै गए भूमि माँगन बनमाली ॥
माँगत बामन रूप धरि, परबत भयौ अकाय।
सत्त धर्म सब छाँड़ि कै धर्यौ पीठ पै पाय ॥
लोभ की नाव ये ॥३८॥

कोउ कहै इन परसुराम ह्वै माता मारी।
फरसा कंधा धारि भूमि छत्रिन संधारी ॥
सोनित कुंड भरायकै पोषे अपने पित्र।
तिनकै निरदय रूप में नाहिन[3] कोऊ चित्र ॥
बिमल कहा मानियै ॥३९॥

कोउ कहै अहो कहा हिरनकस्यप तें बिगर्यौ।
परम ढीठ प्रहलाद पिता के सनमुख झगर्यौ ॥
सुत अपने कों देत हो सिच्छा दंड[4] बँधाय।
इन वपु धरि नरसिंह को नखन बिदार्यौ जाय ॥
बिना अपराध ही ॥४०॥

कोउ कहै सखि कहा दोष सिसुपाल नरेसै।
व्याह करन को गयौ नृपति भीषम के देसै ॥
दलबल जोरि बरात कों ठाढ़ौ हो छबि बाढ़ि।
इन छल करि दुलही हरी छुधितग्रास मुख काढ़ि ॥
आपुने स्वारथी ॥४१॥

इहि बिधि होइ अवसेस परम प्रेमहिं अनुरागी।
और रूप पिय चरित तहाँ सब देषन लागी ॥

---

१. हत्यौ बालि बलवान बान आयुध लै सूरे। २. तब लछमन के बान तें करी नासिका लोपि। ३. अजब कहा अस चित्र। ४. खम।

रोम रोम रहे व्यापि कै जिनके मोहन आय।
तिनके भूत भविष्य को जानत कौन दुराय ॥
रँगीली प्रेम की ॥४२॥

देखत इनकौ प्रेम नेम[1] ऊधौ को भाज्यौ।
तिमिर भार आवेश बहुत अपने जिय लाज्यौ ॥
मन मैं कहि रज पायँ कौ लै माथै निज धारि।
परम कृतारथ ह्वै रहौं त्रिभुवन-आनँद बारि[2] ॥
बंदना जोग ए ॥४३॥

कबहूँ कहै गुन गाय स्याम के इन्हैं रिझाऊँ।
प्रेम-भक्ति तौ भले स्यामसुंदर की पाऊँ ॥
जिहि किहि बिधि ये रीझहीं सो हौ करौं उपाय।
जातें मो मन सुद्ध होइ दुबिधा ग्यान मिटाय ॥
पाय रस प्रेम कौ ॥४४॥

ताही छिन एक भँवर कहूँ तें उड़ि तहँ आयौ।
ब्रज-बनिता के पुंज माँझ गुंजत छबि छायौ ॥
बैठ्यौ चाहै पाय पर अरुन कमल-दल जानि।
सो[3] मन ऊधौ को मनौ प्रथमहि प्रगट्यौ आनि ॥
मधुप कौ भेष धरि ॥४६॥

भ्रमर प्रति उपालंभ

ताहि भँवर सो कहत सबै प्रति उत्तर बातें।
तर्क बितर्कन जुक्त प्रेम रस रूपी घातें ॥
जनि परसौ मम पाय हो गयौ अनँद-रस-चोर[4]।
तुमहीं सो कपटी हुतो नागर नंदकिसोर ॥
इहाँ तें दूरि हो ॥४६॥
कोउ कहै रे मधुप तुमें लाजौ नहि आवत।
स्वामी[5] तुम्हरौ स्याम कूबरी दास[6] कहावत ॥

---

१. मरम। २. तरौं सु भवनिधि पार।
३. मानहुँ मन ऊधौ यहै।
४. पाठा० तुम मानन हम चोर। ५. साथी। ६. नाथ।

इहाँ ऊँचि[1] पदवी हुती गोपीनाथ कहाय।
अब जदुकुल पावन भयौ दासी-जूठन खाय॥
मरत[2] कहा बोल कौं ॥४७॥

कोउ कहै अहो मधुप कौन कहे[3] तुमैं मधुकारी।
लिये फिरत बिष जोग[4] गाँठि प्रेमी-बधकारी॥
रुधिर पान कियौ बहुत के अधर अरुन रँगरात।
अब ब्रज में आये कहा करन कौन को घात॥
जात[5] किन पातकी ! ॥४८॥

कोउ कहै रे मधुप भेष उनकौं क्यो धार्‌यौ।
स्याम पीत, गुंजार बेनु, किंकिनि झनकार्‌यौ॥
वापुर[6] गोरस चोरिकै फिरि आयो या देस।
इनकौ जिनि मानौ कोऊ कपटी इन को[7] भेस॥
चोरि जिनि जाय कछु ॥४९॥

कोउ कहै रे मधुप कहा मोहन गुन गावै।
हृदय कपट सो परम[8] प्रेम नाहिन छवि पावै॥
जानति हौं हरि भाँति कै सरबसु लियो चुराय।
ऐसी[9] बहु ब्रजबासिनी को जु तुमैं पतियाय॥
लहे हम जानिकै। ५०॥

कोउ कहै रे मधुप कहा तू रस की जाने।
बहुत कुसुम पैं बैठि सबन आपुन रस माने॥
आपुन सौं हमको कियौ चाहतु है मतिमंद।
दुबिधा रस उपजाय कै दूपित प्रेम अनंद॥
कपट के छंद सौं ॥५१॥

कोउ कहै रे मधुप प्रेमपद[10] कौ सुख देख्यौ।
अबलौं याहि बिदेस माहिं कोउ नाहि बिसेख्यो॥
द्वै[11] सिंघ आनन पर जमे कारो पीरो गात।
खल अमृत सब पानही[12] अमृत देखि डरात॥

१. नीचि। २. जरत। ३. तुमकौं कह मधुकर। ४ गाँठि प्रेम मिस मनहुँ बाँधि-कर। ५. जाति के। ६. वा पुर को रस। ७. को यह। ८. प्रगट। ९ अस न होय। १०. प्रेम पटपद पसु। ११ है सुरंग आनन समुहि। १२. सम मानहीं॥

बादि यह रस कथा[1] ॥५२॥

कोउ कहै अहो मधुप बहुत निरगुन इन जान्यो ।
तरक वितरकन जुक्ति बहुत उन ही में मान्यो ॥
ये इतनी नहिं जानि हीं वस्तु बिना गुन नाहिं ।
निरगुन भए[2] अतीत के सगुन सकल जग माहिं ॥
बूझ जो ग्यान हो ॥५३॥

कोउ कहै रे मधुप होहिं तुम से जो संगी ।
क्यों न होइ तन स्याम सकल बातन चतुरंगी ॥
गोकुल में जोरी कोऊ पावत[3] नाहिं मुरारि ।
मनो त्रिभंगी आपु हैं करी त्रिभंगी नारि ॥
रूप गुन सील[4] की ॥५४॥

कोउ कहै रे मधुप स्याम जोगी तुम चेला ।
कुबुजा तीरथ जाइ कियौ इंद्रिन कौ मेला ॥
मधुबन सुधिहिं बिसारिकै आये गोकुल माहिं ।
इत सब प्रेमी बसत हैं तुमरौ गॉहक नाहि ॥
पधारौ रावरे[5] ॥५५॥

कोउ कहै री[6], सखी साधु मधुबन के ऐसे।
और तहाँ के सिद्ध लोग ह्वैहैं धौं कैसे ॥
औगुन ही गहि लेत है अरु गुन डारैं मेटि ।
मोहन निर्गुन क्यौं न हो उन साधुन कौं भैंटि ॥
गाँठि कौ खोइकै ॥५६॥

कोउ कहै यह मधुप ग्यान उलटौ लै आयौ ।
मुक्ति परे जे रसिक[7] तिन्हैं फिरि कर्म बतायौ ॥
वेद उपनिषद सार जौ मोहन गुन गहि लेत ।
तिनको आतम सुद्ध करि फिरि फिरि संथा देत ॥
जोग चटसार मैं ॥५७॥

कोउ कहै सखि विस्व माहिं जेतिक हैं कारे ।
कपट कोटि[8] के परम कुटिल मानुस त्रिपवारे ॥

---

१. रसिकता । २. सक्ति जो स्याम की लखी सगुनता । ३. पाइ न होइ । ४. आगरी । ५. खोट जो ज्ञान की । ६. रे मधुप । ७. फेरि । ८. कपट कुटिल की कोटि परम मानुप फँसि हारे ।

एक स्याम तन परसि कै जरत आजु लौं अंग।
ता पाछे फिरि मधुप यह लायो जोग भुअंग॥
कहा इनको दया ॥५८॥

कोउ कहै रे मधुप कहैं अनुरागी तुमकौं।
कौने गुन धौं जानि परम अचरज है हमकौं॥
कारौ तन अति पातकी मुख पियरौ जग निंद।
गुन अवगुन सब आपुने आपुहिं[1] जानि अलिंद॥
देखि लै आरसी ॥५६॥

इहि बिधि सुमिरि गोबिंद कहत ऊधौ प्रति गोपी।
भृंग संग्या करि कहत सकल कुल लज्या लोपी॥
ता पाछे एक बारही रोईं सकल ब्रजनारि।
हा! करुनामय नाथ हो! केसौ! कृष्ण! मुरारि!
फाटि हिय दृग चल्यौ[2] ॥६०॥

उमग्यो ज्यों तहँ सलिल सिंधु लै तन की धारन।
भींजत अंबुज नीर कंचुकी भूषन हारन॥
ताही प्रेम प्रवाह में ऊधौ चले बहाय॥
भले ग्यान की मेड़ हौं ब्रज मैं प्रगट्यौ आय॥
कूल के तृन भये[3] । ६१॥

उद्धव की प्रेमदशा

प्रेम[4] बिवस्था देखि सुद्ध यों भक्ति प्रकासी।
दुविधा ग्यान गलानि मंदता सगरी नासी॥
कहत भयौ[5] निश्चै यहै हरि रस की निज पात्र।
हौं तो कृतकृत ह्वै गयौ इनके दरसन मात्र॥
मेटि मल ग्यान को ॥६२॥

---

१. ह्वैहौ जानि अनंद। २. हियरौ चल्यौ। ३. सकल कुल तरि गयो। ४. प्रेम प्रसंसा करत सुद्ध जो। ५. कहत मोहिं त्रिस्मै भयौ हरि की ये।

पुनि पुनि कह हरि कहन बात एकांत पठायौ।
मैं इनको कछु मरम जानि एकौ नहि पायौ॥
हौं कह निज मरजाद की ग्यान रु कर्म निरूपि।
ये सब प्रेमासक्त होइ रहीं लाज कुल लोपि॥
धन्य ये गोपिका ॥६३॥

जे ऐसी मरजाद मेटि मोहन को ध्यावें।
काहे न परमानंद प्रेम[1] पदवी को पावैं॥
ग्यान जोग सब कर्म तें परे प्रेम ही साँच।
हौं या पटतर देत हौं हीरा आगे काँच॥
बिषमता बुद्धि की ॥६४॥

धन्य धन्य ये लोग भजत हरि कौं जे ऐसें।
और कोऊ[2] बिनु रसहि[3] प्रेम पावत है कैसे॥
मेरे वा लघु ग्यान कौं उर में मद होइ व्याधि।
अब जान्यौं ब्रज-प्रेम की लहत न आधी आधि॥
वृथा स्रम करि मर्‌यौ ॥६५॥

पुनि कहि परसत पायँ प्रथम हौ इनहि निवार्‌यौ।
भृँग-संग्या करि कहत निंद सबहिन तें डार्‌यौ॥
अब ह्वै रहौं ब्रज-भूमि को मारग में की धूरि।
बिचरत पग मो पर धरैं सब सुख जीवनमूरि॥
मुनिनहू दुर्लभ जो ॥६६॥

कै ह्वै रहौं द्रुम गुल्म लता बेली बन माहीं।
आवत जात सुभाय परै मोपै परछाहीं॥
सोऊ मेरे बस नहीं जो कछु करौं उपाय।
मोहन होहिं प्रसन्न जो यहि वर माँगौ जाय॥
कृपा करि देहि जो ॥६७॥

१. प्रेम पद पी को पावै। प्रेम पदवी सचु पावैं। २. और जो पारस प्रेम बिना पावत कोउ कैसे। ३. रसिक।

पुनि कहै सब ते साधु संग उत्तम है भाई।
पारस परसै लोह तुरत कंचन ह्वै जाई॥
गोपी[1] प्रेम प्रसाद सो हौं ही सीख्यौ आय।
ऊधौ तें मधुकर भयौ दुबिधा जोग मिटाय॥
पाय रस प्रेम को॥६८॥

मथुरा प्रत्यागमन

ऐसे मग अभिलाप करत मथुरा फिरि आयौ।
गद्गद पुलकित रोम अंग आवेस जनायौ॥
गोपी-गुन गावन लग्यौ, मोहन-गुन गयौ भूलि।
जीवन को लै का करौं पायौ जीवनमूलि॥
भक्ति कौ सार यह॥६९॥

ऐसे सोचत स्याम जहाँ राजत तहँ आयौ।
परिकरमा दंडौत प्रेम[1] सौं हेत जनायौ॥
कछु निरदयता स्याम की करि क्रोधित दोउ नैन।
कछु व्रजवनिता-प्रेम की बोलत रस[2] भरे बैन॥
सुनौ नँद लाड़िले॥७०॥

गोकुल का वृत्तांत

करुनामयी रसिकता है तुम्हरी सब झूठी।
तब[3] हीं लौं कहौ लाख जबहिं लौं बाँधी मूठी॥
मै जान्यौं व्रज जायकै निरदय तुम्हरौ रूप।
जे तुमको अवलंबई तिनकौं मेलौ कूप॥
कौन यह धर्म है!॥७१॥

पुनि पुनि कहै हे स्याम जाय बृंदावन रहियै।
परम प्रेम को पुंज जहाँ गोपी सँग लहियै॥

---

१. स्वाति बूँद सीपहि मिले मुकुता होत सुभाय।
नीर छीर के सँग मिले विसद रूप दरसाय॥
संग को गुन लखौ॥ २. बहुत आवेश। ३. गद्गद। ४. ब्रजवनितन दुख दियो सबन मन करि निज मूठी॥

और संग सब छाँड़िकै उन लोगन सुख देहु ।
नातरु टूट्यौ जात है अवहीं नेह[1] सनेहु ॥
करोगे तौ कहा ? ॥७२॥

सुनत सखा के वैन नैन आए भरि दोऊ ।
विवस प्रेम-आवेस रही नाहिंन सुधि कोऊ ॥
रोम रोम प्रति गोपिका ह्वै गई साँवरे गात ।
काम तरोवर[2] साँवरो ब्रजवनिता ही पात ॥
उलहि अँग अँग तें ॥७३॥

उद्धव को उपदेश

ह्वै सुचेत कहि भले सखा पठये सुधि लावन ।
औगुन हमरे आनि तहाँ ते लगे दिखावन ॥
उनमैं मोमै हे सखा छिन भरि अंतर नाहिं ।
ज्यों देख्यौ मो माँहि वे हौं हूँ उनहीं माहि ॥
तरंगिनि वारि ज्यों ॥७४॥

गोपी आप दिखाइ एक करिकै बनवारी ।
ऊधौ[3] के भरे नैन डारि व्यामोहक जारी ॥
अपनौ रूप विहार कौ लीन्हो वहुरि दुराय ।
'नंददास'[4] पावन भयौ सो यह लीला गाय ॥
प्रेम रस पुंजनी ॥७५॥

---

१. सिगरो नेहु । २. कल्पतरोरुह । ३. ऊधो भ्रमहि निवारि डारि मुख-मोह की जारी । ४. जनमुकुंद ।

गोबरधन-लीला

श्रीगुरु चरन-सरोज मनावौं। गिरि गोबरधन-लीला गावौं॥
कलि-मल-हरनी मंगलकरनी। मनहरनी श्री सुक मुनि बरनी॥
जग्ग करन जब गोप कलोले। तिन प्रति साँवर सुंदर बोले॥
कहौ तात, यह बात कहा है। भुवन भाव आनंद महा है॥
सयन कबहुँ कर मकरै दू की। सोइ असाय कर मकरै लू की॥
मंद मंद हँसि नंद महर तब। अपन तात सौं बात कही सब॥
मघवा है मेघनि कौ राजा। यह उद्दिम सब उनके काजा॥
बरषै जल तिन उपजै भारी। गाइनि के गन हौंई सुखारी॥
तब बोले निज नाम उमाहे। मुरलीधर गिरधर भयौ चाहे॥
जहँ यह गिर गोबरधन सोहै। इंद्र बराक या आगे को है॥
पूजौ याहि भलौ जौ चाहो। बिनु माँगे कीतबु सर गाहो॥
इही मेघ ह्वै बरषा बरषै। काल रूप ह्वै यह आकरषै॥
हमरे मते यहै मति कीजे। सब बलि लै गोबरधन दीजे॥
सुनतहि मोहन मुख मृदु बानी। भली भली कहि सबहिन मानी॥
जाकी रचना बाकै आगे। ऑय-बॉय सारे भै भागे॥
कुल मंडन सपूत सुखदेना। सबके जीवनि सबके देना॥
घर घर बरा पकवान कराए। बिंजन षट रस सकट भराए॥
चले गोप अति ओप बिराजे। भेरी मंदर कंदर बाजे॥
सोहत सीसनि पाग जरकसी। सुरपति उर की कठिन करकसी॥
सकटनि चढ़ि चढ़ि छबिली गोपी। गावहिं पिय जस अति रस ओपी॥
भागनि भरी जसोमति रानी। बैठी सकट न परत बखानी॥
रमा उमा सी दासी जाकी। सुरपति-रवनी कौन बराकी॥
पूत गोद मे कान्ह तहाँ है। सुंदर सुत गुन गान जहाँ है[1]॥
पहिलै गोधन पूजा कीनी। तब बलि लै गोबरधन दीनी॥

---

१. इसके अनंतर यह टुकडा मिलता है—सकट श्री गिरि पर सरद चंद ज्यो।

पूजा करि पाँई परि विगसे। सैल रूप धरि तब हरि निकसे॥
कान्ह कहै देखौ तुम काजा। प्रगट भयौ है गिरि कौ राजा॥
जितनौ भोजन ब्रज तें आयौ। गिरि रूपी हरि सगरौ खायौ॥
भइ परतीति भरे मद भारी। दैहिं प्रदच्छिन नर अरु नारी॥
इक मूरति हरि भोजन करई। इक लोगन सँग फेरी फिरई॥
फिरत जु छवि बाढ़ी तिहि काला। गोबरधन मनु पहिरी माला॥
गिरिवर कह्यौ कछू भै नाहीं। फूले गोप न अंग समाहीं॥
सुन्यौ इंद्र मेरौ जग मेटा। यह मद मत्त नंद कौ बेटा॥
कान्ह के बल मोसौं करी खाती। हरि है कहा, गोप किहिं बाती॥
जौ कोऊ उन पच्छ कर थारै। तोन्यौ चहैं सुख सींय अपारै॥

झूँठ की जौ कोउ नाव बनावै। झूँठ तहाँ लै कुटुंब चढ़ावै॥
ऐसैं ही गोप श्रीकृष्ण भरोसैं। महा बैर कीन्हौं हैं मोसैं॥
अब देखौं कैसी सिखलाऊँ। गोकुल गाँवहिं खोदि बहाऊँ॥
बोले मेघन के गन सोई। जिनके जल जग परलै होई॥
वेगि जाहु जहँ नंद कौ गोकुल। दूरि करौ तहँ तें सबकौ कुल॥
कान्ह कौ डर जिनि जिय मैं आनौ। पाछैं मोहिं आयौ ही जानौं॥
कारी घटा डरावनी आई। पापिनी साँपिनि सी थरि छाई॥

बिजुरी लपकि लपकि यों आवै। मानों उरगन जीभ चलावै॥
फन फुंकार पवन अति ताते। हरि न होय तौ सब जरि जाते॥
गरजनि तरजनि अनु अनु भाँती। फूटैं काँन अरु फाटै छाती॥
परन लगी नान्हीं बुँद बारी। मोटे थंभन हू तैं भारी॥
तब ब्रज जन जहँ तहँ तैं धाए। सुंदर नंद-सुवन पैं आए॥
बोले हरि बिलोकि तिन माहीं। कित भै करत इहाँ भै नाहीं॥
आतुर इंद्र महा अभिमानी। हम पैं कोप कियो यह जानी॥
बिहँसन लगे नंद के लाला। और न कछू कियौ तिहिं काला॥
सकल सृष्टि जा चितवन माहीं। कोटिक उपजै कोटिक जाहीं॥
ऐसे प्रभु पैं कौन हँकारे। तौ तौं बढ़े गुपाल पियारे॥
चलि आए ब्रजराज कुँवर वर। झट दै उचकि लियो गिरि कर पर॥
नाहिंन कछु स्रम सहजहिं ऐसैं। साप वेसना कौं सिसु जैसैं॥
गोपी गोप गाय बच्छ जेते। अपने सुख रहे तिहिं तेते॥
जलद जु बरपन लागे पानी। कहा कहिय कछु अकथ कहानी॥

घरहराइ अति बरखा करई। कोटि कोटि मन की सिल परई॥
तरकि तरकि अति बज्र से डारै। मदमत इंद्र ठढ़ौ फलकारैं॥
यह तौ इंद्र की करनी बरनी। अब गिरि कथा सुनौ मनहरनी॥
ऊपरि खग मृग अरु तरु बेली। तिन पे फुहीं न परैं अकेली॥
नाचै मोर कुलाहल कीजैं। इंद्र की छाती लौंन सौं मीजैं॥
देखि देखि सुख सुरपति मरई। दौरि दौरि घन पॉइन परई॥
पॉख पेक मोरनि कौं मारौ। कोइक पाठ दुर मन तैं झारौ॥
पातन मारौ, पाखन टारौ। मेघ मरद घन सब पचि हारौ॥
इंद्रहु अपनौं वज्र चलायौ। पान लगे तेहूँ नहिं आयौ॥
ये षग मृग कहुँ पट भै नाहीं। इंद्र के आव जिन्ह लागी जाहीं॥
जो अंतरजामी ढिग ऑहीं। का करि सकै इंद्र इन ताहीं॥
सात दिवस अद्भुत झर ठान्यौ। व्रजबासी तनकौ नहि जान्यौ॥
सुंदर वदन बिलोकनि आगै। भूख-प्यास उर कौं नहिं लागै॥
निकसे सब जब गिरिधर भाष्यौ। गोवरधन फिर तहँ ही राख्यौ॥
प्रेम भरी बनिता जुरि आई। वारै अभरन लेत बलाई॥
घुरि रहि जसुमति लेत बलाई। इत घुरि रह्यो बड़ौ बलि भाई॥
ऊपरि ठाढ़ौ नंद अनंदै। चुंबत अपने आनॅदकंदै॥
यह नागर नगधर की लीला। सुधा सींय सम सुन्दर लीला॥
मन क्रम बचन जु यौ अनुरागै। ताहि मुकुति अति फीकी लागै॥
अरथ धरम अरु कामजीत सुख। निपट कुटक ते कौन धरै मुख॥
अधिकारी धौं भलौ रस जानैं। अलि बिन कमलहि को पहिचानैं॥
नवल किसोर सुँदर गिरिधारी। स्रवन नैन (मन) अमृत रूप भारी॥
'नंददास' कौं इतनौ कीजै। पावन गुन-गावन रति दीजै॥

स्याम-सगाई

इक दिन राधे कुँवरि, स्याम-घर खेलनि आई ;
चंचल और विचित्र देखि, जसुमति मन भाई ।
नंद महरि ने तव[1] कह्यो, देखि रूप की रास ;
इहि कन्या मैं स्याम को गोविंद पुजवैं आस ।
—कि जोरी सोहती ॥ १ ॥

जसुमति महाप्रवीन, एक द्विज-नारि बुलाई ;
लीनी निकट विठाय, मरम की बात सुनाई ।
जाय कहौ वृषभाँनु सो, करियो बहु मनुहारि ;
इहि कन्या मैं स्याम को, माँगौं गोद-पसारि ।
—कि जोरी सोहनी ॥ २ ॥

द्विज-नारी उठि चली, पौर वरसानैं आई ;
जहँ राधे की माय, बैठि तहँ बात चलाई ।
जसुमति रानी नंद की, हौं पठई तुम पास ;
वहुत भाँति वंदन कही, वहुतहिं करि अरदास ।
—कृपा करि दीजियै ॥ ३ ॥

नीकी राधे कुँवरि, स्याम इत मेरौ नीकौ ;
तुम्ह किरपा करि करौ, लाल मेरे कौं टीकौ ।
सव भाँतिन सो होइगी, हम-तुम वाढ़ै प्रीति ;
और न कछु मन में चहौ, यही जगत की रीति ।
—परसपर कीजिये ॥ ४ ॥

रानी उत्तर दयौ, सु हौं नहि करौं सगाई ;
सूधी राधे कुँवरि, स्याम है अति चरवाई ।
नँद-ढोटा लंगर महा, दधि माखन कौ चोर ;
कहति, सुनति, लज्जा नहीं, करति और ही ओर ।
—कि लरिका अचपलौ ॥ ५ ॥

---

१. पाठा०—मन मों ।

द्विज-नारी पुनि आइ, महरि सों बात कही सब ;
सुनि करि कैं करतूत, मनहिं मन सोचि रही तब।
अंतरजामी साँवरो, तिहीं बेर गयो आइ ;
पूँछनि लाग्यो माय तें, क्यों जु रही सिर नाइ।
—बात मो सों कहौ ॥ ६ ॥

जसुमति लालहिं कहति, लाल ! हौं नाकैं आई ;
जहँ करियतु तो बात, तहाँ तेरि होति बुराई।
मैं पठई बृपभानु कैं, करनि सगाई तोय ;
तिनहूँ उहि उत्तर दियौ, वाढ़ी चिंता मोय ॥
—कहौ कैसी करौं ॥ ७ ॥

मैया तैं मुसकाइ कहत यौं नंद-दुलारौ ;
नाहिंन करिहौं व्याउ, करौ जिनि लाड़ हमारौ।
जो तुम्हरैं इच्छा यही, उनहीं की हम लैइ ;
तौ में ढौटा नंद कौ (जो) पाँइन परि परि दैंइ।
—सोच नहिं कीजिये ॥ ८ ॥

मोर-चन्द्रिका धारि, सुनटवर-भेप बनाई ;
बरसाँने के बागहि, मोहन बैठे जाई।
सब सखियन के भुंड मे, देखति चली गुपाल,
अरस परस दोऊ भये, कुँवरि किसोरी, लाल।
—मनहि फूले फिरैं ॥ ९ ॥

मन हरि लीनो स्याम, परी राधे मुरझाई,
भई सिथिल सब देह, बात कछु कही न जाई।
दौरि सखी ! कुंजन चलीं, नैननि डारति नीर ;
अरी बीर ! कछु जतनि करि, हिरदै धरति न धीर।
—हर्‌यौ मन मोहना ॥ १० ॥

सखियन ऊँचे बैन कहे, पै कुँवरि न बोलै ;
पूँछति विविध प्रकार, लड़ैती नैन न खोलै।
बड़ी बेरु बीती जबै, तब सुधि आई नैकु ;
स्याम स्याम रटिवे लगी, एकुहि बेर जु ह्वैकु।
—बदति ज्यों बावरी ॥ ११ ॥

सखी कहैं सुनि कुँवरि ! तोइ इक जतन बताऊँ ;
चुप रहिकैं सुनि लेहु उठौ अब घर लै जाऊँ '
कहियो काटी नाग नैं, जौ पूँछै तो माइ ;
हम हैं मीत गुपाल को, लैहैं तुरत बुलाइ ।
—कहैंगी पीर बहु ॥१२॥

कर गहि लई उठाइ, पकरि गृह भीतरि लाई ;
बिबस दसा लखि माइ, दौरि कै कंठ लगाई ।
कहा भयो मो कुँवरि कौ, कहौ तनक समुझाई ,
हौं बरजति ही लाडिली, दूरि खेलनि जिनि जाइ ।
—कह्यौ मानै नहीं ॥१३॥

गई घरी द्वै बीति, कुँवरि जब नैन उघारे ,
लै लै बड़े उसास, डसी मैया मोहिं कारे ।
नाग डसी मैया सुनत, गिरी धरनि मुरझाइ ;
बार बार यौ भाँखही, कोउ जलदी करौ उपाइ ।
—अरे ! कोउ दौरियो ॥१४॥

सखी कहति समुझाइ, कहौ तौं गोकुल जाऊँ ;
मनमोहन घनस्याम, तुरत वाकौं लै आऊँ ।
वह ढोटा अति सोहनो, पठवै वाकी माइ ;
बड़ौ गारुड़ी नंद कौ, तुरत भली करि जाइ ।
—बड़ौ ही चतुर है ॥१५॥

अरी वीर ! चलि जाउ, कहौ इहि बिनती मेरी ;
जो जीवैगी कुँवरि, वीर मैं, करिहौं तेरी ।
वेगि पठै नँदलाल कौ, जीउदान दै मोहि ;
पाँय लगौं, बिनती करौं, जग जस आवै तोहि ।
—रावरी सरन हौं ॥१६॥

एकु चली, द्वै चार चलीं, गोकुल में आईं ;
जसुमति बैठी जहाँ, बैठि तहँ बात चलाईं ।
पाँय लगौ कीरति कह्यो, तुम जसुमति किन लेउ ;
जो तुम्हरी इच्छा यही, तो कुँवर संग करि देउ ।
—सगाई लीजियो ॥१७॥

जसुमति-मन आनंद, दौरि नँदलाल बुलाए ;
सुनि मैया की टेर, चले मनमोहन आए।
लखि गुपाल झगरनि लगे, मैया सो मुसक्याइ ;
ए तो नारि गँवारि है, मति वहिकै तू माइ।
—ठगनि आई यहाँ ॥१८॥

मै वारी, मेरे लाल ! तेरी हौ लेहुँ वलैया ;
जित वरसानो नाम, सुतित तैं आई भैया।
एक कुँवरि वृषभानु की कारे डसी कुठौर ;
व्याकुल ह्वै धरनी परी, नैन-पूतरी मोर।
—लाल तहँ जाइयो ॥१९॥

कौन वाइगी सुनैं[1], ताहि किन मोहि वतायौ ;
परपंचिनि तुम ग्वालि ! झूठ ही मोहि बुलायौ।
को राजा बृषभानु हैं, कित बरसानो गाम,
कौन तिहारी कुँवरि है, हौं जानत नहि नाम।
—कान्ह उत्तर दयौ ॥२०॥

सुनो नंद के लाल ! साँवरे कुँवर कन्हाई ;
वरसाँनो वह ग्राम, जहाँ तुम मुरलि वजाई।
नटवर भेप वनाइ कै, बैठे आसन मारि ;
धुनि सुनि मोही राधिका, औ व्रज सिगरी नारि।
—मनौ टौना कर्यौ ॥२१॥

अहो महरि के पूत ! साँवरे कुँवर कन्हाई ;
जो न चलौगे वेगि, कुँवरि जीवन की नाईं।
काली नाग जु नाथियो, तुम सो और न कोई ;
वृन्दावन मे साँवरे, कहा सिखावत सोइ।
—वात जानति सवै ॥२२॥

वह राजा वृषभानु ! एक ही डोल गढ़ावै ;
मोइ कुँवरि वैठारि, सखिन पै झोटा द्यावै।

---

१. पाठा०—कह्यौ।

अरथ, दान इच्छा नहीं, पान, पात नहिं लैउँ ;
जो इतनौ कारज करै, तो कुँवरि भली करि दैउँ ।
—वात एती अहै ॥२३॥

जो मॉगौ सो लेउ, साँवरे कुँवर कन्हैया ;
विनु मॉगे ही देहि तुम्हैं राधा की मैया।
इहि सुनि सुंदर सॉवरे ! लीने सखा बुलाइ ;
सिध-पौरि बृपभानु की, ततछिन पहुँचे जाइ ।
— लगन है नेह की ॥२४॥

तब रानी उठि दौरि, पौरि तें मोहन ल्याई;
सिघासन वैठाइ, हाथ गहि कुँवरि दिखाई ।
दरस-फूँक दै विष हर्यौ, निज सनमुख बैठाइ ;
बहु विधि वारति ए सखी ! मुदित कुँबरि की माइ ।
—धन्न है इहि घरी ॥२५॥

सुनति बचन तत्काल, लड़ैती नैनि उघारे ;
निरखति ही घनस्याम, बदन तें केस सँवारे ।
सब अपने ढिग निरखि कै पुनि निरखी ढिग माइ ;
अचरा डार्यौ वदन पै मधुर-मधुर मुसिकाइ ।
—सकुच मन में बढ़ी ॥२६॥

देखि दोउन कौ प्रेम जु, कीरति मन मुसिकाई ;
जोरी जुग जुग जियौ, विधाता भली वनाई ।
सखी कहैं जुरि विप्र सों पुहुपन तैं बनमाल ;
राधे के कर छ्वाइकैं गर मेलौ नँदलाल ।
—बात अच्छी वनी ॥२७॥

सुनति सगाई स्याम, ग्वाल सब अंगनि फूले ;
नाचत गावत चले, प्रेम रस में अनुकूले ।
जसुमति रानी घर सज्यौ मोतिन चौक पुराइ ;
वजति वधाई नंद कै 'नंददास' वलि जाइ ।
—कि जोरी सोहनी ॥२८॥

——

रुक्मिणी मंगल

श्री गुरुचरन-प्रताप सदा आनन्द बढ़ै उर।
कृष्ण-कृपा तैं यथा कहूँ सुख पावत नर सुर॥ १॥
रुक्मिनि-हरन पुनीत चित्त दै सुनैं सुनावैं।
जाहि मिटै जम त्रास, बास हरि के पद पावैं[1]॥ २॥
'सिसुपालहि को देत' रुक्मिनी वात सुनी जब।
चित्र लिखी सी रही[2] दई यह कहा भई अब॥ ३॥
चकित चहूँ दिसि चहति, बिछुरि[3] मनु मृगी माल तैं।
भयौ वदन कछु मलिन, नलिन जनु गलित नाल तैं॥ ४॥
भरि आए जल नैन, प्रेम रस ऐन सुहाये।
जनु सुंदर अरविंद अलिदन[4] बैठ हलाये॥ ५॥
अलि पूँछत बलि बाल! कहौ नैननि क्यों पानी।
पुहुप रेनु उड़ि पर्‌यौ, कहत तिनसों मधु-बानी॥ ६॥
काहू के ढिग कुँवरि वड़हि वड़ स्वासनि लेई।
कहत[5] बात मुख मूँद मूँद उत्तर तिहि देई॥ ७॥
जो कछु तपत-उसास, उदास वदन तै लहिहैं।
कन्या कन्या-विरह-दुःख को कासों कहिहैं[6]॥ ८॥
सुभग कुसुम की माल सखी जब जब गुहि लावैं[7]।
कर सो कुंवरि न परसै, अर सो निकट धरावैं॥ ९॥
अपने कर जो विरह जरै जानत अति तातैं।
मति मुरझाय सो माल, बाल डरपति[8] है यातै॥१०॥

---

१. १-२ पद हस्त० क में नहीं हैं। २. पहली पंक्ति मे 'रुक्म' शब्द अधिक था इसलिए निकाल दिया गया। पाठा०—चित्र लिखित सम भई। ३. छुटी। ४. अलिन दल। ५. पूछे सुंदर मुख मूँदे। ६. कन्या रुकमिनि विरह दुःख काका सो कहिहैं। ७. सुभग कुसुम के हार उदार सखी गुहि ल्यावैं। ८. सकुचति।

मिटी भूख अरु प्यास, पास कोउ और न भावै।
कोनें जाइ उसास भरै दुख कहत न आवै ॥११॥
दुरी[1] रहति क्यों प्रिय-रति प्रकटहि देत दिखाई।
पुलक अंग, सुर भंग, स्वेद कबहूँ जड़ताई ॥१२॥
उर थर थर अति कँपत जपत[2] जब कुँवर कन्हाई।
कबहुँ टकी लगि जाइ, कबहुँ आवत मुरझाई ॥१३॥
ह्वै गयो कछु बिबरन-तन, छाजत यौं छबि-छाई।
रूप अनूपम बेलि, तनक मनु घाम में आई ॥१४॥
मंगल दुंदुभि सुनें धुनैं-धुन जो मन माँहीं।
निरखि निरखि कर कंकन दृग जल भर-भर आहीं ॥१५॥
टप टप[3] टप-टप, टपकि नैन सो अँसुआ दरहीं।
मनु नव नील कमल-दल तैं भल मुतिया झरहीं ॥१६॥
उपजे बिरह-दुख दवा, अँवा तन तापत येहैं।
कोउ कोउ हार के मोतिया तचि-तचि लाल भये हैं ॥१७॥
कबहुँ मनहि मन सोचत, मोचत स्वास-ठरारे।
माहन सोहन-श्याम, न ह्वैहैं पिया[4] हमारे ? ॥१८॥
करत बिचार मनहि मन अब धौं कैसी कीजै।
लोक लाज कुल कानि किये मोहिं सरबसु छीजै ॥१९॥
ज्यों पिय हरि अनुसरौ सोई अब जतन करौ हठि।
मात, तात अरु भ्रात, बन्धु-जन सबै परौ भट । २०॥
आगि लागि जरि जाहुँ लाज जो काज बिगारै।
सुंदर नंदकुँवर नगधर सों अंतर पारै ॥२१॥
पति परिहरि हरि भजत भई गोकुल की गोपी।
तिनहुँ सबै विधि लोपि परम-प्रेमै-रस ओपी ॥२२॥
जिनके चरन-कमल-रज अजहू बाँछन लागे।
सनक, सनंदन, सिव, सारद, नारद अनुरागे ॥२३॥
इहि विधि धरि मन धीर चीर अँसुवन सिरायकै।
लिख्यो पत्र सु विचित्र, चित्र रुक्मिनि[5] बनायकै ॥२४॥

---

१. दुरि न रहत रिय आरत। २. झँपत। ३. टपटप छबिले नैननि हूँ ते।
४. कंत। ५. नाना।

तब इक द्विज वर बोलि खोलि निज बात कही सब ।
अहो देव ! जदु-देव[1] पिया पैं तुरत जाहु अब ॥२५॥
यह पाती मो नाथ - हाथ पै तुमही दीजो ।
काहू नाहिं पतीजो, बलि-बलि एती कीजो ॥२६॥
द्विज न गयो निज-भवन, गवन किय धरि जु पवन-गति ।
आरति लखि रुकमिनी और श्रीकृष्ण-चरन-रति ॥२७॥
पुरी परम-माधुरी, विप्र लखि रह्यौ चकित चित[2] ।
श्रीनिवास कों निज-निवास छबि का कहियै तित ॥२८॥
वन उपवन के रूख भूख भाजै तिहि देखैं ।
अमृत-फलन सों फले फरे सुर बर मन लेखैं[3] ॥२९॥
ललित-लतनि की फूलनि, झूलनि अति छबि-छाजैं ।
जिन पर अलि बर राजै मधुरे जंत्र से बाजैं ॥३०॥
सुक, पिक, चातक, सबद सुमीठी धुनि अस रटहीं ।
मनौं मार-चटसार सुढार चटा से पढ़हीं ॥३१॥
और बिहंगम रंग भरे बोलत हिय हरहीं ।
मनु तरुवर रसभरे परस्पर बातैं करहीं ॥३२॥
सुभग सुगंध सरोवर निरमल मुनि मन जैसैं ।
प्रफुलित बरुई इंदु सरोवर राजत तैसैं[4] ॥३३॥
कुंज-कुंजप्रति पुंज भँवर गुंजत अनुहारे ।
मनु रवि-डर तम भजे तजे रोवत हैं बारे ॥३४॥
उज्जल मनि-मय अटा, घटा सों बातैं करईं ।
जगमग-जगमग ज्योति होति रवि ससि सों अरईं ॥३५॥
चपल पताका फरकैं झलकैं अरक-किरन जहँ ।
घाम न कबहूँ परसै नित ही छाँह रहत तहँ ॥३६॥
जाल रंध्र मुख अगर धूम जनु जल-घर धुरवा ।
आनँद भरि भरि उरवा, नाचत मधुरे मुरवा ॥३७॥
बगर बगर सब नगर रहीं नव-गुड़ी उड़ी छबि ।
मनौं गगनमैं अंग चौखटे-चंद रहे फबि ॥३८॥

---

१. द्विज-देव । २. पुरी परम छवि ढुरी चाहिकै चकित भयो चित ।
३. अमृत फरन कर फरे ढरे सुर द्रुम न बिसेषे ।
४. प्रफुलित चंद्र तवर इद्री अरु जीव कूँ तैसे ।

जैसेई देव विमाननि चढ़ि द्वारावति आये।
देखि देखि मन हरपे बरपे सुमन सुहाये ॥३९॥
कृष्ण भावती पुरी, निरखि द्विज हरख भयो अस।
जगत द्वन्द्व तैं छुट्यौ, ब्रह्म-आनन्द मिल्यो जस ॥४०॥
सिंह पौरि छबि खौरि कहत कछु नहिं बनि आवै।
अर्थ, धर्म औ काम, मोक्ष जिहिं निरखत पावै ॥४१॥
जहँ अनेक परिचार मार से बनि बनि ठाढ़े।
कृष्ण - कल्पतरु - सुंदर, सीतल - छाँह के बाढ़े ॥४२॥
ब्रह्म, रुद्र, अमरेंद्र वृन्द की भीर भुलावैं।
भीतर जान सुपावैं जिहि हरि देव बुलावैं ॥४३॥
चल्यौ गयौ तहँ विप्र क्षिप्र-गति कितहुँ न अटक्यौ।
प्रभू जान ब्रह्मन्य, पौरिया पायनि लटक्यौ ॥४४॥
जदुपति को लखि द्विजपति, मनमै अति सचु पायो।[1]
जनु उडुपति उडुमंडल तैं महिमंडल आयौ ॥४५॥
किधौं कमल-मंडल मैं अमल दिनेस विराजैं।
कंकन, किंकिनि, कुंडल करन महा छवि छाजैं ॥४६॥
द्विजहिं दूरि तैं निरखि-निरखि हरि हरखित होईं।
प्रिय सन्देस कहैया है यह द्विजवर कोई ॥४७॥
उठि नँदनंदन जगबंदन, पगबंदन करिकैं।
लै चले घर द्विजवर कों हरि कर पै कर धरि कैं ॥४८॥
दुग्ध फैन सम सैन रमा मनो ऐन सुहाई।
ता ऊपर वैठाय, पाँय धोये जदुराई ॥४९॥
अष्ट गंध उसनोदक सों असनान कराये।
मंजुल मृदुल महीन नवीन सुपट पहिराये[2] ।५०॥
खान पान, वहु मान, पान निज पानि खवाये।
कहौ कहाँ ते आये, बोले वचन सुहाये ॥५१॥
तव रुकमिनि कौ कागर नागर नेह नवीनों।
वसन-छोरि तैं छोरि, विप्र श्रीधर-कर दीनों ॥५२॥

---

१. जदुपुर लनि के मध्य देखि जदुपति सुख पायो। २. यह पद हस्त० क में नहीं है।

मुद्रा खोलि गुविन्द्चन्द जब बाँचन आँचे।
परम[1] प्रेम रस साँचे अच्छर परत न बाँचे ॥५३॥
श्री हरि हियो सिरावत लावत लै-लै छाती।
लिखी बिरह[2] के हाथ सुपाती अजहूँ ताती ॥५४॥
हिय[3] लगाय सचु पाय, बहुरि द्विजबर कौ दीनी।
रुकमिनि अँसुवन-भीनी, पुनि हरि अँसुवन भीनी ॥५५॥
पढ़न लग्यौ द्विज गुनी रुक्मिनी वचन सुहाये।
तब हरि के मन नैन सिमटि सब स्रवनन आये ॥५६॥
सिद्धि श्री श्रीनिवास, पास श्रुतवास[4] सहायक।
सुंदर सुचिवर, श्री गुविंद तुम सब वरदायक[5] ॥५७॥
नृप विदर्भ की कन्या रुक्मिनि, अनुचरि गनियै।
ताको प्रथम प्रनाम बाँचि पुनि विनती सुनियै ॥५८॥
विलगु मानियै नाहि जानियै अपनी करिकै।
मग्न होत दुख-जलनिधि मैं, उधरो कर धरिकै ॥५९॥
जब तै तुम्हरे गुनगन मुनि जन नारद गाये।
तब तैं औरु न भाये अमृतै अधिक सुहाये ॥६०॥
मै तुम मन करि बरे कुँवर गिरिधरन पियारे।
हौं भई तुम परिचारि, नाथ! तुम भये[6] हमारे ॥५१॥
अब[7] विलंब नहिं करौ, बरौ त्रिभुवन-पति सुंदर।
नाथ[8] परम सुखधाम, स्याम सुखभोग[9] पुरंदर ॥६२॥
औरु सबै दुखभरे सरे अंतर ही अंतर।
काल कौल से करे, परे छिन छिन परतंतर ॥६३॥
देखत के सब गोरे नव नव पानिप ढोरे।
हार काजु नहि आवैं जैसे उज्जल ओरे ॥६४॥
तिन मैं इक सिसुपाल ताहि मुहि देत रुकुम सठ।
तात, मातु पचि हारि होत नाहिंन चटतै मठ ॥६५॥

---

१. प्रेम प्रीति के साँचे। २. विरहिनी हाथनि पाती। ३. छतियाँ लाय सचुपाय करि द्विजबर कर दीनी। ४. सुखदास। ५. सुर नर मुनि गंधर्व यच्छ किन्नर विधि नायक। ६. नाथ। ७. अब नाहिंन हित कस्यौ बरयौ त्रिभुवन मन सुंदर। ८. नित्य परम अभिराम। ९. सुखधाम।

उचित होय सो करिय[1] करत लाजहिं नहिं मरियैं।
बारन-बृंद बिदारन बलि गो मायन[2] डरियैं ॥६६॥
महा-हंस जदुबंस, वीर जू[3] बलहि बिचारौ।
है यह तुमरो भाग काग सिसुपाल विडारौ[4] ॥६७॥
परत परेवा नभ तैं पर कर देखत याकौं।
तुम सब लायक अछत छुए सिसुपाल-छिया कौ[5]? ॥६८॥
जो नगधर, नँदलाल मोहि नहिं करिहौ दासी[6]।
तो पावक पर जरिहौं, बरिहौं तन तिनका सी ॥६९॥
जरि-मरि-धरि-धरि देह न पैहौं, सुंदर हरि बर।
प यह कबहुँ न होय स्याल सिसुपाल छुएँ कर ॥७०॥
सुनि रुकमिनि की पाती, छाती पुनि लगायकैं।
सारथि पैं रथ माँगि रुक्म पै अति रिसायकैं ॥७१॥
तुरत चढ़े छवि बढ़े चढ़त बानक बनि आयौ।
हरबर मैं खसि पर्‌यौ पीत-पट द्विज पकरायौ ॥७२॥
कहत[7] विप्र सों हँसत लसत विकसत सुंदर मुख।
जनु कुमुदिन घर चल्यौ चंद्रमा देन परम सुख ॥७३॥
हो द्विजवर! सब दलमलि रुकमिन ल्याऊँ ऐसैं।
दारु-मथन कर सार अगिन को काढ़त जैसैं ॥७४॥
जानि प्रिया की आरति हरि अरबर सों धाये।
मन की सी गति करें चले कुंडिनपुर आये ॥७५॥
ह्याँ दुलहिन[8] तरफरे फिरत घन-आँगन ऐसैं।
रवि तेजहि[9] सों, दुखित मछरि थोरे जल जैसे ॥७६॥
चढ़ि चढ़ि अटनि, झरोखनि झाँकत नवल किसोरी।
चंद उदै बिनु[10] जैसे आतुर, त्रिषित चकोरी ॥७७॥
फरकन लागी भुजा वाम, कंचुकि बँध तरकन।
हिय तें[11] सूल लग्यौ सरकन, उर अंतर धरकन ॥७८॥

---

१. करियै मरियैं लाज यहै तो। २. माय यहै तो। ३. निज मनस बिचारैं। ४. जुठारो। ५. तुम तौ सब बिधि लायक अछित छुवौ न छिया कों। ६. नागर नगधर नंदकुँवर मोहिं करहु न दासी। ७. चले विप्र-सँग। ८. जहाँ कुँवरि। ९. कर तपत करी। १०. ज्यों चाहत आरत। ११. सो दुख।

तिहिं छिन द्विजवर चल्यौ-चल्यौ अंतःपुर आयौ।
वदन डहडह्यौ देखि कछू[1] मन धीरज पायौ ॥७९॥
पूँछि न सक मुख बात दई यह कहा कहैगो।
कै[2] अमृत सों सींच, किधौं बिष देह दहैगो ॥८०॥
निकसि प्रान तब तन ते द्विज के वचननि आये।
तबहिं कह्यो हरि आये, मनु फिर बहुरयो पाये ॥८१॥
दियौ चहै कछु द्विजहिं नही देख्यौ तिहिं लायक।
तब उठि पायन परी भरी आनंद महा इक ॥८२॥
सुर, नर जाको सेवत सेवतहू नहिं लहियै।
सो लक्ष्मी जिहि पाय परत[3] ताकी का कहियै ॥८३॥
पुर के लोगन सुनि कै[4] श्री सुंदर बर आए।
जँह[5] तँह तैं आये देखनि हरि बिसमय पाये ॥८४॥
कोटि काम-लावन्य, अंग सुख[6] दैन जु हित के।
जे तित दौरे परे भये ते तित ही तित के ॥८५॥
जो अलकन छबि उरझे, ते अजहूँ नहि सुरझे।
ललित लसैं सिर पागु तकैं तक तँह तँह मुरझे[7] ॥८६॥
कोउ कटीली भौंह निपट ही बिबस करे है।
कोउ दृगन छबि गिनत-गिनावत हार परे हैं। ८७॥
कोउ लखि ललित कपोलन मधुरी बोलन अटके।
परे ज्यों मद-गज चहले दहले फेर न मटके ॥८८॥
कोऊ श्रवननि कुंडल मंडल चंचल जोती।
निरखत ही मिलि गए भए जलनिधि के मोती ॥८९॥
कोउ रीझे श्रीवत्स वक्ष की लखत लुनाई।
मृदु मरकत मणि कोटि नैक जस दामिनि छाई ॥९०॥
को जु रहे चकचौंध, रुचिर पीतांबर छबि पर।
मनौं छबीली छटा रही थकि सुंदर घन पर ॥९१॥

---

१. नैक धीरज सो। २. अमी वचन सीचिहै कि तरल गरल नहिं दहैगो। ३. परी तिहि कूँ कहा चहियै। ४. सुनी कि हरि मनमोहन आये। ५. जहाँ तहाँ ते धाये देखत बिसमय पाये। ६. हरि साँवर पिय कै। ७. कोऊ लटपट पगिया लखि कर तेऊ मुरझे।

कोउ इक नैननि अटकि गये ह्वै[1] लोभ लुभारे।
भरे भवन के चोर भये बदलत ही हारे ॥९२॥
कोउ जु रुचिर चरनारविंद-मकरंद लुभाये।
चंपमाल सिसुपाल परस अलि[2] वहुर न आये ॥९३॥
कोऊ कहै 'यह नायक रुकमिनी याके लायक'।
मनि बाँधी कपि-कंठ सुमहु रुक्मी दुखदायक ॥९४॥
कोऊ कहै, बढ़ बली, बीर-बर याही बरिहैं।
जरासिंधु, सिसुपाल-स्याल मुख धूरि जु परिहैं ॥९५॥
पुनि सब भूपन सुनी कि हरि मद-मथन पधारे।
परे बिखाद जिय भारे, मिट गए[3] ओज उचारे ॥९६॥
मतौ कियौ मिलि इनहूँ किनहू भेद बतायौ।
महाबली अतिछली भली नहिं जो यह आयौ ॥९७॥
जहँ देवी अंबिका, नगर बाहर मठ ऊजन।
ह्वै आई कुल रीति चली दुलही तिहि पूजन ॥९८॥
भेरी मंदिर बजैं गगन से नभ-घन गाजैं।
पहिर बरम, असि, चरम खरे सो सुभट बिराजैं ॥९९॥
सावधान ह्वै चले घेरि दुलहिन को ऐसै।
गरुड़-बेग भयभीत सुधा ढिग बिषधर जैसै ॥१००॥
देवी द्वार पखारि पाय दुलहिनी सुहाई।
थलहिं जलज से चरनन चलि देवालय आई ॥१०१॥
विधिवत् देवी अरचि चरचि बहु वंदन करिकै।
विनती कीनी कुँवरि गौरि[4]-पद-पंकज परिकै ॥१०२॥
अहो! देवि, अंबिके! गौरि, ईश्वरि, सब लायक।
महा-माय, बरदाय, सु संकर तुमरे नायक ॥१०३॥
तुम सब जिय की जानति तुम सो कहा दुराऊँ।
गोकुल-चंद, गुबिंद, नंदनंदन पति पाऊँ ॥१०४॥
ह्वै प्रसन्न अंबिका कहत हे रुकमिनि सुंदरि!
पैहो अबहि गुबिंद-चंद जिय जिन विषाद करि ॥१०५॥

---

१. कोउ और तें और अंग के। २. चित्र कमल संसार निरखि फिरि।
३. बुझि गए ज्यों अँगारे। ४. साँस।

पाय मनोरथ बिकसी निकसी सुंदरि[1] मठ तैं।
बेगि चलो सब कहैं झकैं तिन सो निज हठ तैं ॥१०६॥

मंद मंद पग धरै चंदमुख किरन बिराजै।
मनिमय नूपुर बजै बीन मनमथ सी बाजै ॥१०७॥

अरुन चरन प्रतिबिंब अवनि मैं यौ उनमानी।
जनु धर अपनी जीभ धरत पग कोमल जानी ॥१०८॥

देखति छबि सों छली अपन बर आरत उलही[2]।
निरखत नरपति सगरे डरपत नैंकु न दुलही ॥१०९॥

घूँघट पट दियो[3] हुतो सु खोल्यो बदन डहड्यौ।
जनु अंबर तैं अब ही निकस्यौ चंद गहगह्यौ ॥११०॥

सोभा सदन सुबदन रदन की छबि द्युति[4] ऐसी।
अरुन बदरि मैं दमकत दामिनि-अंकुर जैसी ॥१११॥

श्रवननि सुंदर खुभी, चुभी सबके मन ऐसे।
काम कलभ की अबहीं उलही दतियाँ जैसे ॥११२॥

अली अंस भुज दिये निहारत अलक[5] सुधारत।
सर[6] कटाच्छ सन भरे सुतकि तकि-भूपन मारत ॥११३॥

परे जहाँ तहँ मुरझि भूप सब उरझि उरेझा।
पंच सरन छिद डारि किए मनमथ को बेझा ॥११४॥

दृष्टि परे जब मोहन सोहन कुँवर कन्हाई।
तिहि छिन दुलहिनि-दसा भई जो बरनि न जाई ॥११५॥

अरबराइ मुरझाय कछू न बसाय तिया पैं।
पंख नाहि तन बने[7], नतरु उड़ि जाय पिया पै ॥११६॥

हरै[8] हरै पग धरै हरी रुकमिनि नियराई।
इक टक सब नृप लखै मनो ठगमूरी खाई ॥११७॥

---

१. दुलहिनि। २. ये सब छबि छल अपनी हरि को अपन उलही ३. गयो छूटि निकसि गयो बदन डहडह्यो। जनु जलधर तें निकस्यो बिकस्यो चद लहलह्यो। ४. झिलमिलत। ५. कंचन। ६. बंक कटाछनि करत मारि तिन। ७. पख नाहिनै तुरत। (११६) प्रति क मे नहीं है। ८. छबि सो रथहि चलाय आन रुकमिनि जब आई।

इमि दुलहिनि चलि आई हरि लै रथ बैठाई ।
घन तैं बिछुरी बिजुरी मनु घन मैं फिरि आई ॥११८॥

लै चले नागर नगधर नवल तिया कों ऐसे ।
माँखिन-आँखिन-धूरि-पूरि मधुहा मधु जैसे ॥११९॥

गरुड़ हरी जिमि सुधा दर्प सरपन कौ सब हरि ।
तैसे हरि लै चले आपुनो सहज खेल करि ॥१२०॥

लसत साँवरे सुंदर-सँग सुंदरि आभासी ।
जनु नव नीरद निकट चारु चंद्रिका प्रकासी ॥१२१॥

'हरी हरी दुलहिनि' यों कहि सब लोग पुकारे ।
कित गए वे सब भूप जूप लारे बजमारे ॥१२२॥

जरासिंध तैं आदि[1] नृपति सजि-सजि कैं दौरे ।
महासिंह के पाछें कूकत कूकुर बौरे ॥१२३॥

देखे रिपु दलभारे, तब बलदेव सँभारे ।
मद-गज ज्यौं सर पैठि कमल कों दलिमलि डारे ॥१२४॥

मरन सौं अधिक जु मान-भंग मागध दुख पायौ ।
जहँ दूलह-सिसुपाल तहाँ मन राखन आयौ ॥१२५॥

कर-कंकन दुख दूनौं दुख करि रोय जु दीनौं ।
चपल चखन कों काजर वहि मुख कारौ कीनौं ॥१२६॥

तब निकस्यौ नृप रुक्मि, धरैं सिर कंचन कुलही ।
रंचक तुम ठहराहु आनि दैहौं तुम दुलही ॥१२७॥

इमि कहि रिस भरि धायौ हरि पैं आयौ ऐसे ।
दुरबल अंग पतंग प्रबल पावक पर जैसे ॥१२८॥

जो कोऊ मतिमंद चंद पैं धूरि उड़ावै ।
उलटि दृगनि जब परै मूढ़ कों तब सुधि आवै ॥१२९॥

जितिक छोहु हरि-हियैं हुतो, तेतिक नहिं कीने ।
मूँड़ मूँड़ि सत-चुटिया रखि पुनि छोरि जु दीने ॥१३०॥

---

१. नृपति सब पाछे दौरे ।

इहि बिधि सब नृप जीति हरी रुकमिनि लै आये।
बिधिवत् कियौ बिबाह तिहूँ पुर मंगल गाये ॥१३१॥

जो यह मंगल[1] गाय चित्त दै सुनै-सुनावै।
सो सब मंगल पावै हरि-रुकमिनि मन भावै ॥१३२॥

हरि रुकमिनि मन भावै सो सब के मन भावै।
'नंददास' अपने प्रभु कौ नित मंगल गावै ॥१३३॥

———

१. लीला।

सुदामा-चरित

द्विजवर एकु सुदामा नामा। पुरी द्वारिका ढिग बिसरामा॥
जामैं वसै जु अलिपति ऐसैं। सरवर में सरसीरुह जैसें॥
परम अकिंचन कछु नहिं चहैं। जथा लाभ संतोषित रहैं॥
दीन कृष्ण-चरननि रति सरसै। इहि संसार वयार न परसै॥
जानै जिय सब बिषम-अगर सों। देखन कों गंधर्व-नगर सो॥
इह ममता सपनो सों लागै। माया सन सपनो सों जागै॥
नेह न देह गेह सन कबहूँ। उपसम चिंतन समता सबहूँ॥
सखा आपुने श्री जदुनाथा। गुरुकुल पढ़े एक ही साथा॥
तातैं तिसा अनी न बिचारै। बिषयन दीन देह प्रतिपारै॥
तातै दुरवलता तनु ताकैं। नाहिन कछुक दरिद्रता जाकैं॥
तिय ताकी पतिव्रता अहै। पति ही पोख्यो तोख्यो चहै॥
जानत सव सेवा के धरमै। औरु बिभूति नहीं कछु घर मै॥
निपटहि लख्यौ देखिकै गातैं। कहन लगी कंत सो बातैं॥
इत तै निकट जदुपुरी ऑही। तनक चाह ह्वै आओ तॉही॥
जहॅ प्रभु कमलाकंत पियारे। तुम जु कहत है सखा हमारे॥
कीजै दरस अरस नहिं कीजै। जीवन सकल सफल करि लीजै॥
विप्र कहत नहिं घर कछु साजा। तिन्हैं मिलत मोहिं आवत लाजा॥
तीय कहै वे त्रिभुवनस्वामी। अखिल लोक के अंतरजामी॥
रीझत देरि कछू नहिं आनैं। केवल प्रीत-रीति पहिचानैं॥
कहत जदपि जदुपति हैं ऐसे। चक्रपानि प्रभु परसहुँ कैसे॥
तव तिय उठी चलत पिय जाने। मॉगि मूँठि द्वै चिरवा आने॥
चीर लपेटि सु पिय पकराए। नीकें लिएँ सु द्विज उठि धाए॥
दृष्टि परी जदुपुरी सुहाई। जगमगात छवि वरनि न जाई॥
वन उपवन फल फूल सुहाई। सव रितु रहत समान सुछाई॥
सरवर की छवि वरनि न जाई। मलिन होत सुमलिनता आई॥
ऊँचे कनक-भवन जगमगहीं। चखन मॉहि चकचौंधा लगही॥
लगे जु नग जगमग रहे ऐना। मानहुँ सरस भवन के नैना॥
तापर चपल पताका चमकैं। बिनु घन जनु दामिनि सी दमकैं॥

सुंदर सुथरी डगर जो पुर की । चोवा चंदन बंदन बुरकी ॥
हाथी हय रथ गहै सुसंबर । निकसि न सकत अटनि तनु अंबर ॥
महा बिभूति कछु न सुधि परहीं । क्रम क्रम द्विजवर मग अनुसरहीं ॥
पहुँचे पौरि पौरि तहँ छबि की । बरनि न सकै महामति कवि की ॥
जहँ शंकर नारद मुनि ठाढ़े । औ सुरपति नरपति अति बाढ़े ॥
समय स्याम को नाहिन अबही । रोकैं रहत पौरिया सबही ॥
ठाढ़ो भयो द्वार पै द्विजबर । एक पौरिया आइ गह्यौ कर ॥
लै गयो जहँ रुकमिनि को मंदिर । बैठे तहँ जदुनायक सुंदर ॥
चँवर चारु ढोरत है ठाढ़ी । पिय मुख निरखति अति रति बाढ़ी ॥
जदपि सहस दस दासी आहीं । प्रेम बिबस रस देति न काही ॥
दृष्टि परे द्विजबर तहँ जबहीं । अरबराइ हरि दौरे तबहीं ॥
भले मिले कहि अति मृदुबानी । भेटत भरि आए दृग पानी ॥
अपुने आसन द्विज बैठारे । निज कर-कंजनि चरन पखारे ॥
पोछत रुचि कर पग जगनायक । अपुने पियरे पट सुखदायक ॥
चरन माँहि पट अटक रहत जब । रमा सुंदरी मुसकि परत तब ॥
सुंदर भोजन बिबिध प्रकारी । आनि धरे भरि कंचन थारी ॥
जे सपने कबहूँ नहिं दरसे । श्रीपति-ललना निज कर परसे ॥
ताहि पाइ द्विज सुख नहिं मान्यो । परमानंदकंद रस सान्यों ॥
लै बैठे पुनि श्री जदुनाथा । सुधि कीनी गुरुकुल की गाथा ॥
अहो मित्र जब ईंधन आनन । गुरु-पतनी पठए तब कानन ॥
तोरत ईधन घन घिरि आए । अमित जोर सों जल बरसाए ॥
बरसत बरसत परि गई रजनी । कितहु नगर की डगर सु न जनी ॥
भूले फिरे रैन तहँ सगरी । तऊ न गुरु की पाई नगरी ॥
भयो प्रभात तब गुरु पै आये । धरि ईंधन तब सीस नवाए ॥
वे दिन भले हुते अहो तब तों । बँट गए ठौर ठौर चित अब तों ॥
भली भई फिरि मिल हे तुमको । भाभी कछू दियो है हमको ॥
चिरवा छोरि चीर तैं लीने । भर मूठी निज मुख में दीने ॥
तिसरी बेर बहुरि मन कीने । तब उठि रमा, रमन गहि लीने ॥
करत बात पौढ़े द्विज राती । खान पान करि नाना भाँती ॥
प्रात होत निज धाम सिधारे । रहे नाहि बहुतक पचि हारे ॥
करत चवाव जात निज घर को । मन में कहत कहा ;कहौ हरि कों ॥
पुनि पुनि कहैं अतिहि भल कीनो । जो हरि हमको कछु नहिं दीनों ॥

राखि लयो अपुनों करि जान्यो । परम अनुग्रह इतनों (हम) मान्यो ॥
सब मद तैं धन-मद दुखदाइक । नहि पायों भए पुन्न सहाइक ॥
अँधरो करै बधिर पुनि करहीं । उत पथ चलत विचार न टरहीं ॥
दिन न चैन निसि नींद न परहीं । मोद-मुदित मन अति सुख भरहीं ॥
मन सों बात करत चलि आए । चकित भए निज ठौर न पाए ॥
कहन लगे इहि भवन कौन के । ऐसै है वहाँ रमा-रमन के ॥
अब लौ इहाँ हुतो नहीं ऐसो । अबहीं इहाँ भयो है जैसो ॥
कहन लगे पुनि संभ्रम पायो । कै हौं बहुरि द्वारिका आयो ॥
देखत इन्हैं सु-सेवक धाए । अमरनि तैं वे अधिक सुहाए ॥
अटा चढ़ी अवलोकत तिरिया । टिकत धाम वाम दिय भरिया ॥
आतुर तिय लखि पियहिं सु चमकी । जनु सुमेर तैं दामिनि दमकी ॥
मुदित वदन छबि कौन बखानै । अवनी उतरति उडुपति जानैं ॥
सहस अली लिएँ संग सुंदरी । उडुगन मधि राजत ज्यों चँद री ॥
करि आरति निज भवन सु लीने । सबै मनोरथ पूरन कीने ॥
बहु विभूति हरि द्विज को दीनी । दया भकति यतनी सुभ कीनी ॥
ऐसें जो कोउ हरि को भजै । हरि-उदारता तैं सुख सजै ॥
दीनन को वरदायक नित ही । रहत अधीन भक्त के हित हीं ॥
चरित स्याम को इहि है ऐसों । बरन्यौ 'नंद' जथामति जैसो ॥
दसमस्कंध विमल सुख वानी । सुनत परीछित अति रति मानी ॥
परम चरित सुदामा नित सुनि । हृदय-कमल में राखौं गुनि गुनि ॥
'नंददास' की कृति संपूरन । भक्ति मुक्ति पावै सोइ तूरन ॥

———

भाषा दशम स्कंध

प्रथम अध्याय

नव लच्छन करि लच्छ जो, दसयैं आश्रय रूप ।
'नंद' बंदि लै प्रथम तिहि, श्री कृष्णाख्य अनूप ॥ १ ॥

परम बिचित्र मित्र इक रहै । कृष्ण-चरित्र सुन्यौ सो चहै ॥
तिन कही 'दशम स्कंध' जु आहि । भाषा करि कछु बरनौ ताहि ॥
सब्द संसकृत के हैं जैसैं । मो पै समुझि परत नहिं तैसैं ॥
ताते सरल सु भाषा कीजै । परम अमृत पीजै, सुख जीजै ॥
तासौं 'नंद' कहत है तहाँ । अहो मित्र ! एती मति कहाँ ॥
जामैं वड़े कविजन उरझे । ते वे अजहूँ नाहिन सुरझे ॥
तहँ हौ कवन निपट मतिमंद । बौना पै पकरावौ चंद ॥
अरु जु महामति श्रीधर स्वामी । सब ग्रंथन के अंतरजामी ॥
तिन जु कहे यह भागवत ग्रंथ । जैसैं दूध-उदधि कौ मंथ ॥
तामैं यह श्री 'दशम स्कंध' । आश्रय वस्तु कौं रसमय सिंधु ॥
तिहि मधि हौं किहि बिधि अनुसरौं । क्यौं सिद्धांत रतन उद्धरौं ॥
मित्र कहत है तौ यह ऐसैं । अहो 'नंद' ! तुम कहत हौ जैसै ॥
ऐ परि जथासक्ति कछु कीजै । अमृत को एक बुंदही जीजै ॥

ज्यो गुरु गिरिधर देव की, सुंदर दया दरेर ।
गुंग सकल पिंगल पढ़ै, पंगु चढ़ै गिरि मेर ॥ ८ ॥

प्रथम कहौ नव लच्छन कौन । तिन कौं नीके समझत हौं न ॥
जब लगि इन को भेद न जानै । आश्रय वस्तु सु क्यौं पहिचानै ॥
'नंद' कहत तौ सुनि नव लच्छन । जैसै बरनत बड़े बिचच्छन ॥
'सर्ग' 'बिसर्ग' 'स्थान' अरु 'पोषन' । 'ऊति' 'मन्वंतर' 'नृपगन तोषन' ॥
इक 'निरोध' अरु 'मुक्ति' सुदच्छन । आश्रय वस्तु के ये नव लच्छन ॥
महदादिक जे कारन वर्ग । तिन की सृष्टि जु कहियै 'सर्ग' ॥
कारज विस्व सृष्टि जो आहि । विदुष 'बिसर्ग' कहत है ताहि ॥

सुरजादिक मरजाद वितान। ताहि सु 'स्थान' कहत कवि जान ॥
जद्यपि भगत भज्यो बहु दोषन। ताकी रच्छा कहियै 'पोषन' ॥
साधु असाधु वासना जहाँ। 'ऊति' विभूति समझि लै तहाँ ॥
समीचीन धर्म की प्रवृत्ति। सो कहियै 'मन्वंतर' वृत्ति ॥
मुचुकुंदादि नृपनि की कथा। सो ईसान कथा है जथा ॥
दुष्ट नृपनि कौ हरन अबोध। बुधजन ताकौं कहत 'निरोध' ॥
अन्य रूप की त्यागन जुक्ति। निज स्वरूप की प्रापति 'मुक्ति' ॥
इन लच्छन करि लच्छित जोई। आश्रय वस्तु कहावै सोई ॥
सो आश्रय इहि दसम निकेत। प्रगट आहि भक्तन के हेत ॥
दसयें मधि जु निरोध बखान्यौ। दुष्ट नृप-दलन सब ही जान्यौ ॥
अवर निरोध भेद हैं जिते। अति अद्भुत तू सुनि लै तिते ॥
भक्तहि इतर विषै ते निरोध। उतहि मोक्ष सुख तै अवरोध ॥
सुद्ध प्रेम मधि प्रापति करै। इक निरोध इहि विधि बिस्तरै ॥
ज्यौं ब्रजवासिन मोक्ष दिखाइ। ब्रह्मानंद बहुरि लै जाइ ॥
मधुर मूर्ति विन जब अकुलाने। तब फिरि बहुखौ ब्रज ही आने ॥
अवर निरोध भेद सुनि मित्र। बरनत जा कहुँ परम विचित्र ॥
जदपि कोटि ब्रह्मांड के कर्ता। अरु तिन के भर्ता-संहर्ता ॥
परम सनेह भक्ति होइ जाके। ईस्वरता सो फुरै न ताके ॥
ज्यौं जसुमति मुख में जग पेख्यौ। सुत ईस्वर करि नाहिंन लेख्यौ ॥
ललित लाल लीला लपटानी। सो वह भूत-क्रिया सी जानी ॥
अब सुनि कृष्ण-विषैक निरोध। जदपि अनंत अखंडित बोध ॥
सो तब रंचक ताहि न फुरै। जब हठि मातस्तनु अनुसरै ॥
अवर निरोध भेद जो आहि। रस-लीलनि मै लीज्यौ चाहि ॥
अब सुनि भक्त परीच्छित वातैं। श्री भागवत प्रगट है जातैं ॥
सुंदर हरि मूरति जो आहि। उदर मध्य सो आयौ चाहि ॥
सब ठाँ कृष्ण परीछित लह्यौ। तातैं नाऊँ परीच्छित कह्यौ ॥
जे उत्तम श्रोता रस-सने। तिन मै मुख्य परीच्छित गने ॥
बिसरे जाहि अहार-विहार। केवल हरिगुन-श्रवन-अधार ॥
तैसेई उत्तम वक्ता बने। श्री सुक परम प्रेम-रस सने ॥
कृष्ण ललित लीला अनुरागी। ब्रह्म तैं निकरि भये वैरागी ॥
तिन सौं प्रश्न परीच्छित करे। नख-सिख कृष्ण-चरित रस भरे ॥
हो प्रभु! तुम कह्यो रवि-ससि-बंस। नीके कह्यो रही नहिं संस ॥

अरु जे उभय बंस के भूप। तिन के जे जे चरित अनूप ॥
ते सब पाछे आछे वरने। मनहरने, जग-मंगल करने ॥
अरु जदु धर्मसील कौ बंस। सो पुनि तुम करि भले प्रसंस ॥
धर्मसास्त्र-बल निर्मल हियौ। पितु हितु अपनौ जोवन दियौ ॥
तिहि कुल मैं ईस्वर अवतरे। अंत कला बिभूति करि भरे ॥
मच्छ-कच्छ अवतार विभावन। भूतनि के भावन, मनभावन ॥
सो प्रभु इहि जदुकुल मैं आइ। कीने जे जे कर्म सुभाइ ॥
ते बिस्तर सौं मो सौं कहौ। हे मुनि सत्तम! अलसन गहौ ॥
कृष्ण-गुनानुवाद के बिपै। सब अधिकारी अपनी इपै ॥
मुक्त तेउ गावत रस-भीने। जदपि सकल तृष्ना करि हीने ॥
मुमुषिनु कौ भव औषधि यहै। जातै संसृति रोग न रहै ॥
विषई जन-मन अति अभिराम। जातै सब ही रस कौ धाम ॥
बिना पसुघ्नहि पुरुप सु कौन। कहै कि हरि गुन हौं न सुनौं न ॥
पसुघन सो जो करम दिढ़ावै। कृष्ण-गुनानुवाद नहिं भावै ॥
हमरे तौ हरि कुल के देव। तुम सब नीके जानत भेप ॥
अर्जुन आदि पितामह मेरे। जब कुरुसेना-सागर घेरे ॥
अमरन करि जु न जीते जाहीं। भीपमादि अतिरथि जिनि माहीं ॥
तेई तहाँ तिमिंगिल भारे। अपनी जाति के भच्छनहारे ॥
'तिमि' इक जाति मीन की आहि। सत जोजन बिस्तर है जाहि ॥
ताहि गिलत जो जलचर लहियै। ताको नाउँ 'तिमिगल' कहियै ॥
तिन करि महा दुरत्यय सोई। जो देखै सो अचरज होई ॥
तहँ श्री कृष्ण सु नौका भये। कब धौं तिनहि पार लै गये ॥
अरु केवल तेई नहि तारे। मेरेऊ तन के रखवारे ॥
द्रोन-पुत्र को बान अन्यारौ। अगिनि तैं तातौ, रातौ भारौ ॥
जब आयौ तब मैया मेरी। दौरी, सरन गई तिहि केरी ॥
मेरे हित करिबे हरि कैसे। कुत्सित उदर-दरी मैं पैसे ॥
कुरुबन की तौ संतति मात्र। पांडवन की भक्ति कौ पात्र ॥
सो यह मेरौ अंग सुहायौ। भसम भयौ पुनि फेरि जिवायौ ॥
तिन के चरित अमृतमय जिते। हे सर्बग्य! सुनावहु तिते ॥
तुम करि वे संकर्पन अर्भ। प्रथमहिं कह्यौ देवकी गर्भ ॥
वहुर्यौ ताहि रोहिनी जने। देहांतर बिनु कैसे बने ॥
अरु ईस्वर भगवान मुकुंद। परमानंदकंद स्वच्छंद ॥

ते काहे तें पितु गेह तै। व्रज आये सु कवन नेह तें ॥
व्रज वांसे कवन कवन पुनि कर्म। कीने परम धरम के बर्म ॥
पुनि मधुपुरी आइ नँदनंद। वरपे कवन कवन आनंद ॥
अरु साच्छात मात कौ भ्रात। सो वह कंस हत्यौ किहि बात ॥
कितिक वरस द्वारावति वसे। किितक ललित ललना मैं लसे ॥
जदपि तज्यौ है मै जल अन्न। तदपि न ह्वैहै मो तन खिन्न ॥
तुव मुख-कमल हरिचरित सार। चलिहै परम अमृत की धार ॥
पान करत अस रस अनयास। काके छुधा कौन के प्यास ॥
ता राजा कौ करि सनमान। बोले बैयासिक भगवान ॥
कही कि धन्य धन्य नृप सत्तम। नीके करि निश्चै मति उत्तम ॥
जातैं कृष्णकथा रसमई। तातैं उपजी अति रति नई ॥
प्रश्न जु कृष्णकथा कौ जहाँ। वक्ता, श्रोता, पृच्छक तहाँ ॥
पावन करै सबन कौं ऐसैं। गंगाजल-धारा जग जैसैं ॥

निगम-कल्पतरु कौ सु फल, बीज न बकला जाहि।
कहन लगे रस रँगमगे, सुंदर श्री सुक ताहि ॥

भूप रूप ह्वै असुर बिकारी। कीनी भूमि भार करि भारी ॥
तब यह गाइ-रूप धरि धरती। क्रंदन करती अँसुवन भरती ॥
बिधि सों जाइ कही सब बात। सुनि कलमल्यौ कमल कौ तात ॥
अमर निकर संकर सँग लये। तीर छीरसागर के गये ॥
देव देव पुरुषोत्तम जहाँ। स्तुति करि बिनती कीनी तहाँ ॥
गगन में भई देव की धुनी। सो ब्रह्मा समाधि मैं सुनी ॥
सुनि कै बोल्यो अंबुजतात। सुनहु अमरगन मो तैं बात ॥
आग्या भई बिलंब न करौ। जदुकुल बिषै जाइ अवतरौ ॥
श्री वसुदेव धाम अभिराम। प्रगटहिंगे प्रभु पूरनकाम ॥
सेस सहसमुख सब सुखदाता। ह्वैहै प्रभु कौ अग्रज भ्राता ॥
अरु जु जोगमाया गुनमई। ताहू कौं प्रभु आग्या दई ॥
इहि बिधि बिधि बिबुधन सौं कही। पुनि आस्वासित कीनी मही ॥
मथुरा जादव की रजधानी। श्री गोबिंदचंद की मानी ॥
जितक आहि ब्रह्मांड अनेक। अंसन करि निवसत हरि एक ॥
जिहि ब्रह्मांड मधुपुरी लसै। पूरन ब्रह्म कृष्ण तहँ वसै ॥
जब हरि लीला इच्छा करैं। जगत मैं प्रथम भक्त अवतरैं।

तिन कै प्रभु कौ परिकर जितौ। प्रगट होत लीला हित तितौ॥
तव श्री कृष्ण अवतरहिं आइ। सिद्ध करैं भगतन के भाइ॥
सूरसेन जादव इक नाम। परम भागवत सव गुन धाम॥
ताके निर्मल निगम सरूप। प्रगट्यौ सुत वलदेव अनूप॥
जाके जन्मत अमर नगर मैं। दुंदुभि वाजी वगर वगर मै॥
देवक जादव के इक कन्या। देवमई देवकी सु धन्या॥
सव सुभ लच्छन भरी, गुन भरी। आनि व्रह्म-विद्या अवतरी॥
स्याम वरन तन अस कछु सोहै। इंद्रनील मनि की दुति को है॥
राजति रुचिर जनक के ऐना। चंद सौ बदन, डहडहे नैना॥
बोलत हँसति, हरति इमि हियौ। जनु विधि पुतरी मैं जिय दियौ॥
ब्याहन जोग जानि छविमई। सो देवक वसुदेवहिं दई॥
भयौ बिबाह परम रँग भीनौ। देवक वहुत दाइजौ दीनौ॥
षटसत रथ कंचन के नये। गज सत चारि मत्त छवि छये॥
पंद्रह सहस सुभग किक्यान। कनक भरे, नग जरे पलान॥
बर वरनी, तरुनी रँग भीनी। दासी बीनि तीनि सत दीनी॥
भई बरात विदा ह्वै सजे। भेरी मंदर-कंदर वजे॥
उग्रसेन देवक कौ भ्राता। ताकौ पूत कंस विख्याता॥
भीनौ नव कुंकुम के रंग। कंचन रथ अनेक जिहि संग॥
भगिनी-रथ कौ सारथि भयौ। प्रीति बिवस सु दूरि लौं गयौ॥
वानी भई गगन मैं गूढ़। रे रे कंस! महा मतिमूढ़॥
जाकौं तू भयौ जात है जंता। अठयौ गर्भ सु तेरौ हंता॥
सुनतहिं पापरूप वह कंस। धाइ गह्यो देवकी नृसंस॥
सुंदर बदन बिमन भयौ ऐसैं। राहु के छुवत छपाकर जैसैं॥
काढ़ि खरग मारन कौं भयौ। आनकदुंदुभि तब तहँ गयौ॥
महाराज जिनि करि अस काज। जा काज तैं होइ जग लाज॥
भगिनी, वाला, अरु यह समै। तू बड़भागि, न करि अस अमै॥
जौ तू कहहिं मरन-भय भारी। हौं आपनी करौं रखवारी॥
तौ वह मरन न ढिग ह्वै जाइ। विधना लिख्यौ लिलार वनाइ॥
अबहिं मरौ कि वरष सत वीते। छुटे न कोऊ काल वली ते॥
तातैं पापाचरन न करियै। रंचक सुख वहुत्यौ दुख भरियै॥
अव नहिं दूरि जवहि यह मरै। तव ही और देह कौं धरै॥
ज्यौ तृन-जोंक तृनन अनुसरै। आगे गहि पाछे परिहरै॥

तैसे कर्मबिवस ये जंत। देह धरत दुख भरत अनंत ॥
इन बातन सु कंस क्यौं मानै। आसुर ग्यान प्रतच्छ प्रमानै ॥
तव वसुदेव दया दिखरावै। साम बचन कहि कहि समझावै ॥
यह तेरी अनुजा वर बाला। पुतरी सी बिधि रची रसाला ॥
न करि अमंगल मंगल काल। जातै तू बड़ दीनदयाल ॥
तदपि न ताके रंचक व्यापी। केवल पापी, महा सुरापी ॥
निपटहि ताकौं निग्रह जान्यौ। तव बसुदेव अवर मत ठान्यौ ॥
नीचहि सुत अर्पिबौ दिढ़ाऊँ। मीच के मुख तैं याहि छुड़ाऊँ ॥
जव मेरे उपजहिंगे तात। धाता की अनेक हैं वात ॥
ज्यौं वन-नगर अगिनि परजरै। ढिग के रहैं दूरि के जरै ॥
तव वसुदेव बिहँसि कै कहै। हे राजन रंचक इत चहै ॥
डर तौ तोहि अठयै गर्भ कौ। नहिं याकौ नहिं अवर अर्भ कौ ॥
हौं तोहिं देहौं सिगरे तात। छुये कहत यह तेरौ गात ॥
करि प्रतीति जिय बसुदेव की। छाँड़ि दई हँसि कै सु देवकी ॥
प्रथमहि कीर्त्तिमंत सुत भयौ। बसुदेव ताहि लयै ही गयौ ॥
सत्यप्रतिग्य अनृत तैं डर्‍यौ। लालनादि लालच परिहर्‍यौ ॥
अरु साधुन के दुस्सह कौंन। जिनके नहिं ममता, मति औन ॥
अति कोमल विलोकि कै बाल। कंस भयौ तिहि काल दयाल ॥
घर लै जाहु देव! इहि अरभै। दीजौ मोहिं आठयैं गरभै ॥
चल्यौ सदन, पै वदन उदास। नीचन कौ कछु नहि बिस्वास ॥
वसुदेव घर लौं जान न पायौ। नारद तबहिं कंस पै आयौ ॥
कंस के सांति होइ जो अबै। देव-काज तौ बिगर्‍यौ सबै ॥
आइ कही तासौं सब बातैं। अहो कंस! कछु समझत घातैं ॥
वसुदेवादिक जादव जिते। गोकुल मैं नंदादिक तिते ॥
ये तौ सबै देवता आहि। राजन्! रंचक जिनि पतियाहि ॥
कहि कै गयौ वचन इहि विधि कौ। पर-घर-घातक, बालक बिधि कौ ॥
तव ही सो सिसु फेरि मँगायौ। वसुदेव ताहि बहुरि लै आयौ ॥
डार्‍यौ पटकि न उपजी मया। जे जस नृप, तिन के को दया ॥
देवकी विपै विष्णु अवतरि हैं। मेरे वध कौ उद्दिम करिहैं ॥
पहिले कालनेम हौं हुतौ। विष्णु सदा कौं बैरी सुतौ ॥
अव कैं ऐसैं जतनन जतौं। विष्णुहि गर्भ बीच ही हतौं[1] ॥

---

१. प्रति क में नहीं है।

तब वसुदेव देवकी आनि। पाइनि सुदृढ़ शृंखला वानि ॥
राखे निकट, बिकट अस ठौर। जहँ कोउ जान न पावै और ॥
जोइ जोइ वालक उपजत जात। सोइ[1] सोइ हतै न बूझै बात ॥
विष्णु जन्म की संका करै। मति इन ही मैं ह्वै संचरै ॥
बंधु-मित्र जादव हे जिते। बल करि बंधन कीने तिते ॥
उग्रसेन अपनी महतारौ। सो बाँध्यौ, दीनौ दुख भारौ ॥
महा बली अरु महा नृसंस। राजा भयौ मधुपुरी कंस ॥

'नंद' जथा मति कै तथा, वरन्यौ प्रथम अध्याइ।
जाके रंचक सुनत सब, कर्म-कपाइ नसाइ ॥

द्वितीय अध्याय

अब सुनि लै द्वितीय अध्याइ। जामैं ब्रह्मादिक सब आइ ॥
गर्भस्तुति करिहैं सिर नाइ। चरन-कमल वैभव दिखराइ[2] ॥
जे हैं नीच बुरे ही बुरे। ते सब आनि कंस पै जुरे ॥
अघ, बक, बकी, प्रलंब, अरिष्ट। तृनावर्त्त, खर, केसी नष्ट ॥
मागध जरासिंध बल-अंध। तासौं जाहि ससुर संबंध ॥
जादवन कौं दैन दुख लागे। ते तजि देस विदेसन[3] भागे ॥
कैइक रहे ताहि अरगाने। अक्रूरादिक अनसनमाने ॥
देवकी के षट सिसु जब कंस। हते महा बल, महा नृसंस ॥
सप्तम गर्भ विष्णु कौ धाम। भयौ अनंत जाहि है नाम ॥
देवकि तहाँ अति न परकासी। हर्ष-सोक दोऊ मिलि भासी ॥
कछु फूली, कछु नाहिंन फूली। जैसै प्रात कमल की कली ॥
जदुकुल कौ दुख दिखि भगवान। व्याकुल भये जानमनि जान ॥
बोलि जोगमाया मनहरनी। तासौं प्रभु सब वातै वरनी ॥
हे भद्रे ! बड़भागिनि महा। भाग महिम तुव कहियै कहा ॥

---

१. पाठा०—जोई।
२. प्रति क में इन दो चौपाइओं के बदले निम्नलिखित दोहा है—
अब सुनि द्वितीय अध्याइ यह ब्रह्मादिक सब आइ।
करिहैं गर्भ-स्तुति महा भक्ति विभव दिखराइ ॥
३. पाठा०—देस को।

जातें तू अत्र गोकुल जैहै। देखत निरवधि सुख कौं पैहै॥
गोपी-गोपन करि अति मंडित। तामैं नित्यानंद अखंडित॥
राजत गोपराइ तहँ नंद। मूरति धरे सु परमानंद॥
ताके घर वसुदेव की घरनी। दुरी रहति रोहिनि वर-बरनी॥
देवकी जठर गर्भ जो आहि। रोहिनी उदर ताहि लै जाहि॥
गर्भ-मरन संका जिनि करै। मेरौ अंस न कबहूँ मरै॥
तदनंतर तिहि जठर अनूप। ऐहैं हम परिपूरन रूप॥
तू उहि नंद गोप के धाम। मुकति-गेहिनी जसुमति नाम।
तू तहँ नाममात्र होइ कै। करि सब काज सबन भोइ कै॥
ह्वैहैं भुवि तेरे बहु नाम। पूरन करिहैं सब के काम॥
भवा, भवानी, मृडा, मृडानी। काली, कात्याइनो, हिमानी॥
ऐसै प्रभु की आग्या पाइ। माया तुरत महीतल आइ॥
रोहिनी त्रिषै देवकी गर्भ। आन्यौ करखि तबहि सो अर्भ॥
नगर मैं, बगर बगर ह्वै गयौ। देवकि गर्भ त्रिसंस्रुत भयौ॥
तब ईश्वर सब अंसन भरे। आनकदुंदुभि मन संचरे॥
वसुदेव तिहि छन अतिसै सोहे। भानु समान परत नहिं जोहे॥
मन हीं करि देवकि मैं धरे। न कछु धातु संबंधहि ररे॥
ज्यौं गुरु स्निग्ध सिष्य के हेत। हृदगत वस्तु दया करि देत॥
हरि उर धरि देवकि अति सोही। अपने रूप आप ही मोही॥
ए परि घर ही घर आभासी। बाहिर कहुँ न तनक परकासी॥
जैसैं घट मैं दीपक-ज्योति। भीतर जगमग जगमग होति॥
अरु ज्यौं वंचक मैं सरस्वती। पर उपकार करत नहिं रती॥
ऐसैं जगमगाति ही जहाँ। आयौ कंस पापमति तहाँ॥
कहत कि मेरौ हंता जोई। अब कैं निश्चै आयौ सोई॥
जातैं पाछे हुती न ऐसी। राजति तेजरासि सी वैसी॥
कौ उदिम करियै इहि काल। सुसा, गुर्बिनी, बहुन्यौ बाल॥
याकौ वध न श्रेय कौं करै। आयु, कीर्ति, संपति सब हरै॥
अरु ह्याँ सब कोउ धृग धृग करै। मरे महा रौरव में परै॥
इहि परकार विचारहि आइ। फिरि गयो घर पै, कछु न बसाइ॥
निसि दिन जनम-प्रतीच्छा करै। थर-थर डरै, नींद नहि परै॥
बैठत उठत, चलत, चकि रहै। मति इत ही तैं उठि मोहिं गहै॥
अंबर झारि सेज पर सोवै। भोजन करत सीथ टकटोवै॥

बैर-भाव जिय अति वढ़ि गयौ। सब जग जाहि विष्णु मै भयौ ॥
तदनंतर संकर, अज, सारद। अम्रर अमर बर, मुनिवर नारद ॥
दरसन हित आये अरवरे। अति मुद भरे, अचंभे भरे ॥
जाके उदर मध्य जग सबै। सो देवकी जठर मै अबै ॥
केई रबि केइ ससि से गये। आगे दिन दीया से भये ॥
देवकि जठर झलमलत ऐसैं। रतन-मँजूपा नव नग जैसैं ॥
करि दंडवत महा मुद भरे। इकहि बेर सब पाइन परे ॥
पुनि पुनि उठि चरनन लटपटे। क्रीटन के जु कोटि कटपटे ॥
बनी जु मुकुट रतन की जोति। जनु श्री हरि की आरति होति ॥
गदगद कंठ, प्रेम-रस भरे। अंजुलि जोरि स्तुती अनुसरे ॥
कहत कि अहो सत्य-संकल्प। सब बिधि सत्य, नित्य, वड़ कल्प ॥
तुमहि प्रपन्न भये हम सबै। रच्छा करहु हमारी अबै ॥
जौ तुम कहहु तुमहु सब लाइक। जगनाइक अरु सब फलदाइक ॥
क्यौ बोलत लिलात से बैन। तहँ तुम सुनहु कमल-दल-नैन ॥
तुम परमेश्वर सब के नाथ। विस्व समस्त तिहारे हाथ ॥
छिनक मै करौ, भरौ, संहरौ। ऊर्ननाभि लौ फिरि विस्तरौ ॥
तुम तैं हम सब उपजत ऐसैं। अगिनि तैं विस्फुलिग गन जैसैं ॥
ये अद्भुत अवतार जु लेत। वित्वहि प्रतिपालन के हेत ॥
जौ दिन दिन दिनमनि न उवाइ। तौ सब अंध-धुंध ह्वै जाइ ॥
अरु अपने भक्तन के हेतु। दुर्लभ मुकति सुलभ करि देत ॥
तुव पदपंकज नौका करि कै। पार परे भवसागर तरि कै ॥
पदपंकज के सन्निधि मात्र। तब ही भये मुक्ति के पात्र ॥
तिन कौं भवसागर भयौ ऐसौ। गो-वच्छ-पद कौ पानी जैसो ॥
सो पदपंकज सुंदर नाउ। इत ही राखि गये भरि भाउ ॥
जैसैं इतर तरहि भव-सिंधु। परम सुहृद वे सब के वंधु[1] ॥
जे विमुक्त, मानी, मद-भरे। तुव पद कमल निरादर करे ॥
ते ऊँचे चढ़ि कै खरहरे। धमकि धमकि नरकन मैं परे ॥
जिन करि चरन-कमल आदरे। ते कबहूँ न उखटि हूँ परे ॥
जग मैं जे विघननि के राइ। तिन के सीसनि धरि भरि पाइ ॥

---

१. पाठा०—जाके सुंदर सब ही बंधु ।

बिचरत निरभै भगत तिहारे। तुम से प्रभु जिनके रखवारे॥
ते वै तुम्हरे चरन-सरोज। या अवनी पर परिहै खोज॥
ठौर ठौर तिन कौं देखिहैं। जीवन-जनम सुफल लेखिहैं॥
तब देवकि आस्वासित करी। तुम सी को है भागनि भरी॥
जाकी कूख विषै भगवान। जो साच्छात पुरान पुमान॥
आयौ रच्छक जदूबंस को। धुंसक असुर बस कंस कौ॥
पुनि वंदन करि भरे अनंद। चले धरनि बृंदारक-बृंद॥

गर्भस्तुति हरि अर्भ की, सुनै जु द्वितीय अध्याइ।
सो न परै फिरि गर्भ-मल, नर निर्मल ह्वै जाइ॥

तृतीय अध्याय

सुनि लै तृतीय अध्याइ अब, सुंदर परम अनूप।
प्रेम भरे जग प्रगटिहैं, हरि परिपूरन रूप॥

पहिले उपज्यौ सुंदर काल। सब गुन भर्यौ, जु परम रसाल॥
अति सोहन रोहिनी नछत्र। जाके सब ग्रह ह्वै गये मित्र॥
ठाँ ठाँ मंगल पूरित मही। वहुतक नदी दूध-घृत वही॥
सब के मन प्रसन्न भये ऐसैं। निधन महाधन पाये जैसैं॥
भादौं सलिल सुच्छ अस भये। जैसैं मुनि मन निर्मल नये॥
सरनि मध्य सरसीरुह फूले। तिन पर लंपट अलिकुल भूले॥
दिसा प्रसन्न सु को छवि गनौं। दिसि दिसि चंद उगहिंगे मनौं।
कुसुमित वनराजी अति राजी। ऐसी नहिन वसंत विराजी॥
बुझे अगिनि आपुहि वरि उठे। हँसि हँसि मिले, हुते जे रुठे॥
मंद सुगंध पवन अस वहै। जिहि सुबास त्रिभुवन चकि रहै॥
मंद मंद अंबुद गन गजे। धर्म के जनु कि दमामे वजे॥
तैसियै वजत देव-दुंदुभी। दुर्जन मन कंटक जिमि चुभी॥
हरषे मुनिवर अमर पुरंदर। वरषैं सुमन सु सुंदर सुंदर॥
निर्तति देवनटी छवि-जटी। लटकै जनु कि छटन की छटी॥
सुंदर अर्द्ध रैनि जब गई। अति सिंगार-मई छवि-छई॥
तब देवकि तैं प्रगटे ऐसैं। पूरब तैं पूरन ससि जैसैं॥

पूर्व जठर मधि नहि कछु चंद। वादमात्र अस देवकि-नंद ॥
अद्भुत सिसु कछु परत[1] न कह्यौ। आनकदुंदुभि चहि चकि रह्यौ ॥
माथे मनिमय मुकुट सुदेस। सचिकन सुंदर घुँघरे केस ॥
कुंडल-मंडित गंड सलोल। मंद हँसनि श्री करत कलोल ॥
कंचन-माल, मुकत की माल। झिलमिलात छवि छती विसाल ॥
सुंदर कंठ सु[2] कौस्तुभ लसै। निकर-बिभाकर दुति कौं हँसै ॥
गंध लुब्ध जे अद्भुत भृंग। ते आये बनमाला संग ॥
छवि बावरी साँवरी बाहु। मिटि गयौ हेरत हिय कौ दाहु ॥
कटि किंकिनि, चरननि बर नूपुर। हौं बलि बलि कीनौ तिन ऊपर[3] ॥
बसुदेव देखि सु मन मन गुने। ऐसौ बालक होत न सुने ॥
पुनि कीनौ श्रुति-सार-बिचार। मेरे घर ईस्वर अवतार ॥
कह्यौ हुतौ सु भयौ यह अबै। पूर्न मनोरथ मेरे सबै ॥
बढ़्यौ जु आनँद-सिंधु सुहायौ। ताही मैं वसुदेव अन्हायौ ॥
दस सहस्र गैया रँग भीनी। मन ही करि संकल्पित कीनी ॥
सुद्ध बुद्धि, वत्सल रस भरे। अंजुलि जोरि स्तुती अनुसरे ॥
कही कि हो प्रभु! मै तुम जाने। प्रकृति तै परे जु पुरुष बखाने ॥
कहहु कि याहि कहा तुम लह्यौ। पुरुष तौ प्रकृति परे हूँ कह्यौ ॥
सहँ तुम सुनहु कमल-दल-नैन। जहाँ न पहुँचैं श्रुति के बैन ॥
मुनि मन जिहिं समाधि पथ हेरे। सो साच्छात दृगन-पथ मेरें ॥
प्रभु जु आनि मेरे अवतरे। परम तरुन करुना करि भरे ॥
नृप-दल करि वढ़ि असुर विकारी। कीनी भूमि भार करि भारी ॥
तिनहि निदरिहौ भू-भर हरिहौ। संतन की रखवारी करिहौ ॥
ऐ परि सावधान इहि बीच। निपटहि बुरौ कंस यह नीच ॥
तुम्हरे जनमहि सुनि कै अबै। ऐहै आयुध लीने सबै ॥
तदनंतर देवकि अवहेरे। महापुरुष लच्छन सुत केरे ॥
मंद मंद मधुरे मुसकाइ। कीनी स्तुति थोरियै बनाइ ॥
ब्रह्म निरीह जोति अबिकार। सतामात्र जगत-आधार ॥
अरु अध्यातम-दीप जु कोई। बुध्यादिक परकासक सोई ॥

---

१. पाठा० जात। २. पाठा० तैसियै मनिवर। ३. क प्रति मे इसके अनंतर यह अधिक है—

सुदर बर पीताम्बर धरे। संप चक्र आयुध कर करें ॥

सो साच्छात वस्तु तुम आहि। भै-संका ह्याँ कहियै काहि ॥
अरु जब लोक चराचर जितौ। लीन होत माया मैं तितौ ॥
तब तुम हीं तहँ रहत अकेले। छेमधाम निज रस मैं भेले ॥
अरु यह मृत्युरूप जो व्याल। संग फिरत नित महा कराल ॥
जो कोउ सकल लोक फिरि आवै। यातैं अभै न कित हूँ पावै ॥
कौनहुँ भाँत जोग करि कोई। तुव पद-पंकज प्रापत होई ॥
तब भले मीच नीच फिरि जाइ। चरन सरन गये कछु न बसाइ ॥
प्रभु यह तुम्हरौ अद्भुत रूप। ध्यान जोग्य, निपट ही अनूप[1] ॥
अरु प्रभु मो तैं जनम तिहारौ। जिनि जानै यह कंस हत्यारौ ॥
रूप अलौकिक उपसंहरौ। हे सुंदर वर! नर बपु धरौ ॥
जौ कहहु कि मो सौं सुत पाई। पैहौ जग मैं वड़ी वड़ाई ॥
तब तुम सुनहु कमल-दल-नैन। या अनूप रूप सौं बनै न ॥
जाके जठर मध्य जग जितौ। जथावकास रहत है तितौ ॥
सो मम गर्भ-भूत जो सुनिहै। हँसिहै मोहिं, असंभव[2] मनिहै ॥
तब बोले श्री हरि मुसकात। जो तुम या कंस तैं डरात[3] ॥
तौ मोहि उहि गोकुल नंद के। लै राखौ आनंदकंद के ॥
इतनी कहि कै मोहनलाल। देखत भये तनक से बाल ॥
देवकि दौरि कंठ लपटाये। प्रान तैं अधिक पियारे पाये ॥
वसुदेव कहै विलंवु न लाइ। दै मोहिं सुत-रिपु जैहै आइ ॥
लै लटि रही कंठ लपटाइ[4]। अति सुंदर सुत दियौ न जाइ ॥
पुनि कंस तैं महा डर डरी। पिछले पूतन की सुधि करी ॥
लीनौ तनक पयोधर प्याइ। फूल सौं जिनि मग मै कुम्हिलाइ ॥
पुनि पुनि वदन-चंद्रमा चूमि। दीनी सुत पै अति दुख घूमि ॥
लयौ लपेटि सु पट वर वाल। वसुदेव चले तुरत तिहि काल ॥
आपुहि उघरे कुटिल किवार। भोर भये ज्यौं भॅजत अँध्यार ॥
पौरिनु परे पहरुवा ऐसैं। अति मादक मद पीये जैसैं ॥
घुरि आये घन करि अँधियारौ। जान्यौ परै न ज्यौं रवि वारौ ॥

---

१. प्रति क मे यह अधिक है—
या छवि की मोहि लगौ वलाइ। चर्म चपनि करि जिनि दिखराइ ॥
२. पाठा०—अचंभो। ३. पाठा०— मोरी वात सुनो एक तात।
४. पाठा०—दृगनि जल नाइ।

फुही फूल से परत सुदेस। ते सहि सक्यौ न सेवक सेस॥
प्रेम-मगन सु गगन मैं आइ। लयौ फननि कौ छत्र बनाइ॥
बसुदेव सुत-मुख के उजियारे। चल्यौ जाइ भरि आनँद भारे[1]॥
जम-अनुजा की ढिग जौ जाई। वाट न घाट, रही जल छाई॥
उठिहि जु लहरि सुधि न कछु परै। चढ़ी गगन सौ बातैं करै॥
दृष्टि परि गये मोहन जब हीं। मधि तैं इत-उत ह्वै गई तब ही॥
दीनौ प्रभु कौ मारग ऐसैं। सीतापति कौ सागर जैसैं॥
इत सोचति देवकि महतारी। ह्वैहै मेरो ललन दुखारी॥
भरि भादौ की रैनि अँध्यारी। लहलहात बिजुरी वजमारी॥
बहुयो बीच कलिंदी कारी। भरि रही नीर भयानक भारी॥
चंद सौ बदन दुख्यौ नहिं रहिहै। दैया कोऊ दूरि तै लहिहै॥
डोलत बहुत कंस के दूत। दैव कुसर सौं जैहै पूत॥
यौं बिललाइ देवकी माई। कहति कि हो हरि तुमहिं सहाई॥
निरख्यौ जदपि पूत-परमाऊ। तदपि प्रेम कौ यहै सुभाऊ॥
वसुदेव जब गोकुल मै गये। देखे सब निद्रा-बस भये॥
सुत जसुमति की ढिंग पौढ़ाइ। सुता परी तहँ तैं इक पाइ॥
लै आये फिरि ताही बाट। तैसैंइ जुरि गये कुटिल कपाट॥
वैठे बहुरि पहिरि पग बेरी। ज्यौं कोउ गाड़ि घरै जन ढेरी॥

जो कोउ जोति ब्रह्ममय, रसमय सब ही भाइ।
सो प्रगटित निज रूप करि, इहि तिसरे अध्याइ॥

चतुर्थ अध्याय

अब चतुर्थ अध्याइ सुनि, परम अर्थ कौं दैन।
संस परी जहँ कंस-जिय, चंड चंडिका-बैन॥

बालक धुनि सुनि परी जु रौर। उठे पहरुवा ठौरहि ठौर॥
धाये गये कंस के ऐन। अठयौं गर्भ महा भय दैन॥
सुनतहि उठ्यौ तलपते कस। कहत कि आयौ काल नृसंस॥
कर करवार, सु बगरे बार। न कछु सँभार, महा निकरार॥
अखुटत परत, सु बिह्वल भयौ। डरत डरत सूती-गृह गयौ॥

---
१. पाठा०--मारग चले गए सुखियारे।

बोलि उठी देवकि छविमई[1]। भैया न डर भनैजी भई ॥
याहि न मारि देखि दिसि मेरी। हौं अनुजा मनुजाधिप तेरी ॥
डारे हैं तैं हति बहुतेरे। पावक की उपमा सुत मेरे ॥
इह इक मो कौ माँगी दीजै। बलि बलि, अति अनीति नहिं कीजै ॥
नीचन के को सुहृद सुभाउ[2]। तामैं यह नीचन कौ राउ ॥
चपरि छती तैं लई छड़ाइ। पकरि पाइ ऊँचे उचकाइ ॥
सिल पर पटकन कौ भयौ जबै। कर तैं निकसि गई सो तबै ॥
जाइ गगन मैं देवी भई। महा तेज छाजति छविछई ॥
राजति राजिवदल से नैना। बोली बिहँसि कंस सौं बैना ॥
रे रे मंद! न करि जिय गारौ। उपज्यौ है तुव मारनहारौ ॥
ताके बचन सुने जब कंस। विस्मय भयौ, पर्‍यौ जिय संस ॥
कहत कि दैवी बानी महा। झूठ परी सो कारन कहा ॥
देवकि बसुदेव दीने छोरि। बिनती करत कंस कर जोरि ॥
अहो भगिनि! अहो भगिनीभर्ता। मो सम नहिंन पाप कौ कर्ता ॥
राच्छस ज्यौं अपने सुत खाइ। सो मै कीनी नीच सुभाइ ॥
ज्यौं ब्रह्महा जीवत ही मर्‍यौ। ऐसौ हौ हूँ विधना कर्‍यौ ॥
नर तौ जनौ अनृत ही पगे[3]। अमरौ अनृत वकन पुनि लगे ॥
जिहि बिस्वास सुसा के तात। सौनक ज्यौं मैं कीनी घात ॥
जिनि सोचहु उनके अनुराग। जातै तुम सम नहि वड़ भाग ॥
निज प्रारब्ध कर्म करि बौरे। रहत न सदा जात इक ठौरे ॥
तातैं सोक तजहु सुखमयी। कर्म-बिबस जु भई सो भई ॥
छिमा करहु मेरौ अपराध। जातैं दीनबंधु तुम साध ॥
एसैं कहि लोचन जल भर्‍यौ। दौरि सुसा के पाइन पर्‍यौ ॥
सांत भयौ देवकि कौ रोप। बसुदेवहु पुनि कीनौ तोप ॥
आग्या पाइ जाइ घर कंस। कन्या-बचन परी जिय संस ॥
रजनी गय भयौ परभात। मंत्रिन सौं बरनी सब बात ॥
सुनि नृप-बचन असुर भहराने। अमरनि पर निपटहि रिसियाने ॥
कहन लगे जो ऐसैं आहि। महाराज तौ डरौ न ताहि ॥
दस दस दिन के बालक जिते। हम सब मारि डारिहैं तिते ॥

---

१. पाठा०—सुभमई। २. पाठा०—सौहृद भाउ। ३. पाठा०—मनुष तो जनौ झूठ हीं पगे।

का उद्दिम करिहैं सब देव। जानत हैं हम उन के भेव[1] ॥
अभय ठौर तौ वलगन करैं। भीर परे ते थर थर डरैं ॥
सुरपति कवन अलप बल जाहि। ब्रह्मा वपुरो तपसी आहि ॥
संभु न कछू तियनि तैं बुरौ। रहत इलावृत बन मैं दुरौ ॥
विष्णु कहूँ इकंत है पर्यौ। हे राजन तेरे डर डर्यौ ॥
ऐंपरि रिपुहिं अलप न जानियै। मर्म दुखद बहुतै मानियै ॥
कितकु होत है कंटक जैसैं। चरन मध्य कसकत है कैसैं ॥
अरु ज्यौ अंग रोग अंकुरै। तब हीं जौ न जतन अनुसरै ॥
तौ बढ़ि जाइ न कछू बसाइ। तातैं कीजै तुरत[2] उपाइ ॥
प्रथमहि उत्तम मति इह करौ। धरि धरि रूप धरनि सचरौ ॥
गाइन मारौ मखन बिगारौ। रिपिजन पकरि भछन करि डारौ ॥
विष्णु के बध कौ इहै उपाइ। हतियै बिप्र, वेद अरु गाइ ॥
मंत्रिन मिलि जब यह मत ठान्यौ। दुर्मति कंस महा हित मान्यौ ॥
संतन कौ बिद्वेस जु आहि। मृत्युमात्र जिनि जानहु ताहि ॥
आयु, कीर्ति, संपति सब हरै। अवर बहुत अनरथ कौ करै ॥
आग्या पाइ चले सब सठ वै। ज्यों कोउ बृकन अजन प्रति पठवै ॥

बुरी हौन कौं हौइ जब, तब उपजत ये भाइ।
वेद-बिप्र निंदा करै, कह्यौ चतुर्थ अध्याइ ॥

पंचम अध्याय

अब पंचम अध्याय सुनि जो है माथे भाग।
नंद महोछौ नवल घन बरपैगो अनुराग ॥ १ ॥

नंद महर घर जब सुत जायौ। सुनतहि सवन प्रान सो पायौ ॥
परम उदार नंद मुद भरे। फूले नैननि राजत खरे ॥
पूत उदय ज्यो पयनिधि पेखि। बढ़तु है रंग तरंग बिसेपि ॥
बोले ब्रज के द्विज बड़भागी। जिनके हुती यहै लौ लागी ॥
आपुन सुचि सुगंध जल न्हाये। विप्रनि चंदन तिलक बनाये ॥
नंद के भूषन दिखि मन भूल्यो। मनो अनंद महीरुह फूल्यो ॥

---

१. पाठा०—हम सब नीके जानत भेव।

२. पाठा०—अबहिं।

बिधिवत जात कर्म करवाई। लागे दान देन ब्रजराई॥
द्वै लख धेनु सवच्छ बहु दूधी। प्रथम प्रसूता सुंदर सूधी॥
कंचन सींग मढ़ी सोहनी। कंचन की बड्डी दोहनी॥
बहुरौ तिल अरु रतन मिलाइ। कीने बड्डे सैल बनाइ॥
ऊपर कंचन छादन छाइ। दीने ब्रज के द्विजन बुलाइ॥
अवर बहुत दीनौ ब्रजराज। अपने कुल मंडन[1] के काज॥
तिहि छन नंद सदन की सोभा। नहिं कहि परति लगति जिय लोभा॥
इत जु बेद धुनि की छबि बढ़ी। मंगल बेलि सी त्रिभुवन चढ़ी॥
इत मागध सुबंस जसु पढ़ैं। इत बंदीजन गुन गन रढ़ैं॥
गावत इत जु रागिनी राग। चुवैं परत जिनकैं अनुराग॥
आनँदघन जिमि दुंदुभि बजैं। जिन सुनि सकल अमंगल भजैं॥
सुनिकैं गोप महामुद भरे। चले सु बनि बनि रंगनि ररे॥
पहिरे अंबर सुंदर सुदर। जे कबहूँ निरखे न पुरंदर॥
मंगल भेट करनि में लियें। मैंन से लरिकनि आगे किये॥
गोपी मुदित भयो मन भायौ। महरि जसोदा ढोटा जायौ॥
चलीं तुरत सजि सहज सिंगार। छतियनि उछरत मोतिन हार॥
श्रवननि मनि कुंडल झलमलैं। बेगि चलन को जनु कलमलैं॥
चले जु चपल नयन छबि बढ़े। चंदनि मनहुँ मीन हें चढ़े॥
सुपम कुसुम सीसनि तें खसैं। जनु आनंद भरे कच हँसैं॥
हाथनि थार सु लागत[2] भले। कंजनि जनु कि[3] चंद चढ़ि चले॥
मंगलि गीतनि गावति गावति। चहुँ दिसि तें आवति छबि पावति॥
नंद अजिर में लगीं सुहाईं। जनु ए सब कमला चली आईं॥
सींचति सबनि हरद अरु दही। तब की छबि कछु परति न कही॥
सुंदर मंदिर भीतर गईं। जसुमति अति आदर करि लईं॥
लै लै अंचल ललित सुहाईं। पूजे सबनि सासु के पाईं॥
पौढ़े ललन जसोमति आगें। झीनें पट में नीके लागें॥
बदन उघारि उघारि निहारें। देहिं असीस अपनपौ वारें॥
हो हरि! यह लरिका चिरु जीजो। बहुत काल हमको सुख दीजो॥
ब्रज की छबि कछु कहत बनैं न। जहँ आये श्री पंकजनैन॥

---

१. पाठा०—पुत्र उदय। २. पाठा०—लगत अति।
३. पाठा०—मनहु।

घर औरै अंगन छवि[१] और। जगमग जगमग ठौरहि ठौर ॥
नग जु वने यौं लगे सुहाये। गृहनि के मनहुँ[२] नैन ह्वै आये ॥
मुक्ता वंदनमाल जु लसैं। जनु आनंद भरे घर हँसैं ॥
धाम धाम प्रति धुजन की सोभा। जनु निकसी व्रज छवि की गोभा ॥
जितिक हुतीं व्रज गो, बछ्र बाछी। तेल हरद करि आछी काछी ॥
माथे मनिमय पटी वनाई। कंचन दाम सबनि पहिराई ॥
तव नंद जू गोपगन जिते। वैठारे मनि आँगन तिते ॥
नव-अंबर सुंदर मनिमाला। पहिराये सब जन तिहि काला ॥
पुनि जितीक गोपीजन आईं। ते रोहिनी सवहि पहिराईं ॥
कंचन पट पदिकनि के छरा। सुंदर गजमोतिन के हरा ॥
औरो जन जे कौतुक आये। नंद महर ते सब पहिराये ॥
मंगत जन परिपूरन भये। दारिदहू के दारिद गये ॥
तव तैं व्रज छवि अस कछु लसी। रमा रीझि कै तहँई बसी ॥
मास दिवस के मोहनलाल। भये कछुक मुँह चहे रसाल ॥
सुंदर वदन विलोकैं नंद। छिनु छिनु पावैं परमानंद ॥
ऐसेहि माँझ महादुख पायौ। कंश कौं कर देनौ दिन आयौ ॥
रक्षक राखि घोष यों भले। मथुरा नगर नंद जू चले ॥
तनु आगे मनु पाछैं ऐसे। दड के संग पताका जैसे ॥
तुरत जाइ नृप कौ कर दयौ। व्रजपति व्रज चलिवे कौ भयौ ॥
समाचार बसुदेव जु पाये। सखहि मिलन मिलानहि आये ॥
निरखि जु उठे नंद भरि नेह। ज्यों प्राननि के आये देह ॥
जैसे मीत-मिलन है कह्यो। सो वसुदेव नंद के लह्यो ॥
वैठे परम प्रेम रस पागे[३]। बसुदेव वात कहन तव लागे ॥
अहो भ्रात वड़ मंगल भयौ। विधना तुम्हरे पूत जु दयौ ॥
वड़े भये हे करत विलास। कौने हुती पूत की आस ॥
अरु हम मिले भयौ मन भायौ। फिरि कै बहुरि जनम सो पायौ ॥
सब ह्वे आवे अपने ढार। मीत-मिलन दुर्लभ संसार[४] ॥
जौ कबहूँ काहू संजोग। आनि मिलहिं जौ प्रीतम लोग ॥
तौ ये नाना कर्म विचित्र। इकठे रहन न पावै मित्र ॥

---

१. पाठा० कछु। २. जनु कि।
३. पाठा० रँगमगे। ४. यह पंक्ति प्रति क में नहीं है।

जैसे नदी तरंगनि पाइ। मिलत है आठ काठ बहि आइ ॥
बहुरि जु कोउ लहरि उठि आवै। पकरि पकरि धौं कितहि बहावै ॥
पुनि पूछत सुत की कुसरात। गदगद कंठ फुरत नहिं बात ॥
अहो भ्रात वह तात हमारौ। नीकौ है रोहिनी पियारौ ॥
तुम करि तोपित पोपित गात। तुमही मानत[1] ह्वैहै तात ॥
जदपि अर्थ धर्म अरु काम। इन करि भर्यौ पुरुष को धाम ॥
अहो नंद तदपि न सुख कोई। सुहृदन कौ बियोग जहँ होई ॥
नंद समोधत ताकौ चित। सब अदिष्ट बस होतु है मित्त ॥
जौ तो निपट बिकूल बिधाता। केते हते कंस तुव ताता ॥
कन्या एक जु पाछैं भई। सु पुनि अदिष्ट लई उड़ि गई ॥
है सब उहि अदिष्ट के धोरें। बिछुरे मिलवै मिले बिछोरे ॥
नंद की बानी दैवी मानी। मिलिहैं सुत मोहि यौं जिय जानी ॥
तब कही अहो बेगि घर जाहु। पूतहि रंचक जिमि पतियाहु ॥
ए देखि फरकत मेरे गात। ब्रज में आहि कछुक उतपात ॥
सुनतहि बचन नंद कलमले। कवन पवन ऐसी गति चले ॥
प्रेम रपट जु परी बिच आइ। रंचक सूधे परत न पाइ ॥
इहि बिधि यह पंचम अध्याय। जु कोऊ सुने तनक मन लाय ॥
दीयमान मुक्तिहिं नहिं गहै। और छुद्र सुख की को कहै ॥

जदपि नित्य किसोर हरि बदत बेद इमि बैन।
सबै बयस ब्रज देन सुख प्रगटे पंकज नैन ॥

षष्ठ अध्याय

सुनि लै छठौ अध्याय अब अहो मित्र अति चित्र।
जहाँ सकल मल कौ हरन बकी चरित्र पवित्र ॥ १ ॥

सोचत चले नंद मग माहीं। बसुदेव बचन मृषा तौ नाहीं ॥
हो हरि ईश्वर सरन तुम्हारी। वा सिसु की कीजहु रखवारी ॥
इक तौ सहजहिं हुती नृसंस। पुनि चेरी करि प्रेरी कंस ॥
चली पूतना सिसुन सँघारति। केइ पटकनि केइ खाइहि डारति ॥
इहि बिधि बिचरति बिचरति बकी। इक दिन ब्रज आई तकतकी ॥

---

1. पाठा० ममभ्रत।

श्रीशुक यौं जब कही सुभाइ । राजा सुनत विकल ह्वै जाइ ॥
ताकौ समाधान सुक करै । हो राजन् ! इहि डर जिनि डरै ॥
नाम मात्र जिहि प्रभु को जहाँ । ऐसे को प्रभाव नहि तहाँ ॥
सो साक्षात नंद कौ धाम । भय रुंका को ह्याँ का काम ॥
अद्भुत वनिता वेष वनाइ । अँग अँग रूप अनूप चुवाइ ॥
ललित सुभूपन ललित दुकूल । खसि खसि परत सीस ते फूल ॥
कंठ में हीरा, आनन वीरा । पाइनि वाजत मंजु मँजीरा ॥
लटकि चलति तब को छवि गनौ । परिहै टूटि लटी कटि मनो ॥
कमल फिरावति नैंन दुरावति । मधुर मधुर मुसकति छवि पावति ॥
गोप रहे सब जोहे मोहे । जानहि नहिंन कछू हम को हैं ॥
गोपी चरित चाहिकैं ताहि । कहन लगीं कि रमा यह आहि ॥
अपने पिय को देखति डोलति । याते नहिंन काहु सों बोलति ॥
लरिकनि लहति लहति छवि छई । नंद के सुंदर मंदिर गई ॥
आच्छी बनक कनक को पलना । पौढ़े तहाँ तनक से ललना ॥
स्यामल अंग सु को छवि गनो । मृदुल नीलमणि पुतरी मनों ॥
वाल भाव में दुरि रहे ऐसे । तीछन अगिनि भसम मधि जैसे ॥
आवति बकी तकी जब ऐना । मूँदे नैन कमल-दल-नैना ॥
मेरे हेरत बेस कपट कौ । रहिहै नहि पूतना अपटकौ ॥
याते मूँदि रहे दृग नाथ । विस्व चराचर जाके हाथ ॥
मुसकति मुसकति तहँ चलि गई । लालहिं लपकि लेति ही भई ॥
देखत कौ तौ छुटनो बाल । ऐ परि आहि काल कौ काल ॥
सोवत पर्यौ भुजंगम ऐसे । रज्जु-बुद्धि कोउ गहतु है जैसें ॥
अस कछु रूप प्रेम करि छई । जसुमति पुनि न निवारति भई ॥
जैसे अति तीछन करतार । ऊपर रतन जटित परियार ॥
जसुमति कहति चाहिकै ताहि । हौं जननी कि जननि यह आहि ॥
आई ही ज्यो जुगति बनाइ । तरल गरल दुहुँ थननि लगाइ ॥
प्यार सों ललन पिवावन लगी । चूमति जाति कपट रस पगी ॥
इक कुच मुख, इक कर मै लियै । पियत गोविंदचंद हित[1] दियैं ॥
अकिलौ विप अपथ्य दुखदायी । लीने ताके प्रान मिलाई ॥
पियत भये सुंदर नँदनंद । मुसकत जात मंद छविकंद ॥

---

१. पाठा०—मनु ।

अंग अंग विथकित[1] भइ भारी। कहति कि छाँड़ि छाँड़ि हौं बारी॥
छाँड़त क्यों हे भूखो बालक। जगपालक ऐसे घरघालक॥
छुटइ न सिसु अपनौ सो पची। कनक सों जनु कि नील मनि खची॥
तब धरि अपुनो रूप चिघारी। भयौ जु नाद भयानक भारी॥
सुरग रसातल भूतल जितौ। सब हलमल्यौ कल मल्यौ तितौ॥
दाउ कुच पकरि उचकि वह नारी। लै डारी गोकुल ते न्यारी॥
षट कोस के लता द्रुम जिते। चूरन ह्वै गए तिहिं तर तिते॥
जे द्रुम लता निपट प्रतिकूल। हुते न गोकुल कहुँ अनुकूल॥
ते तिहिं तन तर चूरन करे। उबरे जे ब्रज हित करि भरे॥
प्रथमहि वाके नाद जु डरे। ब्रज जन जहँ तहँ गिरि गिरि परे॥
पाछे उठि उठि देखन धाये। देख रूप अति त्रासहि पाये॥
मुँह बाये जु परी बिकरार। तपत ताम्र से बगरे बार॥
गिरि-कंदर सम नासा अंत। हल-दंड से बड़े दंत॥
अंध कूप से नैन गँभीर। बैठि जु गये प्रान की पीर॥
उदर भयानक लागत ऐसो। बिनु जल महा सरोवर जैसो॥
जघन सघन जु भयानक भारे। महानदी के जनु कि करारे॥
ताके ऊपर[2] सुंदर बाल। खेलत अभै सुनैन बिसाल॥
जे पद रहत भगत जन हियैं। लालति ललित भाँति श्री लियैं॥
मुनि मन जिनहि पत्यात न रती। ते पद बिलुठत ताकी छती॥
गोपी परम प्रेम रस बोरी। फिरति पूतना, तन पर दौरी॥
ललहिं उठाइ छती लपटाई। लै आई जहँ जसुमति माई॥
ब्रजरानी अनेक धन वारति। पुनि पुनि राई लोन उतारति॥
गोमूत्र लै ललहिं न्हवाई। गोरज गोमय अंग लगाई॥
हरि के द्वादस नामनि करिकै। रच्छा करी ब्रजतियनि डरिकै॥
नीकौ भयौ, पयोधर प्यावौ। जननी जठर जीव तब आयौ॥
वदन चूमि जसुमति यौं भाख्यौ। आजु पूत परमेसुर राख्यो॥
तब लौं नंदादिक ब्रज आये। ताहि निरखि अति बिस्मय पाये॥
लै लै तीषन धार कुठार। छेदे ताके अंग करार॥
करषि कढ़ोरि दूरि लै गए। बहुत काठ दै दाहत भए॥
उठ्यो जु धूम पूतना-तन कौ। परम सुगंध हरन मुनि मन कौ॥

---

१. पाठा०—अँग अँग बिपति। २. पाठा०—उर पर।

वगर वगर सु अगर से खये। अमर नगरहू मोहित भये॥
अचिरज नहिन कृष्ण भगवान। जाकौं कियौ पयोधर पान॥
सिसु घातिनी परम पापिनी। संतनि की डसनी जु साँपिनी॥
बहुखौ हरि को मारन गई। सुतिय मुक्ति की रानी भई॥
जे जन श्रद्धा करि अनुसरैं। मधुर वस्तु लै आगे धरै॥
तिनकी कौन कहि सकै कथा। गोकुल की गो गोपी जथा॥
सूँघत सूँघत ब्रजजन जिते। नंद महर घर आये तिते॥
समाचार सुनि विस्मय पाये। ललहिं निरखि दृग जरत जुड़ाये॥
नंद परम आनंदहि पाय। लीनौ तनय कंठ लपटाय॥
कही कि जहँ गयो बहुरि न आयौ। तहँ तैं मैं यह ढोटा पायौ॥
कीनी बहुरि बधाई नंद। दीने बहु धन गोधन वृंद॥
यह जु पूतना चरित बिचित्र। छटौ अध्याय सु परम पवित्र॥
जो यहि हित सो सुने सुनावै। सो गोविंद विषैं रति पावैं॥

दानव-कुल भोजन विविध कियौ चहत भगवान।
प्रान पूतना के मनौ कियौ प्रथम सोपान॥
नंद न डरि, हिय हेतु करि उर धरि छटौ अध्याइ।
पूत भई जहँ पूतना प्रभुहिं अपेय पिवाइ[1]॥

सप्तम अध्याय

अब सप्तम अध्याय सुनि सुंदर श्रुति कौ सार।
जामें लाल रसाल को बालचरित मधु धार॥ १॥

सुनि सप्तम अध्याय उदारा। जामें बाल चरित मधु धारा[2]॥
जिहि रस सिंधु मगन भयो राजा। फिरि पूछत सुक अति सुख साजा॥
हो मुनि![3] हरि कौ बाल चरित्र। अति अद्भुत[4] अरु परम पवित्र॥
पियत नृपति नहि मानत कान। औरौ कहौ जानमनि जान॥
फुरे जु बाल चरित रस रंग। कहन लगे सुक पुलकित अंग॥
इक दिन करवट आपुहि लई। जननी निरखि मुदित अति भई॥

---

१. यह दोहा प्रति क में नहीं है। २. यह पंक्ति प्रति क में नहीं है। ३. पा०—प्रभु। ४. पाठा०—विचित्र।

बोलि सबै गोकुल की बाला। उच्छव कियौ महा तत्काला ॥
सकट के अध धरि कंचन पलना। सुतहि सुवाई नंद की ललना ॥
विदा करन लोगन कों लगी। डोलति सुत सनेह रँगमगी ॥
रतन मिलै तिल चावरि कीनी। भरि भरि गोद सबनि कों दीनो ॥
पूत उदय के हित ललचाई। मति कोउ मन मैलो करि जाई ॥
लगी जु भूख ललन तब जगे। मधुर मधुर कछु रोवन लगे ॥
जसुमति रुदन सुनत नहिं भई। अति आनंद मगन ह्वै गई ॥
बरहे चरति फिरति ज्यों गाई। सब मन रहत बच्छ में आई ॥
तहँ अभिचार असुर इक सटक्यो। दौरि कै सकट बिकट मैं अटक्यो ॥
ललन कौ दलन जबहि वह नयौ। तब तहँ अद्भुत कौतुक भयौ ॥
तनक जु वाम चरन यौं कर्यौ। उड़िकै जाय उड़नि में रर्यौ ॥
वड़ौ सकट जब उलटौ पर्यौ। दिखि सब लोग अचंभै भर्यौ ॥
धाइ गई तहँ जसुमति मैया। कहति कि कहा भयौ यह दैया ॥
ता तर पूत कुसर सों पायौ। जननी जठर जीउ तब आयौ ॥
नंदादिक तहँ धाये आये। सकट विलोकि सुबिस्मय पाये ॥
तिन सों कहन लगे सिसु बात। अहो महर ! यह तेरो तात ॥
तनक चरन ऐसे करि कर्यौ। तौ यह सकट उलटि है पर्यौ ॥
कहति कि कहा जाने ये बारे। उलटत कूट कमल के मारे ॥
सबनि कही कि नंद बड़ भागी। लरिकहिं रंचक आँच न लागी ॥
तब ते नंद महर की ललना। पूतहिं पर्यौ पत्याइ न पलना ॥
इक दिन ललहिं लिये दुलरावति। लाल के बाल चरित कछु गावति ॥
तृनावर्त जान्यौ आवतौ। कियौ चहत ताकौ भावतौ ॥
मातु सहित जो मोहिं उड़ैहै[१]। तौ मेरी मैया दुख पैहै ॥
ताते ललन भयौ अति भारी। चकित भई जसुमति महतारी ॥
थँभ्यो न सिसु[२] अपनौ सो कर्यौ। तब धरनीधर धरनी धर्यौ ॥
आयौ बातचक्र रिस भर्यौ। धुनि सुनि सब गोकुल थरहर्यौ ॥
उड़वत धूरि धरे काँकरी। सबनि कें दृगनि परी साँकरी ॥
लै गयो लरिकहिं गगन उड़ाई। तरफति फिरति जसोमति माई ॥
मूँदे लोचन ढूँढ़त डोलति। रे कत गयो पूत यों बोलति ॥
जितहिं धर्यौ हो तितहिं न पायौ। जसुमति-जिय धौं किनि बिरमायौ ॥

---

१. पाठा०—उड़ावै, पावै। २. पाठा०—सुत।

परी धरनि धुकि यौं बिललाइ। ज्यौं मृतबच्छ गाइ डिडियाइ ॥
जसुमति धुनि सुनि धाई गोपी। आई महा बिरह रस ओपी ॥
गिरि गई जसुमति ढिग ढिग ऐसी। कंचन बेलि पवन बस जैसी ॥
त्रिभुवन को जु भारु हो जितो। श्रीहरि उदर धर्यौ हौ तितो ॥
बदियै तृनावर्त्त बल जुड्यौ। ऐसे लरिकहि लै नभ उड्यौ ॥
थोरिक दूरि गयौ रँगमग्यौ। पुनि अति भार भयौ डगमग्यौ ॥
कहत कि वह सिसु हाथ न आयौ। यह कोउ गिरिवर जाइ उडायौ ॥
लरिकहिं डारन को अरबरै। लरिका डरपि घुरि गयो गरै ॥
गर के गहत निचेष्टित भयौ। दृगनि की बाट निकसि जिउ गयौ ॥
तब वह असुर महा अरबर्यौ। ब्रज के बीच सिला पर पर्यौ ॥
करच करच टुटि फुटि गयौ ऐसे। हर सर हत्यौ त्रिपुर रिपु जैसे ॥
ताके उर पर सुंदर बाल। खेलत भये सुनैन बिसाल ॥
गोपिन धाइ जाइ सिसु लयौ। आनि जसोमति[1] गोद मैं दयौ ॥
सुनिकै सब जन धाये आये। निरखि रूप अति बिस्मय पाये ॥
चूमत बदन नंद बड़ भागी। पौछत रैनु तनय तन लागी ॥
कहत कि कवन पुन्य हम कियौ। हरि अरचे कि दान बहु दियौ ॥
काल के मुख मै बालक गयौ। तहँ तै बहुरि बिधाता दयौ ॥
पापी अपने पापहिं मरे। साधु की रच्छा ईश्वर करै ॥

दीपक प्रगट्यो नंद घर निर्मल जोति अभंग।
उड़ि उड़ि परन लगे तहाँ दानव दुष्ट पतंग ॥७६॥

तृनावर्त आवनि में बाल। भयो जु अति भारी तिहिं काल ॥
जननी के जिय संका रहै। हरि वह भार जनायौ चहै ॥
इक दिन ललहिं लियैं गोद मे। जसुमति मगन महा मोद मे ॥
बैठी मधुर पयोधर प्यावति। मुँह अंगुरि दै दै मुसुकावति ॥
अरुन अधर दँतियन की जोती। जपा कुसुम मधि जनु बिधि मोती ॥
ललनहिं तनक जँभाई आई। तब जसुमति अति बिस्मय पाई ॥
धर अंबर ससि सूरज तारे। सर सरिता सागर गिरि भारे ॥
बिस्व चराचर है यह जितो। सुत सुख मध्य बिलोक्यौ तितो ॥

---

१. पाठा०--जसोदा।

नैन मूँदि अति बिस्मय[1] भरी। बहुरि बिचारि परी सुधि करी ॥
कहन लगी कि जु ईश्वर कोई। जाकी चितवनि में जग होई ॥
बहुरि उदर मधि राखत जोई। मेरे घर यह बालक सोई ॥
ऐसे करि जब जसुमति जाने। तब हरि हँसिकै गर लपटानें ॥
पुत्र सनेह भई रसमई। माया जननि उपर फिरि गई ॥
ईस्वरता कछु नहिं दुरी सब कोउ जानत ताहि।
सो प्रभु सुत करि पाइयौ यह अति दुर्लभ[2] आहि ॥३५॥

अष्टम अध्याय

अब अष्टम अध्याइ सुनि मित्र। नामकरन मनहरन पवित्र ॥
सुत-मुख-मध्य बिश्व जब चह्यौ। सो जसुमति ब्रजपति सों कह्यौ ॥
ब्रजपति हूँ के मन भय भयौ। नामकरन जु नाहिंनै भयौ ॥
तातें होति है छाया आइ। लीजै लरिकनि नाम धराइ ॥
तब ही गरग पुरोहित आयौ। नामकरन वसुदेव पठायौ ॥
ताहि निरखि अति हरखे नंद। बरखे तन-मन परमानंद ॥
प्रथमहिं अभी वचन करि अरचे। बहुर्‌यौ चंदन बंदन चरचे ॥
कही कि तुम परिपूरन नाथ। रिधि-निधि-सिधिसब तुम्हरे साथ ॥
कवन वस्तु करि पूजा कीजै। ज्यों दिनमनि कहुँ दीपकु दीजै ॥
महापुरुष जु चलत ठौर ते। नहि कछु चाहत काहु और ते ॥
कृपन जु गृह-ममता करि बँधे। चलि न सकत दृढ़ फंदनि फँधे ॥
केवल तिनको करन कल्यान। दिखियत नहिन प्रयोजन आन ॥
ज्योतिसास्त्र अति इंद्री ज्ञान। ताके तुम हीं बीज निदान ॥
पूरब जनम सुभासुभ करै। जा करि जंतु जगत संचरै ॥
आगें होनहार पुनि होई। प्रभु तुम सम्यक जानत सोई ॥
नामकरन लरिकनि कौ कीजै। कौन सुविधि मोहिं आयसु दीजै ॥
गर्ग कहत अहो सुनि ब्रजराज। यातें और न उत्तम काज ॥
ए परि हौं गुरु जदू बंस कौ। मोहिं बड़ौ डरु वा कंस कौ ॥
सुनि पावै नीचनि कौ राइ। तौ यह होइ बड़ौ अन्याइ ॥
नंद कहत तौ ऐसैं करौ। गृह मधि गुपित ठौर अनुसरौ ॥
नैंक स्वस्तिवाचन करि लीजै। लरिकनि कछुक नाँउ धरि दीजै ॥
गरगहि अरग गए लै नंद। अगिनहोत्र करि मंदहि मंद ॥

---

१. पाठा०—रहि अति भय। २ पाठा०—दुस्तर।

प्रथमहि रोहिनि-सुत के नाम। धरन लगे द्विज सब गुनधाम ॥
याकौ एक नाम सकर्पन। जन हर्पन सबके मन-कर्षन ॥
बहुरयौ राम परम अभिराम। अति बल तें कहियैं बलराम ॥
अब सुनि अपने सुत के नाम। अद्भुत अद्भुत गुन के धाम ॥
इक श्रीकृष्ण नाम अस ह्वैहै। ससि सम सुधा सवनि पर च्वैहै ॥
कबहूँ पूर्व-जन्म सुत तेरौ। पूत भयौ हो बसदेव केरौ ॥
तातें बासुदेव इकु नाम। पूरन करिहै सबके काम ॥
याके अवर जु नाम अनंत। गनत गनत कोउ लहै न अंत ॥
कहतु है द्विजबर भरि आनंद। बहुत कहा कहियै हो नंद ॥
नारायन मधि हैं गुन जिते। तेरे सुत में झलकत तिते ॥
छबि संपति कीरति रसभई। नारायनहू ते अधिकई ॥
सुनि करि नंद परम आनंदे। बार बार द्विज बर पद बंदे ॥
जसुमति ताहि बहुत कछु दयौ। गरग अरग लै मथुरा गयौ ॥
अब सुनि सुंदर बाल विनोद। देत जु नंद जसोमति मोद ॥
जानु पानि डोलन जगमगे। मनिमय आँगन रैंगन लगे ॥
सोहे सुंदर[1] कच घुँघरारे। कोहे मधुकर मद मतवारे ॥
अंजन-जुत नैना मनरंजन। बलि कीने छबिहीने खंजन ॥
लटकनि- लटकत ललित सुभाल। बनि रहे रुचिर चखौंडा गाल ॥
तनक तनक सी नाक नथूली। राजत नील सुपीत झँगूली ॥
जटित बघूली छतियनि लसै। द्वै द्वै चंद-कलनि कहुँ हँसै ॥
कटि-तट किंकिनि, पैंजनि पाइनि। चलत घुटुरवनि तिनके चाइनि ॥
निज प्रतिबिंब निरखि थकि रहैं। पकर्यो चहैं अधिक छवि लहैं ॥
लपटि जु रही दही मुख-कंजनि। परत न कही महर मनरंजनि ॥
बिबि केहरि-नख हरि-उर सोहत। ढिग ढिग दधिकन मो मन मोहत ॥
नपत-मंडली मधि दुति जसी। जुरि निकसे द्वै द्वैज के ससी ॥
किलकि किलकि घुटुरुनि की धावनि। डरपिकैं जननि-निकटफिरिआवनि ॥
मैयन की वह गर-लपटावनि। चूमनि मधुर पयोधर प्यावनि ॥
ठाढ़े हौन लगे रँगमगे। धरत जु धरनि चरन डगमगे ॥
अँगुरि गहाइ सुमंदहि मंद। ललनहिं चलन सिखावत नंद ॥

---

१. पाठा०—सहज सचिक्कन।

झुनुक झुनुक वह पगनि की डोलनि । मधुर तें मधुर सुतुतरी बोलनि ॥
आपुहि ललन चलन अनुरागे । दौरि पौरि लगि आवन लागे ॥
अपने रंगनि खेलत मोहन । जसुमति डोलति गोहन गोहन ॥
दिखि दिखि बाल चरित अभिराम । बिसरे सबनि धाम के काम ॥
लै ब्रज-बालक अपनि वयस के । दधि माखन की चोरी चसके ॥
मोहन मंत्र सो घर घर डोलत । दधि माखन चोरत, चितु चोरत ॥
जब घर आवहिं मोहनलाल । अंतर सहि न सकत ब्रज बाल ॥
उरहन के मिस[1] नंद-निकेत । आवत मुख छवि देखन हेत ॥
अहो महरि ! यह तेरौ तात । कहा कहैं हम याकी बात ॥
असमैं देइ बछरुवनि छोरि । ठाढ़ौ हँसै खरिक की खोरि ॥
चोरि चोरि दधि माखन खाइ । जौ हम देहिं तौ देइ बगाइ ॥
धाम-काम सब कीनौ चहिए । कब लगि धाम धँसेही रहिए ॥
जब कोउ रंचक इत उत जाइ । अरग अरग गृह-अंतर आइ ॥
नूपुर किंकिनि लेइ छिपाइ । सखनि खवावै आपुन खाइ ॥
अस बड़ चोर कहत नहिं आवै । चोरिके चखन ते ससिहि चुरावै ॥
सुनिकै आनँद भरि नंदरानी । तिन सौं कहति मुसकि मधु बानी ॥
बलि बलि तौ तुम ऐसी करौ । दिन दस भाजन ऊँचे धरौ ॥
जब लगि याकी बुद्धि अयानी । तब लगि तुमही होहु सयानी ॥
हो जसुमति, कोउ ऊँचे धरै । तहँ तुम सुनहु जु जतनन करै ॥
ता तर आनि उलूखल नावै । ऊखल पर एक सखहि चढ़ावै ॥
ता पर आपुन चढ़िकैं खाइ । चोर लौं इत उत चितवत जाइ ॥
मुख ते दधिकन गिरि गिरि परैं । चंद तें जनु मुक्ताहल झरैं ॥
घर की जब घर द्वारे आवै । उतरि कें ताके सनमुख धावै ॥
मुख कैं खीर नयन भरि ताके । चपरि जाइ ए करम हैं याके ॥
ऊधम अवर सुकहियै काहि । तुम्हरे निकट साधु ह्वै जाहि ॥
भय भरी चखनि चूमि नँदरानी । तिनसौं बहुरि कहति मधु बानी ॥
बारी हौं अब ऐसे करौं । लै दधि दूध अँध्यारे धरौं ॥
तहाँ कहति गोपी रस ओपी । इहिं रस जिनहि क्रिया सब लोपी ॥
अहो महरि, ऐसे हू कर्यौ । लै दधि दूध अँध्यारे धर्यौ ॥
कोटि दिया सम अंग सुहाये । पुनि मनि भूषन तुमहि बनाये ॥

---

१. पाठा०—उरहन मिसमिलि ।

जहाँ यह जाइ तुम्हारौ वारौ। कवन भवन जहँ रहै अँध्यारौ ॥
बोली अवर एक व्रजबाला। हरि तन मुसकि सुनैन विसाला ॥
अहो व्रजेस्वरि, सुनि इक बात। मेरे घर यह तुम्हरौ तात ॥
इक दिन कत इकलौई गयौ। तहँ इक अद्भुत कौतुक भयौ ॥
मनि खँभ के निकट मथि दह्यौ। माखन सहित धर्‍यौ हो मह्यौ ॥
लौनौ लेन गयौ तह जाइ। मनि खँभ में निरखि निज झाँइ ॥
अवर लरिक की संका पाइ। तासौं ठाढौ कितौ लिलाई ॥
कहत कि यह माखन सब लीजै। अहो मित्र हठ नाहिंन कीजै ॥
नितही मेरे गोहन रहौ। ऐ परि मैया सो जिनि कहौ ॥
यह सुनि बिहँसि परी नँदरानी। चूमति वदन बोलि मृदुबानी ॥
बलि बलि कत कहुँ पर घर जाहु। घर बहुतेरौ माखन खाहु ॥
अद्भुत सिसु कछु समुझि न परै। सब बिधि सबही के मन हरै ॥
कबहूँ दिखियै माखनचोर। कबहूँ झलकै नंदकिसोर ॥
ऐसे सब व्रज को मधु प्यावत। मधि मधि ईश्वरता दिखरावत ॥
मधुर वस्तु ज्यो खात है कोई। बीच अमल रस रुचिकर होई ॥
सिसुन को कहि राख्यौ जसु माई। दिखियहु बलि यह चपल कन्हाई ॥
माटी खाय सलिल मै जाइ। बलि बलि मोसों कहियौ आइ ॥
इक दिन तनक कहूँ हरि वारे। मुख मेली माखन मो हारे ॥
धाइ गए सिसु जहँ जसुमाई। तेरे कान्हर माटी खाई ॥
सहि न सकी जननी यह बात। आन्यौ पकरि आपुनौ तात ॥
रे रे चपल गात अन्याई। तैं क्यो दुरिकै माटी खाई ॥
भै भरि अँखिअन कहत कन्हैया। मै माटी नहिं खाई मैया ॥
ये सब मिथ्यावादी आहि। जौ न पत्याहि तौ मम मुख चाहि ॥
जननी कहति तौ वदन दिखाइ। डरतैं कुँवर दयौ मुख बाइ ॥
बदन मध्य जौ जसुमति चहै। सिगरौं विस्व चराचर अहै ॥
प्रथम चह्यौ भूगोलक तहाँ। दीप, समुद्र, सरित, गिरि जहाँ ॥
जोति-चक्र, जल तेज, समीर। अगिन, अरक, ससि, तारक-भीर ॥
इंद्रिय अरु इंद्रिन के देव। सतगुन रजगुन तमगुन भेव ॥
काल कर्म सुभावऽरु जंत। बुद्धि चित्त मन सूरतिवंत ॥
पुनि अपनपे सहित व्रज देखि। जसुमति चकित भई सुविसेषि ॥
तहँ पुनि सुतहि लिये कर साँटी। डाँटति जौ न खाइ फिरि माटी ॥
तब जसुमति अति संभ्रम भरी। इत उत चाहि विचार अनुसरी ॥

कहन लगी कि सपन नहिं होई। जागति हौं कछु नाहिंन सोई ॥
अरु नहि हरि ईश्वर की माया। परती तौ सबहिन पर छाया[1] ॥
ज्यों दर्पन मैं दिखियतु जैसे। ह्वैहै कछू यहाँ यह ऐसे ॥
सो पुनि बनै न मन यों गुन्यौ। प्रतिबिंब में बिंब न सुन्यौ ॥
है यह मो सुत को परभाव। और न कोऊ भाव अनुभाव ॥
बहुखौ हरें हरे पहिचान्यौ। अपुनौ सुत परमेसुर जान्यौ ॥
बहुरि सनेहमई रसमई। माया जननि ऊपर फिरि गई ॥

डरे जु जननी डाँट तें साँट निरखि पुनि हाथ।
मुख मैं बिस्व दिखाइकै बचे नाथ इहि साथ ॥६१॥

नवम अध्याय

अब सुनि मित्र नवम अध्याइ। जामें अद्भुत अद्भुत भाइ ॥
जोगीजन मन ढूँढत जाकौं। बाँधैगी हठि जसुमति ताकौं ॥
इक दिन भोर उठी नँदरानी। आपुहि मंजु मथानी आनी ॥
थोरोई दूध पूत के हितहीं। राखति जसु जमाइ निस नितहीं ॥
और जु नंद महर घर दह्यौ। कितकु आहि कछु परत न कह्यौ ॥
प्रेरी जहाँ अनेकनि दासी। मंथन करैं सब कमला सी ॥
टॉ टॉ मधुर मथानी बजैं। जनु नव आनँद-अंबुद गजैं ॥
मथत जु आय तहाँ नँदरानी। सोभा नहि कछु परति बखानी ॥
सुंदर गौर बरन तन सोहै। औटे कंचन कौ रँग को है ॥
मृदुल उजल गंगाजल पहिरें। उठत जु तन ते छबि की लहरें ॥
पृथु कटि कल किंकिनि की बाजनि। बिलुलित वर कबरी की राजनि ॥
नेत की करखनि बदन की हरखनि। तैसियै सिर तैं कुसुम[2] सुरवरखनि ॥
आनन पर श्रमकन कत बनी। कनक कमल जनौं ओस की कनी ॥
किधौं चंद मधि प्रगटे मोती। आये जानि आपनो गोती ॥
लाल के बाल चरित कछु गावति। भाग भरी सब राग रिझावति ॥
लगी जु भूख कुँवर बर जगे। मींजत नैन अलस रस पगे ॥

---

१. इसके आगे प्र० वि० वि० की प्रति में सत्रह पंक्तियाँ तथा दो दोहे अधिक हैं। २. पाठा०—सुमन।

अरग अरग जननी ढिग जाइ। गही मधुमथन मथानी आइ[1] ॥
जसुमति कहति बोलि मधु बानी। बलि बलि मोहन छाँड़ि मथानी ॥
नेत जु तजहु तुरत मथि लेउँ। अपने ललन कौं लौन्यौ देउँ ॥
नेत न तजहि ललन हठ ठानी। लै बैठी तब जसुमति रानी ॥
मुद भरि मधुर पयोधर प्यावति। प्यार सो चूमति अति सचु पावति ॥
पूत कौ नित पियनौ पय हुतौ। आँच लगै अति उमग्यौ सु तौ ॥
वातैं सुत कौं धरि कै धरनी। आइ गई तहँ नंद की घरनी ॥
केइक कबि कहैं तृष्णा बौरी। हरि परिहरि जु दूध को दौरी ॥
ते कछु प्रेम मरम नहि जाने। जिहि बिधि श्री शुकदेव बखानैं ॥
या करि ब्रह्मानंद सु हरुवौ। भजनानंद दिखायौ गरुवौ ॥
अतृपत सुत जु छुभित तब भयौ। भाजन भाँजि भवन दुरि गयौ ॥
सुत के करम निरखि नँदरानी। मुसकी जनम्म सुफलता मानी ॥
बहुरि कहति अति लड़िक न कीजै। लरिकहिं तनक कछू सिख दीजै ॥
अरग अरग गई गृह में ऐसें। नूपुर धुनि सुनि भजै न जैसे।
साँट लिए जौ जसुमति जाई। चढ्यौ उलूखल माखन खाई ॥
जननिहि निरखि भीत की नाई। उतरि भग्यौ तिहुँ लोक को साई ॥
जसुमति मोहन गोहन लगी। तिहिं छिन अद्भुत छवि जगमगी ॥
जसु पैं तैसे धाइ न जाइ। श्रोणी भर अरु कोमल पाइ ॥
खसत जु सिर ते सुमन सुदेस। जनु चरननि पर रीझे केस ॥
जोगी जन-मन जहाँ न जाहीं। इत सब वेद परे बिललाहीं ॥
ताकहुँ जसुमति पकरति भई। रहपट एक वदनहूँ दई ॥
पानि पकरि जब आँगन आनें। जिनते डर डरपै सु डराने ॥
डर ते नैन सजल ह्वै आये। जनु अरबिंद अलिद हलाये ॥
परत दृगनि तें जलकन जोती। डारत ससि जनु मंजुल मोती ॥
भीजत चख मसि प्रसरित ऐसे। निर्मल बिधु कलंककन जैसे ॥
भै भरे सुतहिं निरखि नँद-नारि। दीनी लकुट हाथ ते डारि ॥
कहति कि रंचक बाँधहु याहि। जैसे सिख लागै लरिकाहि ॥
मृदुल पाट की नोई लई। लाल के पेट लपेटति भई[2] ॥

---

१. पाठा०—नेत गह्यौ अति हेत चढ़ाइ ।

२. इसके बाद प्र० ख० में एक पक्ति यों है—

ऊखर सो जब बनै न गाँठि। तासो अवर लई तब साँठि ॥

सो पुनि परिपूरन नहि भई। तब इक वड़ी जेवरी लई॥
सो पुनि जब पूरन नहिं आई। तब जसुमति अति विस्मय पाई॥
भै भरे लाल के लोइन लसे। दिखि दिखि गोपवधू सब हँसे॥
हँसि हँसि कहति सुलगति सुहाई। ए न होहिं वलि वस्तु पराई॥
धाम के दाम दाँवरी जिती। ब्रज तिय लै लै आईं तिती॥
जसुमति ग्रंथि दैन जब चहै। द्वै अंगुल तब ऊनी रहै॥
आदि अंत कछु पैयै जाकौ। बंधन अवसि पूछियै ताकौ॥
आदि अंत जौ कोउ न पावै। तनक जिवरिया कित फिरि आवै॥
निपट अमित जननी कहुँ जानि। नरवधि वच्छलता पहिचानि।
जदपि अवसि ईश्वर जगदीस। जाकैं वस विधि विष्णु गिरीस॥
ताहि जसोमति बाँधति भई। रसना प्रेममई दृढ़ नई॥
भक्तवस्यता निगम जु गाई। सो श्रीकृष्ण प्रगट दिखराई॥
प्रभु ते जो प्रसाद जसु पायो। सो काहू सपने न दिखायो॥
विधि सो पूत जगत उजियारौ। आतम सिव सबही ते प्यारौ॥
निकट रहति यद्यपि श्री ललना। कब बाँध कब झुलवै पलना॥
हो नृप ए जु जसोदानंद। नित्य अनूप रूप स्वच्छंद!
भक्तिवंत कहुँ सुखद है जैसे। तन अभिमानी कहुँ नहि तैसे॥
बहुत युगनि जौ जीवत लहियै। सो मुनि तन अभिमानी कहियै॥
ग्यानी पुनि यह सुख नहिं जानै। नीरस निराकार परिवानै॥
गत अभिमान न यह सुख लहैं। देहादिक कों मायक कहैं॥
पायौ जु कछु नंद की घरनी। कौन पै परत सु महिमा वरनी॥
बंधन सहि न सकति तहँ गोपी। कहति जसोमति सो रस ओपी॥
अहो महरि अब बंधन छोरौ। सुंदर सुत पर भयौ न थोरौ॥
डर तें मुख पियरी परि गई। ललित कपोलन पर छवि छई॥
ज्यों दरपन परसत मुख-पौन। परिहरि महरि परी हठि कौन॥
जसुमति हहा करति तिन आगे। नैकु रहन देहु ज्यों सिख लागे॥
ऐसे कहि जसु गृह में गई। इहाँ अवर इक अद्भुत भई॥
दृष्टि परे अर्जुन द्रुम दुवै। सापे हुते मुनि नारद जु वै॥
रेंगत रेंगत तहँ चलि गये। लरिका मोहन गोहन भये॥
ऊखल तनिक तिरीछौ करिकै। डारि दिये तरु तिन मधि वरिकै॥

भक्ति विना श्रीभागवत कहहिं सुनहि जे 'नंद'।
दरवी ज्यों व्यंजनन में स्वाद न जानें मंद॥२८।

'नंद' नवम अध्याय यह बरन्यौ कापै जाइ।
चातक चंकु पुटी लटी सब घन कितहि समाइ ॥३६॥

दशम अध्याय

अब मुनि लै दसऔं अध्याइ। पूछे शुक जु परीछित राइ॥
हो प्रभु परम भागवत नारद। जाको दरस सहज भव-पारद॥
तिन करि कवन कर्म अस कर्यौ। जाकरि इनहिं क्रोध संचर्यौ॥
बोले बिहँसि व्यास के तात। सुनि नृप सत्तम मोते बात॥
सुत कुबेर के अति अभिराम। नलकूबर मनिग्रीव सुनाम॥
गंगा मधि ललनागन लिये। बिहरत हुते बारुनी पियें॥
तहँ ह्वै नारद निकसे आइ। बीना कर आपुने सुभाइ॥
तिहिं दिखि तिय सब लज्जित भई। चटपट अपुने पट गहि गईं॥
ये दोउ नगन मगन अस भये। मद बाढ़े ठाढ़े रहि गये॥
कहन लगे मुनि तिन तन चाहि। जग में बहुत अवर मद आहि॥
ऐ परि यह श्रीमद है जैसो। बड़ अनर्थकर अवर न ऐसो॥
मति-भ्रंसक सब धर्म बिधंसक। निरदै महा बिरथ पशुहिंसक॥
नस्वर देह सबै कोउ जाने। ताकहुँ अजर अमर करि माने॥
रच्यौ पाँच भौतिक यह देह। अंत सबै क्रिमि, विष्ठा खेह॥
जाकहुँ कहत कि यह तन मेरौ। तामैं बहुरि बहुत अरभेरौ॥
माँ कहै मेरौ, पितु कहै मेरौ। मोल लयो सुकहै मो चेरौ॥
अन्न को दाता कहै की मेरौ। स्वान कहै अवर न किहि केरौ॥
ऐसें साधारन यह देह। तिन सो करिकै परम सनेह॥
भूत द्रोह आचरत न डरैं। धमक धमक नरकनि में परैं॥
श्रीमद करि जु अंध ह्वै जाइ। दारिद अंजन बड़ौ उपाइ॥
तन दुर्बल मन दुर्बल रहै। अपनी उपमा करि सब चहै॥
कंटक चरन चुभ्यो होइ जाकें। और को दुख हिय कसकै ताकै॥
जाके कंटक चुभ्यौ न होइ। का जानै पर पीरहि सोइ॥
पुनि मुनि बोले करुना भरे। क्यों तुम द्रुम से रहि गये खरे॥
तब अति डरे दौरि पग परे। परम दयाल दया अनुसरे॥
मथुरा मंडल गोकुल जहाँ। अर्जुन द्रुम तुम उपजहु तहाँ॥
नंद के नंदन बालक ह्वैहैं। बँधे उखल तुमको छ्वैहैं॥
मो प्रसाद तें पुनि घर ऐहौ। दुर्लभ वस्तु सुलभ ही पैहौ॥

ते दोउ तहाँ अर्जुन तरु भये। बढ़त बढ़त अंबर लौं गये॥
नारद वचन सुमिरि हरि आई। तनक में गिरि से दिये गिराई॥
गिरत जु चंड सब्द भयौ ऐसे। घर पर बज्रपात होइ जैसे॥
निकसे दिव्य रूप दोउ वीर। पहिरें अद्भुत भूषन चीर॥
जैसे दारु मध्य ते आगि। निर्मल जोति उठति है जागि॥
नंद सुवन के पाइनि परे। अंजुलि जोरि स्तुती अनुसरे॥
कहन लगे हरि तिन तन चाहि। तुम तो कोउ देवता आहि॥
हम इहि गोकुल नंददुलारे। क्यौं हौ परसत चरन[1] हमारे॥
तब बोले अलका भौन के। हो प्रभु तुम बालक कौन के॥
परम पुरुष सब ही के कारन। प्रतिपालन तारन संहारन॥
व्यक्त अव्यक्त जु विश्व अनूप। वेद वदत प्रभु तुम्हरौ रूप॥
तुम सब भूतनु को बिस्तार। देह प्रान इंद्रिय अहँकार॥
काल तुम्हारी लीला श्रीधर। तुम व्यापी तुम अव्यय ईश्वर॥
तुमहीं प्रकृति सुकृत सब तुमही। सत रज तम जे लै लै उमहीं[2]॥
तुमहीं जीवन तुमहीं जीय। तुमहीं सब[3] कोउ अवर न पीय॥
घट पट ज्ञान विषै है सब ही। हमरौ ज्ञान होइ किन अब ही॥
दुर्लभ ब्रह्म सुलभ ही बने। तहाँ कहत कुवेर के तनैं॥
इंद्रिनि करि तुम जात न गहे। प्रगट आहि पै परत न चहे॥
जैसे दृष्टि कुंभ कौं देखै। कुंभ तो नाहिंन दृष्टि को पेखै॥
कुंभ के दृष्टि होइ जौ कबहीं। सो तुम दृष्टिहिं देखै तबहीं॥
तातैं तुमकौं बंदन करैं। जानि न परहु परे ते परै॥
इहि विधि स्तुति करि हरि देव की। प्रार्थित पंकज पद सेव की॥
हो करुनानिधि करुना कीजै। अपनी भाव भगति रति दीजै॥
बानी तुव गुन कथा में रहौ। श्रवन कथा रस में निरबहौ॥
चरन कमल रस बस मन भौंर। सपनेहुँ जिनि सूझै कछु और॥
हो जगदीस जसोदानंदन। सीस रहौ नित तुव पद बंदन॥
तुम्हरी मूरति भक्त तुम्हारे। नितही निरखहु नैन हमारे॥
तब बोले हरि करुनाधाम। पूरन होहु तुम्हारे काम॥

---

१. पाठा० पकरत पाइ। २. पाठा०—पुरुष महतत्व। घर, अंबर, आडंबर, सत्व। ३. पाठा०—सब ठाँ तुम।

नारद प्रियतम भक्त हमारौ। तुमकौं कियौ अनुग्रह भारौं ॥
सो भक्तन कौ यहै सुभाव। जैसे उदित होतु दिनराव ॥
सहजहि निबिड़ तिमिर को हरै। और बहुत मंगल बिस्तरै ॥
पुनि बोले हरि सव सुख सींव। हे नलकूबर हे मनिग्रीव ॥
अब तुम गवन भवन कौ करौ। मो माया डर ते जिनि डरौ ॥
आज्ञा भई रह्यौ नहि जाइ। पुनि पुनि पकरहि सुंदर पाइ ॥
वार वार परिकरमा देहिं। सुंदर बदन बिलोके लेहि ॥
अधिकारी पै रह्यौ न जाइ। चले ईस कों सीस नवाइ ॥
उत्तर दिसि नभ ह्वै उड़ि चले। भक्ति रस भरे लागत भले ॥
अगिन के जनु निधूम द्वै ऊक। किधौ बिभाकर के बिवि टूक ॥

आयु तनक वंधन बँधे तासौं कछु न बसाइ।
दृढ़ वंधन संसार ते गुह्यक दिये छिडाइ ॥ ३४ ॥

एकादश अध्याय

अब सुनि ग्यारहौ अध्याइ की कथा। सुंदर शुक मुनि बरनी जथा ॥
सुनि द्रुम सबद सबै ब्रज डर्यौ। कहत कि इहाँ वज्र जनु पर्यौ ॥
नंदादिक तहाँ धाये आये। द्रुमनि निरखि अति बिस्मय पाये ॥
पतन कौ कारन लगे बिचारन। प्रबल पवन नहि नहि वड़दारन ॥
कारन कवन जु ए तरु परे। दिखि सब लोक अचंभै भरे ॥
तिनसों कहन लगे सिसु वात। अहो महर यह तेरौ तात ॥
आपुन इनके अंतर वर्यौ। ऊखल तनक तिरीछो कर्यौ ॥
दये उखारि दुवै द्रुम भारे। ए हम सिगरे देखनहारे ॥
निकसे उभय पुरुष दुख भरे। या ढोटा के पाइनि परे ॥
ऐसे जब उन लरिकनि कह्यौ। किनहू गह्यो किनहु नहि गह्यौ ॥
तिन बिच हरि बैठे छवि ऐना। डरपे सिसु मृग के से नैना ॥
अति वत्सल रस भरि ब्रजराइ। द्रुमनि मध्य ते लये उठाइ ॥
वंधन छोरि छती लपटाये। पौछत सुंदर अंग सुहाये ॥
जसुमति पर ब्रजराज रिसाइ। ऐसे सिसु कोउ वाँधत माइ ॥
पुनि बिहरन लागे ब्रज महि माँ। दैन लगे सुख अपनन कहियाँ ॥
कहुँ ब्रज नवल वधू नंदलालहि। पकरि नचावहिं मैंन बिसालहि ॥
जे जे बिकट मान उपजावहि। ते ते सहज नाच दिखरावहि ॥
रीझि रीझि ब्रज की वर वाला। वारहिं भूषन कंचनमाला ॥

चुंबन करैं बलैया लेहिं । बहुरि नचावहिं माखन देहि ॥
कबहूँ कबहुँ[1] टहल अनुसरे । ब्रज की बधू कहैं सो करैं ॥
कोउ कहे अहो मोहनलाला । मोहि गुहि दै यह फूल की माला ॥
कोऊ कहे लालन लाउ दोहनी । कोउ कहै मोहिं गहाउ सोहनी ॥
कोऊ कहै बलि पाँवरी लावौ । बलि बलि मोहिं पिढ़ी पकरावौ ॥
अब लावो मुख चुंबन करें । इहि बिधि ब्रज-तिय सुख बिस्तरै ॥
शिव-सर्वसु, सब श्रुति कौ हियौ । सो ब्रज तियनि खिलौना कियौ ॥
कबहूँ बिहरत जमुना तीर । धूरी धूसर सुभग सरीर ॥
तिनकौं लैन गई जसु मात । ठाढ़ी कहत मनोहर बात ॥
रे रे पूत पूतना-निपात । तोसों कहि न सकति इक बात ॥ } [2]
निस दिन रहत धूरि में सन्यौ । पूरब जनम को सूकर मनौ ॥ }
भोर के आये दोऊ भइया । कीनो नहिन कलेऊ दइया ॥
भूखे आहि बलि गई मइया । घर चलिहै मेरो भलो कन्हइया ॥
अरु दिखि बलि ये संग के बारे । मइयनि कैसी भाँति सिंगारे ॥
तुमहुँ अन्हाइ तनक कछु खाइ । बलि बलि बहुरि खेलिहौ आइ ॥
बैठे महर थार पर जाइ । मोसो कह्यौ कन्हइया लाइ ॥
तुम बिन तात तनक नहि खात । बलि बलि चालि मेरे साँवल गात ॥
न चलहिं खेल मगन अति भये । बाँह पकरि तब जसुमति लये ॥
मग मै कहति जाति जसु माइ । सोइ राजा जु प्रथम गृह जाइ ॥
महर के संग तनक कछु खाइ । चले पलाइ गहे जसु माइ ॥
उबटन उबटि अंग अन्हवाइ । पटये पट भूखनंनि बनाइ ॥
इहि परकार महावन महियाँ । दै सुख नंद जसोमति कहियाँ ॥
अब चाहत वृंदावन गयौ । मंजु कुंज विहरन मन भयौ ॥
अंतरजामी अपनो धर्म । ता करि प्रेरे सबके कर्म ॥
इक दिन गोप सभा जुरि बैसे । अमरनगर में अमरन ऐसे ॥
नंद सुवन के रस रँगमगे । ब्रज के हितहि बिचारन लगे ॥
इत उत्पात जगे हहिं जैसे । देखे सुने न कतहूँ ऐसे ॥
इनि लरिकनि की रक्षा करो । ह्याँ ते बेग अनत अनुसरो ॥
तहाँ उपनंद नाम इकु कोई । ज्ञानवृद्ध वयवृद्ध है सोई ॥
कहन लग्यो कि कुशल है परी । इत तैं चलहु अबहिं इहि घरी ॥

---

१. पाठा० कहूँ । २. यह दो पंक्ति प्र ख० मे नहीं है ।

आई प्रथम बकी घरघालक। काल के मुख तें उबर्‍यो बालक ॥
अरु वह सकट बिकट भर भर्‍यौ। या सिसु के ऊपर नहिं पर्‍यौ ॥
पुनि वह बातचक्र ह्वै आइ। लै गयो लरिकहि गगन उड़ाइ ॥
बहुर्‍यो आनि सिला पर नाख्यौ। तब यह सिसु परमेसुर[१] राख्यौ ॥
जे द्रुम नभ सो बातें करै। ते तरु अकसमात मुइँ परे ॥
जो जगदीस सहाइ न होइ। तिन तर आयौ उबरै कोइ ॥
जौ चाहत हौ ब्रज को भलौ। तो तुम इत तें अबही चलौ ॥
सुंदर वृंदावन इक नाम। सब [गुनधाम परम अभिराम ॥
जामें गिरि गोवर्द्धन आहि। सब रितु सेवत संतत ताहि ॥
गोपी गोप गाइ के लायक। सुखदायक सुभकरन सुभाइक ॥
सुनतहि सब आनंद हिलोरें। अपने सकट तुरतही जोरे ॥
गोधन बृंद धरि लये आगे। धरे सरासन नीके लागें ॥
कंचन सकटनि चढ़ि चढ़ि गोपी। चली जु नंद सुवन रस वोपी ॥
कंठनि पदिक जगमगति जोती। लटकै ललित सु वेसरि मोती ॥
केसरि आड़ ललाटनि लसैं। चंद में चंदकला कहुँ हँसै ॥
चंचल दृग अंजन छबि बढ़े। ससिन में जनु नव खंजन चढ़े ॥
लाल के बाल चरित जु पुनीत। लये बनाइ बनाइ सुगीत ॥
ठाँ ठाँ गोपी गान जु करैं। सीतल कँठ सबके हिय हरैं ॥
राज सकट बैठी जसु सोहै। उपमा कौं तिय त्रिभुवन को है ॥
सुरपति-रवनी रमा की चेरी। सो वह चेरी जसुमति केरी ॥
गोद में सुत अति सोहति ऐसी। चंद-जननि चंदहि लियें जैसी ॥
सुत-गुन गोपी गावति जहाँ। दै रही कान जसोमति तहाँ ॥
इहि विधि श्री वृंदावन आइ। निरखि अधिक आनंदहि पाइ ॥
सकट को बान बनायो ऐसो। सुंदर अर्द्ध चंद होइ जैसो ॥
बन वृंदावन गोधन गिरिवर। जमुना पुलिन मनोहर तरुवर ॥
रस के पुंज कुंज नव गह्वर। अमृत समान भरे जल सरवर ॥
जदपि अलोकिक सुख के धाम। श्रीबलराम कुँवर घनश्याम ॥
रीझे तदपि निरखि छबि बन की। उत्तम प्रीति लग गई मन की ॥
औरै सुक सारिक पिक और। औरे अंबुज औरे भौंर ॥

---

१. पाठा०—बालक हरि ने ।

रतन सिखर गिरि गोधन सोभा[1] । निकसी मनहु नई छबि गोभा ॥
तिन बिच सुंदर रास स्थली । मनि कंचन मय लागति भली ॥
गिरि तें झरें सुनिर्झर सोहैं । निर्जर नगर अमृतमय को हैं ॥
औरे त्रिगुन पवन जहाँ वहै । मुख उचाइ हरि सूँघत रहै ॥
कहन लगै बृंदावन ऐसो । वह हमरौ बैकुंठ न जैसो ॥
खेलन लगे खेल तहाँ ऐसे । प्राकृत बालक खेलत जैसे ॥
ढिग ढिग वच्छ चरावन लगे । वेनु वजावत गावन लगे ॥
कबहूँ कृत्रिम वृषभ बनावत । तिनहिं लरावत अति छबि पावत ॥
असुर एक बछरा ह्वै आयौ । सो श्रीहरि तबहीं लखि पायौ ॥
चिदानंदमय अपने वच्छ । यह प्राकृत अरु निपट असुच्छ ॥
नैन सैन करि बलहि जनाइ । रग अरग ताकी ढिग जाइ ॥
पाइ पकरिकै धरि जु फिरायौ । अपुनौ कियौ तुरत ही पायौ ॥
निरखि सखागन अतिसै हरखे । सुर हरखे नव कुसुमनि बरखे ॥

इति वत्सासुर लीला

पुनि इक दिन बल अरु बलबीर । सखन सहित गये सरवन तीर ॥
पहिले पानी बछरन दियो । ता पाछे आपुन पय पियो ॥
ता ढिग महाअसुर इक आइ । बैठ्यौ बक कौ बेपु बनाइ ॥
कहन लगे बक होत न ऐसो । गिरि ते गिर्‌यौ शृंग होइ जैसो ॥
ऐसे ठाढ़े करत विचार । धाइ आइ गह्यो नंदकुमार ॥
सुंदर कोमल अंग सुहायौ । लीलि गयो कछु मरमु न पायौ ॥
जरन लग्यौ जु कंठ संठ कौ । बिकल भयो मन बक टंठ कौ ॥
अब कै डारि चुंचु की मारि । तब लीलो यह जीय बिचारि ॥
डारिकैं उगिलि सुबल्लभ बालक । जगपालक ऐसेइ घर घालक ॥
डारिकैं बहुरि ग्रसनि को नयौ । तिहि छन अद्भुत कौतुक भयौ ॥
रवकि कै रंचक वदन पसार्‌यो । पकरि कै चंचु फारिही डार्‌यौ ॥
फटत पटेरहि लागत वार । अस कछु कीनों नंदकुमार ॥
जय जय धुनि अंबर मे भई । बरषत फूल सूल मिटि गई ॥
घुरि गये सखा प्रान सब पाये । हँसि हलधरहू कंठ लगाये ॥

---

१. पाठा०—देखत मन अति उपजत लोभा ।

बछरनि लै छबि सौं घर आये। समाचार सब सखन सुनाये ॥
सुनिकै गोपी गोप समेत। धाए आये नंद-निकेत ॥
ज्यो कोउ मरि परलोकहिं जाइ। अपनेन बहुरि मिलत है आइ ॥
तैसे कान्ह कुँवर तन चाहैं। प्रेम भरे यों बातें कहैं ॥
त्रिपित दृगनि मुख निरखत ऐसे। अमृतहि पाइ जियत कोउ जैसे ॥
कहत कि दिखहु मृत्यु अति दारुण। आवत सिसु कहँ मारन कारण ॥
तेई फिरि मरि जात हैं ऐसैं। पावक परि पतंगगन जैसै ॥
पूरब जन्म कियौ पुन्न कोई। राखतु है इहि लरिकहिं सोई ॥
तिनसौं नंद कहन अस लगे। गर्ग बचन हिय में जगमगे ॥
गरग अरग दै मोसों कह्यौ। मैं तव सुत को लच्छन लह्यो ॥
नारायण मधि गुन है जिते। तेरे सुत मे झलकत तिते ॥
सुनिकैं सब आनंदहि भरे। नंद-सुवन के पाइनि परे ॥
गोकुल गोपी गोप जितेक। कृष्ण चरित रस मगन तितेक ॥
कहत परस्पर करि नित नये। भव वेदन नहि जानत भये ॥
इहि परकार कुमार बयस के। करत बिहार उदार सरस के ॥
कोइ होइ मेष कोइ होहि पालक। आपुन होहिं चोर हरि बालक ॥

एकादश अध्याय यह अगदराज की धार।
पान करहु नर चित्त दै मिटै रोग संसार ॥६२॥

द्वादश अध्याय

अब सुनि लै द्वादस अध्याइ। महा सर्प बपु धरि अब आइ ॥
गिलिहै बाल बच्छ वह नीच। हतिहैं हरि तिहि बढ़ि गल बीच ॥
इक दिन बन-भोजन मन आनि। सोए सुंदर सारँगपानि ॥
बेनु बजाइ जगाये ग्वाल। सुनत उठे सब तेही काल ॥
जैसे कमल अमोदहिं पाइ। ठाँ ठाँ उठत मधुप अकुलाइ ॥
बन भोजन जु कान्ह मन आनी। बेनु बजावनि ही में जानी ॥
सुंदर बिंजन सुंदर छीके। काँधनि धरि लिये लागत नीके ॥
अपने बछरनि लैलै आये। कान्ह के बछरनि आय मिलायै ॥
नंद सुवन सो मिलिके चले। लागत सबै मैन से भले ॥
तिन मधि मोहन अति सुखदाइक। नग जराइ मधि ज्यों मधि नाइक ॥
छीकनि ते व्यंजननि चुरावत। तेतौ इहि कछु और बनावत ॥

हँसि हँसि कहत कि देखि कन्हैया। कहा दयौ है याकी मैया॥
और खेल खेलत छवि पावत। महुअरि बेनु बजावत गावत॥
बगनि खिजावत खगनि खिजावत। केइ खग की छाया गहि धावत॥
केइ मधुमत्त मधुप सँग गावत। केइ मिलि कल कोकिल कुहुकावत॥
केइ मदमत्त मोर ज्यो नचैं। तैसेहि नचैं तनक नहि बचैं॥
केइ बनचर के सनमुख जाइ। आवत तैसेहि ताहि खिजाइ॥
केइ फल फूल माल गुहि लावत। मोहनलाल कैं उरसि बनावत॥
लाल के गुंजमाल अति सोहै। लाल-माल तिन आगे को है॥
वृंदावन जु कुसुम की कली। गजमोतिन ते लागति भली॥
केइ अपनी प्रतिधुनि सो अरें। गारि देहिं बहुखौ हँसि परे॥
देखत वृन्दावन घन सोभा। जब हरि दूरि जात रस लोभा॥
तब ये ग्वाल बाल मिलि आछे। अंतरु सहि न सकत पुनि पाछे॥
धावत कहत अमी जनु बरसे। जोइ राजा जु प्रथमही परसे॥
अब शुक तिनकौ भागु सराहत। नंदसुवन महिमा अवगाहत॥
जो कछु ब्रह्म ब्रह्म-सुख आहि। बिदुपनि कौ परकासत ताहि॥
भक्तन हू के हिय अति सरसै। तिनके नाथ भये[1] सुख बरसै॥
मायाश्रित संबंधीजन जे। नर-दारक करि समझत तेते॥
देत सबनि सुख अपनी ठौर। इन सम पुन्यपुंज नहि और॥
जाकी पद-रज-हित तपु करिकै। बहुत जनम योगी दुख भरिकै॥
प्रेरत चपल चित्त कौं चूरि। सो वह धूरि तदपि हू दूरि॥
सो साक्षात् दृगनि कै चहियै। कवन भाग ब्रजजन कौ कहियै॥
तदनंतर अघ नामा दुष्ट। आयौ सुख दिखि सक्यौ न नष्ट॥
बक अरु बकी दुहून ते छोटौ। ऐपरि यह उन तें गुन मोटौ॥
जाके डर सुर थर थर डरै। जद्यपि अमृत पानहू करै॥
तदपि कहत जब लौं अघ जीवै। तब लौं कहत अमी को पीवै॥
सहज नृसंस कंस पुनि प्रेखौ। गोप-बंस-अवतंसहि नेखौ॥
हरि तन चितै कहत काकोदर[2]। याके उदर दोउ मेरे सोदर॥
नाते भगिनि भइया की ठौर। पठऊँ इहि अरु ये सब और॥
जो मैं इतैं तिलोदक करे। ब्रज माँझ के सहजहि मरे॥

---

१. पाठा०—नये। २. पाठा०—काको डर।

प्रान गये ज्यों वहु दाम के । देह रहे तौ किहि काम के ॥
इहि विधि अघ विचार पर परिकै । महा बड़ौ अजगर-वपु धरिकै ॥
इक जोजन बिस्तर बिस्तर्यौ । आनि नीच मग वीचहि पर्यौ ॥
अघ कौ अधर धरा पै घर्यौ । उर्द्ध अधर जलधर मैं कर्यौ ॥
वालक चके चाहिकै ताहि । कहन लगे कि कहा यह आहि ॥
कोउ कह कछु वृंदावन सोभा । तापर भैया अजगर ओभा ॥
है तौ यह परवत की दरी । अजगर-आनन-आभा धरी ॥
शृंग जु मनौ वने अहि दंत । निविड़ तिमिर सुवदन को अंत ॥
मधि कौ मगु जनु रसना आहि । लपकति भिया लहत हौ ताहि[1] ॥
कर्कस पवन गुहा ते ऐसो । आवत अजगर मुख ते जैसो ॥
दव जु लगी कछु लगति न रोचन । ताते राते जनु अहि लोचन ॥
कोउ कहै तुम्हरौ करिहै कहा । यह तौ केवल अजगर महा ॥
हमहि सवन ग्रसिवे के काज । मग मे आनि पर्यौ सजि साज ॥
कोउ कहै जो है अजगर महा । तौ यह हमरौ करिहै कहा ॥
नंद-सुवन ऐसौ कछु करिहैं । वक लौं यहौ नीच को मरिहैं ॥
सुंदर वदन निरखि मुद भरे । दै दै करतारी तहँ वरे ॥
अलवेले ईश्वर नँदनंदन । वालक नृप से सव जगवंदन ॥
जव सब अजगर मुख संचरे । तव ह्वाँ हरि विचार पर परे ॥
यह तौ सति ही अजगर महा । वरजे नाहिन कियौ हम कहा ॥
प्रभु पछतात अनमने भये । अपने कर अजगर मुख दये ॥
अव ह्वाँ कौन जतन अनुसरौं । इहि मारौं अपनेन उद्धरौं ॥
आइ गई ईश्वरता ऐसे । वालक नृप के रक्षक जैसे ॥
व्रजपति-सुवन तनिक मुसुकाइ । पैठे ताके आनन जाइ ॥
अंवर माँझ अमरगन जिते । देखत है वन ओटनि तिते ॥
हाहाकार परे अति डरे । कहत कि अव सिगरे हम मरे ॥
अजगर तुंड तनक जव नयौ । तिहि छन अद्‌भुत कौतुक भयौ ॥
नैसुक सिसु मुख द्वारें खरौ । रुकि गयो ताको सिगरौ गरौ ॥
भयो निरोध प्रान घट घुट्यौ । व्रह्मरंध ताकौ तव फुट्यौ ॥
निकसि जोति तव अंवर गई । दामिनि सी फिरि ठाढ़ी भई ॥
जव लगि नंद-सुवन गोविंद । वछरा अरु व्रज वालक वृंद ॥

---

१. पाठा०—भई वाल हौ ताहि ।

अमृत दृष्टि करि सींचि जिवाइ। लै आये वाहिर इहि भाइ॥
तव लौं रही गगन में जोति। सव दिसि जगमग जगमग होति॥
उलका ज्यों तहँ ते उलटानी। आनंद भरि हरि माँझ समानी॥
तदनंतर सुर मुनि सव हरपे। जय जय करि पुनि पुहुपनि बरषे॥
रटन लगे गंधर्व जितेक। नटन लगीं अपछरा अनेक॥
कोलाहल सुनि निज लोक में। ब्रह्मा आयौ ब्रज ओक में॥
दिखि महिमा जसुमति तात की। सुधि वुधि गई कमलजात की॥
सो वह अजगर परम पवित्र। सूक्यौ वृंदाबन मधि मित्र॥
अति गह्वर तहँ ब्रज के बाल। डुका-डुकी खेलें बहुकाल॥
यह कौमार वयस को कर्म। पायौ नाहिं किनहु कछु मर्म॥
छठौ वरस जव सव निरवह्यौ। तव उनि सखनि आनि ब्रज कह्यौ॥
आजु जु एक नंद कै लाल। मार्‍यौ व्याल सु केवल काल॥
हम सव वाके मुख में गये। आये वहुरि जन्म धरि नये॥
ताके तन ते उठी जु जोति। नखत टुटौ ज्यौं ज्वाला होति॥
जाइ गगन में थिरि ह्वै रही। हम देखी औ सवहीं चही॥
कान्हहिं निरषि वहुरि उलटानी। आनि कै इनही माँझ समानी॥
ऐसें जव उनि लरिकनि कह्यौ। सुनि सव लोग अचंभे भर्‍यौ[1]॥
अहो मित्र कछु चित्रन कीजै। हरि की महिमा मैं मन दीजै॥
इनकी जौ कोउ प्रतिमा करै। एक वार वल करि हिय धरै॥
प्रह्लादादिक की गति जोई। सुपुरुष सहजहि पावै सोई॥
ते साक्षात् अघासुर हिये। आये अपने भक्तनि लिये॥
सूत कहत हैं भो भृगुनंदन। सुनिकै सुचरित दुरित-निकंदन॥
पुनि पुनि मुनि के गहि गहि पाइ। पूछे शुक जु परीछित राइ॥
हो सर्वज्ञ व्यास के तात। यह कौमार वयस की वात॥
पौगंड में चरित सव कहे। अव लौं ए सिसु केहाँ रहे॥
ह्याँ कछु हरि की माया आहि। मो प्रभु नीके वरनहु ताहि॥
हम सम धन्य नहीं संसार। जातें कृष्ण कथामृत-धार॥
निगमसार ताकौ पुनि सार। पियत हैं हम तिहि वारंवार॥
वहुरि तुम्हारे मुख सुकमल ते। मधुर ते मधुर, अमल अमल ते॥
सूत कहत जव यो नृप कह्यौ। श्रीशुक मूँदि नयन तव रह्यौ॥

---

१. पाठा०—रह्यौ।

पुरि आये जु चरित सब हिये। यौ कोउ अति मादक मधु पियै ॥
वढ़ि जु गयौ उर अति आनंद। घूमत ज्यौं मदमत्त गयंद ॥
बड़ी बेर जागे अनुरागे। राजा पुनि सुख बरसन लागे ॥

नंद हिये धरि नेह भरि यह द्वादसये अध्याय।
अघ से मल निर्मल जहाँ परस कृष्ण पद पाइ ॥
यह द्वादस अध्याय जो सुने तनक चित लाइ।
अघ न रहे अघ ज्यो सुनत नंद अनघ ह्वै जाइ ॥

त्रयोदश अध्याय

अत्र सुनि लै तेरहो अध्याइ। हरिहै बिधि वछ-वालक आइ ॥
श्री हरि तैसेई फेरि वनाइ। खेलिहैं एक वरप इहि भाइ ॥
जातैं कृष्ण-कथा रसमई। सुनत हौं छिन ही छिन करि नई ॥
जिन कें उपज्यौ हरि-रस-भाउ। हे नृप! तिन कौ यहै सुभाउ ॥
रति सौं कृष्ण-कथा अनुसरैं। छिन छिन प्रति नूतन सी करैं ॥
जैसैं लंपट वनिता बात। सुनत सुनत कवहूँ न अघात ॥
अव सुनि सावधान ह्वै कथा। वरनन करौं आहि यह जथा ॥
जद्यपि गोप्य रहै मो हिये। कहौं तदपि तव हित के लिये ॥
सिष्य सनेहवंत जो रहै। तिन सो गुरु गुपतौ पुनि कहै ॥
अघ-मुख तै जिवाइ वछ-वाल। लै गए जमुन-पुलिन नँदलाल ॥
भोजन कियौ चहत तिहि काल। करत पुलिन की स्तुति गोपाल ॥
कहत कि भैया भलो यह ठौर। ऐसी नहिंन पाइहो और ॥
सीतल मृदुल वालुका स्वच्छ। इत ये हरे हरे तृन कच्छ ॥
इत ये सुंदर सरसिज फूले। तरवर फूल फूलि जल भूले ॥
खगनि की धुनि-प्रतिधुनि हिय हरै। मंद सुगंध पवन अनुसरै ॥
सव दिसि तैं ये परिमल लपटैं। आवति सहज सुखनि की दपटैं ॥
भूख लगी हे भोजन करै। इत ये वच्छ कच्छ मै चरै ॥
मंडल करि वैठे व्रजवाल। मध्य वने तहँ मोहनलाल ॥
सोहत सव ते सन्मुख ऐसे। कमल के वीच करनिका जेसे ॥
भोजन करत कुँवर साँवरे। छवि दिखि अमर भए वावरे ॥
भोजन विविध गुवालन ठने। फल दल सिल वलकल अति वने ॥

अपने व्यंजन तिन मैं धरे। चखत चखावत अति मुद भरे॥
तिन के मध्य वने नँद-नंद। उडु-मंडल जस पूरन चंद॥
पट अरु जठर वीच तौ वेनु। काख वेत, कच लपटे गेनु॥
दधि-ओदन कौ कवल सु किये। छवि सौं बाम हस्त हरि लिये॥
अँगुरिनि मधि मधि धरि संधान। जिनहि निरखि बिधि भूल्यो ग्यान॥
लै लै व्यंजन चखनि चखावनि। हँसनि,हँसावनि पुनि डहकावनि॥
केवल वालकेलि अस करैं। ईश्वर तनक न जाने परैं॥
वछरा जव वन घन अनुसरे। दिखि सब ग्वाल-बाल भय भरे॥
तिन कहँ कहत कमल-दल लोचन। अद्भुत सिसु भय के भय मोचन॥
अहो मित्र, तुम भोजन करौ। अपने मन तनकौ जिनि डरौ॥
वछरनि हम लै ऐहैं अवै। वैठे रहौ लहौ सुख सबै॥
ऐसैं कहि बन गहब्बर कुंज। तम करि भरी दरी तहँ पुंज॥
ढूँढत वच्छ विस्व के नाथ। भोजन कवल लियें ही हाथ॥
ऐसैं माँझ कुवुधि विधि आयौ। अब तैं अधिक भयौ अनभायौ॥
कैसैं ए ईश्वर इमि कहै। तिन की महिमा चितयौ चहै॥
कच्छ तैं वच्छ लये सव आइ। जव लगि हरि वै देखन जाइ॥
तव लगि इत तैं लै गयौ वाल। अकिले रहि गये मोहनलाल॥
ढुहुँवनि वन घन ढूँढ़न लगे। डोलत प्रेम-पगे, रँगमगे॥
पुनि हँसि परे कछू रिस भरे। इते काम इनि विधना करे।
जौ अव हम इत चुप कै रहैं। तौ इन की जननी कहा कहैं॥
अरु जौ उन हीं कौं फिरि आनैं। तौ विधि मो महिमा कहा जानैं॥
हँसन लगे हरि सुंदर स्याम। कही कि ये सव विधि के काम॥
हमरी महिमा देखन आयौ। होउ सवै अव वाकौ भायौ॥
जितक हुते वछ-बाछी-बाल। आपु ही भए कुँवर नँदलाल॥
वैसैंई कंवर, अंवर, हार। वैसैंई सहज अहार विहार॥
वैसैंई नाम, दाम गुन नीके। वैसैंई श्रृंग, वेनु दल छीके॥
वैसीये हँसनि, चहनि पुनि वोलनि। वैसियै लटकनि, मटकनि, डोलनि॥
नूपुर, कंकन, किंकिनि, माल। सवै भये ईश्वर नँदलाल॥
वेद जु वदत विस्व यह जितौ। सवै विष्णुमय, भासत तितौ॥
ऐसें नाहिंन परतु है पायो। सो यह अर्थ प्रगट दिखरायौ॥
गंगाजल ज्यौं हिमकन पाइ। ठाँ ठाँ सहज जाइ ठहराइ॥
अपने वछरा आगें लये। अपने खरिकनि ही सव गए॥

अछु अछु करि लये अपनी माइनि । पोंछत रजमुख चूमत चाइनि ॥
उबटि सुगंध सलिल अन्हवाये । मनभाये भोजन करवाये ॥
उपज्यौ प्रेम तिन विषै ऐसौ । पाछै नंदसुवन सौं जैसौ ॥
अब सुनि लै गाइन कौ पेम । बिसरत जिहि दिखि मुनिमन नेम ॥
खरिक निकट जब बछरा बोले । सुनतहि गोधनबृन्द कलोले ॥
हूँकि हूँकि आतुर गति आवनि । इत तै इनि बछरनि की धावनि ॥
चुपनि, चुवावनि, चाटनि, चूमनि । नहि कहि परति प्रेम की घूरनि ॥
आपुहि बछरा, आपुहि बाल । ब्रज बन विहरत मोहनलाल ॥
एकाकी जस खेलत कोई । खेलत ताहि कछु न सुख होई ॥
ऐसे बरस दिवस निरवह्यौ । संकर्षन हू नाहिन लह्यौ ॥
इक दिन गिरि गोधन पर गाइ । चरति ही चढ़ी आपनें चाइ ॥
ब्रज-समीप वछरन अवहेरि । चलीं जु ग्वाल सके नहिं फेरि ॥
स्वच्छ -पुच्छ ऊँची करि लई । मानहुं ढुरत चँवर छबि छई ॥
अति गति पग डारनि, हुंकारनि । सींचति धरनि दूध की धारनि ॥
बखरे बछरनि पैं चलि आईं । मिलीं धाइ, कछु नहिं कहि जाई ॥
पाछे गोप जु धाये आये । छोभ भरे अति श्रम करि पाये ॥
सुतन निरखि तब सब सुधि गई । उपजी प्रीत नई, रसमई ॥
ता दिन बल के भयौ सँदेह । सिसुन विषै दिखि ब्रज कौ नेह ॥
कहत कि पाछे हुतौ न ऐसौ । निरवधि नेह अबहिं है जैसौ ॥
अरु मेरे हू उपजत तैसौ । कान्ह कमल-लोचन सौं जैसौ ॥
ये बछबालक वे तौ नाहीं । पाछे हुते जु या ब्रज माहीं ॥
अब तौ नाम, दाम, दल अंबर । वेनु, विषान, वेत, वल कंबर ॥
कंकन, किंकिन, भूषन जिते । मोहिं श्री कृष्ण अभासत तिते ॥
जब हँसि हलधर हरि तन चह्यौ । हरि तव सव हलधर सौं कह्यौ ॥
संकर्षन हू नहि सुधि परै । विधि बावरौ जु पचि पचि मरै ॥
वर्ष दिवस वीते विधि आयौ । निरखि विनोद सु विस्मय पायौ ॥
वेई वच्छ स्वच्छ ब्रजवाल । जमुन-कच्छ खेलत नँदलाल ॥
तिनहि निरखि उत धायौ गयौ । वैसैंई दिखि अति विस्मय भयौं ॥
तैसैंई उत के तैसैंई इत के । कहत कि सत्य आहि धौं कित के ॥
पुनि जौ फिरि आवै इहि ठौर । है रही कछू और की और ॥
वालक-वच्छ इहाँ है जिते । वेनु, विपान, वेत्र दल तिते ॥
मुक्तावलि, गुंजावलि जु ही । नूपुर, किंकिनि, कंकन सुही ॥

अंबर, कंवर, संवर, जिते। निरखे चारु चतुर्भुज तिते॥
घन-तन, पीतवसन, बनमाल। अरुन कमल-दल-नैन विसाल॥
कुंडल मंडित गंड सुदेस। मनिमय मुकुट सु घूँघर केस॥
कंबु-कंठ कौस्तुभ मनि धरे। संख-चक्र आयुध कर करे॥
छवि छलसी तुलसी की माल। वनि रहि पदपर्जंत बिसाल॥
भिन्न भिन्न ब्रह्मांड विराजै। तिन मधि इक इक मूरति भ्राजै॥
ब्रह्मादिक विभूति जग जिती। अंड अंड प्रति दिखियत तिती॥
काल-करम महदादिक जिते। मूरति धरे उपासत तिते॥
सुधि गई विधिहि अचेतन भयौ। हंस कौ अंस पकरि रहि गयौ॥
तिहि छिन ताहि फवी छवि ऐसी। चतुर्मुखी कोउ पुतरी जैसी॥
सरसुति-पति विचार इमि करै। कहा आहि यह सुधि नहि परै॥
तव श्री हरि निज हिये विचारी। अज पर अजा जवनिका डारी॥
कही कि ये अभिमानी लोग। मो महिमा नहि चाहन जोग॥
तव श्री हरि वह माया जिती। अंतरध्यान करी तहँ तिती॥
वड़ी वेर सुधि विधि भई ऐसैं। मरि कै वहुरि उठत कोउ जैसैं॥
द्रग उघारि जौ विधना चहै। तौ वह श्री बृंदावन अहै॥
जामैं सर सुंदर, तरु सुंदर। जे कवहूँ निरखे न पुरंदर॥
हरि अरु मृग जहँ इक सँग चरै। क्षुतपियास नैंक न संचरै॥
मुद भरि श्री हरि कौं नित चहै। काके काम-क्रोध-मद रहै॥
तहँ निरखे ब्रजराजकुमार। अव्यय ब्रह्म अनंत अपार॥
वहुरि अगाध वोध श्रुति वोलै। सो वछ-वालक ढूँढ़त डोलै॥
पर्यौ धरनि चरनन पर जाइ। सव मुकटन करि परसत पाइ॥
ज्यौं ज्यौं वह महिमा उर फुरै। उठि उठि पद-पंकज सो घुरै॥
श्री हरि कछु न कहत रिस भोये। हमरे खेल आनि इन खोये॥
हरैं हरैं उठि हरि तन चहै। टपकि टपकि नैनन जल वहै॥
थर थर कंपत सकल सरीर। कमल लिये ठाढ़े वलवीर॥
नमित वदन द्रग भरि रहे पानी। गदगद कंठ फुरै नहि वानी॥
सापराध विधि निपटहि डर्यौ। अंजुलि जोरि स्तुति अनुसर्यौ॥

वच्छ-हरन, विधि-वुधि-हरन, सुनै जु इहि अध्याइ।
'नंद' सकल मंगल करै, जग दंगल मिटि जाइ॥५८॥

चतुर्दश अध्याय

अब सुनि लै चौदहो अध्याइ। ब्रह्मस्तुति जहँ अद्भुत माइ॥
पाछैं अद्भुत निरखि बिधात। चक्यौ थक्यौ जहँ फुरै न बात॥
सापराध बिधि थरथर डरै। हरि महिमा अवगाहन करै॥
सुधि न परै जब जैसे चहै। तैसैं नमस्कार करि कहै॥
अहो ईड्य! नव घन तन स्याम। तड़िदिव पीत बसन अभिराम॥
मयुर-पिच्छ-छबि छाजति भाल। नैन बिसाल, सु उर बनमाल॥
रस-पुंजा गुंजा अवतंस। कँवल, विपान, नेत्र बर बंस॥
मृदु पद बृंदा बिपिन बिहार। नमो नमो ब्रजराज कुमार॥
भो प्रभु यह तुम्हरौ अवतार। सुलभहि प्रगट सकल श्रुतिसार॥
मो पर परम अनुग्रह कर्‍यौ। किधौं भक्त की इच्छा धर्‍यौ॥
याकी महिमा नहि कहि परै। मो से जौ अमेक पचि मरै॥
जो साक्षात् वस्तु इक आहि। अवतारी अवलंबत जाहि॥
सो तुम, जान परहु कौन पै। ससि न गह्यौ परतु बौन पै॥
कहहु कि जौ हम अस दुर्ज्ञेय। पायौ परै न जाकौ भेय॥
तौ ए इतर दुतर संसार। कैसै तरिहै, परिहै पार॥
तहाँ कहत बिधि माथ नवाइ। सुनहु नाथ निज प्राप्ति उपाइ॥
ग्यान बिषै प्रयास परिहरै। तुम्हरी कथा विषै मन धरै॥
जे हैं सुंदर संत तुम्हारे। कथा-अमृत के बरखनहारे॥
तिन पै सुने, श्रवन रस भरै। मन-बच-क्रम बदन पुनि करै॥
बैठे ठौर कथा-रस पीवै। जे इहि भाँति जगत मै जीवै॥
अहो अजित! तिन करि तुम जीते। ग्यानी डोलत भटकत रीते॥
अब बिधि कहत ग्यान है जोई। भक्ति बिना सोउ सिद्ध न होई॥
तुम्हरी भगति अमीरस-सरवर। मोक्षादिक जाके सब निर्झर॥
तिहि तजि जे केवल बोध कौं। करत कलेस चित्त सोध कौं॥
तिन कहुँ छिन ही छिन श्रम बढ़ै। और कछू न तनक कर चढ़ै॥
जैसै कनबिहीन लै धान। धमकि धमकि कूटत अग्यान॥
फल तहँ यहै बिरथ दुख भरै। खोटत हाथनि फोटक परै॥
अब बिधि सदाचार-विधि लिये। करत प्रमान भक्ति दृढ़ हिये॥
हो प्रभु! पाछै बहुतै भोगी। तजि तजि भोग भये भल जोगी॥

दिढ़ अष्टांग जोग अनुसरै । ग्यान हेतु बहुतै दुख भरै ॥
अति श्रम जानि तहाँ तैं फिरै । तुम कहुँ कर्म समर्पन करै ॥
तिन करि सुद्ध भयौ मन मर्म । तब कीने प्रभु तुम्हरे कर्म ॥
कथा श्रवन करि पाई भक्ति । जाके संग फिरत सब मुक्ति ॥
ता करि आत्मतत्व कौं पाइ । बैठे सहज परम गति जाइ ॥
अब विधि कहत कि निर्गुन ग्यान । तिहि समान दुर्घट नहि आन ॥
लक्ष्मी जदपि नित्य उर रहै । सो पुनि तनक कबहुँ नहिं लहै ॥
जाके रूप न रेख, न क्रिया । जिहि लालच अवलंबै हिया ॥
तदपि केई तजि तजि सब कृत्ति । निर्मल करत चित्त की बृत्ति ॥
सहजहि सून्य समाधि लगाइ । लेत हैं तामैं तुम कौं पाइ ॥
पै यह सगुन सरूप तुम्हारौ । ह्याँ मन खोयौ जात हमारौ ॥
ये अद्भुत अवतार जु लेत । बिस्वहि प्रतिपालन के हेत ॥
नाम, रूप, गुन, कर्म अनंत । गनत गनत कोउ लहै न अंत ॥
धरनी के परमान जितेक । हिमकर अरु उडु गगन, तितेक ॥
कालहिं पाइ निपुन जन कोइ । तिनहिं गनै, अस समरथ होइ ॥
ए परि सगुन रूप गुन जिते । काहू पै कहि परत न तिते ॥
तातैं तब भगतिहि अनुसरै । तुम्हरी कृपा मनायौ करै ॥
कब मो पर नँदनंदन ढरिहै । मधुर कटाक्ष चितै रस भरिहैं ॥
निज प्रारब्ध कर्म-फल खाइ । अनासक्त, नैकु न ललचाइ ॥
अरु अति तप-कलेस नहिं करै । श्रवन-कीर्तन-रस संचरै ॥
इहि विधि जियै सुभागहि पावै । मर्‍यौ कहा कोउ अगरनि आवै ॥
अपराधी विधि थरथर डरै । निज अपराध निवेदन करै ॥
देखहु नाथ दुजनता मेरी । महिमा चह्यौ चहौ प्रभु केरी ॥
अगिनि तैं विस्फुलिंग ज्यौं जगै । अगिनिहि विभौ दिखावन लगै ॥
पटबिजना ज्यों पंख डुलाइ । लयौ चहत रवि-मंडल छाइ ॥
और सुनहु प्रभु उपमा आछी । गरुड़हि आँखि दिखावहि माछी ॥
अब कहतु कि मेरौ अपराधु । छमा करहु, हौं निपट असाधु ॥
रज गुन तैं उपज्यो अग्यानी । तुम तै भिन्न ईस अभिमानी ॥
मायामद उनमद ह्वै गयौ । सूझ न कछू, अंध तम छयौ ॥
यातैं अनुकंपाही करौ । भृत्य जानि कछु जीय न धरौ ॥
चार्‍यौ कुटी जु जन जानिये । ताकौं नाथ न बुरौ मानिये ॥
जौ कहहु कि क्यों इतौ लिलाहि । तुम हूँ तौ इक ईश्वर आहि ॥

तहाँ कहत बिधि जोरें हाथ। बातें समुझि कहौं ब्रजनाथ॥
कित हौं कित महिमा नाथ की। कहत हौं चींटी हथी साथ की॥
प्रकृति, महदहँकार, अकास। वायु, बारि, वसुमती, हुतास॥
सप्तावरन जु यह इक भौन। तुम ही कहौ तहाँ हौं कौन॥
सप्त बितस्ति काइ कौं कर्यौ। रहत बहुरि कहाँ धौं पर्यौ॥
ऐसैं कोटि कोटि ब्रह्मंड। तुमरी एक रोम के खंड॥
उपजत भ्रमत फिरत नहिं चैनु। जैसैं जालरंध्र त्रिसरैनु॥
निपटहि तुच्छ, न काहू लाइक। कृपा करौ, न लरौ ब्रजनाइक॥
हो प्रभु जैसैं जननी-गर्भ। रहत है निपट अबुध वह अर्भ॥
कूखि विषै बर-चरनन तानै। तौ कहा मात बुरो है मानै॥
तैसे हौ तव कूखि के माहीं। करत कलोल कछू सुधि नाहीं॥
अब हौं कहत कि तुम्हरौ चेरौ। तुम तैं प्रगट जनम यह मेरौ॥
जब सब लोक चराचर जितौ। प्रलय-उदधि मधि मज्जत तितौ॥
तब हौं तुम्हरी नाभि-कमल तैं। निकस्यौ नदिं इहि उदर अमल तैं॥
'कमलज कमलज' मेरौ नाम। मृषा आहि जानै सब ग्राम॥
जौ कहहु कि वे तौ हम नाहीं। सो वह नारायन जल माहीं॥
हमरौ ब्रज-बृंदावन धाम। तहीं जाहु ह्याँ नहि कछु काम॥
तहाँ कहत बिधि बुधि अवगाहि। मंदस्मित जुत आनन चाहि॥
तुम नहिं नहि नाराइन स्वामी। अखिल लोक के अंतर्जामी॥
नार कहावत जीव जितेक। बहुरि नार ये नीर तितेक॥
तिन मै नाहिन अयन रावरौ। हो प्रभु मोहिं करत बावरौ॥
जल में तुम्हरिय मूरति आहि। हँसत कहा हरि मो तन चाहि॥
जौ कहहु कि हम यौं करि पाये। अपरिछिन्न नित निगमन गाये॥
तुम परिछिन्न कहत हौ धात। तहाँ कहत बिधि इहि बिधि बात॥
जब हौं कमल-नाल ह्वै गयौ। मन के वेग वरप सत भयौ॥
जौ तुम जल करि आवृत होते। रहते दुरे कितक लौं मोते॥
पुनि जब तुमहिं दया करि कह्यौ। तब तप सो मै दृढ़ करि गह्यौ॥
तब रंचक तुम हिय मैं आइ। बहुर्यौ गये चटपटी लाइ॥
ये तुम्हरी माया की गुरझै। सब जन अरुझै, नाहिंन सुरझै॥
अरु अब ही येही अवतार। हो ईश्वर ब्रजराजकुमार॥
जननी कौं माया दिखराई। चकित भई अति बिस्मय पाई॥
बिस्व चराचर है यह जितौ। जठर मध्य अवलोक्यौ तितौ॥

तामैं तुम देखे इहि भाइ। साँट लिये डाँटति जसु माइ॥
प्रतिबिंब मैं बिंब दिखरावै। माया बिन यह नहिं बनि आवै॥
अरु मोहि कहहु कहा अब कियौ। अजहूँ थर थर कंपत हियौ॥
प्रथमहि तुम मैं देखे एक। बहुरयौ बालक-बच्छ जितेक॥
बेनु, बिषान, नेत्र दल जिते। ह्वै रहे चारु चतुर्भुज तिते॥
पुनि इक इक ब्रह्मांड के नाइक। सेवत मो समेत सब लाइक॥
पुनि अति एक एक छवि बाढ़े। देखे मैं मनमोहन ठाढ़े॥
ऐसैं अस्तुति बहु बिधि कीनी। निर्गुन-सगुन रूप रँग भीनी॥
पुनि प्रार्थत सब सुरन कौ रानौ। भक्ति-बिभौ जु देखि ललचानौ॥
अहो नाथ! मो कहँ यों करौ। जौ तरुना करुना रस ढरौ॥
इहि जनम मैं, अमर जनम मैं। नर जनम मैं, तृजग जनम मैं॥
तुमरे भक्तन मै कछु ह्वै कै। सोऊँ चरन-सरोजनि छ्वै कै॥
अब बिधि भक्त्यानंद जु पग्यौ। ब्रज कौ भाग सराहन लग्यौ॥
हो प्रभु धन्य, धन्य ये गोपी। धनि ये धेनु परम रस ओपी॥
बालक बच्छ भए प्रभु जिन के। पीवत भये पयोधर तिन के॥
बहुरयौ तनक स्तन-पय पाइ। बार बार तुम रहत अघाइ॥
कब के जग्यभाग हो खात। तहँ तुम तनकौ नहिंन अघात॥
इह ब्रजजन की भाग बड़ाई। हो प्रभु, मो पै नहि कहि जाई॥
जो प्रभु के आनँद कौ लेस। बर्तत अज, सिव, सेस, सुरेस॥
सो तुम निरवधि परमानंद। जिन के मित्र सकल सुख-कंद॥
पुनि परिपूरि रहे जहँ-तहाँ। जाहु तो तब जब होहु न उहाँ॥
जगत बियापी ब्रह्म जु आहि। प्रभु की प्रभा कहत कवि ताहि॥
इत तैं बहुरि अनत कहुँ जात न। यातैं नंदसुवन जु सनातन॥
इन की भाग महिम तौ रहौ। हमरें भूरि भाग तन चहौ॥
जद्यपि इन की इंद्री जिती। हम करि नाहिन कीनी तिती॥
तदपि तनक अभिमान के साथ। हम सब कृत्य कृत्य भये नाथ॥
नेत्रादिक इंद्रियगन जिते। हमरे पानपात्र प्रभु तिते॥
तुम्हरे सुंदर सुदर अंग। छिन छिन उठति जु अमृत तरंग॥
तिन करि पुनि पुनि पिवत जथारथ। सूर्यादिक सब भये कृतारथ॥
बहुरयौ इक इक इंद्रिय केरे। धन्य भये हम से बहुतेरे॥
जिन की सब इंद्रिय रस पगी। सब ही बिधि ते तुम ही लगी॥
तिन के भाग की महिमा जौन। हो प्रभु ताहि कहि सकैं कौन॥

अब हौं यह प्रार्थत हौं नाथ। भूरि भाग जो मेरे माथ ॥
मनुज-लोक में जनमु हमारौ। दीजै देव, दया विस्तारौ ॥
जौ कहहु सत्यलोक क्यों तज्यौ। मर्त्यलोक काहे ते भज्यौ ॥
लाभ कवन पैहो इत आइ। तहँ बिधि कहतु लिलाइ लिलाइ ॥
हे सुंदर वर मो पर ढरौ। या ब्रज को मोहि अस कछु करौ ॥
जासे इनके पगनि की रेनु। मोपर नित परसे सुख देनु ॥
जिनके तुम ही जीवननाथ। जैसे दीन मीन के पाथ ॥
तुम कैसे, जाकी पद-धूरि। ढूँढ़त श्रुति सो अजहूँ दूरि ॥
इनके भक्ति लहलहति जैसी। देखी सुनी न कितहूँ ऐसी ॥
हौ जानौ नित रिनी रहौगे। टकटक इनके वदन चहौगे ॥
जौ कहौ कि क्यों रिनी रहैगे। दैहै सब ए जु कछु चहैंगे ॥
तहँ तुम सुनहु वड़ो धन तुम्हरौ। एक मोक्षता पर सब झगरौ ॥
इनके वेष मात्र पूतना। महापापिनी जगत धूतना ॥
सो तहँ गई सकल कुल लैकैं। मोहन ललहिं तनक विपु दैकैं ॥
इनके तन मन नैन परान। तुमही लगे जानमनि जान ॥
जौ कहहु कि ये तौ सब रागी। सुत, वित, मित्र, विषै-रति पागी ॥
मोहि कोउ वीतराग भले पावै। तहँ बिधि भक्ति विभौ दिखरावै ॥
हे सुंदर वर नंदकिसोर। रागादिक तबई लगि चोर ॥
तबई लगि बंधन आगार। देह, गेह अरु नेह बिथार ॥
तबई लगि दिढ़ जंजर जेरी। मोह-लोह की पाइनि वेरी ॥
जब लगि जन नहि भये तुम्हारे। हे ईश्वर ब्रजराज दुलारे ॥
अब मो कौ अपनौ करि जानौ। मो कृत कछु अपराध न मानौ ॥
हमरौ ग्यान वीर्ज वल जितौ। प्रभु तुम सम्यक जानहु तितौ ॥
इतनी माँगत अहो अनंत। वंदन करौ कल्प परजंत ॥
वार वार परिकर्मा दै कै। सुंदर वदन विलोकन कै कै ॥
चल्यौ नाथ कौं माथ नवाइ। अधिकारी पैं रह्यौ न जाइ ॥
तव श्रीहरि वे वालक वच्छ। वैठे सव पाए उहि कच्छ ॥
वीत्यौ जदपि वरप इक काल। विछुरे सुंदर मोहनलाल ॥
तदपि अर्द्ध छिन मानत भये। अद्भुत प्रभु की माया छये ॥
कवन कवन माया नहिं भूले। जगत-हिंडोरे वड्डे झूले ॥
ये कछु माया करि नहि मोहे। प्रभु की इच्छा करि अति सोहे ॥
मोहे से तव कहत है वाल। वेगि ही आये मोहनलाल ॥

एकौ कवल न पावन पायौ। भैया तो विन जाइ न खायौ॥
हौं हूँ तौ तुम विन नहिं खायौ। हाथ कवल वैसैं ही आयौ॥
आवहु वैठहु भोजन करैं। इत ये बच्छ कच्छ मैं चरैं॥
अब ऐसैं बोले ब्रजबाल। बिहँसन लगे नंद के लाल॥
मंडल करि वैठे पुनि आछे। जैसैं बान वन्यौ हो पाछे॥
अति रुचि सौं मिलि भोजन कर्यौ। इहि बिधि वा बिधि कौ मद हर्यौ॥
सीथ जु परे दही-रस भरे। सदन जाइ बिधि लालच खरे॥
काक न भयौ फिर्यौ इतरातौ। चुनि चुनि सुंदर सीथन खातौ॥

इति वत्सहरण लीला

चले धरन अजगर दरसते। हिय सरसते, सुखनि वरसते॥
गातनि घात के चित्र बनाये। सीसनि मोर के चंद सुहाये॥
वेनु सृंगदल ललित बजावत। नव नव गीत पुनीतन गावत॥
गोपी द्दगन के उत्सव रूप। ब्रज आये नँद सुवन अनूप॥
वीत्यौ एक वरप जिहिं काल। ब्रज मैं कहत भये ब्रजबाल॥
आजु जु एक नंद के लाल। मार्यौ व्याल महा त्रिकराल॥

चित दै सुनै जो चतुर कोउ, चतुरदसौं अध्याइ।
गुनत चतुरदस भुवन तैं, परै परम गति जाइ॥८७॥

पंचदश अध्याय

अब सुनि लै पंद्रहो अध्याइ। चलिहैं कान्ह चरावन गाइ॥
वन की स्तुति कछु श्री मुख करिहै। धेनुक हति ब्रज सुख. बिस्तरिहैं॥
मंडित वय पौगंड सुदेस। छिन छिन ससि लौं वढ़त सुवेस॥
खेलत ललित खेल वन महियाँ। चलत चहन लागे परछहियाँ॥
गोपालनि संमत जब जाने। द्विज बर बोलि नंद जू आने॥
भल मुहूर्त्त लै दान दिवाइ। पठए कान्ह, चरावन गाइ॥
जसु लगि मंगल गीत गवावन। नंद चले वन लौं अवरावन॥
सखा साथ, बल भैया साथ। राजत रुचिर मंगली माथ॥
बीच अछत सु कवन छवि गनौं। मोती जमे चंद मधि मनौं॥
आगे करि दै गोधन-वृंद। बदन चूमि ब्रज बगदे नंद॥

गाइन की छबि नहि कहि परै। रूप अनूप सब के हिय हरै॥
कंचन भूषन सबनि के गरै। घनन घनन घंटागन करै॥
उज्जल अंग सु को है हंस। कामधेनु सब जिनि के अंस॥
दरपन सम तन अति द्युति देत। जिन मधि हरि झाँई झकि लेत॥
बृंदावन छबि कहत बनै न। भूलि रहैं जहँ हरि के नैन॥
जामैं सब दिन बसत बसंत। प्रफुलित नाना कुसुम अनंत॥
कंटक द्रुम एकौ नहि जहाँ। चिदाभास भासत सब तहाँ॥
सुंदर तरु सुरतरु तहँ को है। जे मनमोहन के मन मोहै॥
अरुन अरुन नव पल्लव पात। जनु हरि के अनुराग चुचात॥
रटत बिहंगम रंगनि भरे। बात कहत जनु द्रुम रस ढरे॥
कोकिल कल कूजति छबि पावति। जनु मधु-बधू सुमंगल गावति॥
कुसुम धूरि धूँधरी सुकुंज। गुंजत मंजु घोष अलि-पुंज॥
सुंदर सर निर्मल जल ऐसै। संतजननि के मानस जैसैं॥
तिन मधि अमल कमल अस लसैं। जनु आनंद भरे सर हँसैं॥
जल पर परी पराग जु सोहै। अबिर भरे नव दर्पन को है॥
सीतल, मंद सुगंध जु पौन। ठौर ठौर सुख कहियै कौन॥
नये जु फल-फूलनि के भार। लगि लगि रही धरनि द्रुम-डार॥
बार बार हरि तिन तन चहै। बल भैया सौं बातै कहै॥
देखहु हो ये द्रुम या बन के। सब सुख करने, हरने मन के॥
सिखा निकरि परसत तुव पाइ। जानत हौ कछु इन कौ भाई॥
कहत कि हो ईश्वर जगनाइक। हौ तौ तुम सबहिन सुखदाइक॥
ऐ परि हम पर बहुतै ढरे। जातै या बन के द्रुम करे॥
अरु देखहु या बन के भृंग। बोलत डोलत तुम्हरे संग॥
जनु ये मुनिगन अति ह्वै आये। जदपि गुप्त तदपि लखि पाये॥
धनि यह धर जा पर पग धरौ। धनि ये कुंज जहाँ संचरौ॥
धनि ये सर-सरिता जहँ खोरत। धनि ये कुसुम जिनहिं तुम तोरत॥
इहि बिधि विहरत बृंदावन मै। छिन छिन अति रति उपजत मन मैं॥
कबहूँ निरखि मराल सुचाल। तिन सँग खेलत लाल गुपाल॥
कहूँ मत्त निरतत दिखि मोर। तैसै ही निरतत नंदकिसोर[1]॥
कहूँ मदांध मधुप जहँ गावत। तिन सँग मिलि गावत छबि पावत॥

---

१. पाठा०—चित के चोर।

कबहूँ दूरि जाइ जब गाइ। ललित कदंबनि पर चढ़ि जाइ॥
आनँदघन सम सुंदर टेरनि। इत उत वह हेरनि, पट फेरनि॥
हे गंगे, हे हे गोदावरि। हे जमुने, हे भाँवरि, चाँवरि॥
हे मंजरि, हे कुंजरि, सींयरि। हे हे धौरी, धूमरि, पींयरि॥
कबहूँ मल्लजुद्ध मिलि खेलत। मद-गज ज्यौं ठेलत, पग पेलत॥
श्रमित होत आवत तरु तरे। किसलय सयन, सु पेसल करे॥
पौढ़त सखा जघनि सिरु नाइ। केई बड़भाग पलोटत पाइ॥
केइ कोमल पद लै कर मींजत। केइ लै कुसुम बीजना बीजत॥
केइ अति मधुर मधुर सुर गावत। साँवरे कुँवरहि नींद अनावत॥
विहरत इहि परकार विहार। ज्यौं गाइन सँग ग्वार गँवार॥
जा कहुँ मुनि मन करत विचार। निगम अगम नहिं पावत पार॥
लक्ष्मी ललना ललित सु पाइ। लालति ज्यौं निधनी धन पाइ॥
बड़ी वेर आवत सिप मन मैं। सो प्रभु यौं विहरत या वन मैं॥

इति वनविहार लीला

खेलत खेलत खेल सुहाये। गोधन लै गिरि गोधन आये॥
सखा एक श्रीदामा नाम। कहन लग्यो कि अहो बलराम॥
हो घनस्याम परम अभिराम। दुवौ अतुल बल छवि के धाम॥
इत तैं निकट ताल वन महा। मिष्ट मिष्ट फल कहियै कहा॥
यह दिखि उन कौ परिमल आवत। चपऱ्यौ हमरे चितहि चुरावत॥
भारी भूख लगी है चलौ। भैया बहुत मानिहैं भलौ॥
ऐ परि तहँ इक धेनुक नाम। बड़ौ वाम ताकौ बिश्राम॥
जाके डर तहँ जात न कोई। तछिन भछन करि डारै सोई॥
सुनतहि चले सु लागत भले। ऐसे दुष्ट किते दलमले॥
आगे भये विहँसि बलराम। पाछे करि लये मोहन स्याम॥
धसे विसाल ताल वन जाइ। मत्त गयँद ज्यौं पैठत आइ॥
दिये जु ताल सनाल हलाइ। भूखे ग्वाल जिये सब खाइ॥
सुनि कै आयौ धेनुक धाइ। धर डगमगत धरत यौं पाइ॥
गर्दभ सब्द करत इहि भाइ। सुर डरपे कि लिये हम आइ॥
अति बल सौं बल की ढिग गयौ। पछिले चरन चलावत भयौ॥
ते पद तबहिं पकरि है लये। पकरत प्रान निकसि हैं गये॥
फेरि फेरि ऐसै गहि डाऱ्यौ। ऊँचे हुतौ सु ता करि झाऱ्यौ॥

औरौ खर आये रिस भाने। तेऊ सबै ढेल से कीने॥
परे सु ताल बिसाल सु ऐसैं। प्रबल पवन के मारे जैसैं॥
खेलु सो खेलि छिनक में चले। कहत हैं ग्वाल भले जु भले॥
ब्रज कहुँ आवत अति छबि पावत। बालक-बृंद सु कीरति गावत॥
ऊपर सुर सुमन सु बरषावत। मुदित भये दुंदुभी बजावत॥
मंद मंद गति गाइन पाछें। चलत ललन छबि पावत आछें॥
गोरज छुरित कुटिल कच बने। जनु मधुकर पराग रस सने॥
मंजुल मोरमुकुट की लटकनि। कंचन कुंडल गंडनि झलकनि॥
उर बनमाल, सु नैन बिसाल। बाजत मोहन बेनु रसाल॥
सुनि कै गोपबधू सब निकसी। मुद्रित कमल-कली जनु बिकसी॥
हरि-मुख-कमल भर्‌यौ रस-रंग। गोपी लोचन लंपट भृंग॥
पुनि पुनि करि कै पान अघाने। दृगनि के बासर बिरह सिराने॥
तब कछु नैनन पूजा कीनी। लज्जा सहित हँसनि रँग-भीनी॥
ता पाछे बर कुटिल कटाछें। चली जु प्रेम रँगीली आछें॥
यह तिन की पूजा अभिराम। लै घर आये मोहन[1] स्याम॥
जसुमति द्वार आरतौ कियौ। पौंछि कै बदन सदन मैं लियौ॥
उबटन उबटि फुलेल लगाइ। स्वच्छ सुगंध सलिल अन्हवाइ॥
सुभग सुस्वाद सु बिंजन आनि। जननी ज्यॉये अपने पानि॥
रित रितु के भोजन अनुकूल। रितु रितु के बर फूल दुकूल॥
दुग्ध-फैन सम सेज बनाइ। पौढ़े तहाँ कुँवर बर जाइ॥

'नंद' नींद नँद-नंद की, कही जु इहि अध्याइ।
गुनातीत कौ सोइबौ, सब भगतनि के भाइ॥४६॥

इति धेनुकमर्दन लीला

पुनि इक दिन बिन ही बलराम। सखनि सहित बन गयने स्याम॥
पसु अरु पसुप तृपित अति भये। चले चले कालीदह गये॥
बनमाली आवत हे पाछें। बन छबि देखत देखत आछें॥
तब लगि ग्वाल-बाल अरु गाइ। महा गरल जल पीयौ जाइ॥
जौ पाछे आवहि नँदलाल। मरे परे सब गोधन-ग्वाल॥
अमृत-दृष्टि करि सींचि जिवाये। उठे सबै अति बिस्मय पाये॥

---

१. पाठा०— सुंदर।

कहन लगे कि मरे हे सबै । इहि नँदलाल जिवाये अबै ॥
तब वनमाली सब गुनसाली । काढ़ि दियौ तिहि दह तैं काली ॥

षोडश अध्याय

अब सुनि लै षोडसो अध्याइ । कीनी प्रश्न परिच्छित राइ ॥
हो प्रभु वह दह महा अगाध । तरल गरल करि भयौ असाध ॥
कमल ते अति कोमल वनमाली । तहँ ते कैसै काढ़्यौ काली ॥
अरु तहँ बहुत जुगनि कौ कह्यौ । सर्प अजलचर क्यौं जल रह्यौ ॥
गोप वेष श्रीकृष्न चरित्र । अति न अरु परम पवित्र ॥
निरवधि मधु की धारा आहि । सु को जु तृपतै पीवत ताहि ॥
हरिलीला-रससिंधु हिलोले । मंद मुसकि तहँ श्री सुक बोले ॥
जमुनहि मिल्यौ निकट ही महा । अति अगाध ह्रद कहियै कहा ।
विष की आगि लागि जल जरै । उड़ते खग जहँ गिरि गिरि परै ॥
इक जोजन के थिर चर जंत । जरि जरि मरि मरि गये अनंत ॥
जे वृंदावन जोग्य न हुते । ते सब विष-जल-ज्वाला हुते ॥
ताही ढिग इक मृदुल कदंब । सो छ्वै सक्यौ न विष कौ अंब ॥
या पर कृष्न-चरन परसिहैं । इत ते अहि दुष्टहि करसिहैं ॥
जा कदंब की भावी ऐसैं । विष-जल परसि सकै तिहि कैसैं ॥
कान्ह कह्यौ कि हमारी जमुना । क्यों पूछियै विष भरी अमुना ॥
सरितहि सुद्ध करन कलमले । छबि सों कहि कदंब ढिग चले ॥
किंकिनि सो कटि पटहि लपेटि । कुटिल अलक मुकट मै समेटि ॥
चट दै तिहि कदंब पर चढ़े । छाजत ता छिन अति छवि बढ़े ॥
जिहिं जल छुवत जात जन जरे । तिहि जल कुँवर कूदि ही परे ॥
वर वारन ज्यौं जल मै धसरै । सत सत धनु चहुँ दिसि पय पसरै ॥
अति ऊधम सुनि काली डर्यौ । वज्र पर्यौ कि गरुड़ वल कर्यौ ॥
अरग अरग आयौ रिस भर्यौ । कोमल कुँवर दिष्टि-पथ पर्यौ ॥
नूतन घन सम सुंदर स्याम । तड़िदिव पीतवसन अभिराम ॥
घन इव, तड़िदिव उपमा ऐसैं । साखा विन ससि सुभै न जैसैं ॥
विहरत विभु अपने रस-रंग । ईश्वरता कछु नाहिन संग ॥
ताकौं कह जानै यह नीच । लोचन भरे महा तम कीच ॥
अरुन कमल से कोमल पाइ । डसत भयौ दुरात्मा आइ ॥

लपटि गयौ पुनि सिगरे गात । रोपं भरे दृग अनल चुचात ॥
ऐसैं जब निरखे ब्रजबाल । गाइ, बृपभ, वछ, वाछी, वाल ॥
मुरझि परे ठाँ ठाँ सब ऐसैं । सुंदर तरु बिनु मूलहि जैसैं ॥
ब्रज में होन लगे उतपात । असुभ सूचने फरके गात ॥
भूमिकंप, नभ ते उडु गिरे । अवर असगुन निरखि थरहरे ॥
कहत कि आज राम बिनु स्याम । बन जु गये कछु बिगरयौ काम ॥
अति कलमले विरह दलमले । वाल-बिरद सब कानन चले ॥
तिन सो कछु न कहत बलदेव । जानत हरि भैया के भेव ॥
चरन-सरोज-खोज ही लगे । जिन मै सुभ लच्छन जगमगे ।
अरि, दर, मीन, कमल, जब जहाँ । अंकुस, कुलिस, धुजा छबि तहाँ ॥
जारज कहुँ सिव, अज नित बंछत । अनुदिन सनक, सनंदन इच्छत ॥
तिहि सिर धारत अतिसय आरत । कृष्न कृष्न गोविंद पुकारत ॥
क्रम क्रम करि जमुना अनुसरे । निरखे ग्वाल-वाल, पसु परे ॥
दह मैं दिष्टि परे बनमाली । लपटि रह्यौ तन कारौ काली ॥
जौ बलभद्र बीच नहिं परै । तौ सब जन जल ज्वाला जरै ॥
तिन मैं गोपवधू भरि नेह । दृगनि मै प्रान रहे तजि देह ॥
जसुमति उमगि उमगि दह परै । छन छन संकर्पन भुज धरै ॥
ब्रज अनन्य गति दिखि बनमाली । गहि डार्यौ तब कारो काली ॥
ठाढ़ौ भयौ भयानक भारौ । इक सत फन, बरियारौ कारौ ॥
फन फन द्वै द्वै जीभ कराल । लपलप करै निपट विकराल ॥
डारत वार बार फुंकार । छुटत जु गरल अनल की झार ॥
द्वै सत लोचन राते ऐसैं । माँड़े पकने भाँड़े जैसैं ॥
तिन तै अगिनि की चिनगी परैं । ठाढ़े इहाँ तीर के जरैं ॥
ऐसैं काली सौं बनमाली । खेलन लगे सकल गुनसाली ॥
वाम भाग दिये तिहि उर मेलत । जैसे गरुड़ सर्प सौं खेलत ॥
बुझि गयौ ओज उरग कौ ऐसैं । नागदवन के देखत जैसैं ॥
पुनि ताके फन पर चढ़ि गये । सकल कला गुरु निर्तत भये ॥
सोहै नंद-सुवन तहँ ऐसैं । सेस उपर नाराइन जैसैं ॥
तिहि छन ब्रज गंधर्व जितेक । लै लै ताल मृदंग अनेक ॥
सुघर सुघर जे सुर लोक के । सिव लोक के विष्णु ओक के ॥
अद्भुत नर्त्तक नहिं कछु कचे । सर्प फननि पर तांडव नचे ॥
फननि ते निकसि निकसि मनि परै । पगनि में झलमल झलमल करै ॥

तैसिय हरि-नख-मनि की जोति । सब दिसि जगमग जगमग होति ॥
जोई फन अहि उन्नत करै । तहँ तहँ मान कान्ह कौ परै ॥
पगनि की कूटनि दुखित जु भयौ । सर्प को दर्प सबै गिरि गयौ ॥
कहतु कि यह बल नहिंन मनुज कौ । निरवधि ईस्वर बल जु अनुज कौ ॥
सापराध अहि निपटहि डर्यौ । मन करि चरन सरन अनुसर्यौ ॥
दुखित देखि ताकी सब तिया । आई थर थर कंपत हिया ॥
नैननि तैं जलकन यौं परैं । कमलनि ते जनु मुक्ता झरैं ॥
बिगलित कच सु बदन छबि बढ़े । अहि-सिसु मनहुँ कि सीसनि चढ़े ॥
कछु मुद भरी कछू भय भरी । करि दंडवत स्तुती अनुसरी ॥
अहो नाथ अनुचित नहि कर्यौ । अहि कहुँ दंड न्याय ही धर्यौ ॥
दुष्ट दमन तुम्हरौ अवतार । हो ईस्वर ब्रजराज कुमार ॥
जो दिखियत यह विस्व पसारौ । सो सब क्रीड़ा-भाँड तुम्हारौ ॥
अहि कहुँ तुम जु दंड नहिं धर्यौ । या पर परम अनुग्रह कर्यौ ॥
हो प्रभु तुम तै जिती बड़ाई । इनि पाई सो किनहूँ न पाई ॥
एक अंड कौ भार सु कितौ । गरवतु सेस धरे सिर तितौ ॥
अमिय अंडमय वपु रस भर्यौ । सो इन धर्यौ बहुत हे कर्यौ ॥
सुनतहि बचन दया रस भरे । तातैं तुरत उतरि ही परे ॥
हरै हरै उठि बोल्यौ काली । हो अद्भुत ईस्वर बनमाली ॥
तुम हीं हम इहि विधि के करे । गरल भरे अति तामस भरे ॥
तब नहि सोचे इहि विधि बानत । अब हो नाथ बुरौ क्यौं मानत ॥
तब बोले ब्रजराज-कुमार । यह बन हमरौ नित्य विहार ॥
अब तू रमनक दीपहि जाहि । वा गरुड़ तै नैंकु न डराहि ॥
मो पद चिह्ननि चिह्नित भयो । करि आनंद, सबै भय गयौ ॥

काली मर्दन लाल की, लीला सुनै जु कोइ।
महा ब्याल कलिकाल तैं, तिहि न तनक भय होइ ॥४२॥

सप्तदश अध्याय

अब सुनि लै सत्रहां अध्याइ । सर्पहि रमनक दीप पठाइ ॥
उठि है निसि बन बन्हि अचान । पानी लौं हरि करिहैं पान ॥
नृप सुनि पुनि मुनि पूछे ऐसै । हो प्रभु ! मो सौं कहि यह कैसैं ॥
रमनक दीप अहिन कौ धाम । क्यौं छाँड़्यो इन काली याम ॥

गरुड़ कौ कहा कियौ अनभायौ। जातैं यह इहिं दह मैं आयौ ॥
श्री सुक कही अहिनु के ठौर। परी रहति नित खगपति दौर ॥
थोरे खाइ, बहुत हति जाइ। तब सर्पनि मिलि कियौ उपाइ ॥
आवहु मास मास बलि दीजै। इहि विधि भले केऊ दिन जीजै ॥
तब पर्वनि पर्वनि तरु तरे। अपनी अपनी बलि लै धरे ॥
यह अति विष-बीरज-मद भर्यौ। गरुड़ तैं रंचक नाहिंन डर्यौ ॥
अपनौ भाग, अवर कौ भागु। खाइ जाइ यह काली नागु ॥
सुनि कै कुपित भयौ द्विजराज। कद्रू-सुतहिं हतन के काज ॥
महा बेग धरि रिस भरि धायौ। बल-आलय उरगालय आयौ ॥
इत यह बली ब्याल भिहरानौ। मधु-रिपु-आसन प्रति समुहानौ ॥
इक सत फननि फुफात सु तातौ। द्वै सत लोचन अनल चुचातौ ॥
अति बल गरुड़ नखायुध जाके। दूजो मधुसूदन बल ताके ॥
बाम पच्छ नव कंचनमई। रहपट एक जु ताकौं दई ॥
तहँ तें भज्यौ सु बिह्वल भयौ। धाइ आइ इहि दह दुरि गयौ ॥
इहाँ गरुड़ की कछु न बसानी। फिरि गयौ सौभरि संका मानी ॥
सुनि कै प्रश्न करी नृप ऐसैं। हो प्रभु! सौभरि संका कैसैं ॥
तब राजा सौं श्री सुक कहै। सौभरि कौ तहँ आश्रम रहै ॥
एक समै इहि दह में आइ। खगपति कीनौ बहुत उपाइ ॥
तहँ के मीननि कहुँ दुख दीनौ। तिन को राउ पकरि है लीनौ ॥
जलचर दुखित देखि कै खरे। बोले रिषि अति करुना भरे ॥
अब कें जौ ह्याँ खगपति आवैं। प्रान सहित तौ जान न पावै ॥
अकिलौ काली जानत याहि। और न लेलिह जानत ताहि ॥
सो वह काली, हरि बनमाली। काढ़ि दियौ करि कीर्त्ति विसाली ॥
सुत-कलत्र लै भरि अनुराग। रमनक गयौ नाग बड़भाग ॥
तब नँद-नंदन दह ते निकसे। मुसकत नवल कमल से विकसे ॥
अहिपतिनिन करि पूजे स्याम। अद्भुत पट, अद्भुत मनि-दाम ॥
बन्यौ जु बदन सु को छबि गनों। दीनी ओप चंद मधि मनो ॥
धाइ घुरि गई जसुमति मैया। इत हँसि दौरि घुस्यौ बल भैया ॥
गोपी गोप, गाइ, बछ जिते। घुरि गये सुंदर अंगनि तिते ॥
चलत सबनि के नैंननि नीर। जनु निकसी जल ह्वै उर पीर ॥
आये ब्रज के द्विज अनुरागे। नंद सौं कहन सबै यौं लागे ॥

जा कहुँ ऐसैं बिषधर खाइ। सो सुत बहुरि मिलैं तोहिं आइ ॥
तातें दान देहु ब्रजराज। अपने कुल मंडन के काज ॥
जु कछु जन्म-उत्सव में कीनौ। ब्रजपति तातें दूनौ दीनौ ॥
दाननि देत परि गई साँझ। रहि गये ताही कानन माँझ ॥
सब दिन अति कलेस करि भरे। सोवत हुते महा निसि परे ॥
तहँ अभिचार मंत्र करि प्रेख्यौ। उठ्यौ अगिनि, तिहि सब ब्रज घेर्यौ ॥
दुष्ट पवन लगि उठति जु लपटैं। दूरि दूरि लगि अति झर झपटैं ॥
जगे जु लोग कुलाहल पर्यौ। कहत कि अब कें सब ब्रज धर्यौ ॥
पौढ़े हुते साँवरे जहाँ। सब जन धाये आये तहाँ ॥
अहो कृष्ण, श्री कृष्ण पियारे। जरत हैं सबै दवानल जारे ॥
हमहिं कछू तौ डर न मरन कौ। नहिं सहि परत बियोग चरन को ॥
सुनत जगे, अति नीके लगे। आलस पगे, उठे रँगमगे ॥
करनि नैन मींजत छबि पावत। रूठे कमल, मनु कमल मनावत ॥
एक सकति कहुँ अग्या दई। कब धौं अगिनि पान करि गई ॥
जे द्रुमलता दवानल जरे। अमी-दृष्टि करि तैसैंई करे ॥
भोर भये अपने ब्रज आये। मिटे अमंगल, मंगल गाये ॥

अगिनि पान, हरि-जान कौं, गान जु करिहै कोइ।
महा झार संसार-झर बहुरि न परिहै सोइ ॥२६॥

अष्टादश अध्याय

अष्टादश अध्याय की कथा। बरनि सुनावौं मो मति जथा ॥
ग्रीषम रितु आपने सुभाइक। प्रगट्यौ जगत सबनि दुखदाइक ॥
अति निदाघ जहँ कछु सुधि नाहीं। दादुर दुरहिं फनी-फन छाँहीं ॥
सो बृंदावन मधि जब आयौ। सरस बसंत समान सुहायौ ॥
ठाँ ठाँ गिरि तें निर्झर झरैं। ते वै सलिल सिलनि पर परैं ॥
तहँ तें उछलि उछलि जल कुही। छिरकति छितिहिं सुलागति सुही ॥
तिन ते बहति जु सरिता गहिरी। दूरि दूरि लौं पसरति लहरी ॥
बहुरि अनेक अगाध जु सरवर। रस भूमरे, घूमरे तरवर ॥
तिन के तर तृन-बीरुध जिते। हरित हरित रँग भरति सु तिते ॥
तरनि किरनि जिन नैकुन परसैं। छिन छिन मे छवि तिन मैं सरसैं ॥
कुसुमित बनराजी अति राजी। ऐसी नहिंन बसंत बिराजी ॥
ठौर ठौर सर सरसिज फूले। डोलत लंपट अलिकुल भूले ॥

कमल पवनु अरु चंदन पौन। मिलि जु वहत, सुख कहियै कौन॥
बोलत सुक, जनु सुक गुनि पढ़ैं। सरसुति सम कल कोकिल रढ़ैं॥
मधुर मधुर सुर बोलत मोर। नंद-सुवन के मन के चोर॥
इहि बिधि वृंदाबन छवि पावत। तहँ मनमोहन धेनु चरावत॥
बल समेत, व्रजवाल समेत। श्रीनिकेत सबहिंन सुख देत॥
कहूँ अवधि वदि मेलत डेलनि। कहूँ परस्पर खेलत बेलनि॥
कहुँ अँग छुवनि, कहूँ दृग बंधनि। कहुँ चढ़ि जात द्रुमनि के कंधनि॥
कहूँ रचत भूपन वनमाल। लै लै फल दल-फूल, प्रवाल॥
कबहूँ निर्तत मोहनलाल। ताल बजावत, गावत ग्वाल॥
कबहूँ वर हिंडोर बनावत। झूलत मिलि, गावत छवि पावत॥
कबहूँ राज सिंघासन ठानत। छत्र, चँवर फूलन के वानत॥
राजा ह्वै रजई दिखरावत। ग्वाल वाल दुंदुभी वजावत॥
लौकिक लरिकनि की सी नाँई। खेलत खेल जगत के साँई॥
असुर प्रलंब गोप के बानक। आनि मिल्यौ तिन माँझ अचानक॥
नंद-सुवन तब हीं पहिचान्यौ। दुष्ट न दुरै दई कौं हान्यौ॥
ताकौं हतन हिये में आन्यौ। तब हरि और खेल इक ठान्यौ॥
कहत कि सुनहु भिवा ही हीरी। अवर खेल खेलहु बटि भीरी॥
द्वै द्वै ह्वै ह्वै आवहु ऐसैं। बल अरु अबल जानि कै जैसे॥
जो हारै सो लेइ चढ़ाइ। वट भाँडीर तीर लै जाइ॥
भले भले कहि किलके हँसे। ललित कटिनि झट दै पट कसे॥
नाइक भये स्याम वलराम। आवन लागे धरि धरि नाम॥
कोउ लेइ चंद, कोऊ लेइ सूर। कोउ खजूर, कोउ लेइ ववूर॥
श्रीदामा बृषभादिक ग्वाल। वल दिसि गये बजावत गाल॥
जमुना पुलिन ललित चौगान। खेलन लगे जान-मनि जान॥
लै गये मारि टोल वल प्यारे। कमल-नयन दिसि के सब हारे॥
तिन पर चढ़ि चढ़ि वल ओर के। चले चपल आपनी जोर के॥
श्रीदामा हरि पर चढ़ि चले। को ठाकुर जु खेल मै रले॥
वट भंडीर तीर लगि चढ़े। लै गये वालकेलि रस वढ़े॥
कान्ह कुँवर की दृष्टि बचाइ। असुर अवधि तें आगे जाइ॥
अपने रूपहि आश्रित भयौ। तब ही अंबर लौं वढ़ि गयौ॥
ता छिन भयौ भयानक भारौ। पहिरे कंचन-भूपन कारौ॥
ता पर संकर्षन अति सोहे। व्रजवालक बिलोकि सब मोहे॥

जो होइ कारी भारी घटा। बिच बिच चमकै-दमकै छटा ॥
ऊपर सरद चंद होइ जैसें। सोहै रोहिनि-नंदन तैसे ॥
बिकट वदन अरु बड्डे दंत। बिकट भृकुटि दृग अग्नि बमंत ॥
तपत ताम्र से सिररुह लसे। तब दिखि हलधर रंचक त्रसे ॥
पुनि सुधि आइ तनक मुसकाई। दियौ जु मुठिका मूँड़ बनाइ ॥
करच करच ह्वै गयौ लिलार। मुख तें चली रुधिर की धार ॥
पर्‌यौ प्रलंब न कछु संभार्‌यौ। गिरि जस गिरत वज्र कौ मार्‌यौ ॥
घुरि घुरि मिले ग्वालगन ऐसैं। मरि गयौ कोउ फिरि आवत जैसैं ॥
अमर निकर बर अतिसय हरषे। बल पर सुमन सु सुंदर बरषे ॥

अष्टादस अध्याइ इह, सुनै तनक मन लाइ।
ताके पाप प्रलंब जिमि, सब मरि जाइ सुभाइ ॥२७॥

अष्टादस अध्याइ कौ, फल न कछू कहि 'नंद'।
अपने ही हिय रहन दै, चरित सहित ब्रजचंद ॥२८॥

एकोनविंश अध्याय

अब सुनि उनइसवौं अध्याइ। स्याम-राम मुंजारन जाइ ॥
गोप-गाइ-गन गह्वर डर तें। लैहैं राखि दवानल झर तें ॥
वृंदावन सब छबि कौ धाम। सखन समेत स्याम बलराम ॥
बिहरत अति आसक्त जु भये। गोधन निकसि बनांतर गये ॥
मुंजारन्य नाम हे जहाँ। अति गह्वर सुधि परत न तहाँ ॥
पसु-सुभाउ तैं लुब्धे लोभा। चलि गये चरत चरत बन गोभा ॥
आगे कुंज पुंज अति भीर। नहिंन नीर परसै न समीर ॥
मारग नहिं जु उलटि इत परै। गोधन-वृंद सु क्रंदन करै ॥
खेल छाँड़ि जो इत उत चहैं। गोधन कहूँ निकट नहि लहैं ॥
बालक बिकल भये सब ऐसैं। धन गये होत कृपन जन जैसैं ॥
उच्च द्रुमन पर चढ़ि चढ़ि हेरत। धौरी, धूमरि, पीयरि टेरत ॥
टेर सुनहिं तब जब होहिं नियरी। दूरि गईं वे कांजरि पियरी ॥
तब जुरि खोज खोजहीं चले। जहँ जहँ तृन खुर-दंतन दले ॥
आगें अति गह्वर दिखि चके। धसि न सके तित ही सब थके ॥
तब हरि इक कदंब पर चढ़े। कहि नहिं परति जु अति छवि बढ़े ॥
जनु सब सकृत कौ फल रस-पग्यौ। इहि कदंब एकैं यह लग्यौ ॥

चंचल दृगनि की इत उत हेरनि । मधुर मधुर टेरनि, पट फेरनि ॥
हरि-मुख तैं सुनि अपने नाइनि । बगदी उत तैं चाइनि चाइनि ॥
प्रेम सहित आवनि, हुंकारनि । सींचत धरनि दूध की धारनि ॥
आनि जु भई धेनु इकटौरी । धौरी धौरी, अति छबि बौरी ॥
सब के कंठनि कंचन-माला । सोहति सुंदर नयन विसाला ॥
घनन घनन घंटागन वजैं । अमरराज-गज की छवि लजैं ॥

हरि सनमुख आवति उमहि, उज्जल गोधन-नार ।
समुंदहि मनहुँ मिलन चलि, गंग भई सतधार ॥१९॥

ऐसेहिं माँझ दवानल लग्यौ । वृष रवि-रस्मि परसि जगमग्यौ ॥
प्रवल पवन लगि अति झर झपटै । लतनि सौं लपटि द्रुमनि सौं लपटै ॥
जरि जरि ताल तमाल जु लटकैं । पटके बाँस फाँस-तृन चटकैं ॥
डरे गोप-गोधनगन सवै । आये नंद-सुवन ढिग तवै ॥
ज्यौं कोउ काल व्याल तें डरै । भजि हरि-चरन-सरन अनुसरै ॥
कहन लगे कि अहो वलराम । हो श्रीकृष्ण कृष्ण घनस्याम ॥
राखि लेहु हम बंधु तुम्हारे । जरत हैं सवै दवानल जारे ॥
तव हँसि वोले मोहनलाल । मूँदहुँ नैन धेनु, वछ, वाल ॥
सुनतहिं नंदसुवन के वैन । झट दै सवहिन मूँदे नैन ॥
जौ देखहिं तौ बट भंडीर । ठाढ़े हैं सब ताके तीर ॥
कहन लगे अति विस्मय पाये । कित हम हुते, कितै अब आये ॥
यह जु नंद कौ नंदन आहि । भिया मनुज जिनि जानहु ताहिं ॥
देवनि मै जु देव वड़ कोई । हम जानहिं कि आहि यह सोई ॥
आगें धरि लै गोधनवृंद । चले सदन ब्रज कदन-निकंद ॥
मधुर मधुर धुनि वेनु वजावत । वालकवृंद सु कीरति गावत ॥
गोपीजन कौं परमानंद । भयौ निरखि वृजपति कौ चंद ॥
जिन कहुँ जा विनु इक छिन ऐसैं । वीतत कोटि कोटि जुग जैसैं ॥

श्रीदामादि सखा जिते, जीतत खेलहु लागि ।
ऐसी ठौर न सुधि परै, पियौ जात है क्यौं आगि ॥२१॥

सुनै जु कोऊ हरि चरित, उन विंसत अध्याइ ।
पाप न परसै 'नंद' तिहि, पदमिनि-दल-जल-न्याइ ॥२२॥

विंश अध्याय

अब सुनि लै विसओ अध्याइ। वर्नित जहँ द्वै रितु के भाइ॥
इक वरषा अरु सरद सुढार। विहरत जहँ व्रजराज-कुमार॥
प्रथमहिं प्रावृट् प्रगटित तहाँ। सब जंतुनि कौ उद्भव जहाँ॥
छुभित जु गगन पवन संचरै। रवि अरु ससि कहुँ मंडल परै॥
नील वरन नीरद उनये। गरजि गरजि नभ छादित भये॥
जैसैं सगुन ब्रह्म यह जीय। सत, रज, तम करि आवृत कीय॥
अष्ट मास धर कौ जल जितौ। रस्मिन करि रवि पीयत तितौ॥
चारि मास पुनि निर्भर भरै। सब दुख हरैं, सुखन विस्तरैं॥
कैसे नृप अपनौ कर लेइ। समय पाइ पुनि परजहि देइ॥
तड़ित-द्दगनि करि मेघ महंत। देखे ताप तपे सब जंत॥
प्रेरे पवन सु जीवन वरषै। सबनि के दुख करषै, मन हरषै॥
जैसैं करुन पुरुष पर हेत। अपने प्यारे प्राननि देत॥
ग्रीष्म-ताप करि कृश हुति धरनी। सरस भई, सोहति वर वरनी॥
ज्यौं सकाम कोउ फल कौं पाइ। भोगनि भुगति पुष्ट ह्वै जाइ॥
साँझ समै पटविजना चमकै। घन करि छपे नछत्रन दमकै॥
ज्यौं कलि विषै पाप पाखंड। नहिन निगम के धरम प्रचंड॥
घन-गरजनि सुनि मुदित जु भेक। वोले धरनि अनेक अनेक॥
ज्यौं गुरु आग्या सुनि चटसार। चट पढ़ि उठत एक ही बार॥
पाछे सुष्क हुतीं जे सरिता। उत्पथ चलीं वहुत जल भरिता॥
अजितेंद्रिय नर ज्यौं इतराइ। देह, गेह, धन, संपति पाइ॥
बुढ़ी लुढ़ी जु हरित भई धरनी। उच्छलिध्र छवि फवि हियहरनी॥
जनु कोउ भूपति उतर्‍यौ आइ। छत्र तनाइ, विछौन विछाइ॥
निपजे छेत्र काँगुनी धान। तिनहिं निरखि हरखे जु किसान॥
धनी लोग उपतापहि जाहीं। दैवाधीन सु जानत नाहीं॥
जल के, थल के वासी जिते। जल-सेवा करि सोभित तिते॥
जैसे हरि-सेवा करि कोई। रुचिर रूप अति राजत सोई॥
सरित-संग करि क्षुभित सु सिंधु। उमगि ऊरमी ह्वै गयौ अंधु॥
ज्यों अपक्क जोगी चित्त धाइ। विषयनि पाइ भ्रष्ट ह्वै जाइ॥
गिरिगन पर जलधर-वर वरसैं। ए परि गिरि कछु विथा न परसैं॥
परसैं पै निरसैं नहिन ऐसैं। कष्टनि पाइ कृष्नजन जैसैं॥

मारग ठौर ठौर तृन छये। पंथ चलत पथिकनि भ्रम भये॥
ज्यौ अभ्यास बिनु बिप्र सु बेद। समुझि न परै अरथ-पद भेद॥
मेघनि बिपैं अलप जल परै। तड़ि भई अलुप नेह परिहरै॥
ज्यौ लंपट जुवती जग माहीं। निधन भये पुरुषहिं तजि जाही॥
घन घुमड़नि मधि चाप सुरेस। बिनु गुन सोभित भयौ सुदेस॥
प्रगट प्रपंच जगत मै जैसै। निर्गुन पुरुष बिराजत तैसै॥
गगन में सघन घनन करि छयौ। तहँ उडुराज बिराजत भयौ॥
लपटि अहंता समता जैसै। जग मे जीव न सोहत तैसे॥
सुनि कै सुंदर घन हर घोर। भरि आनँद वन कुहकैं मोर॥
जैसैं गृहनि बिषै दुख पाइ। रहत है गृही बिरागहि आइ॥
तिन के जाहि संत जन जैसैं। दुख हरने, सुख करने तैसैं॥
सरनि के तट, जहँ कंटक कीच। चक्रवाक वसे तिन ही बीच॥
ज्यौ कुचील घरनि मैं गँवार। बसत हैं बिबस उदर व्यवहार॥
इंद्र के बरषत जल भरि भारी। टूटि फूटि गई सब मिडवारी॥
ज्यौ कलि बिषैं दंभ-रस-स्वाद। लोपहि भई वेद-मरजाद॥
पके आँब, जामुन अरु दाख। मधुर खजूर सु लाखनि लाख॥
तहँ मनमोहन धेनु चरावत। बल बालक समेत छबि पावत॥
सीसनि सुंदर छतना दिये। कंचन लकुट करनि मैं लिये॥
सोभित सिरनि कसूँमी खोरी। लाल निचोइ मनहुँ रँग बोरी॥
मुरली मधुर मलार सु गावत। उघरे अंबुद फिरि घिरि आवत॥
भीजि वसन सुंदर तन लपटनि। दृगनवंत कहुँ अति सुख दपटनि॥
जब हरि धेनु बुलावत बन मैं। फूली नहिं समात तन-मन मैं॥
चलि न सकति ओहनि के भार। आवति स्रवत दूध की धार॥
ठाँ ठाँ द्रुमन स्रये मधु नये। निरखि ब्रजौकस प्रमुदित भये॥
गिरि तैं गिरत जु जल की धार। तिन तैं उठत नाद झंकार॥
बल समेत, ब्रजबाल समेत। निरखत डोलत रमानिकेत॥
पवन सहित जब बरसत मेह। परसत सीत जु कोमल देह॥
तब कंदर, कदंब के मूलनि। दुरत हैं जाइ कलिंदी कूलनि॥
कबहूँ स्वच्छ सलिल तट जाइ। सिलनि के थार, कचोर बनाइ॥
दधि-ओदन, बिंजन बिस्तरैं। बैठि परस्पर भोजन करैं॥
अवर अनेक बिहार उदार। करत बिपिन ब्रजराज-कुमार॥

शरद वर्णन

सरद समै मनभायौ कानन। स्वच्छ सलिल अरु अनिल सुहावन ॥
पानी पहुने से चलि बसे। सरनि मैं सरसिज छवि सौं लसे ॥
ज्यौं जोगीजन-मन वहि परै। बहुरि जोग बल निर्मल करै ॥
गगन के घन जल मल भुव पंक। जंतन की संकीरन संक ॥
सरद हरत भयौ सहजहिं ऐसैं। कृष्णा-भक्ति-आश्रय दुख जैसैं ॥
अपनौ सरबसु दै करि मेह। राजत भये सु उज्जल देह ॥
सुत-वित-इच्छा परिहरि जैसैं। सोहत मुनि गतकल्मष तैसैं ॥
गिरिवर निर्मल जल की धार। कहूँ स्रवत, कहुँ नहिं निज ढार ॥
जैसैं ग्यान-अमृत कहुँ ग्यानी। देहि न देहि दया रस बानी ॥
अलप जलनि मैं जलचर रहे। छीन होत जल नाहिन लहे ॥
ज्यों नर मूढ़ छिनहि छिन माहीं। छीजत आयु सु जानत नाहीं ॥
तुच्छ सलिल के पुनि ये मीन। सरद ताप तपि भये जु दीन ॥
कृपन, दरिद्र कुटुंबी जैसें। अजितेंद्रिय दुख भरत है तैसैं ॥
सनै सनै थल-पंक मिटाई। बीरुध-तृननि की गई कचाई ॥
ज्यौं मुनि धीर सरीरनि विषैं। तजत अहंता ममता इषैं ॥
सुंदर सरदागम जब भयौ। निश्चल जल समुद्र को गयौ ॥
आतम विषैं एक चित जैसैं। त्यक्त-क्रिया-मुनि राजत तैसैं ॥
क्यारिनु विषैं किसाननु वारि। ठाँ ठाँ रोके सुदिढ़ सुधारि ॥
ज्यौं इंद्रिनि करि स्रवत है ग्यान। रोकि लेत जोगीजन जान ॥
सरद अर्क दिन तपति जु दई। उडुप उदित ह्वै सब हरि लई ॥
ज्यौं देहाभिमान कौ ग्यान। ब्रज-जुवती-दुख कौं भगवान ॥
विनु घन गगन सु सोभित तहाँ। उदित अमल तारागन जहाँ ॥
जैसैं सुद्ध चित्त अति सरसै। शब्द ब्रह्म के अरथहि दरसै ॥
ससि अखंड मंडल जु गगन मैं। राजत भयौ नछत्र-अगन मैं ॥
ज्यौं जदुकुल करि अवनी ऐन। राजत कृष्ण कमल-दल नैन ॥
गो, मृग, खग, जुवती रसमई। सरद समै पुहुपवती भई ॥
तिन के संग फिरत पति ऐसैं। कृष्णा क्रिपनि-पाछे फल जैसैं ॥
रवि के उगत कमल-कुल लसे। कुमुदन हँसे, सकुचि मन त्रसे ॥
नृप-प्रताप ज्यौं निर्भय साधु। दुरत भोर भये चोर असाधु ॥

सुनै जु उपमा सरद वर, यह विसऐं अध्याइ।
सरद समै के नीर जिमि, मन निर्मल ह्वै जाइ ॥४६॥

'नंद' देहरी दीन जिमि, करि बीसयों अध्याइ।
नेह-तेल भरि कंठ धरि, दुहुँ दिसि को तम जाइ ॥४७॥

एकत्रिंश अध्याय

अब सुनि इकईसो अध्याइ। सरद समै बृंदावन जाइ ॥
वेनु वजैहैं मोहनलाल। तिहि सुनि सुंदर व्रज की वाल ॥
बरनन करिहैं परम पुनीत। अहो मीत! सुनि गोपी-गीत ॥

[श्री शुक उवाच]

सरद स्वच्छ जल-कमल जितेक। प्रफुलित भये अनेक अनेक ॥
तिन की बासु बायु लै गयौ। ता करि सब वन बासित भयौ ॥
तिहिं वन अच्युत मोहनलाल। गवने बल-बालक-गोपाल ॥
औरौ सुसम कुसुमगन फूले। मधुकर मत्त फिरत जहँ भूले ॥
तरुवर, सरवर के खग जिते। मुद भरि करत कुलाहल तिते ॥
जहँ गिरि गोधन सुछ छबि छये। नित बरसत, सरसत सुख नये ॥
तहँ नँद-नंदन चारत धेनु। मधुर मधुर सुर बजवत वेनु ॥
सो वह बेनु-गीत सु रसाल। सुनत भईं व्रज में व्रजबाल ॥
बढ्यौ जु तन-मन प्रेम अनंग। मनु उत ही हैं हरि के संग ॥
बरनति भईं सखिन प्रति ऐसैं। परतछ कान्ह कुँवर बर जैसैं ॥
हे सखि! देखि नटवर बपु धरें। करननि कँवल करनिका करे ॥
धरें मुकुट चटकीलौ माथ। फेरत कमल दाहिने हाथ ॥
राजति उर बैजंती माल। चलत जु मत्त द्विरद की चाल ॥
अधर-सुधा मुरली के रंध्रनि। निकसति मिलि-सुर सप्त सुगंधनि ॥
ता करि सब वन धूनित कियो। काहू माँझ रह्यौ नहिं हियो ॥
निज पद अंकित, नित कमनीय। बृंदारन्य परम रमनीय ॥
तहाँ प्रवेस करत छवि पावत। गोपबृंद कल कीरति गावत ॥
मोहन-मंत्र सों मुरली राग। सुनि कै व्रजतिय भरि अनुराग ॥
बरनन करत भईं मिली ऐसें। हरि परिरंभन देत है जैसे ॥

गोपी कहति है

हे सखि! नैननि कौ फल यहै। सुदर प्रियतम-दरसन चहै ॥
तिन कहुँ फल पिय-दरसन फरे। छिन छिन वदन विलोकन करे ॥
यातें अवर नहिंन कछु परे। निसि-बासर अवलोकन करे ॥

सो फल सखिन सहित बन घन में। बल समेत डोलत गोगन में॥
मधुर मधुर सुर वेनु वजावत। अनेक राग-रागिनि उपजावत॥
ताननि के सँग स्निग्ध कटाछैं। चलत जु मंद हँसनि के पाछैं॥
जिन करि वह सुंदर मुख चह्यो। नैननि कौ फल तिन हीं लह्यो॥

अन्याहुः, अवर बोली

हे सखि ! अवर एक छवि कहौं। प्रिय घनस्याम-राम तन चहौं॥
नूत प्रवाल पुहुप वर गुच्छ। मत्त मयूर चंद्रिका सुच्छ॥
छवि-पुंजा गुञ्जावलि पहिरैं। तिन मैं उठति जु छवि की लहरैं॥
कमल दलनि की काछनि काछे। धातु विचित्र चित्र तन आछें॥
चटकीलो पट कटि-तट लसैं। नील-पीत दामिनि कहुँ हँसें॥
सखन मध्य दिखि राजत कैसें। रंगभूमि विच नटवर जैसे॥

अन्याहुः, अवर बोली

हे सखि ! यह जु वेनु रँगमीनो। इन धौं कवन पुन्य है कीनो॥
अधर-सुधा सरवस जु हमारो। ताको निधरक पीवनहारो॥
अरु दिखि जिन के जल करि पुष्ट। ते सरिता लखियत अति तुष्ट॥
तिन मधि नहि विकसे जलजात। जनु अनंग भरि पुलकित गात॥
अरु दिखि या वन के द्रुम जिते। मधु-धारा धर वरसत तिते॥
कहत कि धनि धनि हमरो वंस। जामें उपज्यौ यह वर वंस॥
मधुन स्रवन अति हरप जु भरे। द्दगनि ते जनु आनंद-जल ढरे॥
ज्यौं कुल वृद्ध अपने कुल महियाँ। निरखि निरखि हरि सेवक कहियाँ॥
अति प्रमोद भरि, द्दग भरि नीर। सींचत जैसे सकल सरीर॥

अन्याहुः, अवर बोली

हे सखि ! वृंदावन भुवि-कीरति। स्वर्ग तें अधिक भई मुनि ईरति॥
जसुमतिसुत-पदपंकज करि कै। पाई छवि संपति हिय भरि कै॥
अरु दिखि नँद-नंदन पर कांति। परसत नील मेघ की भाँति॥
ता कहुँ आगम घन मानि कै। मुरली-धुनि गरजनि जानि कै॥
निरतत मत्त मोर छवि छये। अवर विहंगम चित्र से भये॥
अनत नहिन सुनियत यह वात। वातें भुवि कीरति विख्यात॥

अन्याहुः

हे सखि ! दिखि इहि वन की हरिनी। जदपि मूढ़मति इनकी वरनी॥

बेनु-नाद सुनि अति सचु पावति। पतिनु सहित चलि हरिपै आवति ॥
सुंदर नंद-कुँवर बर वेप। निरखत लगत न नैंन निमेष ॥
प्रेम सहित अवलोकनि दूजैं। आदर सहित हरिहि जनु पूजैं ॥
हमरे पति जु गोप अति मंद। जब इत ह्वै निकसत नँद नंद ॥
तब जौ हम अवलोकन करें। सहि नहिं परै, अवर जिय धरें ॥

अन्याहुः, अवर बोली

हे सखि! अवर चित्र इक चहौ। गगन में सुर-बनिता किह लहौ ॥
बैठी जदपि बिमाननि महियाँ। अपने पतिन सो दै गरबहियाँ ॥
दृष्टि परे साँवरे अनूप। निपटहि बनिता उत्सव रूप ॥
पुनि सुनि बेनु-गीत-गति नई। कल नहि परत बिकल है गई ॥
लगे जु सर सुमार मार के। खसत जु कुसुम कबरि भार के ॥
धीरज हरे, हिये पुनि हरें। नीबी-बंधन खसि खसि परे ॥

अन्याहुः

हे सखि! देव-बधुन की रहौ। तुम इन गाइनि तन किन चहौ ॥
हरि मुख ते जु स्रवत है वाल। बेनु-गीत-पीयूष रसाल ॥
श्रवन उठाइ पिवत है ऐसैं। नैंक कहूँ छरि जाइ न जैसै ॥
अरु देखहु बछ-बछियन ओर। सुनि कै बेनु-गीत चितचोर ॥
पियत थननि मुख भरि रह्यो छीर। चित्र सी रहि गई गैयन तीर ॥
गाइ-वृषभ बछ-आछी जिती। हरि तन इकटक चितवति तिती ॥
दृगनि के मग लै मोहन कहियाँ। धरि कै अप अपने हिय महियाँ ॥
पुनि पुनि तहँ परिरंभन करैं। अति सुख आनँद-अँसुवा ढरैं ॥

अन्याहुः

हे सखि! वन विहंग किन हेरो। सुनत जु बेनु-गीत पिय केरो ॥
बैठे रुचिर द्रुमनि की डारै। इकटक मोहन बदन निहारै ॥
छुवत न फल, न बदत कछु बात। अति सुख उमगत, घूमत जात ॥
निपट चटपटी सो मुख चहै। फल प्रवाल अंतर नहिं सहैं ॥
मुनि पुनि कर्म फलनि तजि जैसे। अप अपनी श्रुति-साखा बैसे ॥
कमल-नयन अवलोकन करैं। फलनि के अंतर नहिं सहि परै।
तैसेई इह वन खगगन जिते। मुनि होन के जोग हैं निते ॥

अन्याहुः, अवर बोली

हे सखि ! चेतन जन की रहो । ये जु अचेतन ते किनि चहो ॥
धेनु गीत सुनि सरिता जिती । उमगि मनोभव विथकित तिती ॥
बीच जु भ्रमत भँवर अभिराम । मारत मनहि मसूसे काम ॥
लै लै अमल कमल उपहार । लहरि भुजनि करि ढारहि ढार ॥
पकरें चहत स्याम के पाइ । जेसें काम-बिथा मिटि जाइ ॥

अन्याहुः, अवर बोली

वन में वल अरु सुंदर स्याम । पसु चारत, परसत दिखि धाम ॥
निरखहु सजनि मेह को नेह । छत्र करि लियो अपुनो देह ॥
छाँह किये डोलत दिन संग । फुही फूल बरषत बहु रंग ॥
कनक-दंड जिमि दामिनि बनी । छाजति छबि कछु परत न गनी ॥
सखा भयौ घन घनस्याम को । नातो मानि एक नाम को ॥
जग आरति हरने, रस-सने । दोऊ आनि एक से बने ॥

अन्याहुः, अवर बोली

हे सखि ! मेह-नेह की रहो । भील-भामिनी तन किनि चहो ॥
प्रमुदित इत जु फिरति हैं सखी । मै इक इनके मन की लखी ॥
प्रिया-उरज कुंकुम-रस भये । ते कुंकुम हरि पिय-पद लगे ॥
पदनि ते वन-तृन भूपित भये । ते तृन इन तीयनि लखि पये ॥
तिहि कुंकुम दिखि वढ़ि गयो काम । बिकल भई भीलनि की भाम ॥
सो कुंकुम मुख-कुचनि लगावति । ता करि मनमथ-बिथा सिरावति ॥
याते धनि भीलनि की तिया । हसनि कछू तरफति है हिया ॥

अन्याहुः, अवर बोली

देखो सखी गोवर्धन कहियाँ । परम श्रेष्ठ हरि-दासनि महियाँ ॥
राम-कृष्ण-पद परसन करि कै । रह्यो जु अति आनंदहि भरि कै ॥
नव नव तृन अंकुर छबि छये । रोम रोम जनु उत्थित भये ॥
गोप-बृंद गोबृंद समेत । आदर सहित सबन सुख देत ॥
सीतल जल सुंदर, तृन सुंदर । सीतल अति पवित्र गिरि-कंदर ॥
कंद-मूल-फल, धातु बिचित्र । अवर अनेक अनेक पवित्र ॥
तिन करि सेवित सब सुखदाइक । धन्य धन्य गोधन गिरिनाइक ॥

अन्याहुः, अवर बोली

हे सखि गिरि गोधन की रहो। सुंदर नंद-कुँवर तन चहो॥
अद्भुत गोपत्रेष बर करे। सेली कंध सु मुनिमन हरें॥
ठाढ़े गाइ गहन के काज। किये फिरत ग्वालिनि कौ साज॥
तैसिय रूप-माधुरी सरसे। रंग-रली-मुरली मधु बरसे॥
ता करि हरे सबनि के हिये। चर कीने थिर, थिर चर किये॥
अहो मित्र! इहिं त्रिधि ब्रजगोपी। परम पवित्र कृष्ण-रस-ओपी॥
बैठि परस्पर बरनत भईं। प्रेम-बिबस तन मन ह्वै गईं॥
ता करि बढ्यो जु प्रेम अनंग। रम्यो चहैं हरि प्रीतम संग॥
तब कात्यायनि अर्चन कर्यो। पायो परम उदय रस भर्यो॥

'नंद' इकीस अध्याइ यह, ऐसैं सुनि चित चाहि।
प्रिया-बचन जिमि पाँय के, सुनिबौई फलु आहि॥५६॥

द्वाविंश अध्याय

त्रिबि बिंसत अध्याइ सुनि मित्र। बस्त्रहरन मनहरन पवित्र॥
'नंद' गोप ब्रज की दारिका। अद्भुत अद्भुत सुकुमारिका॥
जदपि समस्त बिबाहित आहि। नंद सुवन के रूपहि चाहि॥
बिबस भईं पति परिहरि परिहरि। करत भईं ब्रत हिय हरि धरि धरि॥
हिम रितु प्रथम मास अभिराम। देवी कात्यायनी जु नाम॥
तिहि पूजन जमुना-तट जाहिं। तहाँ न्हाइ हविषा कछु खाहिं॥

(ब्रत कौ पूर्व भाग कहत हैं)

उठैं बड़े खन चाइनि चाइनि। बोलत छबि सौं मधुरी भाइनि॥
(कछूक आगमोक्त भक्त तिन के नाम कहत हे)
प्रेमकला, बिमला, रतिकला। कामकला, नवला, चंचला॥
चंद्रकला, चंद्रावलि, चंदिनि। जग-बंदनि वृषभान की नंदिनि॥
कामलता, ललिता, रतिबेलि। रूपलता, चंपकलता एलि॥
अवर अनेक नहिंन कहि परै। चंचल नैंन मैन-मन हरे॥
सब दिसि तें आवति छबि पावति। नूतन मंगल गीतनि गावति॥
अमुना विधि जमुना-तट आवति। अतिसै करि मन मोद बढ़ाति॥
करि संकल्प सलिल में जाहिं। मौन धरे विधि सहित अन्हाहिं॥

बहुरि कलिंदी कूल अनुसरैं। बारू की बर प्रतिमा करैं॥
दिव्य आभरन, दिव्य दुकूल। चंदन, बंदन, तंदुल, फूल॥
प्रीति सहित तिहिं अर्चन करैं। पुनि पुनि ताके पाइनि परैं॥
अये गवरि! ईश्वरि सब लायक। महामाइ वरदाइ सुभायक॥
देवि दया करि ऐसै ढरौ। नंद-सुवन हमरौ पति करौ॥
बोली वचन देवि रस भारे। पूर्न मनोरथ होहु तुम्हारे॥
कात्यायनि ते यों बर पाइ। बहुरि धसी जमुना-जल आइ॥
बुड़किनि बिहरति अति छबि भेलति। जनु नव घन गन दामिनि खेलति॥
तदनंतर सुंदर नँद-नंदन। चित की पाइ, आइ जग-बंदन॥
नीर तीर तें चीर चुराइ। चढ़े गोबिंद कदंबनि जाइ॥
लज्जित ह्वै धसि गईं जल गहरैं। उठत जु तामें दुति की लहरैं॥
बदन बदन छबि दिखि कै भूली। कनक-कमल कलिंदि जनु फूली॥
चपल दृगंचल पिय-मन-रंजन। कमल कमल जनु जुग जुग खंजन॥
लटनि तैं चुवति जु जलकन जोती। जनु ससि छिदि छिदि डारत मोती॥
तब बोले हरि तिन तन चितै। हे अबला अब आवहु इतै॥
आनि कै अपने अंबर गहौ। कत कौ भीत, सीत तन सहौ॥
सत्य कहत कछु करत न खेला। आवहु चलि न बिरंब की बेला॥
पाछे हूँ मैं अमृत न कबै। बोल्यौ है ये जानति सबै॥
चितै परस्पर तब सब हँसीं। बड़ी अँखियन अति छबि लसीं॥
रूप-उदधि भरि भरि रस आछें। मीन चलत जिमि मीन के पाछें॥
सीतल सलिल कंठ परजंत। तहँ ठाढ़ी थर थर बेपंत॥
तिन मधि मुग्ध वैस की बाला। ऐड़ सौं कहति भई तिहि काला॥
अहो अहो कान्ह, अनीति न करौ। बलि बलि कछू दई तें डरौ॥
नंद-महरि के पूत रावरे। जानि बूझि जिनि होहु बावरे॥
देहु वसन, बरि गई अस हँसी। मरति हैं सीत सलिल मैं धसी॥
पुनि तिन मैं जे प्रौढ़ा आहि। ते बोली हँसि हरि तन चाहि॥
हे सुंदर वर! करहु न हाँसी। हम तौ सबै तुम्हारी दासी॥
जो तुम कहहु, सोइ हम करिहैं। देहु वसन, बिन काजहि मरिहैं॥
जौं न देइहौ रस भाइ सौं। कहिहैं जाइ नंदराइ सौं॥
तब बोले ब्रजराज दुलारे। मै समझे संकल्प तिहारे॥
इत आवहु, रंचक न लजाहु। ब्रत कौ फल लै लै वर जाहु॥
नंद-सुवन कौ मन हो जैसैं। निकसी सब रस-बिकसी तैसैं॥

परम प्रेम के फंदनि परी। नंद के नंदन खेल की करी ॥
पुनि बोले ब्रजराज दुलारे। पूर्न मनोरथ होहु तुम्हारे ॥
पै आत्यंतिक नाहिन ह्वैहै। मन-अभिलाष पाइ पुनि जैहै ॥
मेरे बिषय जु मति अनुसरै। सु मति न बहुरि बिषय संचरै ॥
भुंजित धान जगत मे जैसैं। बीज के कांम न आवहि तैसैं ॥
ऐ परि जो मो इच्छा होई। भूँज्यौ बीज निपजि परैं सोई ॥
आगामिनी जामिनी ऐहै। तिन मैं तुमहिं बहुत सुख दैहैं ॥
इहि बिधि बरहि पाइ छबि छई। कैसे हुँ कैसैं ब्रज लौं गई ॥
बसन पये, पै मन नहिं पये। मन मनमोहन गोहन गये ॥

ब्रजतिय को दै अपनपौ, कृष्ण कमल-दल-नैन।
जगपतिनी अपनी करन, चले अनुग्रह दैन ॥२८॥

तिन के पति जु भक्ति-रति-हीन। करमनि बिषय निपट लवलीन ॥
तिन तन दृष्टि दिये मुसकात। बन के द्रुमनि सराहत जात ॥
सखन सौं कहत कुँवर नँदलाल। अहो भोज, अहो ओज रसाल ॥
अहो सुबल, अर्जुन, अहो अंस। अहो श्रीदामा, बंस अवतंस ॥
देखहु ये कैसैं द्रूम बने। छत्र से तने, सबै गुन सने ॥
जिन के तरहर सियरे सियरे। फल पियरे पियरे अरु नियरे ॥
दल करि, फल करि, फूलनि करिकै। बलकल करि, अरु मूलनि करिकै ॥
पर काज ही सबै कछु जिन कौं। धनि है जग मै जीवन तिन कौं ॥
बात बरप अपने-तन सहैं। काहू सौं कछु दुख नहिं कहै ॥
बैठत आनि छाँह हम सरसे। घाम मैं सुंदर सीतल घर से ॥
ऐसे कहत कहत छबि छये। बल समेत जमुना-तट गये ॥
पहिले जल गाइनि कौं दियौ। ता पाछे आपुन पय पियौ ॥

बिवि बिंसति अध्याइ यह, सुनै ज हित चित लाइ।
धनु देखे खग-अवलि जिमि, पाप-अवलि उड़ि जाइ ॥२५॥

त्रयोविंश अध्याय

अब सुनि त्रयबिंसत अध्याइ। द्विज अरु द्विजपतिनिन के भाइ ॥
ठाढ़े हुते जमुन के तीर। बज्र अरु सुंदर बर बलबीर ॥
श्रीदामादि ग्वालगन जिते। आरत भये छुधा करि तिते ॥
बस्त्रहरन हित हरि के संग। देखन गोपबधुन के रंग ॥

भोर वड़े देखन उठि आये। भोजन कछू लेय नहिं आये॥
यातैं भूखे हैं व्रजलाल। आये तहँ जहँ मोहनलाल॥
अहो वलराम अतुल बलधाम। हो घनस्याम, परम अभिराम॥
भूख लगी भिया उद्यम करौ। प्रान प्रहारनि पापिनि हरौ॥
जगपतिनीन अनुग्रह दैन। बोले तब हरि करुना-ऐन॥
इत ये जाग्यक जग्यहि करैं। स्वर्ग-काम-हित पचि पचि मरैं॥
तिन पै जाहु, न तनक डराहु। अरु जाचंग्या तैं न लजाहु॥
लीजहू जाइ हमारौ नाम। बल अरु, बल भैया घनस्याम॥
ये ठाढ़े दोऊ तरु तरैं। तुम सों कछू प्रार्थना करैं॥
जो न देहिं, वे रिस भरि जाहिं। लाज हमहिं, तुमहिं तौ नाहिं॥
यों जब कान्ह कुँवर करि कह्यो। ग्वालन यों सभि नाहीं गह्यो॥
गये जग्य जहँ थर थर डरतै। बहुत भाँति दंडौतन करतै॥
अंजुलि जोरि डरात डरात। कहन लगे विप्रनि सौं बात॥
हो भूदेव ! सुनहु इत हम पै। राम-कृष्ण करि पठये तुम पै॥
भोर के आये गोधन संग। खेलत खेलत अपने रंग॥
घर तैं कछु भोजन नहिं लाये। भूखे हैं, अब तुम पै आये॥
श्रद्धा होइ तौ ओदन दीजै। धर्म विरुद्ध करम कत कीजै॥
कहँ यह हरि ईश्वर कौ जचिबौ। कहँ वह द्विजनि कौ मद कर मचिबौ॥
सुनत न सुनै, भरे अभिमान। जनु इन द्विजनि कै नैन न कान॥
पुनि जब भौंह अमेटन लागे। तब ये ग्वाल-बाल डरि भागे॥
जिन करमनि करि अधिक कलेस। फल अति तुच्छ मिटै न अँदेस॥
तिन मधि मूढ़ धरि रहे आस। छुवौ न अमृत पाइ अनयास॥
ह्वै निरास वालक उठि आये। समाचार हरि प्रभुहिं सुनाये॥
नंद-कुँवर तव हर हर हँसे। हँसत जु रदन वदन में लसे॥
अस कछु जगमग जगमग होइ। मानिक ओपि धरे जनु पोइ॥
सखनि सौं वहुरि कहत• रस-सने। रे भैया न हौहु अनमने॥
अरथी ह्वै वैरागहि आवै। सो अरथी अरथी न कहावै॥
जाचक है जग में अस•कौन। जचत अनादर भयौ न जौन॥
ऐसैं लोक-रीति दिखराइ। पुनि वोले प्रभु मृदु मुसकाइ॥
अहो मित्र इन की तिय जिती। हम कौं नीके जानत तिती॥
देहमात्र वे वसति गेह मैं। सदा मगन अद्भुत सनेह मैं॥
तिन पै जाहु, लजाहु न भिया। समझौगे तव तिन को हिया॥

सुभग-सुगंध, स्वच्छ वर-व्यंजन । दधि-ओदन मोहन मन-रंजन ॥
दैहैं जात, विलंब न लैहैं । अपने करनि लिये ही ऐहैं ॥
जगपतिनिन के गृह हैं जहाँ । सकुचत सकुचत गवने तहाँ ॥
राजति कंचन पीढ़नि वैठी । सोहति सुंदर भौंह अमेठी ॥
पहिरे अद्भुत मनिमय भूषन । अद्भुत बसन नहिंन कछु दूषन ॥
डहडहे बदन निरखि सिसु भूले । कंचन-जलज अँगन जनु फूले ॥
द्विजपतिनिन के पाइनि परे । बातैं कहत महा मुद भरे ॥
हे द्विजपतिनि ! कान्ह मनमोहन । आये इतहि गाइ-गन-गोहन ॥
छुधित आहि कछु भोजन दीजै । सखनि सहित अघाइ सो कीजै ॥
जिन के दरसन हित अरबरती । पतिन सौं विनती करती अरती ॥
जुग जुग भरि निसि-वासर भरती । नैननि नींद नैंकु नहिं परती ॥
ते अच्युत व्रजराज दुलारे । निकटहिं पाये प्रानपियारे ॥
चारि प्रकार विचित्र सुव्यंजन । भक्ष्य, भोज्य, चुस, लिह, मनरंजन ॥
लै चली कंचन भाजन भरि भरि । सुत-पति तिनसौं अरिअरि लरि लरि ॥
रोकि रहे सुत-पति अपनो सौ । मानत भईं ताहि सपनो सौं ॥
जैसैं उमगति सावन-सरिता । कौंन पै रुकहि प्रेम-रस-भरिता ॥
जमुना निकट सुभग इक वाग । सव असोक तरु अति वड़भाग ॥
इक तरु तरे कुँवर घनस्याम । ठाढ़े कोटि काम अभिराम ॥
पीतबसन वनमाल रसाल । मोरचंद छवि छाजति भाल ॥
सखा अंस वाईं भुज दिये । केलि-कमल दच्छिन कर किये ॥
अद्भुत गुनगन सुनि हिय धरिधरि । रही हुती उत्कंठा भरि भरि ॥
सो साच्छात प्रगट रस भरे । अति रोचन लोचन-पथ परे ॥
दृग-रंध्रनि करि अंतर लये । तहँ प्रभु कौ परिरंभन दये ॥
सुखित भईं तिहि छिन सव ऐसैं । तुरिय अवस्थ पाइ मुनि जैसैं ॥
तव वोले हरि हे वड़भागि । नीके आईं भरि अनुराग ॥
व्रतवंधन जे हुते तिहारे । ते तुम तिन से लघु करि डारे ॥
मो दरसन हित इत अनुसरी । उचित करी, अनुचित नहिं करी ॥
जे जन निपुन जथारथ वेदी । स्वारथ अरु परमारथ भेदी ॥
ते मो विषै भक्ति-रति करैं । फल न कछू रंचक चित धरैं ॥
हम सव ही के आत्मा आहि । तत्ववेत्ता लेत है चाहि ॥
प्रान, वुद्धि, मन इंद्री, देह । पुत्र, कलत्र, मित्र, धन, गेह ॥

जाके अध्यास तैं अचेत। प्रिय लागत अपनपै समेत॥
सो तुम करि हम पाये सबै। धनि धनि धन्य भई तुम अबै॥
अब तुम देवि जजन प्रति जाहु। द्विज-जध्यनि कौ करहु निबाहु॥
तुम करि सत्र समापति करिहैं। अवर न कछू तनक मन धरिहैं॥
कहन लगीं तब सब द्विज तिया। सुनि यह बात बहकि गयौ हिया॥
हे सुंदर बर सरसिज-नैन। जिनि बोलहु अस करकस बैन॥
अपनि प्रतिग्या तन किन चहौ। वेद-पुराननि मैं ज्यौं कहौ॥
मन-क्रम-बचन जु चेरौ मेरौ। सो भव-भवन न करिहै फेरौ॥
हम पद-पंकज प्रापत भईं। सहजहि सब उपाधि मिटि गईं॥
पद अवशिष्ट जु परम रसाल। डारहुगे तुम तुलसी-माल॥
सो नित अलक रलक मैं धरिहैं। सरन परीं पद-अर्चन करिहैं॥
अहो अरिंदम, नंद के दारक। काम, लोभ, मद, मोह बिदारक॥
अब तो पति, सुत, बांधव जिते। हमहिं तौ तनक छुवहिं नहिं तिते॥
तातैं अवर गति न हरि हमरी। दास्य देहु, दासी भईं तुम्हरी॥
तब बोले ब्रजराज के नंदन। जग-बंदन, जग-फंद निकंदन॥
पति, सुत, मित्र, सुहृदजन जिते। नहिंन असूया करिहैं तिते॥
लोक तौ सबै हमारे किये। रोकि रहे हम सब के हिये॥
अरु देखहु ये देव जितेक। हमरी आग्या मध्य तितेक॥
बुरो जु मानैं सो वह कौन। सर्वब्यापी हम जिमि पौन॥
प्रेम बुद्धि जौ कीनो चहौ। तौ तुम मो तैं न्यारी रहौ॥
बिरह मैं चित्त समाधि लाइहौ। तुरतहि तब मो कहुँ पाइहौ॥
ऐसैं जब हित सौं हरि बरनी। घर आईं तब सब द्विज घरनी॥
किनहूँ नहिंन असूया कीनी। सुत-पति सबन भुजन भरि लीनी॥
तिन मैं इक जु हुती पति गही। जान न पाइ, बहुत पचि रही॥
तब नँद-सुवन सुने हे जैसैं। अपने हिय मैं धरि कै तैसैं॥
तजति भई तिहि तन कहुँ ऐसैं। जीरन पट कोउ डारत जैसैं॥
रे पिय जहाँ ममत है तेरौ। यह लै अब का करिहै मेरौ॥
दिव्य देह धरि कै उहि घरी। सबन त आगे सो अनुसरी॥
तिन सायुज्य परम गति पाई। उन के संग फिरि न घर आई॥
जगपतिनिन जे व्यंजन आने। जेंइ कै गोप-गोविंद अघाने॥
द्विज जु कहावत हे अति बड़े। तियन की गतिहि देखि सब गड़े॥

'नंद' गोविंद की भक्ति बिनु, बड़ौ कहावत कोइ।
बुझे दीप कहँ ज्यौं बढ़ो, कहियत वह गति सोइ॥

तियनिकी गतिहि निरखि द्विज जिते। पश्चाताप करत भये तिते॥
जो प्रभु निगम अगम करि गाये। जेवन मिस ते हम पै आये॥
धिग धिग हम, धिग धिग ये क्रिया। धिग धिग विप्र-जन्म, धिग जिया॥
धिग बहुग्यता, धिग सब इषै। बिमुख जु कृष्ण अधोक्षज विषैं॥
यह प्रभु की माया मोहनी। जोगीजन-मन की खोहनी॥
जा करि हम द्विज ह्वै मद भरे। गुरु कहाइ सठ मठ मै परे॥
जिन के न कछु सोच आचार। गुरुकुल सेव न तत्त्व विचार॥
नहिं जप, नहिं तप, नहि सुभक्रिया[1]। कर्कस, कुटिल,जटिल नित हिया[2]॥
तिन के भई भक्ति-रति जैसी। देखी-सुनी न कितहूँ ऐसी॥
सम्यक द्विज करमनि करि भरे। ते हम है झख मारत परे॥
हम करि जदपि सुन्यौ अवतार। जदुकुल विषैं हरन भू-भार॥
पुनि आये इत करुना-कंद। जाचन पूरन परमानंद॥
ओदन कहा चाहियै तिन के। कमला पाइ पलोटत जिन के॥
सुमिरि सुमिरि ग्वालनि की बात। करनि भींजि सब द्विज पछितात॥
पुनि कहैं हम हूँ उत्तम भये। बन के सब संसय मिटि गये॥
जिन की ऐसी तिय बड़भागि। तन-मन-भरी कृष्ण-अनुराग॥
जिहि अनुराग हमारे हिये। चपरि कै कमल-नैन मै किये॥

त्रयबिंसति अध्याइ यह, सुनि नीके सुख-कंद।
जप, तप, व्रत, संयम न कछु, कृष्ण-भक्ति बिनु 'नंद'॥

चतुर्विंश अध्याय

चतुर्विंस अध्याइ अनूप। सुनि हो मित्र! परम सुख रूप॥
जामैं गिरि गोवर्धन पूजा। अति पुनीत अस गीत न दूजा॥
द्विजनि को क्रिया गर्व सब हर्यौ। चाहत इंद्रहि निर्मद कर्यौ॥
इंद्र को जग्य करन जब लगे। गोपी-गोप महामुद पगे॥
पूछत हरि अजान से भये। मंद मुसकि सु नंद ढिग गये॥
कहहु तात यह बात है कहा। भवन भवन आनँद है महा॥

---

१. भक्ति न कीय। २. हीय।

कवन सु फल, काके उद्देस। कवन देवता सेस-सुरेस ॥
मो मन अति अभिलाप है कहौ। लरिका जानि चाइ जिनि रहौ ॥
यह करनी तुम सास्त्र तैं पाई। ऐ किधौ परंपरा चलि आई ॥
कैधौं लोकरूढ़ है तात। मो सौं कहौ कहा यह बात ॥
नंद जु कहत मेघगन जिते। मघवा के वसवर्त्ती तिते ॥
अपनौ जीवन जग मैं बरपै। दुख करषै, सब जंतुन हरषै ॥
यातैं यह जु पुरंदर आहि। जजत हैं जग्यनि करि नर ताहि ॥
हम हूँ सब यह तिहि उद्देस। करत हैं ज्यौं रस देइ सुरेस ॥
ता करि अर्थ, धर्म अरु काम। पावहि सबै पुरुष विश्राम ॥
परंपरा चलि आयौ धर्म। अहो तात नहिं अब कौ कर्म ॥
जो नर याकौं नाहिंन करैं। लोभ-द्वेष-भय तैं परिहरैं ॥
सो नर नहिं पावैं कल्यान। कहत हैं बेद पुरान सुजान ॥
महानंद, उपनंद, सुनंद। निजानंद अरु बाबा नंद ॥
ऐसै करि जब सबहिन कह्यौ। सबके ईश्वर नाहिन गह्यौ ॥
सुरपति अति श्रीमद करि छयौ। महा गरब परबत चढ़ि गयौ ॥
तहँ तैं ता कहुँ डार्यौ चहैं। करम की गति लिये बातैं कहैं ॥
ऐ परि नहिं प्रमान ये नित ही। सुरपति मान-भंग के हित ही ॥
इंद्रहि रिस दिवाइ दंद सौं। बोले मंद मुसकि नंद सौं ॥
अहो तात यह देव न कोई। करम की गति जु होइ सो होई ॥
कर्महि करि उपजत ये जंत। कर्महि करि पुनि सब कौ अंत ॥
कुसल-छेम, सुख दुख, भै-अभै। होत हैं ये कर्मनि करि सबै ॥
रज गुन करि उपजत हैं मेह। बरपत सब ठॉ नहिं संदेह ॥
ऊसर पर, पर्वत पर परै। ते सब कहाँ जग्य हैं करैं ॥
हमरे नहिं पुर-पत्तन ग्राम। वन, गिरि, नदी, निकट विश्राम ॥
जहँ सुख तहँ हम बसहिं निसंक। करिहै कहा पुरंदर रंक ॥
एक करहु जग्यन कौं जिती। करते सुभ सामग्री तिती ॥
और कछू जिय मैं जिनि आनौ। मेरो कह्यौ सत्य करि मानौ ॥
सुनतहि मोहन मुख की बानी। भले भले कहि सबहिन मानी ॥
कुल मंडन सपूत सुख-दैना। सब के जीवन, सब के नैना ॥
रचहु बिबिधि परकार सुव्यंजन। सुभग, सुगंध, स्वच्छ, मनरंजन ॥
पुवा, सुहारी, मोदक भारी। गूका, रस-मूँका, दधि न्यारी ॥
मिश्री मिश्रित पायस करौ। बर संजाव भाव बिस्तरौ ॥

मुद्‌गा दाली, घृत की ब्याली। रस के कंदर सुंदर साली॥
जैसैं नंद-सुवन उचर्‌यौ। प्रीति सहित तैसै ही कर्‌यौ॥
पूजन चले गोप गिरि गोधन। आगे करि लिये अपने गोधन॥
कंचन-सकटनि चढ़ि चढ़ि गोपी। चली जु तिनहुँ सबै विधि लोपी॥
सुंदर नंद-कुँवर गुन गावति। भाग भरी सब राग रिझावति॥
हरि धरि गिरि कौ सुंदर रूप। बैठे बिकसि सु निकसि अनूप॥
गिरि के द्वै द्वै रूप बताये। इक जड़, इक चैतन्य सुहाये॥
गोवरधन की मूरति दुसरी। श्री गोविंदचंद हित कुसरी॥
दिखि कै गोप महा मुद भरे। नमो नमो कहि पाइनि परे॥
तिन के संग रंग हरि करै। अपने पाइनि आप हि परैं॥
जेतिक भोजन ब्रज तै आयौ। गिरि रूपी हरि सिगरौ खायौ॥
भई प्रतीति, भरे मुद भारी। देहि प्रदच्छिन नर अरु नारी॥
फिरत जु छबि बाढ़ी तिहि काल। गिरिगर जनु मनि-कंचन-माल॥
कहन लगे देखौ तुम्हरे काजा। प्रगट भयौ यह गिरिन कौ राजा॥
यहै मेघ ह्वै बरषा बरषै। कालरूप ह्वै यह आकरषै॥
बिछी, व्याल, बृक, केहरि जिते। याके डर छ्वै सकत न तिते॥
ऐसे करि पुनि पाइनि परे। घर आये अति आनँद भरे॥

चतुत्रिंस अध्याइ यह, कोउ चतुर सुनिहै जु।
जे दिन बीते अनसुने, तिन कौं सिर धुनिहै जु॥२८॥

पंचत्रिंश अध्याय

अब सुनि पंचविस अध्याइ। पंचविंस निर्मल ह्वै जाइ॥
सुनि कै इंद्र भर्‌यौ रिस भारी। लाग्यौ देन सबनि कौं गारी॥
धन-मद-अंध नंद को बेटा। सो भयौ हमरे मख को मेटा॥
ताके बल करि मो सो घाती। रहिहैं गोप कहाँ किहि भाँती॥
ज्यों कोउ उरन पूँछ्र कर धारे। तर्‌यौ चहै सठ सिंधु अपारे॥
झूठ की ज्यों कोउ नाउ बनावै। मूढ़ तहाँ लै कुटंब चढ़ावै॥
ऐसैं गोपन कृष्ण भरोसे। महा बैर कीनौ है मो सें॥
अब देखौ कैसी सिखलाऊँ। गोकुल गाँवहिं खोदि बहाऊँ॥
बोले मेघन के गन सोइ। जिन के जल जग परलै होइ॥

परमातम पर पीर के नाइक। कृष्ण कमल-लोचन सुखदाइक॥
ढाहन कहत कि तिन की कुटी। इंद्र मूढ़ की चारयौ फुटी॥
'नंद' कहत श्रीमद सब ऐसें। सुनैं न सुत कुबेर के जैसें॥
उमगे घन-गन रिस भरि भारे। ताते, राते, पियरे, कारे॥
तड़तड़ाहि तड़ि बज्र से परैं। घरहराहि घन ऊधम करैं॥
चली अपरबल बात अघात। उड़े जात कहि बनति न बात॥
परन लगी नान्हीं बुँदवारी। मोटे थाँभनि हू तैं भारी॥
तब ब्रजजन जित तित तें धाये। सुंदर नंद-कुँवर पै आये॥
धौरी धौरी धेनु जु दौरी। बड्डी बूँदनि के दुख बौरी॥
नमित सुग्रीव, पुच्छ उच किये। छबिलि छतिन तर बछरन लियें॥
गोपिन पै कहि बनति न बात। थर थर कंपत कोमल गात॥
हो श्रीकृष्ण कृष्ण, जगनाइक ! । असुभहरन, सुभकरन सुभाइक॥
गोकुल के तौ तुम हीं नाथ। जैसे मीन दीन के पाथ॥
कुपित भयो सुरपति मतवारौ। हमरो अवर कवन रखवारौ॥
बोले हरि बिलोकि तिन माहीं। कत भय करत, इहाँ भय नाहीं॥
मुसकत मुसकत स्याम सुहाये। छबि सों चलि गिरि गोधन आये॥
झट दै उचकि लियो गिरि ऐसे। साँप बेठना को सिसु जैसे॥
गोपी-गोप, गाइ-बछ जिते। अपने सुख रहे तिहि तर तिते॥
बाम हस्त पर गिरि अस बन्यौ। फूल को जनु कि छत्र है तन्यौ॥
ललित त्रिभंग अंग किये ठाढ़े। मुरली अधर धरें छबि बाढ़े॥
गिरि-मूल तैं जु गिरि की धात। गिरि गिरि परी साँवरे गात॥
अरुन, पीत, सित अंग सुहाये। फागु खेलि जनु अब हीं आये॥
मित्र कहत अचरिज मो हिये। ठाढ़े हरि त्रिभंग तनु किये॥
दुहूँ कर बेनु बजावत नाथ। सखा-मंडली राजत साथ॥
'नंद' कहत अचरिज जिनि मानि। गिरिवरधर अचरिज की खानि॥
बाम हस्त लाघवता ऐसी। तरल अलात-चक्र-गति जैसी॥
कृष्ण-कलपतरु से जहँ बने। सब सुख बरसत, बर रस सने॥
तब इक उपमा मो मन भई। कही कहत, किधौं उपजी नई॥
परबत पर तरु होत हैं घने। तरु पर परबत होत न सुने॥
जलद जु बरषन लागे पानी। कह कहियै, कछु अकथ कहानी॥
महा प्रलै को जल है जितौ। गोबरधन पर बरस्यौ तितौ॥
ता पर नग-खग अरु तरु बेली। तिन पर फुही न परी अकेली॥

इंद्रहु अपने बज्र चलाये। पातनि लगि तेऊ नहिं आये॥
सात दिवस अद्भुत झर ठान्यौ। ब्रजवासिनि तनकौ नहिं जान्यौ॥
सुंदर बदन बिलोकनि आगै। भूख प्यास डर कौनहिं लागै॥
निकसे तब जब गिरिधर भाख्यौ। गोबरधन फिरि तहँई राख्यौ॥
प्रेम-भरी बनिता जुरि आईं। वारहि अभरन लेहिं बलाईं॥
चूमति बदन जसोमति मैया। इति धुरि रह्यौ बड़ो बल भैया॥
नंद परम आनंदहि पाइ। पूतहि रह्यो छती लपटाइ॥
मुनिबर, सुरबर, सिधबर जिते। बरषत कुसुम भरे मुद तिते॥
दुंदुभि-धुनि, दुर-धुनि हिय हरैं। जै जै धुनि पुनि मुनिबर करैं॥
गावत गुन गंधर्व सु गाइनि। नृतत अपछरा चाइनि चाइनि॥
तिन मधि यह अमरनि को रानौ। हो रानौ पै निपट खिसानौ॥
हरि दिसि तकि, अपनी दिसि तकै। सुरनि मैं बदन दिखाइ न सकै॥
करन मीड़ि पछितात है ऐसे। सुरापान करि द्विजवर जैसे॥
तदनंतर गोपी अरु गोप। ओपे परम ओप की ओप॥
लोकनि लै निज लोकनि चले। रंगनि रले, लगत अति भले॥
तिन में गोप-बधू सुख बरसैं। नूतन गीतनि मरमन परसैं॥
तिन आगें हरि अरु बलराम। आवत कर जोरे छबि-धाम॥
कछुक कहत सब के हिय हरते। पुहुपनि पर पद-पंकज धरते॥
खेल सो खेलि कै इहि परकार। ब्रज आये ब्रजराज-कुमार॥

बल अनुजहि जु मनुज किये, जानै जग में कोइ।
अहो 'नंद' इहिं इंद्र जिमि, दई बिगारै सोइ॥३१॥
पंचबिंस अध्याइ यह, यौं हिय मैं धरि राखि।
रसिक भक्त बिन आन सौं, 'नंद' न कबहूँ भाखि॥३२॥

षड्विंश अध्याय

अब सुनि षडविंसति अध्याइ। नंद गरग के बचन सुनाइ॥
समाधान गोपनि को करिहैं। बाल-चरित-मधु पुनि बिस्तरिहैं॥
अद्भुत कर्म कुँवर कान्ह के। निरखि गोप सब अति चकमके॥
बिस्मय भये, महा छबि छये। मिलि कै नंद महर ढिंग गये॥
अहो नंद यह तुम्हरौ तात। यामैं सब अचरज की बात॥
क्यौं बूझियै जनम हम माहीं। हम गँवार या लाइक नाहीं॥

कहँ यह सात वरस को बारो। कहँ यह गिरि गोबरधन भारो ॥
कर करि उचकि लियौ वह ऐसे। मद गजराज कमल कों जैसे ॥
अरु जब प्रथम वैस बर वारे। आँख्यौं नाहिंन हुते उघारे ॥
आई तब जु वकी तक तकी। देति भई बिष, नहि कछु सकी ॥
पय सों ताके प्रान मिलाइ। जैसे काल ऐन लै जाइ ॥
पुनि वह सकट बिकट भर भर्यो। तामैं आनि असुर इक अर्यो ॥
तनक चरन ऐसे करि कर्यौ। तब वह सकट उलटि ही पर्यौ ॥
पुनि जब एक वरप को भयो। तृनावर्त्त उड़ि लै नभ गयो ॥
कैसे कंठ घोटि कै मार्यौ। बहुर्यौ आनि सिला पर डार्यौ ॥
अरु जब चोरी माखन खात। पकरे बाँधे जसुमति मात ॥
जमलार्जुन मधि आइ सुभाइ। कैसे गिरि से दिये गिराइ ॥
अरु वह वत्सरूप ह्वै आइ। कैसे पकरे पिछले पाइ ॥
दियो फिराइ, उपर ही मर्यो। कितक कपित्थ साथ लै पर्यो ॥
वकी अनुज बक बछरन चारत। आयो सवनि सँवारत मारत ॥
कर करि चोंच विदार्यौ कैसे। चीरत कोउ पटेरहि जैसें ॥
धेनुक खर अति बल कलमल्यो। बलदाऊ कैसे दलमल्यो ॥
ताके बंधु डेल से करे। ऊँचे फल तिनहूँ करि झरे ॥
गोप वेष करि असुर प्रलंब। कैसें गयो न लग्यो बिलंब ॥
पसु अरु पसुप दवानल माहीं। चकित भये चित-कित ह्वै जाहीं ॥
कैसे राखि आपने लये। अगिनिहि तछन भछन करि गये ॥
अरु वह काली गरल बिसाली। ताके फन पर चढ़ि वनमाली ॥
तांडव नृत्य नचे सो कैसें। देखे सुने न कितहूँ ऐसे ॥
जमुना कैसें निर्मल भई। मानौ बहुरि नई करि छई ॥
अहो नंद! ब्रजजन हैं जिते। नर-नारी पसु-पंछी तिते ॥
तेरे सुत, सों सब की प्रीति। कोउ सुभाइ कछु ऐसिय रीति ॥
संका उपजत इहि तन चाहि। जैसें सब को वेत्ता आहि ॥
कत यह सात वरस को सवै। फूल स। उचकि लियो गिरि तवै ॥
यातैं संका उपजति महा। कहौ नंद सो कारन कहा ॥
तिन के समाधान ब्रजराइ। कहे गरग के वचन सुनाइ ॥
नामकरन मधि लच्छन लहे। अरग-अरग दे मो सो कहे ॥
याके चरित परत नहिं वरने। हिय-हरने जग-मंगल करने ॥
उज्जल अरुन और इक पीत। अब श्री कृष्ण सु परम पुनीत ॥

पूरब जन्म कहूँ सुत तेरो। पूत भयौ है बसुदेव केरो ॥
ताते बासुदेव इक नाम। पूरन करिहै सब के काम ॥
और बहुत तुव सुत के नाम। सब गुन-धाम परम अभिराम ॥
रूप अनंत गुन-कर्म अनंत। गनत गनत कोउ लहै न अंत ॥
अरु यह बहुत श्रेय को करिहै। तुम्हरी सबै आपदा हरिहै ॥
जे यासों करिहैं अनुराग। तिन सम अवर न्हिन बड़भाग ॥
अति परिभव करि सिंघनि कैसे। हरि अनुसरि नर सुर भयो जैसे ॥
नाराइन मधि गुन है जिते। तेरे सुत मे झलकत तिते ॥
श्री, कीरति, संपति रसमई। नाराइन हू तें अधिकई ॥
यातें याके करमनि माहीं। रंचक बिस्मै करियै नाहीं ॥
सुनि ये वचन नंद के नये। गोप सबै गत-बिस्मय भये ॥

षड्‌बिसत अध्याइ यह, षडबिसत जु अनूप।
सो गिरिधर प्रभु 'नंद' के, दसयें आश्रय रूप ॥२५॥

सप्तविंश अध्याय

अब सुनि सप्तबिस अध्याइ। जामें इंद्र मंद लजि आइ ॥
बिनती करि, परि हरि के पाइ। जैहै घर अपराध छिमाइ ॥
अद्‌भुत कर्म कान्ह जब कर्यो। छत्राकार महा गिरि धर्यो ॥
ऐसे गाइ गोप ब्रज राखि। बोले सुर मुनि जै जै भाखि ॥
तब वह सुररानौ बिलखानो। आयो कितहूँ ते बिररानो ॥
लोकनि मुख दिखाइ नहि सके। नंददुलारेहि न्यारोहि तकै ॥
तनक कहूँ एकांतहि पाइ। धाइ आइ हरि लै रह्यौ पाइ ॥
रबि सम मुकुट चरन पर लुटै। पुनि पुनि पगनि धुरै नहि उटै ॥
देख्यो-सुन्यो प्रभाउ जु प्रभु को। गिरि गयौ गर्ब जु लोक तिहूँ को ॥
क्रम क्रम उठ्यो सु थर थर डरै। अंजुलि जोरि स्तुती अनुसरै ॥
हो प्रभु सुद्ध सत्वमय रूप। एवमेव पुनि नित्य अनूप ॥
रज गुन, तम गुन, ये सब डरै। तुम कहुँ दूरि परे ते परैं ॥
हम रज गुन, तम गुन करि भरे। अंध दुर्गंध गर्व-मद-भरे ॥
दुष्ट-दमन तुम्हरो अवतार। हे अद्‌भुत ब्रजराज-कुमार ॥
परम धरम रच्छा जु करत हो। हम से खलन कों दंड धरत हो ॥
जो कहौ सक्तिवान अस कौन। तुम को दंड धरि सकै जौन ॥

तुम तो त्रिभुवन-कारन, पालक । हम ब्रजजन गोपालक बालक ॥
तहाँ कहत हँसि सुरपति बैन । हो श्रीकृष्ण कमल-दल नैन ॥
जगत-जनक, गुरु-गुरु, तुम स्वामी । सब जंतुन के अंतरजामी ॥
तुम ही महा दुरासद काल । धारे दंड प्रचंड कराल ॥
तुम तो उचित दंड को धर्‍यौ । मो से उन्मद को मद हर्‍यौ ॥
जो कहो तुम्हरो हम कहा कियो । ब्रज आपनौ राखि है लियौ ॥
तहाँ कहत सुरपति हो नाथ । तुम्हरे तनक खेल के साथ ॥
मोसेन कौं जु महा अभिमान । मर्दन होत जानि-मनि जान ॥
नहिं जान्यो तुम्हरो परभाव । मत्त भयौ सुरराव कहाव ॥
मंद बुद्धि हौं निपट असाधु । छमा करहु मेरो अपराधु ॥
अब प्रभु मो पै ऐसें ढरौ । ऐसि असत मति बहुरि न धरौं ॥
श्रीमद करि जु अंध ह्वै गयो । मनु अंजन रंजन तुम दयो ॥
तुम ईस्वर गुरु आतम अपने । और सबै रजनी के सपने ॥
ऐसे स्तुति सरसिज नैंन की । कीनी इंद्र अभय-पद-दैन की ॥
तब बोले हरि ढरि इहि भाइ । मधुर बचन, मधुरे मुसकाइ ॥
अहो अमर वर हो बड़भाग । मै मेट्यौ जु रावरो जाग ॥
ह्वै गयो हुतो निपट मतवारो । श्रीमद-मान-पान करि भारो ॥
भूलि गये हे हम तुम ऐसे । पुनरपि काज न ह्वैहे जैसे ॥

गर्व करो जिनि भूलि कोउ, गृह-जन-धन को पाइ ।
'नंद' इंद्र ते को बड़ो, दीनो धूरि मिलाइ ॥१८॥

तदनंतर सुरभी इत आइ । बंदे नंद-सुवन के पाइ ॥
जग में कामधेनु हैं जिती । आईं ताके गोहन तिती ॥
स्तुती करति हैं, नैंन भरति हैं । पुनि पुनि प्रभु के पाइ परति हैं ॥
हो श्रीकृष्ण अमित परभाव । वलि कीनो इहि सरल सुभाव ॥
इंद्रहि मद तो तुम हीं करे । अजहूँ मत्त न डर उर धरे ॥
हती हुती हरि बिन हत्यारे । राखी सुंदर कान्हर वारे ॥
बावरो हुतो रहो यह मंद । बलि बलि तुम कहुँ करिहैं इंद ॥
गाइ-विप्र देवता जितेक । तुव पद-पंकज परत तितेक ॥
अब तें हमरी रच्छा करहु । ऐसें इंद्र बिना ही सरहु ॥
अभिषेक कौं करन जगमगी । डोलति सुरभि प्रेम रँगमगी ॥
अपने पें कंचन-घट भरे । सुभग सुगंध सरस सों अरे ॥

गगन गंग को जल नवरंग। आये कर करि अमर ते अंग॥
कंचन-आसन पर ब्रजचंद। बैठारे जब सब सुख-कंद॥
तिहिं छिन गन गंधर्व जितेक। बिद्याधर चारन जु तितेक॥
लगे जु प्रेम विमल जस गावन। जिन के सुनत होइ जग पावन॥
नचत अप्सरा अति मुद भरी। जनु नग-जरी छटन की छरी॥
अमर नगर तें बरषत फूल। सब के हिये समात न मूल॥
होन लग्यो अभिषेक जु महा। तिहिं छिन की छवि कहियै कहा॥
कुटिल अलक ते चुवत जलकनी। बदन की दुति पुनि परति न गनी॥
जनु अंबुज-रस अलि अनियारे। मुख भरि भरि डारत मतवारे॥
धर्‍यो गोबिंद नाम अभिराम। पूरन भये सबनि के काम॥
जब हीं इंद्र भये गोबिंद। ठॉ ठॉ उमगे परमानंद॥
बूड़ि गई कछु परति न बरनी। छाई रहति दूध करि धरनी॥
सरितनि की छबि जात न कही! उमगि उमगि सब रस भरि बही॥
जंतु सबै अति हर्षित भये। सहज प्रसन दुरमति मिटि गये॥
फूले फूल रहत द्रुम जिते। मधुर मधुर मधु बरषत तिते॥
अन्न अनेक भाँति ही नये। उपजत भये विना ही बये॥
नगनि मध्य नग हुते जितेक। लै लै ऊपर बैठे तितेक॥
मंद सुगंध पवन नित सरसै। करकस ह्वै कहुँ तनक न परसै॥
स्वर्ग तें सुंदर सुंदर फूल। बरष्यौ करत सदा अनुकूल॥
इंद्र गोबिंदहिं दै अभिषेक। सुर, मुनिगन, गंधर्व जितेक॥
आग्या पाइ चले निज ओक। सुखित भये तब ही सब लोक॥

सप्तबिस अध्याइ यह, इंद्र भये गोबिंद।
'नंद' नैंक इहि गाइ धौं, को है कलि-मल मंद॥२७॥

अष्टविंश अध्याय

[illegible]ब सुनि अष्टविंस अध्याइ। पैहौ जहाँ निरोध के भाइ॥
[illegible]ति उनमद कौ मद हर्‍यो। अब चाहत बरुनहिं बस कर्‍यो॥
[illegible] मूरति जो नंद। अरु घर में सुत सब सुख-कंद॥
[illegible] एकादसि व्रत आचरे। हरि इच्छा विन क्यों अनुसरे॥
ए[illegible] समै द्वादसि दिखि थोरी। उठे नंद कछु मति भई भोरी॥
सास्त्र के बल तें अति कलमले। अरुनोदय तैं पहिले चले॥

जाइ जमुन निर्मल जल धसे। तहाँ अन्हात नंद कछु लसे॥
उज्जल अंग सु को छबि गनौ। ओरत इंदु कलिंदि में मनौं॥
जप-तप कछू करन नहिं पये। बरुन के लोक पकरि लै गये॥
ब्रजराज के सँग जन जिते। कूकत भये जमुन-तट तिते॥
सुनत उठे मनमोहन लाल। आलस-रस भरे नैंन बिसाल॥
पितु के हित आतुर गति भयें। करुनालय बरुनालय गये॥
वरुन निरखि जु उठ्यो अकुलाइ। पगन में लोट-पोट ह्वै जाइ॥
पाछे प्रभु-पूजा अनुसर्यो। डोलत बरुन परम रँग भर्यो॥
उत्तम उत्तम रिधि-निधि जिती। आनि धरी हरि चरननि तिती॥
दुर्लभ दरसन दिखि बढ्यो हेत। अर्प्यौ सब अपनपौ समेत॥
पुनि पुनि माथ नाथ-पग धरे। अंजुलि जोरि बिनति कछु करे॥
हो प्रभु ! यह जु देह मैं धर्यो। अरु सब अरथ परापति कर्यो॥
तव पद-पंकज दरसे-परसे। कौन पुन्य धौं मेरे सरसे॥
अरु संसार असार अपार। सहजहि भयौ जु ताके पार॥
तुम अपने परमातम स्वामी। ब्रह्मरूप सब अंतरजामी॥
लोक सृष्टि सिरजति यह माया। तुम तें दूरि मलमई काया॥
हे सरवग्य, अग्य जन मेरे। जाने नहिन धर्म प्रभु केरे॥
तुम्हरे पितहि जु इत लै आये। कछु भाये कछु मोहिं न भाये॥
पुनि पुनि धरत पगनि पर सीस। अति पसन्न कीने जगदीस॥
छबिली भाँति अपन घर आये। ब्रज में घर घर मंगल गाये॥
नंद जु जब वरुनालय गयो। निरखि बिभूति चकृत अति भयो॥
पुनि जब सुत के पाइनि पर्यो। तब ब्रजराज अचंभे भर्यो॥
कहन लग्यो हिय में यह बात। ईस्वर है यह मेरो तात॥
स्वच्छ मुक्ति जो ब्रह्म है कोई। हम कों सहजहि देहै सोई॥
ऐसे जब विस्मय करि लसे। तब गोबिंदचंद्र मृदु हँसे॥
भक्त मनोरथ पूरन करने। जैसे वेद-पुरानन बरने॥
जिहि गति प्रेरे जोगी जन-मन। जात है क्रम क्रम करि तप के पन॥
संसारी-जन तहँ को गने। काम-कर्म जु अविद्या सने॥
तिहि गति बैठे सब ब्रज लोइ। पूरन तरुन, कीरतिमय होइ॥
प्रथमहि ब्रह्म त्रिपै अनुसरे। इनहि ब्रह्म घर ता मधि अरे॥
देह सहित ब्रह्म देखन गये। तहँ के सुख ते सब अनभये॥
तातें पुनि बैकुंठ सिधारे। तहँ के सुख नीके अवधारे॥

मूर्तिवंत जहँ चारो बेद । बरनत प्रभु के नाना भेद ॥
अरु कौतुक जे कान्ह ब्रज करे । गिरिवर-धरन अवर रँग भरे ॥
ते सब गान करत श्रुति जहाँ । नंदादिक सुनि चकि रहे तहाँ ॥
परी चटपटी सब के मन में । कब देखै इहि वृंदावन में ॥
मधुर मूर्ति बिन जब अकुलाने । तब फिरि वहुर्यौ ब्रज ही आने ॥
मित्र कहत कि ब्रह्म में जाइ । पुनि अकुंठ वैकुंठहि पाइ ॥
वहुरि जु लोकनि में फिरि आवै । यह संदेह मोहिं भरमावै ॥
'नंद' कहत कछु जिनि करि चित्र । जिन के मनमोहन से मित्र ॥
नंद-सुवन दिनमनि सम रूप । ब्रह्म-बियापी जाकी धूप ॥
वैकुंठ मधि सुक्ख हैं जिते । सब वृंदावन ठाँ ठाँ तिते ॥

अष्टविसत अध्याइ की, लीला सब सुख-कंद ।
मुक्ति न मन-मानी जहाँ, फिरि आये ब्रजचंद ॥५०॥

परिशिष्ट

एकोनत्रिंश अध्याय[1]

उनतीसौं अध्याइ सुनि मित्र । जामैं रास उपक्रम चित्र ॥
ब्रह्मादिकन जीति कंदर्प । वाढ्यो हुतौ वाके अति दर्प ॥
कियौ चहत अब ताकौ खंडन । जय जय गोपी-मंडल-मंडन ॥
आगामिनी जामिनी जु ही । ब्रजभामिनीन सौं जे कही ॥
ते आई जब परम सुहाई । नंद सुवन दिखि अति मनभाई ॥
प्रफुलित सरद मल्लिका जहाँ । अवर अनेक कुसुम छवि तहाँ ॥
जब ही नँद-नंदन मन भयौ । तब हीं उड़प उदय है लयौ ॥
अरुन बरन तहँ सोभित ऐसौ । प्राची दिसि तिय कौ मुख जैसौ ॥
दीरघ काल मिल्यौ है पीय । तिन मनु कुंकुम रंजित कीय ॥
लसत अखंडल मंडल जाकौ । ऐ किधौं है इह वदन रमा कौ ॥

---

१. यह अध्याय सं० १७५७ की प्रति में नहीं है और इसकी कथा रास पंचाध्यायी के अंतर्गत है। इस अध्याय की भाषा भी संदिग्ध है, इसलिये परिशिष्ट रूप में दे दिया गया है।

उझकत कौतुक अपने स्वन कौं। अधिकार न जनु इतहिं अवन कौं ॥
कोमल किरन, अरुनिमा नई। कुंजनि कुंजनि प्रसरित भई ॥
हरिपिय-हिय-अनुराग जु भर्‌यौ। सोइ जनु निकसि बाहिरै पर्‌यौ ॥
स्याम रंग सिंगार कौ, अरुन रंग अनुराग।
पीत रंग है प्रेम कौ, ओढ़ै कोउ बड़भाग ॥
तब लीनी कर-कंजनि मुरली। खर्जादिक जु सप्त सुर जुरली ॥
सोइ जोग-माया गुन-भरी। लीला-हित हरि आश्रित करी ॥
सिव मोहनी जु वह मोहिनी। वा तैं मुरली सरस सोहिनी ॥
वहुरयौ अधर-सुधासव रली। मधुर मधुर गति ब्रज कहुँ चली ॥
सुनी सवन पै तेई आई। जे हरि मुरली माँझ बुलाई ॥
प्रीतम-सूचक सब्द सुढारक। सुनतहिं इतर राग बिसमारक ॥
दुहत चली जु दह्यौ तजि चली। सिद्ध वस्तु तेऊ दलमली ॥
या करि अर्थ, धर्म अरु काम। परिहरि चलति भई सब बाम ॥
मात-तात-भ्रातन करि वरजी। पतिन अनेक भाँति कै तरजी ॥
तदपि न रही सवै पचि रहे। जिन के मन मनमोहन गहे ॥
प्रेम-बिवस जु विकल ब्रज-बहू। भूषन-बसन कहू के कहू ॥
धरे हुते जे परम सुहाये। जहाँ के तहाँ आप ही आये ॥
मन-बच-क्रम जु हरिहि अनुसरै। कवन विघन जु बिघन कौ करै ॥
श्रवननि मनि-कुंडल झलमले। वेगि चलन कहुँ जनु कलमले ॥
कुंतल संकित वने जु नैन। मैन के मनहि देत नहिं चैन ॥
एक जु तिय घर मैं घिरि गई। विवस भई; निकसत नहिं पई ॥
देखे सुने हुते हरि जैसैं। ध्यान धरे हिरदै मैं तैसें ॥
तजि तजि तिहि छिन गुनमय देह। जाइ मिली करि परम सनेह ॥
जदपि जार-बुद्धि अनुसरी। परमानंद-कंद-रस भरी ॥
मित्र कहत यौं वनत है कैसैं। मो मन मैं आवत नहिं तैसें ॥
'नंद' कहत यह जिय जनि धरौ। अमृत-पान कोउ कैसैं करौ ॥
वहुरि कहत यह गुनमय देह। पाप-पुन्य, प्रारब्ध के गेह ॥
भुगते विन न घाटि है जाही। कब भुगतै यह मो मन माही ॥
दुसह विरह जु कमल-नैन कौ। अनेक भाँति के दुक्ख दैन-कौ ॥
सो दुख आनि पर्‌यौ जब इन मैं। कोटि नरक-दुख भुगये छिन मैं ॥
वा करि पापन कौ फल जितौ। जरि वरि मरि सरि गयौ है तितौ ॥
पुनि रंचक धरि हिय में ध्यान। कीने परिरंभन, रस-पान ॥

कोटि सुरग सुख छिनक मैं लिये । मंगल सकल बिदा करि दिये ॥
तब यह प्रश्न परीच्छित करी । हो प्रभु ! मो मन संका परी ॥
नंदकिसोरहि सुंदर जानि । भजति भई न ब्रह्म पहिचानि ॥
गुन प्रवाह ऊपर भयौ कैसैं । यह हौं नाहिन समझत तैसैं ॥
श्री सुक कही कि हम तौ पाछे । कहि आये नृप तो सौं आछे ॥
दुष्टन कौ नृप, नृप सिसुपाल । निंदत ही बीत्यौ सब काल ॥
पूछ्यौ-गन्यौ न ताकौ हियौ । लै बैकुंठ पारषद कियौ ॥
हे हरि-प्रिया परम रस ओपी । जिनहुँ सबै बिधि इहि बिधि लोपी ॥
आवृत ब्रह्म जियन मै मानि । कृष्ण अनावृत ब्रह्म है जानि ॥
नरक के श्रेय करन हित तेही । दिखियत आतमा परम सनेही ॥
कौनहि भाँति कोउ अनुसरौ । काम-क्रोध-भय सौ हृद करौ ॥
हे नृप ! ह्याँ कछु चित्र न मानि । ते सब हरिहि मिलेई जानि ॥
नूपुर-धुनि जब श्रवननि परी । सब अँग श्रवन भये उहि घरी ॥
दिष्टि परी जब तब सब अंग । दृगन मै भरे, रहे रस-रंग ॥
कुंजन तैं निकसत मुख लसै । चहुँ दिसि उदित चंदगन जैसैं ॥
आसपास ठाढ़ी भईं आइ । ता छिन की छबि नहिं कहि जाइ ॥
इकहि बैस, समकंध- सुदेस । ऊपर बनै जु बदन बिसेस ॥
कंचन कोटि काम जनु कर्‌यौ । चंद कौ बृंद कँगूरनि धर्‌यौ ॥
छबि सौं चितये सबन की ओर । बाले नागर नंदकिसोर ॥
प्रथमहि वचन धर्म नेम कौ । कहन लगे जु परम प्रेम कौ ॥
हे बड़भाग भले ही आई । क्यौं आई कछु संभ्रम पाई ॥
ब्रज मैं कुसर-खेम तौ आहि । कारन कवन कहहु किन ताहि ॥
तब सब मंद परस्पर हँसी । लाज-लपेटी अँखियाँ लसीं ॥
या छबि की कछु उपमा नहीं । लसौ-बसौ नित जहँ की तहीं ॥
पुनि बोले दिखि तिन की ओर । यह सजनी यह रजनी घोर ॥
तियन की नहिन निकसनी बेर । वेग जाहु घर होति अबेर ॥
मात, तात, पति, भ्रात तुम्हारे । ढूँढ़त ह्वैहै बंधु पियारे ॥
चटपटी परी होइहै सब ही । कहिहैं कित गई इत ही अब ही ॥
तब कछु प्रनय-कोप-रस-पगी । छुभित ह्वै इत-उत चितवन लगी ॥
तब बोले तिन सौं मनमोहन । हौं जानौं आई वन जोहन ॥
देखहु वन कुसुमित छबि छयौ । राका ससि करि रंजित भयौ ॥
अरु इत यह कलिंद-नंदिनी । वहति सरस आनंद-कंदिनी ॥

इत यह ललित लतन की फूलनि। फूलि फूलि जमुना जल भूलनि॥
देख्यौ वन, अब गृह अनुसरौ। हे सति पतिन की सेवा करौ॥
अरु जौ वन देखन नहिं आई। मो हित करि आई मोहिं भाई॥
जुगति करी, न करी अनरीति। मो सौं सवै करत हैं प्रीति॥
ऐसैं वहुतै विप्रिय वैन। कहे जु प्रीतम पंकज-नैन॥
भग्न-मनोरथ चिंता परी। रहि गई जनु कि चित्र है करी॥
दृगन तैं अंजन जुत जलधार। धसी सु तन पर इहि आकार॥
कनक वरन जनु ढार सुढार। दीने सूत विरह सुत धार॥
भरत उसास हुतासन ररे। मुरझत अधर-बिंब मधु भरे॥
चरननि धरति लिखनि इमि गनौ। अवनि तैं मारग माँगति मनौ॥
सुनि कै प्रिय के अप्रिय वैन। ज्यौं कोउ इतर कहै दुख दैन॥
जल गंभीर नैनन की कोर। पौंछि कै छबिले पटन के छोर॥
गदगद गरन कहति भई ऐसैं। काँपाजुत सुर पिकगन जैसैं॥
अहो अहो सुंदर बर व्रजनाइक। क्रूर वचन नहिं तुम्हरी लाइक॥
जिनि वोलहु वलि अति दुख दैन। तुम तरुना करुना-रस-ऐन॥
सब परिहरि हरि चरननि आई। वलि अब भजौ तजौ निठुराई॥
जैसें आदि पुरुप वह कोई। मुमुखन भजत सुन्यौ हम सोई॥
अरु जु अपति पति सुहृद सुश्रूपन। तियन कौ धरम कह्यौ जु अदूपन॥
हे व्रजभूपन नहि अव इपै। सो सब होत तुम्हारे विषै॥
तुम अपने आत्मा नित नित के। सुत-पति अति दुखदाइक कित के॥
करम धरम कौ फल जुग जुग ही। निगम कहत जिहिं सो तौ तुही॥
फल फिरि वहुरि सिखावै धर्म। च्याये रहो, दहौ जिनि मर्म॥
अरु जे सास्त्र निपुन जन जिते। चरन-कमल-रज वाँछत तिते॥
रमा रमनि के चहियतु कहा। तुम करि दियौ उरस्थल महा॥
जाकी चितवन हित सुर सब के। ब्रह्मादिक तप करत हैं कब के॥
तिन तन कबहूँ नैंक न चहैं। चित तौ तुव पद-पंकज रहैं॥
अरु यह तुलसी लसी रस भरी। अनुदिन रहति पगन पर परी॥
यातैं तुम्हरे चरन सेइहैं। सुख देइहैं कछु न लेइहैं॥
अरु जो कहत कि जाहु व्रज माहीं। जाहिं कहाँ अरु कहँ लौं जाहीं॥
चित तौ तुमहिं चोरि है लियो। चरन न चलै कहा धौं कियौ॥
हियौ नहीं अब हाथ हमारे। करिहैं कहा व्रज जाइ तिहारे॥
हो पिय! यह कल गीत तिहारौ। महा अनिल के वान अनिवारौ॥

अधर-अमृत करि काहे न सींचत । मुसकि मुसकि वलि क्यौं दृग मींचत ॥
जौ न सींचिहौ पिय ब्रजनाथ । तौ इह विरह अगिनि के साथ ॥
धरि धरि ध्यानहि जरि बरि अवै । ह्वैहैं आनि कै दासी सबै ॥
जौ कहौ क्यौं भई दासि हमारी । तजि तजि गृह ठकुराइत भारी ॥
तहाँ कहत अहो पिय मनमोहन । आवत तुम जब गोगन गोहन ॥
बदन-कमल परि घूँघर केस । देखि कै गोरज छुभित सुवेस ॥
तैसेई मनि-कुंडल छवि वढ़े । दुहुँ दिसि जात मीन से चढ़े ॥
मृदुल मुकुर से लोल कपोल । मंद हसनि मिलि करत कलोल ॥
अरु अधरन मधि मधु झलमली । दिखि दिखि उपजत हिय कलमली ॥
अरु यह छबिली छती साँवरी । भुज रावरी रूप वावरी ॥
इन करि सुधि बुधि गई हमारी । यातैं भई पिय दासि तुम्हारी ॥
जौ कहौ उपपति-रस नहिं स्वच्छ । सब कोउ निंदत अरु अति तुच्छ ॥
तहाँ कहति हैं ब्रजभामिनी । लहलहाति जनु नव दामिनी ॥
तुम्हरी यह कलगी तजि पीय । त्रिभुवन माँझ कवन अस तीय ॥
सुनतहिं आरज-पथ नहि तजै । सुंदर नंद-सुवन नहि भजै ॥
सुनि खग-मृग जु रहैं कौर तैं । जमुना चलि न सकति ठौर तैं ॥
पुरुषहु चले जु हैं दृढ़ हिया । हो पिय कवन आहि ये तिया ॥
जैसैं आदि पुरुष सुर लोक । दूरि करत हैं तियन कौ सोक ॥
तैसैं ब्रजजन दुख के हरता । तुम कीने पिय जो कोउ करता ॥
रंचक कर-पंकज सिर धरौ । जरत है तन-मन सीतल करौ ॥
ऐसैं विरह विकल कल बैन । सुनि कै तरुना करुना ऐन ॥
जोगीस्वरन के ईस्वर स्याम । वहुरयौ जदपि आत्माराम ॥
रमत भये तिन सौं रस वातैं । केवल एक प्रेम के नातैं ॥

ग्यान तुलित, विग्यान पुनि, तुलित तुलित जम-नेम ।
सबै वस्तु जग मैं तुलित, अतुलित एकै प्रेम ॥
ऐसैं प्रभु वस होत जिहि, सुनहु प्रेम की वात ।
तप करि प्रेरे मुनिन के, मन जहँ लगि नहिं जात ॥

विहरत विपिन विहार उदार । ब्रजरमनी ब्रजराज-कुमार ॥
पियहि पाइ तिय के मुख लसैं । सरद मै सरसिज होत न असैं ॥
वीरी खात, दिये गरबाँही । डोलत फूली कुंजन माँहीं ॥

तिन मधि बने कुँवर नँद-नंद। वड़े उड़न सौं ज्यौं घन चंद ॥
बिलुलित उर बैजंती माल। लटकत चलत सु मद गज चाल ॥
इहि परकार कुँवर रस भरे। छबि सौं जमुन पुलिन अनुसरे ॥
कोमल उज्जल बालुका जहाँ। मलय समीर धीर नित तहाँ ॥
सु कर तरंगन करि कै जमुना। रच्यौ रुचिर जहँ और की गमुना ॥
सीतल मंद सुगंध बयारि। पंखा करति बनिता बपु धारि ॥
भृंगन सहित भृंगन की घरनी। बीन सी बजति महा सुखकरनी ॥
कमल अमोद, कुमुद आमोद। सब परिमल जहँ देत विनोद ॥
तहाँ वैठि भुज भुज गरमेलनि। परिरंभन, चुंवन, कल केलनि ॥
कच-लट गहि वदनन की चूमनि। नख नाराचन घायल घूमनि ॥
कुचन की परसनि, नीवी करसनि। सुखनकी वरसनि मनकी सरसनि॥
ताही के सरन मैन जब हत्यो। दुखित भयौ घूमत जिमि मत्यौ ॥
भस्म करहिं जिनि इह डर डर्यौ। तब उठि प्रभु के पाइनि पर्यौ ॥
कोटि अनंग अंग के भौन। इक अनंग जीतिबौ सु कौन ॥
सिव से जीतत कैसेहुँ कैसे। दृढ़ वैराग्य जोग वल तैसैं ॥
ऐसैं विस्व त्रिमोहन कामहि। को जीतहिं त्रिन मोहन स्यामहि ॥
अपने रस वस देखि साँवरे। ह्वै गये तियन के मन बावरे ॥
कहति भई भरि हिय अभिमान। हम सम तिय न तिहूँ पुर आन ॥
यहै मान वढ़ि सैल समान। ओट परि गये पिय भगवान ॥

सुनै जो कोउ मन-क्रम-बचन, उनतीसौं अध्याइ।
ध्वंसनि कलिमल-बंस कहुँ, 'नंद' न अवर उपाइ ॥

पदावली

मंगलाचरण

वेद रटत, ब्रह्मा रटत, संभु रटत, सेस रटत,
नारद सुक-व्यास रटत पावत नहि पार री।
ध्रुव-जन, प्रह्लाद रटत, कुंती के कुँवर रटत,
द्रुपद-सुता रटत नाथ, नाथन-प्रतिपार री॥
गनिका-गज-गीध रटत, गौतम की नारि रटत,
राजन की रमनी रटत सुनत दै-दै प्यार री।
"नंददास" श्रीगुपाल गिरिवर-धर रूप-जाल
जसुदा को कुँवर लाल, राधा-उर-हार री॥ १॥

राग भैरव

रामकृष्ण कहियै उठि भोर।
ये अवधेस धनुप कर धारैं, ए व्रज-जीवन माखनचोर।
उनकैं छत्र, चँवर, सिंहासन, भरत, सत्रुहन, लछमन जोर;
इनकैं लकुट, मुकुट, पीताम्बर, नित गायन सँग नंदकिसोर।
उन सागर में सिला तराई, इन राख्यौ गिरि नख की कोर;
'नंददास' प्रभु सब तजि भजियै, जैसै निरतत चंद-चकोर॥ २॥

रामकृष्ण कहिये उठि भोर।
ओहि अवधेश ओही व्रज जीवन,
धनुप धरन अरु माखन चोर।
इतमे अयोध्या निर्मल सरजू,
उत यमुना जल करत किलोल॥

इतमें दशरथ-पुत्र कहाये,
उतमें कहाये (बाबा) नंद-किशोर।
इतमें कौशल्या (मैया) गोद खेलावै,
उतमे यशोदा (जी) झुलावै हिंडोर॥

इतमें धनुष बान कर राजै,
उतमें मोर मुकुट को ओर।
इतमें धनुष बान कर राजे,
उत मुरली धरे मुख की कोर॥

इतमें चरण अहल्या तारी,
उत कुब्जा मे कियो है कलोल।
इतमें जानकी बाँये बिराजे,
उत राधे सँग युगल किशोर॥

इतमें सागर शिला तरानी,
उत गिरिवर धरे नख की कोर।
रावण के दश मस्तक छेदे,
कंस को मारि किये झकझोर॥

इतमें राज बिभीधन दीनो,
उग्रसेन कियो अपनी ओर।
"नंददास" के ये दोउ ठाकुर,
दशरथ-सुत बाबा नंद किशोर॥ ३॥

फूलन की माला हाथ, फूली फिरै आली साथ,
झाँकत झरोखे ठाढ़ी नंदिनी जनक की।
कुँवर कोमल गात को कहै पिता सो बात,
छाँड़ि दे यह पन तोरन धनुक की॥
"नंददास" प्रभु जानि तोर्यो है पिनाक तानि,
बाँस की धनैया जैसे बालक तनक की॥ ४॥

श्रीगुरु-विट्ठलनाथ-स्तव

राग बिभास

प्रात समें श्रीवल्लभ-सुत के, वदन-कमलको दरसन कीजै।
तीन लोक-बंदित, परसोत्तम, उपमा कहा जो पटतर दीजै॥
श्रीवल्लभ-कुल उदित चंद्रमा, लखि छबि नैनि चकोरन पीजै।
"नंददास" श्रीवल्लभ-सुत पै, तन-मन-धन नोंछावर कीजै॥ ५॥

राग राम-कली

श्री बल्लभ-सुत के चरन भजौं ।
अति सुकुमार[1], भजन-सुख-दायक, पतितन-पावन-करन भजौं ।
दूरि किये कलि-कपट-बेद-बिधि, मत प्रचंड बिसतरन भजौं ।।
अतुल प्रताप महामहि सोभा[2], ताप-सोक-अघ-हरन भजौं ।
पुष्टि-म्रजाद, भजन-सुख सीमा, निजजन पोषन भरन भजौं ।।
"नंददास" प्रभु प्रगट भये दोउ, श्रीबिट्ठल[3], गिरिधरन भजौं ।। ६ ।।

राग सारंग

जयति रुक्मिनी-नाथ पद्मावती,
प्रानपति बिप्र-कुल-छत्र आनंदकारी ।
दीप-बल्लभ-बंस, जगत-निस्तार-करन,
कोटि-उडुराज-सम तापहारी ।
मुक्ति-कांछीय जन भक्तिदायक प्रभू,
सकल सामर्थ गुन-गनन भारी ;
जयति पति भक्त-जन, पतित-पावन-करन,
कामिजन-कामना पूर्न चारी ।
जयति सकल-तीरथ फलित नाम सुमिरन मात्र,
बास बृज नित्त गोकुल बिहारी ।
"नंद" दासनि नाथ, पिता गिरिधर आदि
प्रगट अवतार गिरिराज धारी ।। ७ ।।

राग हमीर

भजौं श्री वल्लभ-सुत के चरन ।
नंद-कुमार भजन सुखदाइक, पतितन-पावन करन ।।
दूरि किए कलि-कपट वेद-विधि मत-प्रचंड विस्तरन ।
अति प्रताप महिमा समाज जस, सोक, ताप, अघहरन ।।
पुस्टि म्रजाद भजन, रस, सेवा, निज-जन पोषन भरन ।
"नंददास" प्रभु प्रगट रूप धरि श्रीविट्ठल गिरिधरन ।। ८ ।।

---

१. पाठा०—नदकुमार । २. पाठा०—अतुल प्रताप श्याम महिमा वश ।
३. पाठा०—विट्ठलेश ।

राग—देव गंधार

श्री लछमन-घर बाजत आजु बधाई ।
पूरन ब्रह्म प्रगटि पुरुषोतम श्री वल्लभ सुखदाई ।
नाचत तरुन वृद्ध औ बालक उर आनँद न समाई ;
जै-जै जस बंदी-जन बोलत विप्रन बेद पढ़ाई ।
हरद, दूब, अच्छत, दधि, कुंकुम आँगनि कीच मचाई ;
बंदन-वार सुमालिन बाँधति मोतिन चौक पुराई ।
फूले द्विज बरदान देत हैं पट भूषन पहिराई ;
मिटि गए द्वंद्व 'नंद दासन' के मन-वांछित फल पाई ॥ ९ ॥

प्रकटित सकल सृष्टि-आधार । श्री मद्वल्लभ राजकुमार ॥
धेय सदा पद-अंबुज सार । अगणित गुण महिमा जु अपार ॥
धर्म्मादिक द्वारे प्रतिहार । पुष्टि भक्ति को अंगीकार ॥
श्री विट्ठल गिरिधर-अवतार । 'नंददास' कीन्हो बलिहार ॥१०॥

राग बिभास

प्रात समैं श्री वल्लभ-सुत को उठतहि रसना लीजै नाम ।
आनँदकारी मंगलकारी, अशुभहरन जन पूरन काम ॥
इहलोक परलोक के बंधु, को कहि सकत तिहारो गुनग्राम ।
'नंददास' प्रभु रसिक-शिरोमनि, राज करौ श्री गोकुल धाम[1] ॥११॥

प्रात समै श्री वल्लभ-सुत को पुण्य पवित्र विमल जस गाऊँ ।
सुंदर सुभग वदन गिरिधर को निरखि निरखि कै दृगन सिराऊँ ॥
मोहन मधुर वचन श्रीमुख के स्रवननि सुनि सुनि हृदय बसाऊँ ।
तन मन प्रान निवेदन करिकै सकल अपुन पौ सुफल कराऊँ[2] ॥
रहौं सदा चरनन के आगें महा प्रसाद सो जूठन पाऊँ ।
'नंददास' इहि माँगत हौं श्री वल्लभकुल को दास कहाऊँ ॥१२॥

देव गांधार

श्रीगोकुल जुग जुग राज करौ ।
या सुख भजन-प्रताप तजे ते छिन इत उत न टरौ[3] ॥

---

१. पाठा०—गोकुल सुखधाम । २. पाठा०—तन मन प्रान निवेदि वेद विधि यह अपुनपौ हौं सुभल कराऊँ । ३ पाठा०—या सुख भजन-प्रताप

पावन रूप दिखाइ प्रानपति[1] पतितन पाप हरौ ।
बिश्वबिदित तुम दीनन-पालक निज गति दै उधरौ[3] ॥
श्रीवल्लभ-कुल-कमल अमल रवि[2] जस मकरंद भरौ ।
'नंददास' प्रभु पटगुन-संपन श्रीबिठलेश वरौ ॥१३॥

श्री यमुनाजी के पद

भक्त पै करी कृपा श्रीजमुना जू ऐसी ।
छाँड़ि निज-धाम बिस्राम भूतल कियो,
प्रगट लीला दिखाई हो तैसी ॥
परम परमारथ करत हैं सबन को,
देति अद्भुत-रूप आप जैसी ।
"नंददास" जो जन दृढ़ करि चरन गहै,
एकु रसना कहा कहै बिसैसी ॥१४॥

तातै श्रीजमुना, जमुना जू गावौ ।
सेस सहस मुख निसि-दिन गावत
पार नहि पावत ताहि पावौ ॥
सकल-सुख-दैन-हार, तातै करों उच्चार,
कहत हौ वार वार जिनि भुलावो ।
"नंददास" की आस, श्री जमुना पूरन,
करी तातै घरी-घरी चित्त लावौं ॥१५॥

भाग, सुहाग श्रीजमुना जू दैई[4] ।
वात लौकिक तजौ, पुष्टि जमुना (जू) भजौं,
लाल गिरधरन वर तव मिलैई[5] ॥
भगवदीन सग करि, वात उनकी लै सदाँ,
सानिधि इहि देति भैई[6] ।
'नंददास' जा पैं कृपा श्रीवल्लभ करै,
ताकों श्रीजमुना जू सरवस जो दैई[7] ॥१६॥

ते इक छिन दुरि इत उत न टरौ । १. पाठा०—महाप्रभु । २. पाठा०—बिस्वबिदित दीनी गति प्रेतन क्यो न जगत उद्धरो । ३. पाठा०—कुल-कमलनि दीपक । ४ जमुने जो दे री । ५. ताहि वर मिलै री । ६. रहे केलि मैं री । ७ जमुने सदा वस जो है री ।

नेह कारनै जमुना जू प्रथम आईं।
भक्त की चित्त-वृत्ति सब जान कैं हीं ताहिते अति ही आतुर धाईं॥
जैसी जाके मन हती इच्छा ताकी तैसी साध जो पुजाई।
"नंददास" प्रभु ताहि पै रीझत जमुना जू के जस जो गाईं॥ १७॥

श्रीगंगाजी के पद

राग बिलावल

आगे आगे रथ भगीरथ जू को चल्यो जात,
पाछे पाछे आवति तरंग रंग भरी गंग।
झलमलात अति उज्वल जल की जोति,
अवनि दिपत मानो सीस भरे मोती मंग॥
जाय परसे हैं भूप कबके भसम रूप,
ठौर ठौर जागि उठे होत सलिल संग।
"नंददास" मानों अगिन के जंत्र छूटे ऐसे
तुरत सुरपुर चले धरे देव अंग॥ १८॥

हनुमानजी के पद

राग मारू

जब कूद्यो हनुमान उदधि जानकी सुधि लेन को।
देखन दसमाथ[1] अपने नाथ को सुख देन को॥
जा गिर ते चढ़ि कुलांच लीनी उचकैयाँ।
सो गिरि दस जोजन धसि गयो धरनी महियाँ॥
धरनि धसि गई पताल भार परे जाग्यो।
सेसहू को सीस जाय कमठ पीठ लाग्यो॥
अरुन बदन तेज सदन पीत बसन गात हे।
उत्तर तें दच्छिन मानो मेरु उड़यो जात हे॥
जा प्रभु को नाम लेत भव जल तरि जात हे।
सत जोजन सिंधु कूद्यो तो किसी एक बात हे[2]॥

---

१. पाठा०—तोरन दस मस्तक।

२. यह पंक्ति किसी किसी प्रति में नहीं है।

श्रीरामचन्द्र पद प्रताप जग में जस जाको।
"नंददास" सुर-नर-मुनि कौतुक भूले ताको॥ १९॥

सिंधु पार पहुँच्यो पवनपूत दूत श्रीरघुनाथ को।
छुट्यो जानो धनुख ते सर परम सुभट हाथ को॥
थर थर जहाँ करत मीच ऐसी राजधानी।
पैठत तिहि लंक वंक कपि न संक मानी॥
पुर मंदिर कदरा सुंदर वनराई।
रावल रन वास ढूँढ़ो सीता कहुँ न पाई॥
तब कह्यो यह लंकापुरी उचकि लीजिये।
उहाँ ले के जाऊँ जानकी ढूँढ़ि लीजिये॥
कै किधौं दसकंध याहि हँकार के मारों।
कै किधौं रघुवीर आगे बाँधि रिपुहिं डारों॥
यहि विधि बल अपनों कपि सोचत जिय माँहीं।
"नंददास" प्रभु की मोंकों ऐसी आग्याँ नाहीं॥ २०॥

व्रज महिमा

राग विलावल

नँद-गाउँ नीकों लागत री।
प्रात समे दधि मथत ग्वालिनी, विपुल मधुर-धुनि गाजत री॥
धन गोपी, धन ग्वाल सँग व्रज के, जिनके मोहन उर लागत री।
हलधर संग सखा सब राजत, गिरिधर लै दधि भागत री॥
जहाँ बसत सुर, देव, महा-मुनि, एको पल नहिं त्यागत री।
"नंददास" प्रभु-कृपा को इहि फल, गिरिधर देखि मन जागतरी[1] ॥२१॥
जो गिरि रुचे तो वसो श्री गोवर्द्धन, गाम रुचे तो वसो नंद गाम।
नगर रुचे तो वसो श्री मधुपुरी, सोभा सागर अति अभिराम॥
सरिता रुचे तो वसो श्री जमुन तट, सकल मनोरथ पूरण काम।
"नंददास" कानन रुचे तो, वसो भूमि वृंदावन धाम॥२२॥

---

१. पाठा०—नंददास के जीवन गिरिधर मोहन देखे भ्रम भागतु है।

श्रीकृष्ण-जन्म तथा बधाई के पद

राग मारू

श्री गुपाल गोकुल चाले हो, बलि-बलि-बलि तिहि काल ।
मोद-भरे वसुदेव गोद लैं, अखिल - लोक - प्रतिपाल ॥
अरुन उदय तैं ज्यौं तम फूटत, खुलि गबे कुटिल कपाट ।
महा वेग वल छाँड़ि आपुनों दीनी जमुना बाट ॥
भोर भये जैसें कुमोदिनी मुँदति, कंस भय मोहे ।
सत-जनन के मन-अंबुज पर फूलि डहडहे सोहे ॥
बार-बार फुही बरखावति अंबुद अंबर छायो ।
अपुनो निज वपु सेस जानिकैं बूँद बचावन आयो ॥
परम-धाम, जग-धाम स्याम अभिराम श्री गोकुल आए ।
"नंददास" आनंद भयो ब्रज हरखित मंगल गाए ॥२३॥

राग धनाश्री

ब्रज की नारि सबै मिलि आईं, आजु बधाई री माई ।
सुंदर नंद महरि के मंदिर प्रगट्यो पुत्र सकल सुखदाई ॥
होतहि ढोटा ब्रज की सोभा, देखो सखि कछु औरहि ओभा ।
मालिनि सी जहँ लछमी लोले, बंदन माला बाँधति डोले ॥
बगर बोहारति अष्ट महासिधि, द्वारे सथिया पूरति नौ निधि ।
कंचन कलस जगमगे नगके, भागे सबै अमंगल जग के ॥
हाथनि कंचन थार रही लसि, कँवलन चढ़ि आये मानो ससि ।
बीथी प्रेम-नदी छबि पावै, नंद-सदन-सागर कूँ धावै ॥
फुले गुवाल मनो रन जीते, भये सबन के मन के चीते ।
ग्रह ग्रह ते गोपी गवनी जब, रँगी(ली) गलिन में भीर भई तब ॥
कामधेनु ते नेक न हीनी, द्वे लछि धेनु द्विजन कूँ दीनी ।
नंदराय तहँ अति रस भीने, परवत सात रतन के दीने ॥
नंदराय गृह माँगन आये, बहुरि फेर मंगन न कहाये ।
घर के ठाकुर के सुत जायो, 'नंददास' तहँ सरबस पायो ॥२४॥

राग मलार

बधाई री बाजति आजु सोहाई श्रीगोकुलराज के धाम ।
रानि जसोमति ढोटा जायो मोहन सुंदर स्याम ॥

सुनि सब गोप घोष के बासी चले बर बेस बनाय।
ता पुर की मंगल ब्रज-बीथिन भीर न निकसो जाय॥
आई गोपबधू सँग मिलि मिलि हाथन कंचन थार।
कमल-बदनि सिगरी कमला सी झमकत कुंडल हार॥
नाचत गोप[1] करत कौतूहल दधि घृत खोरे गात।
रीझे[2] देत पटंबर अंबर फूले अँग न समात॥
जो जाके मन हती कामना सो दीनी[3] नंदराय।
'नंददास' कूँ दई कृपा करि अपने लला की बलाय॥२५॥

राग आसावरी

जुरि चली हैं बधावन नंद महर-घर सुंदर ब्रज की बाला।
कंचन-थार हाथ चंचल छबि, कही न परत तिहि काला॥
डहडहे मुख कुमकुम-रँग रंजित राजत रस के ऐना,
कंजन पै खेलत मनो खंजन अंजन जुत नव नैना॥
दमकत कंठ पदिक-मनि कुंडल, नवल प्रेम-रँग बोरी;
आतुर-गति मनो चंद उदै भये धावत त्रिषित चकोरी।
खसि, खसि परत सुमन सीसन तैं उपमा कहा बखानौ;
चरन चलन पै रीझि चिकुर-बर बरपत फूलन मानो।
गावत गीत पुनीत करन जग, जसुमति-मंदिर आईं;
बदन बिलोकि बलैयाँ लै-लै देत असीस सुहाईं।
मंगल-कलस निकट दीपावलि, देखि देखि मन भूल्यो;
मानो आगम नंद-सुवन के सुबरन-फूल ब्रज फूल्यो।
ता पाछैं गन गोप ओपसों आवत अतिसै सोहैं;
परम अनंद-कंद रस-भीने, निकर पुरंदर को है।
आनँद घन ज्यौं गाजत राजत बाजत दुंदुभि भेरी,
राग-रागनी गावत हरखत, बरखत सुख की ढेरी।
परमधाम जग-धाम स्याम अभिराम श्री गोकुल आए;
मिटि गये द्वंद 'नंद' दासन के भए मनोरथ भाए॥२६॥

---

१. पाठा०—ग्वालि। २. पाठा०—देत मँगाई बसन बर भूपन।
३. पाठा०—पुजई।

राग काफी

एरी सखी, प्रगटे कृष्ण मुरारी, ब्रज आनँद भयो,
दधि काँदो आँगन नंद के।

एरी सखी! बाजत ताल, मृदंग बरु बाजे सब साजि कै।
भवन भीर ब्रज-नारि, पूत भयो ब्रज-राज कै॥
ठनगन तैं सब वाम, वसनन सजि सजि कै गईं।
रोहिनि अति बड़ भाग, आदर दै भीतर लईं॥
बिछुवन की झनकार, गलिन-गलिन अति ह्वै रही।
हाथन कंचन-थार, उर पर झमकन च्वै रही॥
ग्वाल गोपिका जात, रावरो सगरो भरि रह्यो।
फूले अँग न समात, सबन कौ भाग उघरि रह्यो॥
जहँ ब्रज-रानी आय, सैन करति ढोटा भयें।
तहँ कौतुक अति होत, मिलि जुवती-जूथन गयें॥
निरखि कमल-मुख चारु, आनँद-मय मूरति भईं।
अंचल चंचल छोर, मन-भाई आसिस दईं॥
राइ चौक में घोरि, छिरकत दधि हरदी सकल।
पकरि पकरि कैं ग्वाल, बोलत भुज सो भुजन पल॥
काँवरि, मथना, माँट, अगनित गने न जात हैं।
भरे धरे सब-ठौर, कहँ लौं सदन समात है॥
होत परसपर मार, माँखन के गेंदुक करे।
एक-एक कौ ताकि, सुभग वदन लेपत खरे॥
ऊपर तैं दधि दूध, सीसन गागरि-गन ढरैं।
घोंटुन लौं भई कीच, रपटि रपटि सगरे परैं॥
ब्रज बधुवन के चीर, भीजि लगे अँग-अंग सों।
गावति हैं जुरि झुंड, अपने अपने रंग सों॥
हो-हो बोलैं ग्वाल, हेरी दै-दै गावहीं।
जोरि-जोरि सब बाँह, बाबा नंद नचावहीं॥
नंदराय बड़ भाग, नाचत में देखत बनै।
फिरत मंडलाकार, अंग-अंग सुख में सनै॥
चिबुक-केस सब सेत, उर पै सगरे ह्वै रहे।
रंग-कुमकुमा गारि, दधि दूधन उरझै रहे॥

भाल-विसाल रसाल, फेंटा सीस सुहावनो।
थोद थलकि बर चाल, मनो मृदंग मिलावनो॥
गहि-गहि कै भुज-मूल, रहे गोप सुख मानि कैं।
रपटि परैं जिनि नंद, सावधान इहि जानि कैं॥
आँगन उदधि अनंद-पंक, चढ़्यो कटि लौं भयो।
दई पनारि खुलाइ, सरिता ज्यौं बीथनि गयो॥
भानु-सुता मे जाई, मिल्यो सु रंग अनंद में।
कलिंद-नंदनी आइ, सुख लूटति इहि फंद मे॥
इहि औसर सब साधि, घोप-नृपति जून्हाई यो।
जे बरसौंदी खात, ते सब विप्र बुलाइयो॥
पूजा पितर कराइ, दान करत अति भाय सों।
घर के मागध सूत, झगरत हैं व्रज-राय सों॥
मेटत सगरी रारि, मनि-धन देत अघाइ कैं।
करत बहुत सनमान, भूषन पट पहिराइ कै॥
विधि सौं गाय सिंगारि, दई द्विजन करि ठाट सों।
जो मॉगत सोइ देइ, करै अजाचक भाट सो॥
अभरन अंबर छाइ, सहस पाँच दस आइयो।
हँसि हँसि रोहिनी आप, व्रज-तरुनिन पहिराइयो॥
घर घर घुरत निसान, कहि न जात कछु आज की।
मंगलमय व्रज-देस, फिरति दुहाई गाज की॥
विरज-दसा को रूप, कहा कहौं सखि या समैं।
निरखि-निरखि 'नंददास' निरत करति हैं ता समै॥२७॥

राग—जै जैवंती

माई आजु तो गोकुल गॉव कैसो रह्यो फूलि कैं।
घर फूले दीसैं सब जैसैं संपति समूलि कैं।
फूली-फूली घटा आई घहरि-घहरि घूमि कैं।
फूली-फूली बरखा होति, झर लावति भूमि कैं।
कमल कुमोदिनी फूलीं जमुना के कूल के।
द्रुम बेलि फूलि फूलि झुकि आईं भूमि के।
फूलो-फूलो पुत्र देखि, लयो उर लूमि कै।
फली है जसोदा-माय, ढोटा मुख चूमि कै।

देवता अगिन फूजे घृत खाँड होमि कै।
फूल्यो दीसै दधि-काँदो ऊपर सो भूमि कैं।
मालिन बाँधैं बंदनवार घर-घर डोलि कैं।
फूले हैं भँडार सव द्वार दये खोलि कैं।
पाटंबर पहिराय कै अधिक अमोलि कैं।
नंदराय देत फूले 'नंददास' वोलि कैं॥ २८॥

राग रायसौ

श्री व्रजराज जू के आँगन बाजत रंग-वधाई;
स्रवन सुनति सव गोपिका आतुर देखनि आई।
वदि-भादौं, आठै दिना, अरध-निसा बुध वार;
कौलव-करन सु रोहिनी, जनमे नंद-कुमार॥
गोप ओप सों राजियै, आए हैं तिहिं काल;
नाचत-करत कुलाहलैं, वारत मुक्तामाल॥
वाजत दुन्दुभि भेरियाँ, पटह निसान सुहाय;
दधि हरदी छिरकत सवैं, आनँद मंगल गाइ॥
धुजा, पताका, तोरनैं द्वारहि द्वार बँधाइ;
कनक-कलस सुभ मांगलिक, भुवनन वीच धराइ॥
जाचक जुरि मिलि आवते करत सवद-उच्चार;
पुहुप वृष्टि सुर-पति करै वोलै जै-जैकार॥
देत असीस सबै मिलि मन में, लहिकै मोद अपार;
श्रीजसुमति-सुत पै तन मन सों "नंददास" वलिहार॥२९॥

राग मारु

कृष्ण-जनम सुनि अपने पति सों, हँसि ढाढिन यों बोली जू,
जाउ-जाउ तुम नंद-नृपति कैं दान-कोठरी खोली जू।
तुमहि मिलैगो वागो वीरा दच्छिना भरि-भरि झोरी जू;
हमकों लैयो नख-सिख गहिनो जेहरि सहित सु जोरी जू।
लैयो कंत, जुगति सों लैयो हम चढ़िवे को डोली जू।
छोट सी भैंस सोहने सींगनि टहलि करनि कों गोली जू।
साज सहित इक घुड़िला लैयो, गैया दूध अतोली जू।
सुंदर सों इक हाथी लैयो, हथनी संग अमोली जू।

सज्जा सहित इक ढुलिया लैयो औ पानन की ढोली जू।
बीरी करि-करि मोहिं खवावै लैयो संग तमोली जू।
जनम-जनम अनते नहि जाँचो फिर नहिं माँड़ो झोली जू।
'नंददास' श्री नंदराय नै कियो अजाचक ढोली जू ॥३०॥

बाल क्रीड़ा

राग रामकली

जगावति अपने सुत को रानी।
उठौ मेरे लाल, मनोहर सुंदर, कहि कहि मधुरी बानी॥
माखन, मिश्री और मिठाई दूध मलाई आनो।
छगन मगन तुम करहु कलेऊ मेरे सब सुखदानी॥
जननि-वचन सुनि तुरत उठे हरि कहत बात तुतरानी।
'नंददास' प्रभु मैं बलिहारी जसुमति मन हरपानी॥३१॥

राग भैरव

चिरैया-चुहचॉनी, सुन चकई की बानी,
कहत-जसोदा-रानी जागौ मेरे लाला।
रवि की किरन जानी, कुमुदनी सकुचानी,
कमल विकसे दधि मथत बाला॥
सुबल, श्रीदाम, तोक उज्जल-बसन पहिरैं,
द्वारैं ठाढ़े टेरत हैं बाल गुपाला।
'नंददास' बलिहारी उठो, बैठो गिरिधारी,
सब मुख देखन चहैं लोचन बिसाला॥३२॥

राग पुरबी

छोटौ सो कन्हैया, मुख मुरली मधुर छोटी,
छोटे छोटे ग्वाल-बाल, छोटी पाग सिर (न) की।
छोटे छोटे कुंडल कान, मुनिन हू के छूटे ध्यान,
छोटे पट छोटी लट छुटी अलकन की॥
छोटी सी लकुट हाथ, छोटे छोटे बछवा साथ,
छोटे से कान्हैं देखनि गोपी आइं घरन की।

'नंददास' प्रभु छोटे, भेद-भाव मोटे मोटे,
खायो है माखन सो सोभा देखि वदन की ॥३३॥

राग रामकली

नंद को लाल, ब्रज पालनैं भूलैं।
कुटिल अलकावली, तिलक गोरोचन,
चरन-अँगूठा मुख किलक-किलक कूलैं।
नैननि अंजन सुरेख, भेप अभिराय सुचि,
कंठ केहरि-नख, किंकिन कटि भूलैं।
'नंददास' के प्रभु नंद-नंदन,
कुँवर निरखि नागरि देह, गेह भूलैं ॥३४॥

राग टोड़ी

चित्र सराहत चितवत मुरि-मुरि गोपी अधिक सयानी।
टक-झक सौं झुकि वदन निहारत,
अलक सँवारत पलकन मारत, जान गई नँद-रानी।
पारे परदा ललित-तिवारी, वलि वलि प्यारी,
कनक-थार जब आनी।
'नंददास' प्रभु सूनो भोजन-घर लखि,
उर पै कर धरत तवै वो उततैं मुसिकानी ॥३५॥

राग ईमन

छगन-मगन वारे, कन्हैया ! नैंकु उरैवों आइ रे।
वन में खेलन जात, ह्वै रहे सव मलिन गात,
अपने लाला की लैंहु वलाइ रे।
संग के लरिका सब वनि-ठनि आए,
यौं कहिहैं कैसी है तव माई रे।
जसुदा गहति धाइ वैयाँ, मोहन करत,
न्हैयाँ न्हैयाँ "नंददास" वलि जाइ रे ॥३६॥

राग केदारो

सिर सोने को सूत सु सोहत, पगिया पेंचन ऊपर नग उगे।
रतनारे भारे ढरारे नैननि देखि मूरछित भई कोऊ न जगे ॥

मुख की मंगुलताई बरनी न जाई, चंचलताई लखि दूरि भगे ;
"नंददास" नँद-रानी छबि निरखि वारि पीवत पानी,
काहू जिन दीठि लगे ॥३७॥

गाइ खिलावत सोभा भारी ,
गो रज-रंजित वदन-कमल पै, अलक झलक घुँघरारी ।
नख-सिख प्रति बहु मोल के भूषन, पहिरत सदा दिवारी ;
फैलि रही है खिरक-सभा पै नगन-रंग उजियारी ।
स्रम-कर राजैं भाल-गंड-भ्रू इहि छवि पै बलिहारी ;
स्रवन हेरि नव, अंचल चंचल, चढ़ति सु अटा-अटारी ।
भीर बहुत सुभई जात की मड़हन पै ब्रजनारी ;
सैननि मे समुझावत सगरी धनि-धनि निरखनहारी ।
रहे खिलाइ धूमरी धौरी, गाय गुनन कजरारी ,
"नंददास" प्रभु चले सदन जब एक बार हुँकारी ॥३८॥

राग—कल्याण

अति आछी तनक कनक की दौंहनी सौंहनी गढ़ाइ दै री मैया ,
जाइ कहौंगो नंद-बबा सौं, आछे पाट की नई दुहन सिखाइ दै गैया ।
मेरी दाँई के ढोटा सब छोटे, तेऊ सीखे री करत बन-धैया ,
'नंददास" प्रभु हँसत, लोटत अरु भरत
नैनि-जल जसुमति लेति बलैया ॥३९॥

राग—बिलावल

माधो जू ! तनिक सो वदन सदन-सोभा को
तनिक भ्रकुटि पै तनिक दिठौना ,
तनिक लटूरी पुनि मन मोहै
मनो कमल ढिग बैठे अलि-छौना ।
तनिक सी रज लागी निरखति बड़-भागी
कंठ-कठुला सोहै औ बघनखना ।
"नंददास" प्रभु जसुदा-आँगन खेलैं
जाको जस गाइ गाइ मुनि भए मगना ॥४०॥

राग—टोड़ी

निरंजन अंजन दियें सोहै नंद के आँगन माई ?
सबन के नैन प्रान परकासिक ताके ढिग
रच्यो चखोड़ा छाजै,' छवि कही न जाई।
निगम अगम जाको बौलै सो
अलबल-कल कछु कहति बनाई ;
"नंददास" जाकी माया जग भूल्यो
सो भूल्यो अपनी परछाई ॥४१॥

नंदराय जू के द्वारे भोरहि हौ उठि धाऊँ।
त्रिबिधि अनंद निरखि मुख बिहसो आऊँ नैन सिराऊँ॥
उज्ज्वल तन, थोरी सी थोदिया राते अम्बर सोहै।
अरुन घन ते निकसि पूरन चन्द की छबि कोहे॥
प्रगट ब्रह्म-घनीभूत पूत की पकरि अँगुरिया लाये।
मंद मंद हँसि चलन सिखवति लोचन लखि फल पाये॥
रिद्धि सिद्धि नव-निधि सँग कमला टहल करति जहँ फिरे।
अरथ धरम औ काम मोक्ष की भीख भिखारिन परे॥
नंद जू कहत कहा माँगत हरि टेर सुनन ललचाऊँ।
"नंददास" नँदलाल को उत्तर कान सुने सुख पाऊँ ॥४२॥

राग—अड़ानो

आवरी वावरी ऊजरी पाग में मेलिकै बाँध्यो है मंजुल चोटा।
चंचल लोचन चारु मनोहर अबही गहि आन्यो है खंजन जोटा॥
देखत रूप ठगौरी सी लागत नैननि सैन निमेख की ओटा।
"नंददास" रितुराज कोटि वारौ आज वन्यो व्रजराज को ढोटा॥ ४३॥

माई ! जे दोऊ, कौन गोप के ढोंटा।
इनकी बात कहा कहौं तोसौं, गुनन बड़े, देखन के छोटा॥
अग्रज-अनुज सहोदर जोरी, गौर, स्याम गूँथै सिर चोटा।
"नंददास" वलि वलि इहि मूरति, लीला-ललित सबही विधि मोटा ॥४४॥

राग—केदार

इहि काहू को ढोटा, स्याम-सलौने-गात है।
आई हौं देखि खिरक ढिग ठाड़ो, न कछु कहन की बात है॥

कमल फिरावत, नैन नचावत,[1] मो तन मुरि मुसिक्यात है।
छबि के बल जग जीति गरब भरि मैन मनो इतरात है॥
नख[2] सिख-रूप अनूप रूप छबि, कवि पै बरनि न जात है।
"नंददास" चातक की चौंच-पुट सब घन नाहिं समात है॥४५॥

ठाढ़ौरी खिरक माई, कौन को किसोर।
साँवरे बरन मनहरन बंसी धरैं, काम करन कैसी गति जोर॥
पौन परसि जात होत चपल देखि पियरो पटको चटकीलो छोर।
सुभग साँवरी छोटी घटा ते निकसि आवे
छबीली छटा को जैसो छबीलो ओर॥

पूछति पाहुनि ग्वारि हा हा हो मेरी आली,
कहा नाउँ, को है चितवित्त को चोर।
"नंददास" जाहि चाहि चकचौंधी आइ जाइ,
भूल्यौ री भवन-गवन भूल्यौ रजनी भोर॥४६॥

ताल—चौताल

प्रातकाल नंदलाल पागबनावत बाल दिखावत दर्पन रह्यो लसि।
सुंदर करनि मै मंजु मुकुर की छबि रही फबि
मानो बिबि कमलनि गहि आन्यो ससि॥
बीच बीच चित के चोर मोर-चँदवा दियै
तापर रतन-पेच बाँधत है कसि।
"नंददास" ललितादिक ओट भयैं अवलोकत,
अतुलित छबि रही फबि फूल डारि हँसि॥४७॥

राग—विभास

जमुना-पुलिन, सुभग-वृन्दावन, नवल-लाल गोवरधन-धारी।
नवल-निकुंज, नवल कुसुमित-दल, नवल-परम वृषभानु-दुलारी।
नवलदास, नव तव छवि क्रीड़त, नवल विलास करत सुखकारी;
नवल-श्रीविट्ठलनाथ कृपा बलि, "नंददास" निरखत बलिहारी॥४८॥

---

१. डुरावत मुरि मुरि मृदु। २. अंग अंग प्रति अमित माधुरी।

राग—नट

सुरँग दुरँग सोहत पाग लाल कैं, कुरँग कैसे लोचन अति लोने ;
कपोल विलोकत झलके कल काननु कुंडल कुसुमित कोने ।
रंग रँगीले अंग सबै नव, रँग-रँगे ऐसे पाछै भए न आगैं होने ;
"नंददास" सखि मेरी कहाँ वच, काम के आए टटावक टोने ॥४९॥

राग—पूर्वी

हाँकैं हटक-हटक, गाय ठटक-ठटक रहीं,
गोकुल की गली सब साँकरी ;
जारी-अटारी, झरोखन, मोखन झाँकत,
दुरि-दुरि ठौर-ठौर तैं परत काँकरी ।
चंप-कली, कुंद-कली, बरसत रस-भरी,
तामें पुनि देखियतु लिखे हैं आँकरी ;
"नंददास" प्रभु जहीं-जहीं ठाड़े होत तहीं-तहीं,
लटक-लटक काहू सों हाँ करी औ ना करी ॥५०॥

राग—बिलावल

नंदभवन को भूषन माई ।
जसुदा को लाल बीर हलधर को राधारमन सदा सुखदाई ॥
इंद्र को इंद्र, देव देवन को, ब्रह्मा को ब्रह्म महा बरदाई ।
काल को काल, ईस ईसन को, वरुन को वरुन महाबरुदाई ॥
सिव को धन, संतन को सर्वस, महिमा वेद पुरानन गाई ।
"नंददास" को जीवन गिरिधर गोकुल-मंडन कुँवर कन्हाई ॥५१॥

श्री राधा-जन्म के पद

राग आसावरी

बरसाने तैं दौरि नारि इक नंद-भवन में आई ।
आजु सखी, मंगल में मंगल कीरति कन्या जाई ॥
सुनि जसुमति मन हरख भयो अति, बोलि लई ब्रज-बाला ।
मुक्ता, मनि माला भूषन-बर पठए साज रसाला ॥

चलि गज-गामिनि साथन हाथन कंचन-थार सुहाए।
कमलन के ऊपर खेलत मनों अगनित-चंद जु धाए॥
डह-डहे मुख-छवि छाजत राजत, लाजत कोटिक-मैना।
कंजन पै खेलत मनो खंजन अंजन-रंजित नैना॥
कुंडल मंडित आनन राजत उपमा अधिक विराजै।
हार सुढार उरन बर सोहत निरखि सची मन लाजै॥
गावति गीत करति जग पावन भामिनि मंदिर आई।
नंदराव जू के आँगन मे आनंद वजति वधाई॥
देखि मुदित वृपभानु भए अति, भेट सुरुचि सो लीनी।
गदगद कंठ स्रवन सों बोलत वीथिन पावन कीनी॥
कीरति ढिग निरखी सुठि कन्या, धन्या अधिक अपारा।
कौतुक में कौतुक रस भीनो वरखत सीसन धारा॥
सब जग-धाम धाम-पुनि जाकों, सेस-धाम जिहि मानैं।
'नंददास' सुख कों सुखसागर प्रगटी है बरपानै॥५२॥

श्री वृपभानु-नृपति के आँगनि बाजति आजु वधाई।
कीरति दे रानी सुख-सानी सुता सुलच्छिन जाई॥
सक्ति सबै दासी है जाकी, तातै अधिक सुहाई।
निरबध-नेह अवधि अति प्रगटी मूरति सव सुखदाई॥
ब्रह्मादिक सनकादिक, नारद, आनंद उर न समाई।
'नंददास' प्रभु पलना पौढ़े किलकत कुँवर-कन्हाई॥५३॥

पूर्वानुराग तथा राधाकृष्ण विवाह

कृष्ण नाम जब तैं स्रवन सुन्यौ री आली,
भूली री भवन हौं तो बावरी भई री।
भरि भरि आवैं नैन, चितहूँ[1] न परै चैन,
मुखहू न आवै बैन, तन की दसा कछु और भई री॥

जेतक नेम धरम किए री मै बहु विधि,
अंग अंग भई हौं तौ स्रवन मई री।

---

१. पाठा०--रंचक न चित्त चैन।

'नंददास' जाके नाम सुनत ऐसी गति,
माधुरी मूरति है धौं कैसी दई री ॥५४॥

राग रामकली

नंद-सदन गुरुजन की भीर, तामैं,
मोहन को मुख नीके देखि नहिं पाऊँ।
बिनु देखैं रह्यौ न जाइ जिय अकुलाइ,
दुख पाइ जदपि बड़रे छिन उठि धाऊँ ॥

लै चलि री सखि, मोहि जमुना-तीर, जहाँ
ह्वैहैं बलबीर देखि दृगन सिराऊँ।
'नंददास' प्यासे को पानी पिवाइ लै जिवाइ,
जियकी जानति तू तोसौं कहाँ लगि दुराऊँ ॥५५॥

राग बिभास

चंचल, लै चली री चित चोर।
मोहन को मन यों बस कीनो ज्यों चकई सँग डोर ॥
जौं लौं नहिं देखत तव मूरति तौ लौं पलक न लागत ओर।
'नंददास' प्रभु प्रेम मगन भये नागर नंदकिसोर ॥५६॥

प्यारी तेरे लोचन लोने-लोने, जिन बस कीने स्याम-सलोने।
रस के आस सुवाल रंगीले पाछैं भए न आगे होने ॥
रूप रिझौंने मुसकि चलति जब काम अहेरी के टटावक टोने।
'नंददास' नँदनंदन नैननि नैकु नाहिंने ऐसे होने ॥५७॥

राग बिलावल

सजनी, आनँद उर न समाऊँ।
बरसानैं बृषभानु लगन लिखि पठई है नँद-गाऊँ ॥

धौरी धूमरि धेनु बिबिध रँग सोभित ठाऊँ-ठाऊँ।
भूषन मनि-गन पारु नाहिंने सो धन देखि लुभाऊँ ॥

गोप-सभा करि लगन जु लीनी मगन होइ गुन गाऊँ।
'नंददास' लाल-गिरिधर की दुलहिन पै बलि जाऊँ ॥५८॥

राग नट

अरी ! चलि दूलह देखनि जाँय ।
सुंदर-स्याम माधुरी मूरति, अँखियाँ निरखि सिरायँ ॥
जुरि आईं ब्रज-नारि नवेली मोहन दिसि मुसिक्यायँ ।
मौर बँध्यो सिर कानन कुंडल मरुवट मुखहि सुभायँ ॥
पहरैं जरकसि पट आभूषन अँग अँग नैनि रिझायँ ।
तैसीय बनी बरात छबीली जग-मग रंग चुचायँ ॥
गोप-सभा सरवर मे 'फूले कमल परम झपटायँ ।
'नंददास' गोपिन के दृग-अलि लपटनि को अकुलायँ ॥५६॥

राग बिहाग

दूलह गिरिधर लाल छबीलो दुलहिन राधा गोरी ।
जिन देखी मन में अति लाजी ऐसी बनी यह जोरी ॥
रतन-जटित को बन्यो सेहरो उर मोतिन की माला ।
देखत बदन स्याम सुंदर कौं मोहि रही ब्रज-बाला ॥
मदनमोहन राजत घोड़ा पै और बराती संगा ;
बाजत ढोल, दमामा चहुँ-दिसि ताल-मृदंग उपंगा ॥
जाय जुरे बृषभानु सु पौरी उतहू सब मिलि आए,
टीको करि आरती उतारी मंडप मै पधराए ॥
पढ़त वेद चहुँ-दिसि तै विप्र-जन भए सबन मन भाए ;
हथलेवा करि हरि-राधा सों मंगल-चार गवाए ॥
ब्याह भयो मोहन को जबही जसुमति देति बधाई ;
चिरजीवो भूतल इहि जोरी "नंददास" बलि जाई ॥६०॥

लाल बने रँग-भीने, गिरिधर लाल बने रँग-भीने ।
पिय कै पाग केसरी सोहै देखत रति-पति को मन मोहै ।
तापै एकु चन्द्रिका धारी प्यारी जू निज हाथ सँवारी ।
पिय के अरुन नैन मन भाए, प्यारी बहु विधि लाड़ लड़ाए ।
पिय कै पीक कपोल बिराजै, अधरन अंजन-रेखा छाजै ।
पिय कै उरसी गरगजि-माला, बोलत सिथिल बचन नँदलाला ।
छबि पै "नंददास" बलिहारी, अँग-अँग राँचे कुंज बिहारी ॥६१॥

प्रेम लीला

राग विहाग, ताल चपक

अरी प्यारी कैं लाल लागे देन महाउर पाय।
जब भरि सींकहि चहत स्याम घन दीजै चित्र विचित्र बनाय॥
रहत लुभाय चरन लखि इक टक विवस होत रँग भर्यो न जाय।
"नंददास" खिजि कहत लाडली रहौ, रही तब पगनि दुराय॥६२॥

चिवुक-कूप मधि पिय मन पर्यो अधर-सुधा रस-आस,
कुटिल अलक लटकत काढ़न कौं, कंटक डारि बाँध प्रेम के पास।
चंचल लोचन ऊपर ठाढ़े, ऐंचन को मानौ मधु-हास।
"नंददास" प्रभु प्यारी छवि निरखैं, बाढ़ी अधिक पियास॥६३॥

चलियै कुँवर-कान्ह! सखी-भेष कीजै;
देखन चहौ लाड़ली तौं अबहि देखि लीजै॥
ठाढ़ी है मंजन कियै, आँगन नव अपने;
देखी न सुनी हारे, संपत अति सपने॥
वदन पै सलिल-कन जगमगात जोती;
इन्दु-सुधा तामे मनो, अमी-मय मोती॥
मोती-हारु आधो चारु उर रह्यो लसी,
कनक-लता उदय होत, मानो सुभ-ससी।
सोहै पुनि सुरसरी सी मोतिन के हारा;
रोमावलि मिली मनो जमुना की धारा।
पीक-लीक-झलक सोहै सरसुति सी ऐनी,
पावन परम देखि, मदन मद-त्रिवैनी॥
अंचल उड़न छवि, कहियै किमि, भाँति कवन;
रूप-दीप-सिखा मनो, परसै अति हुलसि पवन॥
सिव मोहे जिननैं, वह मोहनी जु कोई,
प्यारी के पाँव आजु आन परी सोई॥
देखत ही वनै लाल चलि कै लखि लीजै,
"नंददास" और छवि कहाँ लौं कहीजै॥६४॥

तेरे री नव-जोवन के अँग-रँग सुभ लागत परम सुहाए।
जगमग जगमग होत मनो मृदु कनक-डंड पै ललित नग लगाए॥

तामैं तू कुँवरि कठोर उर जन की प्रीति निरखि अति मो मन भाए।
"नंददास" प्रभु प्यारी के अंतर ठौर दै बाहर निकसि जु आए ॥६५॥

सुंदर-मुख पै वारौ टौंना बैनी वारन की मृदु-कौंना।
खंजन-नैननि अंजन सोहै, भौंह सु वंक, लोचन अति लौना ;
तिरछी-चितवन यौ छबि लागै, कंज-दलन पाले अलि-छौना।
जो छबि है वृप-भानु-सुता मे, सो छबि नाँहि लखी मै सोना,
"नंददास" अविचल इहि जोरी, राधा स्याम-सलोना ॥६६॥

दंपति, पोढैई करत रस बतियाँ, दोउन नैना लाग गए ;
सेज ऊजरी, चंद तै निरमल, तापै कमल छए।
फूँकत दृग बृपभानु-नंदनी, झपत, खुलत सु नए ;
कमल मध्य अलि-सुत तव वैठे, साँझ समै मनौं सकुच गए।
आलस जानि आप सँग पौढ़ीं, पिय हिय लाइ लए ;
"नंददास" ज्यौ स्याम-तमालहि, कनक-लता उलहए ॥६७॥

राग धनाश्री

अरी, तेरी सेज की मुसिक्यान, मोहन मोहि लीनो,
जाको जस रटत सकल जग सजनी सो तेरौं आधीनों।
औरु सषा घर किऐ रहत है, आपुन पौ तजि दीनो,
"नंददास" प्रभु बाँकी-चितवन नै, टौंना सो कछु कीनों ॥६८॥

वेसर कौन की अति नीकी।
होड़ परी प्रीतम अरु प्यारी अपने अपने जी की ॥
न्याय परो ललिता के आगे कौन सरस, को फीकी।
'नंददास' प्रभु विलगि जिन मानौ कछु इक सरस लली की ॥६९॥

राग बिहाग

केलि करि प्यारी-पिय, पौंढ़े चारु-चाँदनी मे,
नेह सौं लिपट गए जोवन के जोस में ॥
अंगिया दरक गई मानों प्रात देखिवे कों,
चोंच काढ़ि चक्रवाक काम-तर रोस मैं।
आरस सो मोर वाँह दोऊ कुच गहे पिय,
रति के खिलौना मनो ढाँपि दिए ओस मे;

रूप के सरोवर में "नंददास" देखे आली,
चकई के छौना बँधे कंचन के कोस मैं ॥७०॥

ताल चपक

सरद निसा को चंद्रमा री तेरे पाँयनि बाँध्यो सोहै।
वह रितु दासी तू ठकुराइनि क्यों न स्याम मन मोहै॥
या मुख पटतर दैवे कूँ तिय या त्रिभुवन मैं को है।
"नंददास" स्वामिनि चलि री तूँ मनमोहन मग जोहै॥७१॥

राग अड़ानो ताल चौताला

तेरी भौंह की मरोर तैं ललित त्रिभंगी भए,
अंजन दै चितए तबै भये स्याम, वाम री।
तेरी मुसकनि हिये दामिनी सी कौंधि जात,
दीन ह्वै ह्वै जात राधे आधो लीने नाम री॥
ज्यों ही ज्यों नचावै बाल त्योंही त्योंही नाचै लाल
अब तौ मया करि चलि निकुंज सुखधाम री।
"नंददास" प्रभु तुम बोलौ तो बुलाइ लेहुँ
उनको तौ कलप बीतै तेरे घरी जाम री॥७२॥
राधिका तजि मान मया कर तेरे आधीन भए सुंदर।
वर मेलि कलप तन होहें कलप-तर॥
वे नागर तू नव नागरि वर, वे सुंदर तू श्री सुंदरि वर।
वे हरि हरत सकल त्रिभुवन दुख तू वृषभानसुता हरि को हर॥
ज्यों कछु तू उन सों कह्यौ चाहै उनहि जानि सखी मोसों अर।
"नंददास" तब रह्यो निरखि तन आएउ वर लाल ललिता छर॥७३॥

व्रजबालाओं का प्रेम

धरैं टेढ़ी-पाग, चंद्रिका-टेढ़ी टेढ़े लसैं तृभंगी लाल।
कुंडल-किरनि मनों कोटि रवि उदय होत उर राजत वनमाल॥
सुंदर-वदन पीतांवर सोहे, वजवत मुरली मधुर रसाल।
'नंददास' वनतैं व्रज आवत, संग लियें व्रज-वाल॥७४॥
धरैं बाँकी पाग, चंद्रिका-बाँकी, बाँके बने बिहारीलाल।
बाँकी चाल चलन बाँकी गति सों, बाँके बोलत बचन रसाल॥

बाँको तिलक, बंक भृगु रेखा, बाँकी पहिरै गुँजन (की) माल।
गोबरधन अपुने कर धरिकैं, बाँके भये श्री मदन-गुपाल॥
बाँकी-खौर, खोर साँकरी बाँकी, हम सूधी हैं गिरिधर-लाल।
'नंददास' प्रभु सूधे किन बोलौ, सब सूधीं बरसाने की ग्वालि॥७५॥
केलि-कला कमनीय किसोर, उभय रस-पुंजन कुंजन नेरैं।
हास, विनोद कियो बलि आली, कितो सुख होतु है हरि हेरैं॥
बेली के फूल प्रिया लै पिय पैं, डारे की उपमा यौं होत मन मेरैं।
'नंददास' मनो साँझ समै, बग-माल तमाल कौं जात बसेरैं॥७६॥

राग गौरी

साँझ समैं बनतैं हरि आवत, चंद मनो नट-नृत्य करन।
उडुगन मानो पुहुप-अंजुली, अंबर अरुन बरन॥
नंदी-मुख सनमुख ह्वै वामैं, देव मनावन बिघन-हरन।
'नंददास' प्रभु गोपिन के हित, बंसी धरी श्री गिरिधरन॥७७॥

राग गौड़ी

साँवरो पीतम जहाँ बसै सो कित है वोहि गाँव री।
पंख नहीं तन बिधना दई नातरु अब उड़ि जाँव री॥
अब उड़ि जाउँ डराउँ न काहू मोहन मुख देख आऊँ।
ससि तें सहस गुन सखी सीतल तप ते नैन सिराऊँ री॥
जसुमति-नंदन त्रिभुवन-बंदन दुख-फंदन मनभाँवरो।
काहे री वे गाँव ठाँव तेरो जहाँ बसे पीय साँवरो॥
सुधि आवे बनते आवन की नासा झलके मोती।
लटकनि मंजुल मुकुट लटक की कुंडल जगमग जोती॥
नासा मोती जगमग जोती लोचन बंक बँकारो।
कच घुँघरारे मनु मतवारे अंबुज पर अलिआरे॥
त्रुटो परे है या मेरी मैया जीवरो बहु दुख पावै।
'नंददास' प्रभु की या आवनि छबि देखत ही बनी आवे॥७८॥

देखन दै मेरी बैरन पलकैं।
नँदनंदन मुख ते आलि बीच परत मानो बज्र की सलकैं॥
बन तैं आवत वेनु बजावत गो-रज मंडित राजत अलकैं।
कानन कुंडल चलत अँगुरि दल ललित कपोलन मैं कछु झलकैं॥

ऐसो मुख निरखन कों आली कौन रची विच पूत कमल कें।
'नंददास' सब जड़न की इहि गति मीन मरत भाये नहिं जल कें ॥७९॥

राग अड़ानो

जल कौं गई सुधि बिसराई, नेह भर लाई,
परी है चटपटी दरस की।
इत मोहन गाँस, उत गुरु-जन त्रास,
चित्र सो लिखी ठाढ़ी नाउँ धरत सखि अरस की॥
टूटे हार, फाटे चीर, नैननि बहत नीर,
पनघट भई भीर, सुधि न कलस की।
'नंददास' प्रभु सो ऐसी प्रीति गाढ़ी बाढ़ी,
फैल परी चरचा चायन सरस की ॥८०॥

जर जाओ री लाज, मेरो ऐसौ कौन काज,
आवत कमल-नैन नीकें देखन न दीने।
बन ते जु आवत मारग मे भई भेंट,
सकुच रही री हौं इन लोगन के लीने॥
कोटि जतन करि हारी मोहन निहारिबेको,
अचरा की ओट दै-दै कोट स्रम कीने।
'नंददास' प्रभु प्यारी वा दिन तें मेरे नैन,
उनही के अंग संग, रँग रस भीने ॥८१॥

नंद-महरि घर, मिलि ही मिस आवत, गोकुल की नारि;
कल न परत, कमल-मुख देखैं, भूल्यों काम, धाम आछो बदन निहारि।
दीपक जोर लै चली बाट मैं, छबि सों बड़ों करि देति गारि;
'नंददास' लगे नैनि लाल सों, पलक-ओट भएँ बितत जुग-चारि ॥८२॥

गोकुल की पनिहारी, पनिया भरन चाली,
बड़े-बड़े नैन तामें खुभि रह्यो कजरा।
पहिरैं कसूमी-सारी, अँग-अँग छबि भारी,
गोरी-गोरी बाँहन मे मोतिन के गजरा॥
सखी संग लियैं जात, हँसि हँसि करत बात,
तन हूँ की सुधि भूली सीस धरैं गगरा;

'नंददास' बलिहारी, बीच मिले गिरिधारी,
नैननि की सैननि में भूलि गई डगरा ॥८३॥

आवत ही जमुना भरि पानी।
स्याम रूप काहू को ढोटा, बाँकी-चितवन मेरी गैल भुलानी॥
मोहन कह्यो तुमको या ब्रज में, नहि जानी पहिचानी।
ठगि सी रही, चेटक सो लाग्यो, तब तैं ब्याकुल फुरत न बानी॥
जादिन तै चितयो री मो तन, तादिन तैं उन हाथ बिकानी।
'नंददास' प्रभु यौ मन मिलि गयो, ज्यो सारँग में पानी ॥८४॥

राग बिलावल

आजु अरुन अरुन डोरे, दृगन लाल के लागत हैं जु भले;
बंदी परे पगन अलि मानों, कंज-दलनि पर चले।
कुटिल अलक समात नहिं पगिया, आलस सो झल-मले;
'नददास' पुहुपन मधि मॉनों, मधुप पुंज सोवत कलमले ॥८५॥

तुम रँगभीने सुनतही गई मेरे पाय की नही।
सुनि हौ कुँवर और काहि लगाऊँ आधी रैन गई, इहाँ हम तुम ही॥
सुनि कै ब्रज उपहास चलैगो गुरुजन-डर धरकत उर नित ही।
'नंददास' प्रभु ऐसी सही न परैगी जिय जो सहैगी तौ परबस ही ॥८६॥

आजु मेरे आए माई नागर नन्दकिसोर।
चंदा रे तू थिर ह्वै रहियो, हौन न पावै भोर॥
दादुर मोर, पपैया बोलौ, बोलौ औरु चकोर;
'नंददास' प्रभु जिन वे बोलौ, निरवारौं तम-चोर ॥८७॥

राग गौरी

बन तै आवत, गावत गौरी।
हाथ लकुटिया, गायन पाछै, ढोटा जसुमति कौ री।
मुरली धरै अधर नँदनंदन, मानौं लगी ठगौरी,
याही नैं कुल-कानि हरी है, ओढ़ै पीत पिछौरी।
चढ़ि चढ़ि अटनि लखति ब्रजबाला, रूप निरखि भई बौरी।
'नंददास' जिन हरिमुख निरख्यौ तिनको भाग बड़ौरी ॥८८॥

वनहुँ से आवत गावत गौरी।
आगे आगे धेनु पीछे नँदनंदन, लाला जसुमति को री॥
अटा चढ़ी ब्रजवधू निहारें निरखि परम पद पावी री।
आवत देखे श्याम मनोहर पुष्पमाल लै दौरी॥
अधरन मुरली धरे मनमोहन, सब ब्रजनारि ठगो री।
आज की शोभा मोसे वरनि न जाई, ओढ़ा पीत पिछौरी॥
मोर मुकुट पीतांवर सोहै, भाल तिलक सिर खोरी॥
'नंददास' प्रभु की छबि निरखे, भाग बड़ो तिनको री॥८६॥

राग गौड़ी

मिसही मिस हो आवे गोकुल की नार।
नंद महर के आँगन मोहन मुरति बिना देखहुँ न परे
कल भुलि काम धाम आछो वदन निहार॥
दीपक ले चलि वार वाट में वरो कर डार
फेरि आवे नंद द्वार बायेरे कूँ देति गार।
'नंददास' नंदनँदन सुँ हो लागे नयनाँ
पलक की ओट मानु री विते जुग चार॥६०॥

खंडिता ब्रजबाला

राग पंचम

जागे हौ रैन सव तुम, नैना अरुन हमारे।
तुम कियौ मधुपान, घूमत हमारौ मन, काहे तैं जु नंददुलारे॥
उर नख-चिन्ह तिहारै, पीर हमारैं सो कारन कहु कौन पियारे;
'नंददास' प्रभु न्याय स्यामघन,
वरसत अनत जाय हम पै झूम झूमारै॥६१॥

राग विलावल

आलस उनींदे नयन लाल तिहारे कहाँ तुम रैन विताए।
पीक कपोल देखियत अति है प्रिय अधरनि अंजन-रेख लखाए॥
जावक भाल, माल उर विन गुन हृदि नख-चिन्ह दिखाए।
'नंददास' प्रभु बोल निबाहे भोर होत उठि धाए॥६२॥

आजु मेरे धाम आए री नागर नंद किसोर ।
धन्य दिवस धन घरी री सजनी, धन्य भाग सखि मोर ॥
मंगल गावौ चौक पुरावो बंदनवार सजावौ पौर ।
'नंददास' प्रभु कहुँ रस वस करि भागन आवत कबहूँ भोर ॥९३॥

राग देवगंधार

उपरना वाही कैं जु रह्यो ।
जाही के उर बसे स्याम-वन, निसि को जँह सुख गह्यो ॥
छबि-तरंग अमित अँग अँग मे, दृगन भेद नहिं जात कह्यो ।
'नंददास' प्रभु चले सैन दै, जब दाँव न दौर रह्यो ॥९४॥

पीताम्बर काजर कहाँ लग्यो हो लाला, कौन के पोंछे नैन ।
कौन के घर नेह-रस पागे, वे गोरी कछु और ।
देहु वताय कान राखति हौं ऐसे भये चित-चोर ॥ ध्रुव ॥
अंजन अधर, ललाट महावर, राजत पीक कपोल ।
घूम रहे रजनी जागे से, दुरत न काम-कलोल ॥
नख निसान राजत छतियन पै, निरखौ नैन निहार ।
झूम रहीं अलकैं अलबेली, पाग के पेंच सँवार ॥
हम डरपैं जसुदा के त्रासन, नागर नंद किसोर ।
पायँ परौ फगुआ नव दैहौं मुरली देहु अँकोर ॥
धन्न धन्न गोकुल की गोपी, जिन हरि लए हराय ।
'नंददास' प्रभु किये कनौडे, छाँड़े नाच नचाय ॥९५॥

ढीले ढीले पग धरत, ढीली पाग ढरकि रही,
ढीले से ढए से फिरत ऐसे कौन पै ढहे हौ ।
गाढ़े जु पिय हिय के, पाइ ऐसी गाढ़ी कौंन तिया,
गाढ़े-गाढ़े भुजन वीच गाढ़े करि गहे हौ ॥

लाल-लाल लोचन उनींदे लागि-लागि जात,
साँची कहौ प्रान-पति कौंने लाल लहे हौ ।
'नंददास' प्रभु प्यारे निसि के उनींदे आए भयैं प्रात,
कहौं वलि वात रात कहाँ रहे हौ ॥९६॥

राग ललित

भले भोर आए, नैना लाल ।
अपुनो पट पीत छाँड़ि, नीलांबर लै बिलसे
उर लाइ नई रसिक, रसीली बाल ॥
रति जय-पत्र सु लिख दीनो उर,
सोभित स्याम-घन बिनु गुन माल ।
'नंददास' प्रभु साँची कहियै,
फिर-फिर प्यारे हमारे नँदलाल ॥९७॥

तुम कौन के बस ह्वै खेले रँगीले हो, हो हो होरियाँ ।
अंजन अधरनु पीक महावर नैननि रँग रँगे रँग रोरियाँ ॥
बार-बार जँभात परसपर, निकसि रहीं सब चोरियाँ ।
'नंददास' प्रभु जहाइं बसौ किन, जहाँ बसैं वे गोरियाँ ॥९८॥

ध्रुव-पद

अनत रति मान आए हो जू मेरे गृह,
अरसीले-नैन, बैन तोतरात ।
अंजन अधर धरैं, पीक-लीक सोहै आली,
काहे को लजात झूँठी-सौंह खात ॥
पेंचहू सँवारत, पै पेंचहु न आवत,
एते पै तिरछी-भौंह करि चितै गात ।
'नंददास' प्रभु जो हिय में बसत प्यारी,
ताही तैं भूलि नाम वाही को निकसि जात ॥९९॥

राग ईमन

भल जू भलैं आए, मो-मन भाए,
प्यारे ! रति के चिन्ह दुराए ।
सरबस दै आए, अंजन-लीक लाए,
अधरन रंग लाए कहाँ जाइ ठगाए ॥
हौं हीं जानत, और नाहिं पहिचानत,
घर छोरि बतियाँ बनाइ तुम लाए ।
'नंददास' प्रभु तुम बहु-नाइक,
हम गँवारि, तुम चतुर कहाए ॥१००॥

राग टोडी

लाल संग रति मानी, हम जानी, कहैं देति नैना रँग भोए।
चंचल-अंचल मैन समात, इतरात,
रूप-उदधि मॉनों मीन, महावर धोए ॥
पलक पीक जग-मगात, दृग-मानिक
मनों जराइ लीने प्रेम-डोर पोए।
'नंददास' प्रभु पिय-मुख सुख के लोभ,
लालची हो जानत निसा न नैंकु सोए ॥१०१॥

आगतपतिका

राग ईमन

मेरे री वगर आवत, छवि सौं कमल फिरावत।
औरन सौं वतरावत, मो तन चितवत,
चतुर परौसिन देखि-देखि मुसिक्यावत ॥
नैननि मनुहारि करत, बैनन समझावत,
निपट-स्नेह जनावत, भौंह चढ़ावत।
'नंददास' प्रभु अति लोक-लाज इत
कहु कैसै कै धीरज आवत ॥१०२॥

अभिसार

रंग-महल रंग-राग, तहँ बैठे दूलह-लाल,
तू चलि चतुर रँगीली राधे !
अति बिचित्र कियो साज, तो सों रँग रहैगो आज,
दादुर, मोर, पपैया बोलत फूले फूल द्रुम वाग ॥
नव सत अंग साजि, पहिरि कसूँभी-सारी,
तापर रीझे लाल दये बीच सोंधे दाग।
दूती के वचन सुनि उठि चली पिय पै वह
छवि निरखि गावै 'नंददास' वड़ भाग ॥१०३॥

प्रौढा अधीरा

बन-ठन कहाँ चले ऐसी को मन-भाई साँवरे कुँवर कन्हाई ।
मुख सोहे जैसैं द्वैज को चंदा, छिप-छिप देति दिखाई ।।
भलै ही जाउ, नैकु ठाड़े रहौ, किन ऐसी सीख सिखाई ।
'नंददास' प्रभु अब न बनैगी, निकसि जाइ ठकुराई ।।१०४।।

प्रेम गर्विता

राग बिहाग

चॉपत चरन मोहन-लाल ।
पलिका पौढ़ी कुँवरि राधिका, सुंदरि, नवल बिलास ।।
कबहूँ कर गहि नैन सिरावत, कबहुँ छुवावत भाल ।
'नंददास' प्रभु छबि निरखति अति प्रीति दियैं प्रतिपाल ।।१०५।।

विरहिणी

राग मालकोस

जानन लागे री, लालन मिलि, बिछुरन की वेदन ।
दृग भरि आए री, मैं कहीरी कछुक तेरी प्रीति की रीति,
आना-कानी मे भई घुमराई में गए दिन ।।
नेह-कनौड़े की रूप-माधुरी, अँग-अँग
लागी री सरस हियैं वेदन ।
'नंददास' प्रभु रसिक-मुकुट-मनि, कर पै कपोल धरैं,
ररकत ढरकत री तिलक मृग भेदन ।।१०६।।

चोरी लीला

काहे आइ न देखियैं रानी जू, अपने सुत के करम ।
भाजन, भवन एकु नहिं राख्यौ, कह्यौ तौ
आगें हँसि परे हैं ऐसैं जानै का कोऊ मरम ।
दिन-दिन की हानि, दूजें राखत न नैकौ कानि,

कहो जू बसिवे को कौन सो धरम ;
'नंददास' प्रभु मैया के आगै साधू से बैठे
नहिं जानत चोरी कों का मरम ॥१०७॥

छाक लीला

राग सारंग

डला भरि हो लाल ! कैसैं कै उठाऊँ,
पठवो ग्वाल छाक लै आवै ।
गिन देखो गाँठि ना जानों कौन-कौन मेवा बँधी,
बसन सुरंग हा-हा करि पाँयन परि पठावै ॥

आपु ब्रज-रानी न बिचारै मेरे डला पै धरै,
कनक-थार ओदन भर्यो औ वेला न समावै ।
'नंददास' प्रेमी स्याम परसि पद-पंकज कही,
कालिह तैं जु काँमरि भरि किंकिर बुलावै ॥१०८॥

सब ब्रज-गोपी रहीं तक-ताक ।
कर कर गाँठ लसत सब दिन के, बन को चलत जब छाक ॥
मधु, मेवा, पकवान, मिठाई, घर घर तें लै निकसी थाक ।
'नंददास' प्रभु को अति भावत, प्रेम प्रीति के पोखे पाक । १०९॥

चहुँ दिसि टपकन लागीं बूँदैं ।
ब्यौछारन बिजन भीजैगो, द्वार पिछोरी मूँदै ।
भोजन करत सीस धरि छतना याही सुख हित मूँदै ;
ह्वै सुचेत तब 'नंददास' प्रभु कौन कीच अब खूँदै ॥११०॥

मोहन जीमत छाक, ग्वाल-मंडली माँहि ।
झूम झूम रही देखि राधिका, सब कदंब की छाँहि ॥
बिंजन देति निहोरे करि-करि, कोऊ लेत सु कोऊ नाँहि ।
'नंददास' आस जूठन की, फूले अँग न समाँहि ॥१११॥

भोजन भए लाल, नीकी विधि सघन-कुंज के छाँहि ।
गरजि गरजि घन बरस्यो प्रबल अति कछु हम जानी नाँहि ॥

करि अचँवन देखो ब्रज सोभा, कदम-खंड वन माँहि।
'नंददास' प्रभु तुम चिरजीवो हम नित जूठन खाँहि ॥११२॥

दधि दानलीला

राग बिलावल

ऐसो को है जो छुवै मेरी मटुकी, अछूती दहैड़ी जमी;
बिन माँगै दियो न जाइ, माँगे तैं गारी खाइ,
केतिक करौं उपाइ मेरे धौं गोरस की कहा है कमी।
औरन को दह्यो छिल-छिलो लागत,
मैंने तो औटाइ जमायो रुचि-रुचि भरि कै तमी;
'नंददास' प्रभु बड़ोई खवैया नंद को छैया,
मेरी ही गोरस में बहुत ही अमी ॥११३॥

राग टोड़ी

कहो जू! दान लैहौ कैसैं हम तौ देव-गोवरधन पूजन आई;
कोऊ दह्यो, कोऊ मह्यो, कोऊ माखन जोरि-जोरि
भली बिधि सो आछो अछूतो लाई।
तुम्हैं पहिले कैसे दीजै कान्हर जू?
तुम तो सबै करत अपनी मन-भाई;
'नंददास' प्रभु तुमही परमेसुर भए अब,
भली कछु नई चाल चलाई ॥११४॥

अहो तो सौं नंद-लाडिले झगरौंगी।
मेरे सँग की दूरि जाति हैं मटुकी पटकि कै डगरौंगी॥
भोरहि ठाड़ी कित करी मोकौं, तुम जानौ कछु काज न करौंगी।
सँग के सकल सखान के देखत, अबहीं लाड़ उतारि धरौंगी॥
सूधे दान लेहु किन मोपै और कहा कछु पाइँ परौंगी।
"नंददास" प्रभु कछु न रहैगी, जब बातन उघरौंगी ॥११५॥

गोवर्द्धन लीला

राग अड़ानो

राजैं गिरिराज आज, गाय गोप जाके तर,

नैंकुसी बानकि बने धरैं भेख नटवर।
लयो उठाय ब्रजराज-कुँवर वर कर पै.
अरग-थरग राख्यो मुरली की कूँक पर ॥
वरखै प्रलय को पानी, न जात काहू पै बखानी,
ब्रज हू तें भारी टूटत है तर तर।
ता पर के खग, मृग, चातक, चकोर, मोर,
बूँद न काहू परी भयो है कौतुक भर ॥
प्रभुजी की प्रभुताई, इन्द्र हू की जड़ताई,
मुनि हँसैं हेरि हेरि हरि हँसै हर हर।
'नंददास' प्रभु गिरिधर की हाँसी, खेल,
इन्द्र को गरव गयो भयो हैं दूरि घर ॥११६॥

अब नैकु हमहि देहु कान्ह, गिरिवर।
तुम्हें लयैं बड़ि-बार भई है, दूखि उठे ह्वैहैं कोमल कर ॥
मति डिग परै दबै सब ब्रज-जन भयो है हाथ पै अति-भर।
तब कैसैं इहि बदन देखिहैं तातैं जिय मे घड़ो यही डर ॥
जानि सखनि को हेत सु मोहन दयो नवाय नैकु अपनो कर।
'नंददास' प्रभु भुजा लटकि गई तबै हँसे नागर नगधर वर ॥११७॥

राग नट

कान्ह कुँवर के कर पल्लव पैं मनो गोवरधन नृत्य करै।
ज्यों ज्यो तान उठति मुरली की, त्यों त्यों लालन अधर धरै ॥
मेघ मृदंगी मृदंग बजावत दामिनि दमकि मनौ दीप जरै।
ग्वाल ताल दै नीकै गावत गायने के संग सुर जो भरै ॥
देति असीस सकल गोपी जन वरखा को जल अमित झरै।
अति अद्भुत अवसरि गिरिधर कौ 'नंददास' के दुःख हरै ॥११८॥

रास लीला

राग केदारा

देखो री नागर नट निरतत कलिंदी-तट,
गोपिन के मध्य राजै मुख की लटक।
काछनी किंकनी कटि पीतांबर की चटक (मटक)

कुंडल-किरन रवि-रथ की अटक ॥
तत थेई तत थेई सबद सकल घट
उरप तिरप मानो पद की पटक।
रास मध्य राधे राधे मुरली में येई रट
'नंददास' गावै तहाँ निपट निकट ॥११६॥

राग विहाग, इकताला

खेलत रास रसिक रस नागर।
मंडित नव नागरी निकर वर परम रूप को आगर ॥
विकच वदन वनिता बृँद अतिसै अमल सरद सी राजत।
राका सुभग सरोवर मै जस फूले कमल बिराजत ॥
नवकिसोर सुंदर साँवर अँग वलित ललित ब्रज बाला।
मानो कंचन खचित नील मनि मंजुल पहिरी माला ॥
या छवि की उपमा कहिवे को ऐसो कौन पढ्यौ है।
'नंददास' प्रभु को कौतुक लखि कामहि काम बढ्यो है ॥१२०॥

साँवरे प्रीतम संग राजत रंगभीनी भामिनी।
निरतत चंचल गति द्रुति न कही परति
लहलहनि सीखी जहाँ दामिनी ॥
जुवति-मंडल मधि रूप गुन की अवधि
वातैं पावै सब सिद्धि संगीत की स्वामिनी।
राग रागिनी तत थेई कल वानी
कछुक सीखी कोकिला की कामिनी ॥
उरप तिरप मान अति ही अद्भुत गान
मोहे नग पग मृग उच्च चंदा जामिनी।
'नंददास' रीझि जहाँ अपनपो वार्यो तहाँ
रवनि मनिर माँ अभिरामिनी ॥१२१॥

राग-जैजैवंती

वृंदावन, बंसीवट, जमुना-तट बंसी रट[1],
रास में रसिक प्यारो खेल रच्यो वन में।

---

१. पाठा—कुंजन में जमुना तट।

राधा-माधो कर जोरैं, रवि-ससि होत भोरैं,
मंडल में निरतत दोऊ सरस सघन में ॥
मधुर मृदंग बाजै, मुरली की धुनि गाजै,
सुधि न रही री कछु सुर, मुनि, जन में ।
'नंददास' प्रभु प्यारो रूप-उजियारो अति,
कृष्ण-क्रीड़ा देखि भये थकित जन मन में ॥१२२॥

राग केदारो

रीझी हो प्यारे-हरि को रास देखि
याही तैं अधिक वढ़ गई रैन ।
चलि न सकति हरि-रूप त्रिमोही,
रहि इक-टक आछै नखत-नैन ॥
छवि सों छूटति बिच-बिच तारे,
हीरन के अभूपन पै वारो जग-ऐन ।
चंदा हू थकित भयो देखि कैं
ललचि रह्यो पाइ परम चैन ॥
इच्छा भई जब लौं नाचे गोपी-गुपाल,
अद्‌भुत-गति मोपे कही न परति वैन ।
'नंददास' प्रभु को बिलास रास
देखति ही मनमथ हू को मन-मथ्यो री मैन ॥१२३॥

राग भैरो

निरतत गिरिधरन संग रंग भरी नागरी ।
वृंदावन रम्य जहाँ बिहरत पिय प्यारी तहाँ
मंडल रचि रास रसिक जुवती वन बाग री ।
बाजत अनहद मृदंग ताल त्रिना गति सुगंध
अग अंग लग्यो निरखि जग्यो रंग राग री ॥
तत्थेई शब्द करत सकल नृत्य भेद सहित
सुलफ सची उरप तिरप लेत नागरी ॥
वहा जोड़ी करी कुँवारी नवल पिय सों नवल प्यारी
दामिनी सी दरसे रूप गुन आगरी ।

प्रेम पुंज गोकुलनारी ससि सो सुभग चारी
बिहरत विपिन विलास बड़े जू भाग री ॥
खग मृग पसु पंछी निरख मोहन भए चर अचर
थिथकि रह्यो चंद्र नलिन सकल भाग री।
मास षट विहार तेतने निमिख हू न जाने रस
'नंददास' प्रभु संग रैन रंग जागरी ॥१२४॥

राग ईमन

आली मंद मंद मुरली धुनि वाजत निरतत कुँअर कन्हैया।
जैसोइ सरद चाँदनी निर्मल तैसोई वनी है दुलहिया ॥
चंदन खौर वनमाल हिये मानो कंचन बेलि उलहिया।
'नंददास' प्रभु की छवि निरखत दुहुँ की लेत वलैया ॥१२५॥

रास में रसिक दोऊ आनँद भरि नाचत,
गताद्रिम द्रि ता ततथेइ ततथेइ गति बोले।
अंग अंग विचित्र किये लाल काछनी कटि सुदेस
कुंडल झलक कपोल सीस मुकुट डोले ॥

जुवति-जूथ नृत्य करत स्याम ग्रीव भुजा धरे
स्यामहि मीत रसना सम तोले।
'नंददास' पिय प्यारी की छवि पर त्रिभुवन की
सोभा वारौं विनु मोले ॥१२६॥

मान लीला

ए तुम, पहिलें तो देखो आइ, मानिनी की सोभा लाल,
पाछैं त मनाइ लीजो प्यारे हो गोविंदा।
कर प धरि कपोल रही री प्रिय नैन मूँदि,
कमल विछाइ मानों सोयो सुख चंदा ॥

रिस भरी भौंह तापै भँवर बैठे अरवरात
इंदु तर आयो मकरंद-हित अरविंदा।
'नंददास' प्रभु ऐसी काहे कों रूसए बलि
जाके व देखें त मिटत दुख दंदा ॥१२७॥

सारंग-नैनी री काहे कियो एतो मान ।
गोरी गहरु छाँड़ि मिल लालहि, मन क्रम, वचन होत कल्यान ।।

जिन हठ करि री नट नागर सौं, भैरौं ही है देव-गान ।
मुरली-तान कान्हरो गावत, मुनलै री दै कान ।।
रंग-रँगीली सुघर-नाइका तू जिन जिय अरथान ।
'नंददास' केदारो करिकै यो ही विहाइ गयो मान ।।१२८।।

दौरी-दौरी आवत, मोहि मनावत,
दाम खरचि मनो मोल लई री ।
अँचरा पसारि कैं मोहि खिजावत,
तेरे बाबा की का हौं चेरी भई री ।।
जा री जा सखि भवन आपुने,
लाख वात की एकु कई री ।
'नंददास' प्रभु क्यौं नहि आवत,
उन पाँयन कछु मेहदी दई री ।।१२९।।

राग नायकी

प्यारे, पैयाँ परन न दीनी ।
जोइ जोइ बिथा हुती मेरे मन, एकु छिनक में दूरि जु कीनी ।।
जो सौतिन मौ सौ अनख करत ही, देखत आनँद-भीनी ।
'नंददास' प्रभु चतुर-सिरोमनि, प्रीति-छाप[1] कर लीनी ।।१३०।।

राग विहागडो

तेरोई मान न घट्यो आली री घटि जु गई रजनी ।
वोलन लागे ठौर ठौर तमचूर
तुहि नहिं वोली री पिक-वैनी ।।
कमल-कली विकसी तुहि न तनक हँसी
कौन टेव करी मृग-सावक-नैनी ।
'नंददास' प्रभु को नेह देखि हाँसी आवै
वे वैठे री रचि रचि सैनी ।।१३१।।

---

१. पाठा०—छाय ।

राग विहागड़ो

आपुन चलिये जु लालन कीजियै ना लाज।
मोसी सखि तुम कोटिक पठवौ प्यारि न मानै आज॥
हूँ तौ तिहारी अग्याकारिनि साँची बात मोसौं कहा कहौ महराज।
'नंददास' प्रभु बड़ेइ कहि गए हैं आप काज महा काज॥१३२॥

राग केदार

तू नहिं मानन देति आली री, मन तेरों मानवे कों करत।
पिय की आरति देखि मेरे जिय दया होत
पै तेरी दीठ देखि-देखि डरत॥
मोसों कहत कहा, मेरो न दोष कछू,
निपट हठीली धाइ क्यो न अंक भरत।
'नंददास' प्रभु दूती के वचन सुनि,
ऐसैं अँग ढरे जैसैं आगि लगैं राग ढरत॥१३३॥

राग विहाग

लाड़ली न मॉने लाल, आपु पग धारो।
जैसै हठ तजै प्यारी, सोई जतन अब विचारो॥
वातैं तो वनाइ कहीं, जेती मति मेरी।
एक हू न मॉने लाल, ऐसी है अनेरी॥
आपुनो चोप काज, सखी-भेप कीनो।
भूपन, वसन साज, वीना कर लीनो॥
उत तैं आवत जु देखि, चकित ह्वै निहारी।
कौन गॉव वसत हो, रूप की उज्यारी॥
गाम तो है नंद-गाम तहॉ की हौं प्यारी;
नाम है स्याम-सखी, तेरी हितकारी।
कर सौं कर जोरि बाम, निकट ही बिठाई;
सात-सुरन साज वैनु, सुलफ ही बजाई।
रीझि मोती हारु, चारु उर तै पहिरावै;
ऐसैं ही हमारो भट्टू, सॉवरो बजावै।
जोई-जोई इच्छा होइ, सोई मॉग लीजे;
मॉगत हौं बीर, कबहुँ नाहिं मान कीजे।

मुख सौं मुख जोरि स्याम दरपन दिखरावै ;
निरखि छबीली छबि, प्रतिबिम्बहि लजावै।
छल तो सब उघरि गयो, हँसि जु पीठ दीनी ;
'नंददास' बलि-बलि पिय अंक तुरत लीनीं ॥१३४॥

काहे कौं प्यारे, तुम, सखी-भेप कीनो ;
भूषन बसन साजि, वीना कर लीनो।
मोतिन तें माँग गुही, कैसैं तुम प्यारे ;
नहिं हौ पहिचान सकी, कौन के दुलारे ?
रूसिबे कौ नैम नित, प्यारी तुम लीनो ;
ताही के कारन हम सखी-भेष कीनों।
देखति सब दुरि-दुरि कुंजन की गलियाँ,
'नंददास' प्रभु-प्यारे माँडि लई रलियाँ ॥१३५॥

रैनि तो घटत जात, सुन री सयानी वात,
मेरो कह्यौं नैंकु तोहि नाहिंन सुहात री।
सुख की सुहाग-भरी ऐसी का टेव परी,
घटत न मान औ दया हू न आत री॥
जाके नित दरस कों सब जग तरसत रहै,
सोई बिनु देखै तेरै नैकु न रह्यो जात री।
'नंददास' नंदलाल बैठे अतिसै बिहाल,
मुरली की धुनि सुनि तेरो नाम गात री ॥१३६॥

आजु छबि देखि आय मानिनी की सोभा धाय,
चाँदनी में पौढ़ी ताते रह्यो है चंद लजाय।
मंजुल पुहुपमाल नील अभरन नभ
नासिका के मोती देखैं उडुगन सकुचाय॥
आये हैं निकट स्याम रीझि रहे ललचाय
तेती वार तेती बार मुख की लेत बलाय।
'नंददास' प्रभु अधरनि वीरी लाई जब
रसिक विहारी प्यारी चौंकि परी मुसिकाय ॥१३७॥

आइ क्यों न देखौ लाल! अपनी प्यारी की छबि,
चाँदनी में पौढ़ी याते चन्दहु रह्यो लजाई।

मंडल पुहुप माल नीलाम्बर अति ही सुहाइ,
नासिका कौ मौती देखि उड़गन सकुचाइ ॥
आए तब निकट लाल रीझि रहे ललचाइ,
वार-बार देखि-देखि लेत मुख की वलाइ।
'नंददास' प्रभु पिय अधरन सौं अधर लाइ,
रसिक बिहारी प्यारी चौंक परी मुसिक्याइ ॥१३८॥

राग अड़ानो

पहिले तौ देखौ आइ मानिनी की सोभा लाल,
ता पाछै लीजिए मनाइ, प्यारे हो गोविन्द।
कर पै दिये कपोल रही है नयन मूँदि,
कमल बिछाय मानो सोयौ अहै पूरन चंद ॥
रिस-भरी भौंहैं मानों भौंर बैठे अरबरात,
इन्दु तरे आयौ मकरन्द भख्यो अरविंद।
'नंददास' प्रभु ऐसो प्यारी कौ रुसैए वलि,
जाके मुख देखे तैं मिटत सबै दुख द्वंद ॥१३९॥

राग केदारो

तेरे ही मनायवे ते नीकौ री लगत मान
तौं लौ रहि प्यारी जौं लौ लालही लै आऊँ।
औरनु को हँसौहौ मुख तेरी तौ रुखाई आली
सोरह कला कौ पूरौ चंद वलि जाऊँ ॥
चलि न सकत उत, पग न परत इत तैं
ऐसी सोभा छाँड़ि फिरि पाऊँ धौं न पाऊँ।
'नंददास' प्रभु दोऊ विधि ही कठिन परी
देखिवौ करौं, किधौं लाल ही दिखाऊँ ॥१४०॥

तेहवार

राग कान्हरा

अक्षय-तृतीया, अक्षय सुखनिधि, पिय कौं प्यारी चढ़ावै चंदन।
तब ही पिया सिंगारी नारी, घोरि अरगजा सुघर-नँद-नंदन ॥

लै दरपन निरखैं जु परसपर, रीझि रीझि रहे श्री जग-बंदन ।
'नंददास' प्रभु पिय रस भींजै
जुवतिन सुखद ,विरह-दुख-कंदन ॥१४१॥

राग सारंग

राखी बाँधत गरग स्याम-कर ।
हीरा रतनन बिच-बिच मानिक पुनि-पुनि मुक्तन भर ॥
दच्छिना देत नंद पग लागत आसिस देत गरग सब द्विज-बर ।
'नंददास' प्रभु जियो तहाँ लौं ज्यौं लौं चंद सूरज मारुत धर ॥१४२॥

राखी नंदलाल-कर सोहै ।
पँच-रँग पाट के फुँदना राजत देखत मन्मथ मोहै ॥
आभूषन हीरा के पहिरैं लाल-पाट ते पोहे ।
'नंददास' बारत तन, मन, धन गिरिधर-मुख पै जोहे ॥१४३॥

राग बिलावल

बलि, बामन हो जग-पावन-करन ।
कहि न परत सोभा नील मनिन सी गगन गयो जब सुंदर चरन ॥
बन्यो है भेद अति उत तै गंगा धाइ, धसी है धरनि उज्जल बरन ।
इन पद-जोति मनो कालिंदी-धार चढ़ी अमर-पुर पाप-हरन ॥
रहे हैं चकृति चखि सुर-नर मुनि-बर,
दुहुँ दिसि नेह आन किये बरन ।
'नंददास' जाके चरित दुरति नहिं रंचक
सुनत मिटै जनम मरन ॥१४४॥

राग कान्हरो

दीप-दान दै हटरी बैठे नंद बाबा के साथ ।
नाना बिधि के मेवा आये, बाँटत अपुने हाथ ॥
सोभित सब सिंगार विराजत, अरु चंदन दिये माथ ।
'नंददास' प्रभु सिगरन आगे गिरि गोवरधन नाथ ॥१४५॥

वर्षा

राग मल्हार

जहँ तहँ बोलत मोर सुहाए ।

सावन रमन भवन बृंदावन, घुमड़ि-घुमड़ि-घन धाए॥
नैंन्हीं-नैंन्हीं-बूँदन बरखन लागे ब्रज-मंडल पै छाए।
'नंददास' प्रभु सखा संग लियै मुरली कुंज बजाए॥१४६॥

लाल सिर पाग लहरिया सोहै।
तापर सुभग-चंद्रिका राजत, निरखि सखी-मन मोहैं॥
तैसोई चीर-लहरिया पहिरैं सोभित राधा-प्यारी।
तैसेई घन उमड़े चहुँ-दिसि तैं, 'नंददास' बलिहारी॥१४७॥

नयो नेह, नयो मेह, नई भूमि-हरियारी,
नवल दूलह प्यारो, नवल दुल्हैया।
नवल चातक, मोर, कोकिला करत रोर,
नवल जुगल भौर, नवल उल्हैया॥
नवल कसूँभी सारी पहिरै ओढ़िनी के
अँग सँग प्यारी सरस सुल्हैया।
'नंददास' बलिहारी छबि पै वारी
नवल पाग बनी नवल कुल्हैया॥१४८॥

आगम गहरि, गहरि गरजन सुनि, चौंकत औचक बाल सलौनी,
प्यारी अंक दुरि रही ऐसैं, जैसे केहरि-क्रंदन सुनि मृग-छौनी।
धरत न धीर, करत हिय थर-थर सोचत मन में है मुख मौनी,
'नंददास' प्रभु बेगि चलो किन, भई कहा औ आगैं हौंनी॥१४९॥

आयो आगम नरेस देस देसन में आनँद भयौ
अति मनमथ सहाय को बुलायो।
मोहन के रोर सुनि, कोकिल कुलाहल करि
तैसोई दादुर हिलमिल सुर गायो।
चढ्यो घन-मत्त-हाथी, पवन-महावत साथी,
चपला को अंकुस दै बंकुस चलायो।
बसन धुजा-पताका अति फरफरात गरजि-गरजि
धौं धौं दमामो री बजायो॥
आगैं आगैं धाय धाय बादर बरखत जाय,
ब्यारन तैं जलकन ठौर ठौर छिरकायौ॥

हरी हरी भूमि पै सु बूँदन की सोभा वढ़ी,
वरन वरन रंग बिछौना सो बिछायौ।
बाँधे हैं विरही-चोर, कीने हैं जतन रोर,
संजोगी साधन मिसि अति सचु पायौ॥
'नंददास' प्रभु नँदनंदन को आज्ञाकारी
औ सुखकारी व्रजवासिन मन भायों॥१५०॥

निकसि ठाड़ी भईरी चढ़ि नवल धवल
महल रँगीली अलिन माँझ;
तैसीय अमन, तैसीय बूँदन, तैसीय कसूँभी
सारी, तैसीय फूली है साँझ।
कोऊ प्रवीन लै बीन वजावत, कोऊ सुर झीने
सों झनकावत हैं झाँझ;
'नंददास' लटकत पिय-प्यारी, छवि रची विरंचि
मनो निपुनता भई वाँझ॥१५१॥

अली झूल को हिंडोलो वनो फूल रही जमुना।
फूलन को खंभा दोऊ फूलन के डाँडी चारु
फूलन की चौकी वनी हीरा जगमगना॥
फूली सखी चहुँ ओरे, फूल रहे गगना
'नंददास' ठाकुर फूले फूल भयो अँगना॥१५२॥

आई है वड्डी झूलै झलके चंदा मोर के।
खसत सिरनि ते फूल दिए झकझोर के॥
झकझोर झपटै सुगंध लपटै उठै कच घनघोर से।
फरकातो अँचल-ओर चंचल दामिनी के छोर से॥
वारति जसोमति भूखननि अवलोकि सुतसोभा भली।
वलि 'नंददास' गोविंद-सँग झूले जवै वड्डी चली॥१५३॥

राग मलार

गोकुलराय की पौरि रच्यो है हिंडोरना।
कंचन खंभ वनाए चित के चोरना॥

चित चोरना विधि खंभ बानक रतन डाँडी सोहनी।
पटुली कनक की तिही बानक की बनी मनमोहनी॥
आई झूलन सबै ब्रजबधु सबै एक बनाय की।
बलि 'नंद' सुन्यो बन्यो हिंडोरो पौरि, गोकुल राय की॥१५४॥

गावत चढ़ी हैं हिंडोरे सूही सारी सोहै।
डहडहे मुख रंगभीने रसनि दस सिकोहै॥
कोहै सरद ससि मुख रहे लसि चपल नैना सोहना।
हँसि चलत कोने कछु लजानें मैन मनके मोहना॥
सीतल मधुर सुर गान सुनि उनए सघन घुरि आवई।
बलि 'नंद' अति आनंद बाध्यो चढ़ि हिंडोरे गावई॥१५५॥

आए तहाँ नँदलाल पहिरे फूलमाला।
चढ़िय रंगीले हिंडोरे कहा कहौं तिहि काला॥
तिहि काल बनि ब्रजबाल मदनगुपाल वर छबि अनगनी।
सिगार सुंदर तरुनि के ढिग मनहुँ छबि-बेली बनी॥
देखत बनै कहत न बनै भए दृगनि के मन भाए।
बलि 'नंददास' बिलास निधि नँदलाल जब तें आए॥१५६॥

झूलत मोहन रंग-भरे गोप बधू चहुँ-ओर।
श्रीजमुना के पुलिन सुहावन बृंदावन सुभ ठौर॥
राधा दीन सुमुख किलकारी, ज्यौं गरजत घनघोर;
ता पाछैं सब सखियाँ मिलजुल करत महा री सोर।
तैसोई रटत पपैया पिउ-पिउ बोलत दादुर, मोर;
'नंददास' आनंद-भरे अति निरखति जुगल-किसोर॥१५७॥

झूलत राधा-मोहन कालिन्दी के कूल।
सघन-लता सुहावनी चहुँ-दिसि फूले फूल।
सखी सबै चहुँ-दिसि तैं आईं कमल-नैन की ओर;
बोलत बचन सुहावने 'नंददास' चित-चोर॥१५८॥

माई फूलन कौ हिंडोरा बन्यो फूलि रही जमुना।
फूलन के खंभ दोऊ, डाँडी चारू फूलन की,
फूलन बनी मयार फूल रही ललना॥

तामें झूलैं नंदलाल, सखी सब गावैं ख्याल,
बाँए अँग राधाप्यारी फूल भई मगना।
फूले पसु पंच्छी सब, देखि ताप कटे तब,
फूले सब ग्वाल-बाल कटे दुख दंदना।
फूली घन-घटाघोर, कोकिला करत रोर,
छबि पै वारि डारौं कोटन अनंगना,
फूले सब देव, मुनि, ब्रह्मा करै वेद-धुनि
'नंददास' फूले तहाँ करै बहु रंगना ॥१५६॥

फूलन लागे हो पिय, पान खात मुसिक्यात जात,
नख-सिख सोभा-सदन अति गौर-श्याम गात;
लोचन बिलोच पोच ललिता की ओटन सी हाव-
भाव भरी करत झोटन मैं ललित बात।
दरपन में देखति द्दगनि मे न अघात दोऊ,
मुरलीधर मुरली धरैं करै त्रिभंगी-गात,
रमकन में गान करत सूधे सुर 'नंददास'
भ्रुव-विलास, मन्द-हास, मदन - मद चुचात ॥१६०॥

राग अड़ाना

आली, सावन की पूर्‍यो हरियारी, हरी भूमि
सोहत पिय सँग झूलोगी नवल हिंडोरैं;
बरपत मेह भद्रू, लागत प्यारी मोहिं,
सखी आजु प्रीतम कौं प्रेम-रँग वारै।
पीत कुलह राजै, चूनरी सुपीत साजै,
लहँगा पीत, कंचुकी पीत सोहै तन गोरै;
झूलत मे लोट-पोट होत दोऊ रंग-भरे,
निरखि छबि 'नंददास' वलि वलि तृन तोरै ॥१६१॥

राग नट

रगीले हिंडोले दोउ मिलि झूलत, रसरंग भरे किसोर अति।
नदकुवर वृपभानु-कुँवरि वर
निरखि छबीली भाँति भूलि ही मति ॥

सॉवरे बरन पिय गौर बरन तिय
झिलमिलाति झाँई अंग अंग प्रति।
गुन रूप छॉह बाढ़ी, तेऊ ढिग ढिग ठाढ़ी,
गावति झुलावति सुमंद मंद गति॥
छिनु छिनु बाढ़ै छवि, कैसे कहैं कोउ कवि
तन के छिलर मानो भए हैं काम-रहित।
'नंददास' दृष्टि जासों तनु की तरुनि-पर
ता ऊपर चंद वारौं करति आरति नित॥१६२॥

राग मारू

हिंडोरें झूलत गिरिधर लाल[1]।
मधुवन सघन कदंब की डारें झूलत झुकत गुपाल॥
कंचन खंभ सुभग चहुँ डॉडी पटुली परम रसाल।
सेत बिछौना बिछौ सु तापर बैठे मदन-गोपाल[2]॥
ताल मृदंग बजावत जुवती गावत गीत रसाल[3]।
'नंददास' नँदसुवन-मुरलि-सुर मगन होति ब्रजबाल॥१६३॥

राग सारंग

हिंडोरे माई, झूलत गिरिधर लाल।
सँग राजत वृषभानु-नंदिनी अंग अंग रूप रसाल॥
मोर मुकुट मकराकृत कुंडल गल मुक्तन की माल।
रमक रमक झूमत पिय-प्यारी सुख बरषत तिहिं काल॥
हँसत परसपर इत उत चितवत चंचल नैन बिसाल।
'नंददास' प्रभु की छवि निरखत बिवस भईं ब्रजबाल॥१६४॥

दूलह, दुलहिन सुरँग-हिंडोरैं झूलत प्रथम समागम सो गठ जोरैं;
चरन खंभ, भुज मृनाल की डॉडी, रमक हुलस दोऊ ओरैं।
सुभग सेज पटुली सुख बाढ़्यो, मरुवा, वेलिन प्राची कोर;
'नंददास' प्रभु रस बरषत जहॉ नव घन दामिन के अनुहोरैं॥१६५॥

---

१. पाठा०—हिंडोरें माई झूलत बंसीवाला। २. मोहनलाला।
३. झूलन कों आईं ब्रजबनिता बोलत बचन सुश्राला।

राग जै जैवन्ती

माई ? आजु तो हिडौरै झूलैं छैयाँ-कदम की,
गोपी सब ठाढ़ी मानो चित्रसी सदन की।
देखत रँगीले नैन, बोलत मधुरे वैन
मोहे सब कोटि काम छबीले बदन की;
गावत मधुर धुनि, मोहे सुर, नर, मुनि,
संकर से जोगी कीं तारी छूटी तन की।
त्रिविध समीर जहाँ, बंसी-बट झूलै तहाँ
मंद-नंद गावै सखी राधा के रवन की;
'नंददास' प्रभु जहाँ, ललिता झुलावै तहाँ,
मगन भई सिंधु सोभा देखि स्याम घन की ॥१६६॥

माई झूलत नवल-लाल, झुलावत ब्रज की बाल,
कालिन्दी के तीर माई रच्यो है हिंडोरनाँ;
तैसेई बोलै मोर, क्रीड़ा करै चहूँ-ओर,
तैसेई मधुर-धुनि लाग्यो घनघोरनाँ।
तैसेई फूले फूल, हरत री मन के सूल,
अलि-गन गुंजै माई, मन के सलोलनाँ;
'नंददास' प्रभु-प्यारी जोरी अद्भुत वारी,
देखिबोई कीजियै चंद ज्यौं चकोरनाँ ॥१६७॥

फूल मंडली

माई फुलन को हिंडोरा बन्यो फूल रही जमना;
फूलन के खंभ दोऊ, फूलन के डाँडी चार,
फूलन की चौकी बनी हीरा जगमगना।
फूल्यों अति बंसीवट, फूल्यो श्रीजमुना-तट,
सब सखी मिलि गावैं मन भयो मगना।
फूली सखी चहूँ ओर, झुलवत सु थोर-थोर
'नंददास' फूले जहाँ बानी को गमना ॥१६८॥

राग मालकौस

लहकनि लागी वसंत वहार सखि! त्यौं त्यौं वनवारी लाग्यौ वहकनि;
फूले पलास नख-नाहर कैसे, तैसोई क लाग्यो री महकनि।

कोकिल, मोर, सुक, सारस, खंजन,
भ्रमर देखि अँखियाँ लगीं ललकनि ;
'नंददास' प्रभु पिय-अगवानी,
गिरिधर-पियको निरखि भयों स्रमकनि ॥१६९॥

राग सारंग

फूलन को मुकुट बन्यो, फूलन कों पिछौरा तन्यो
सोहति अति प्यारो बर फूलन कों सिंगार ,
कंठ फूल बागो, फैंटा फूल, फूल-गादी, गैंडुवा फूल,
हँसि बैठे है स्यामा-स्याम सोभा को नहिं पार ।
फूलन के आभूपन, फूलन क बसन बिराजत,
फूलन के फौंदा, फूलन के उर-हार ।
'नंददास' प्रभु फूलन निरखति सुधि-बुधि भले
सुक, सारद, नारद रटति बार-बार ॥१७०॥

फूलन के महल बने फूलन बितान तने,
फूलन के छज्जे, भरोखा, फूलन किवार है ।
फूलन की गादी गुँदी, तकिया सु फूलन के
बैठे स्यामा-स्याम तहाँ सोभा अपार है ॥
फूलन के बसन औ अभूपन सु फूलन के,
फूलन के फौंदा, औ फूलन उर हार हैं ।
'नंददास' प्रभु फूले, निरखति सुधि-बुधि भूले,
सुकदेव, सारद, नारद रटति बार-बार हैं ॥१७१॥

फलन सो बेनी गुही, फूलन की अँगिया,
फलन की सारी मानों फूली फुलवारी ।
फलन की दुलरी, हुमेल हार फूलन के,
फूलन की चंपमाल, फूलन गजरा री ॥
फूलन के तरौंना, कुंडल लसैं फूलन के,
फूलन की किंकिनी सरस सँवारी ।
फूल-महल में फूली श्री राधा,
फूलन फबों 'नंददास' जाय बलिहारी ॥१७२॥

फागलीला

राग बसंत

निरखन चलीं गिरिधरन-लाल कौं, बनि बनि अन-गन गोपी ।
उबटी उबटन, नवल, चपल-तन, मानो दामिनि ओपी ।।
पहिरैं बसन त्रिविध-रँग भूषन, करन कनक-पिचकाई ।
चंचल, चपल, बड़ी-बड़ी अँखियन, मानो आगि लगाई ।।
छिरकति चलीं गलीं गोकुल की कहि न जात छबि भारी ।
उड़ि-उड़ि केसर, बूका बंदन, अट गए अटा-अटारी ।।
सखन सहित सजि सुघर साँवरो, सुनतहि सनमुख आए ।
मनु अंबुज बन-त्रास त्रिबसु ह्वै, अलि-लंपट उठि धाए ।।
हरि-कर पिचका निरखि तियन के नैना छबि हि टराईं ।
खजन से मानो उड़ि बिचले, टरकि मीन ह्वै जाईं ।।
पहिलैं कान्ह कुँवर पिचका भरि सकल तियन पै मेली ।
मानों सोम सुधाकर सींचत, नवल प्रेम की बेली ।।
पियके अंग, तियन के लोचन, लिपटे छबि की ओभा ।
मानो हरि, कमलन करि पूजे, बनी अनूपम-सोभा ।।
दुरि मुरि, भगन, बचावन, छबि सों आवन, उलटन सोहै ।
घुमड़्यो अबिर, गुलाल गगन मे, जो देखै सो मोहैं ।।
बिच-बिच छुटै कटाच्छ कुटिल सर, उचटि हूल सों लागी ।
मुरछि पर्यौ लखि मैन महा-भट, रति भुज-भरि लै भागी ।।
कहँलौं कहौं कहत नहिं आवै छबि बाढ़ी तिहि काला ।
'नंददास' प्रभु नित चिरजीवो बाल नंद के लाला ।।१७३।।

राग ललित

कुंज-कुटीर, मिलि जमुना-तीर, खेलत होरी रस-भरे वीर ।
एकु ओरि बल-वीर धीर हरि, एकु ओरि जुवतिन की भीर ।।
केकी, कीर, कल गुन-गंभीर पिक, डफ, मृदंग धुनि कर मँजीर ।
पग मंजीर, कर लै अबीर, केसर की तीर, छिरकत है चीर ।।
ह्वै गए अधीर, रति-रथ के तीर, आनँद-समीर परसत सरीर ।
'नंददास' प्रभु पहिरै हीर-नग, मिटत पीर गहि सुख कों सीर ।।१७४।।

राग टोड़ी

हो, हो होरी खेलें नँद कों नव-रंगी लाला।
अबीर भरि-भरि झोरिन, हाथन पिचकारी रंगन बोरी,
तैसीये रँगीली ब्रज की बाला॥
मूरति धरैं अनंग, गावत अति तान-तरँग,
ताल, मृदंग बजावैं मिलि बीना बैनु रसाला।
'नंददास' प्रभु प्यारी खेलत, रंग रह्यों छबि बाढ़ी,
छुटी है अलक, टूटी है माला॥१७५॥

राग धनाश्री

हरि सँग, होरी खेलन आजु, अरी, चलि बेगि छबीली।
निकस्यो मोहन-सवाँरो हो फागु खेलत ब्रज माँझ।
घुमड्यो अबीर, गुलाल गगन में, मानो फूली साँझ॥
बाजत ताल, मृदंग, मुरज, डफ कही न परत कछु बात।
रँग सौं भनि ग्वाल-बाल सब, मानो मदन-बरात॥
जुरि आँईं ब्रज-सुंदरी हो करि-करि आपुनो ठाट।
खेलति नहि कोऊ कुँवर कान्ह सौं निरखति तुम्हरी बाट॥
बिनु राजा दल कौन काम कों, बलि उठौ छाँड़ि कैं ऐंड़।
उमग्यो निधि ज्यौं नवल-नंद कों, रुकत रावरी मैंड़॥
उठी बिहँसि वृखभानु-कुवरि वर, कर पिचकारी लेत।
सहि न सकत ज्यौं महा सुभट कोउ सुनत समर-संकेत॥
आई रूप-अगाधा राधा, छबि बरनी नहिं जाइ।
नवल-किसोर अमल-चंद मनु मिली चंद्रिका आइ॥
खेल मच्यौ ब्रज-बीथिनि महियाँ, बरखति प्रेम-अनंद।
दमकत भाल गुलाल भरो मनु बंदन भुरको चंद॥
ढुरि, मुरि भरन बचावन छबि सौं, बाढ्यौ रंग अपार।
मैन-मुनी सी बोलत, डोलत पग-नूपुर झनकार॥
सुरँग-रंग पिचकारी भरि-भरि, छिरकत हरि-तन तीय।
कुटिल कटाच्छ प्रेम-रंग तकि तकि मारत पिय के हीय॥
सिव सनकादिक, नारद, सारद, बोलत जै-जै सेइ।
'नंददास', अपुने ठाकुर की हरख बलैया लेइ॥१७६॥

राग काफी

निकसि कुँवर खेलन चले, मोहन नंद के लाल,
रंगन-रंग हो-हो होरी ।
संग लै रंग-भीने ग्वाल, सब गुनरूप-रसाल,
रंगन-रंग हो-हो होरी ॥
कंचन-मॉट भराइ सोचै भरीं कमोरी ।
रतन जटित-पिचका करन, अबीर भरैं झोरी ॥रंगन-रंग०॥

सुर-मंडल, डफ, झाँझ, ताल बाजत मधुर मृदंग ।
तिन मे परम सुहावनी हो महुरि, बॉसुरी, चंग ॥रंगन रंग०॥

खेलत-खेलत जब लला गयो वृषभानुहि पौरि ।
नवल-किसोरी भोरी आईं देखति आगे दौरि ॥रंगन रंग०॥
सुनि निकसी नव-लाडली श्रीराधा राज-किसोरि ।
ओलिन पुहुप-पराग भरी रूप अनूपम गोरि ॥रंगन-रंग०॥
सॅग अली, रॅग अली कनक की लै पिचकारी ।
मोहन मन की मौहनी, देति रँगीली-गारी ॥रंगन-रंग०॥
तिन कों छिरकत छबीलो लाल, राजत रूप गहेलि ।
मनो चंद सींचत सुधा, आप प्रेम की वेलि ॥रंगन-रंग०॥
नवल वधुन के वदन-रॅगीले, घुमड़ि अवीर में डोलैं ।
छुटहि निसंक अरुन बन मे जनु, हिम-कर निकर किलोलैं ॥रंगन-रंग०॥
इतने मॉझ छिपि कुॅवरि छबीली, पकरे मोहन आन ।
छबि सों परसपर झकझोरति हो का पै परत वखान । रंगन-रंग०॥
गुपत-प्रीति परगट भई, लाज-तिनका सी तोरि ।
ज्यौं मदमाते चोर भोर भल करत तनक सी चोरि ।.रंगन-रंग०॥
सखियन सुख देखन काज, गाँठ दुहुॅन की जोरी ।
निरखि बलैयां लेति सबै अति छबि न वढ़ी कछु थोरी ॥रंगन-रंग०॥
कोऊ छकी छवीले लालहि छिरकति रंग अमोल ।
कोऊ कमल कर लै पराग, परसत रुचिर-कपोल ॥रंगन-रंग०॥
खिले पिया के कमल से लोचन, गहि-गहि ऑजै अंजन ।
जनु अकुलात कमल-मंडल में फॅदे फॅदन जुग-खंजन ॥रंगन-रंग० ॥

देखि विवस वृषभानु-घरनि यौं, हँसति हँसति तहँ आई।
वरजी आन सुचि नवल-वधुन कौं, भुज भरि लिये कन्हाई ॥रंगन०॥

पोंछति मुख अपुने अंचल सौं, पुनि-पुनि लेति वलाइ।
मुसकि-मुसकि छोरति सु गाँठ कौं, छवि वरनी नहिं जाइ ॥रंगन-रंग०॥

छोरनि देहिं नहि नवल-वधू पै माँगत कुँवर हि फागु।
जोपै फगुवा देति वनै नहि, राधा पाँइन लागु ॥रंगन-रंग०॥
औरु कहाँ लौ वरनियैं वढ़्यौ सुख-सिंधु अपार।
प्रैम-किलोल हिलोर किनहूँ नाहि सँभार ॥रंगन-रंग०॥

रंग-रंगीली व्रज-वधू तैसेई गिरिधर पीय।
इहि रंग-भीनै नित वसौ 'नंददास' के हीय॥
॥रंगन-रंग हो-हो होरी ॥१७७॥

राग काफी

एरी सखी, निकसे मोहनलाल, खेलन व्रज मे फागुरी।
॥रंग हो, हो होरी॥

एरी सखी, घुमड़्यौ अवीर, गुलाल मनु उनयों अनुरागुरी॥
सखि सोभित मदन-गुपाल, कटि वाँधैं पट सोंहनौं।
सखि कछनी काछैं लाल, लाल निचोयौं रँग मनो॥
सखि मोर-मुकुट छवि देति, वंक-दृगन हँसि देखनौं।
सखि सबको मन हरि लेति, ऐन मैन मनो पेखनौं॥
सखि पँग, आवज, सुर-वीन, अनाघात-गति वाजहीं।
सखि ताल, मृदंग उपंग, रुंज, मुरज, डफ गाजहीं॥
सखि घिरि आईं व्रज-नारि, मृग-नैनी, गज-गामिनी।
सखि रोके साँवर-लाल[1], घन घेर्यौ मनो दामिनी॥
सखि छिरकति पिय नँद-नंद, पिय पट-ओट वचावहीं।
सखि मनो घन पूरन[2] चंद, दुरि, निकसै पुनि आवहीं॥
सखि बने तियन के अंग, छिरकि छींट छवि छैल की।
सखि मनो फूली रंग-रंग ललित लता जनु प्रेम की॥
सखि बढ़्यौ परसपर रंग उमँगि-उमँगि रस भरन में।
सखि निरखि भई मति पगु, पीतांवर फर-हरन में॥

---

१. पाठा०—घेरे हे मदनगोपाल। २. पाठा०—पून्यो।

सखि जब गहि रंगन भरे, मौहन, मूरति-साँवरी।
सखि हरि-हरि हँसि परे, मुनि-मन ह्वै गई वावरी ॥
सखि भइ सर सुति-मति वौरि, और खेल कहा लोक हो।
सखि रस-भरे साँवरे-गौर, 'नंददास' के हिय रहो ॥१७८॥

बरसाने की सीम, खेलत रंग रह्यौ हैं।
छल-बल वानिक वान, ललिता लाल गह्यौ है ॥
सखा श्रीदामा आदि, हलधर भाजि गये हैं।
गहि पिचकारी हाथ जुरी, चहुँ कोद भये हैं ॥
कोऊ न आवै पास, उत वन्न बहुत भयौ हैं।
अधिक भयो अँधियारि, गगन गुलाल छयौ हैं ॥
ता मधि दमकति अंग, ब्रज-जन रूप-छटा री।
सारी भरी सुरंग, सोहैं कनक-घटा री ॥
रोरी, बंदन धूरि, अबीर मिलाइ लियो है;
छिरकि-छिरकि घनस्याम, सब इक-रंग कियो है।
लिपट परीं विह्वल ज्यौं, तरुन तमालहि हेली;
पुहुप-लता सिरताज, कौंधत ऊपर बेली।
करत मनोरथ घेरि, गिरिधर सुघर सलोनो;
लग्यों अरगजा गाल, श्रीमुख लगत रिझौनों।
पाग उतारत आय, श्री वृषभानु-कुमारी,
केस खोल निरवार, बैनी सरस सँवारी।
माँग भरी मोतिन सों, पटियाँ नीकैं पारी,
झब्बी जराऊ जोरि, अमित गूँथननि सँवारी।
सीस-फूल सीमंत किसोरी, आपुन दीनो,
समझवार समझाइ, सु नैननि अंजन कीनो।
मृग-मद आड़ सुदेस करी चन्द्रावलि नीकी,
चन्द्रभगा लै वीच लगावत पिय कै टीको।
पहरावति झकझोरि, वेसरि निरमोली है;
चारु पिछोरी साजि, पँचरंग नव चोली है।
जेहर, तेहर पाँय, बिछुवन छवि उपजायल,
नूपुर, चूरा रतन खचित, है पायल-आयल।
नख सिख लौं इहि भाँति, आभरन भीर भई है,

निरखि-निरखि इहि कांति, ब्रज आँनंदमई है।
वाजन लागे ढोल औरु डफ, ताल मृदंगा;
गोमुख, किन्नरि, झाँझ, बीच-बिच मधुर उपंगा।
सहचरि भईं अनंद, गावत गारि सुहाई;
दस-दिसि मोहन औरु चलत, सुंदर पिचकाई।
एकु सखी बिच आइ अरगजा डार गई है;
देखि पलक पै रोलि, पीव जू गारि दई है।
लै-लै अंचल आप, पोछत अंगुरिन-दल सों;
मुठियन चलत गुलाल आगैं पाछैं छल सों।
तेइ घातन मधु पाइ, प्रान-पिया कों पोखत;
प्रेम बिवस ह्वै हरी, सु भरि अँकवारी झोखत।
हो-हो होरी बोलत ललिता, आँगन नाचत;
करैं प्रेम की टोक, टोक एको नहिं माँचत।
'नंददास' खिलवार, खिलारी खेलनहारो;
भयों तेइ मद माँहिं, टोल दुहूँ दिसि भारो ॥१७९॥

राग सारंग

वड़े खिरकि में घूमरि खेलत;
मोहनलाल खिलावत रँग-भरि, गगन गरजि घंटा धुनि पेलत।
उसरि जांत ब्रजराज-लाडिले धैनु डाढ़ जब मेलत;
'नंददास' प्रभु मुदित नँदरानी ही-ही रस सागर में मेलत ॥१८०॥

राग सारंग

आजु हरि खेलत फागु बनी;
इत गोरी रोरी भरि भोरी, उत गोकुल को धनी।
चोवा को ढोवा भरि राख्यो केसर-कीच घनी;
अबिर गुलाल उड़ावत गावत, सारी जात सनी।
हाथन लसत कनक पिचकारी, ग्वालन छूट छनी;
'नंददास' प्रभु होरी खेलत, मुरि मुरि जात अनी ॥१८१॥

राग-मारू

खेलत नंद कों नंदन होरी अपुने रँगीले ब्रज में।
बन्न ठन्न ठाढ़े ग्वाल-बाल सँग जनु अनेक से मैन;

आपु मदन-मोहन अति सोहन, कहा कहौं छवि ऐन।
उत तैं आई नव-युवती-बृँद, चंदमुखी इक दाँई;
चंचल-तन की दमकत आभा, जनु दामिन पर झाँई।
जुरे हैं कंचन - चौहटे, अपुने - अपुने टोल;
आनँद-घन ज्यौं गाजत राजत वाजत दुन्दुभि ढोल।
सुर-मंडल, किन्नरी, झाँझ, डफ, वाजत अति रँग भीने;
बिच-बिच बजत बँसुरिया सबको नेह-पाग बस कीने।
बाजत चट सौं पटरी तारन ग्वारन गावत संग;
नाचत है मधु मंगल हँसि-हँसि सुंदर बाढ्यो रंग।
कुंकुम, चंदन बंदन केसर सारव, मृग-मद घोरी;
छबिसों छबिलों छोरत डोलत, बोलत हो हो होरी।
रँग रँग की छींटन सों भरि भरि सोहत तिया नवेली;
बरन-बरन के फूलन मानों फूली आनँद-बेली।
घुमड़यो गगन गुलाल सु तामै घूँघरि में दुरि आवै;
भरि भरि भागत हरिको भामिनि दामिनि सी छबि पावै।
घेरि लए हैं नवल-तियन तब सुघर भौं स्याम सिरमौर।
भ्रमत भए या छबि सों मोहन, ज्यों कमल-कोस कों भौर।
पकरे छबि सों आन राधिका, मोहन करि वरजोरी;
कही न परै प्रेम की छाई छबि झक-झोरा झोरी।
ठाड़े भए बिबस बसि सबहीं काहु न रही सँभार;
छूटी छबि सों अलक सु टूटे गर मुक्तन के हार।
क्यौं हू लुकत न लाज निगोड़ी बिबस सु प्रेम उरेड़;
"नंददास" प्रभु निधि न रुकति री वा वारू की भैंड़ ॥१८२॥

राग गौरी

अरी चली नवल किसोरी गोरी, भोरी, होरी खेलन जाँइ;
ऐसी नव जामिनि लखि कै भामिनि, कैसैं भवन सुहाइ।
जहँ ब्रज - वर - नर - नारिन के जूथ जुरे हैं आइ;
श्री नँद-नंदन हू तहँ आए, रसिक-सिरोमनि- राइ।
आली, तिन में तू नहिं निरखी, तब रहि गए नैना नाइ;
फिर इत उत लखि मोहन-पिय-प्रिय मो तन तकि अरगाइ।
तब वे नैननि में कही, मैं कहीप्रीत दुराइ;

तबहि रँगीले-कुँवर तोहि पै, सैननि दई पठाइ।
तू जिन करि री गहर नवल-तिय, आन बन्यौ भलि दाइ;
इहि सुनि नागरि नवल-नवेली मुसिकी नैन दुराइ।
इतनोई कहि परम निपुन सखि भुज-भरि लई उठाइ;
गहि तब कंचुकि सौंधे बोरी, वीरी दई खवाइ।
पुनि पट-पीत पटोरन पोंछत, धरि आगे समुहाइ;
चली नवल सजि स्वामिनि, कामिनि सखी अंस भुज लाइ।
नव-गुन, नवल-रूप, नव-जोवन, नवल-नेह हुलसाइ;
मानो कनक-धातु-परवत पै, तड़ित-लता लचकाइ।
झूँमत प्यारी, सारी पहिरैं, चलत सु कटि लचकाइ;
जनु नव रूप-जोति जग-मग सी लगत पवन झुक जाइ।
ललितादिक सखियन सँग सुंदरि सोभित है इहि भाइ;
जनु नव-कुमुदिन के मंडल में, इंदु पगन चलि जाइ।
कमल फिरावत कर वर वाला माला उरसि सराइ;
मंजुल मुकुर मरीचिन सी मनु छिन-छिन छवि अधिकाइ।
कबहूँ बदन दुराइ उघारत पुनि हँसि लेति दुराइ:
झूमति चलि मद-मत्त गयँद ज्यों, मलकत बाँह दुराइ।
लट लुरि लटकि छबीली छवि सो, बेसरि रहि अरुझाइ;
जनु पीतम-मन-मीन-गहन कों बँसरी दइ लटकाइ।
सोभित स्रवननि जड़ित सु कुंडल, स्वेद बुंद चुचुआइ;
चंचल अंचल-छोर छिपा सो चमकि चलै जब धाइ।
नीवी-बंधन, फुँदवा, घंटा, किंकिनि घन घहराइ;
नूपुर ऊपर चूरा-रूरा, जनु सृंखल झनकाइ।
सखियन के कर कुसुम-छरिन तै, अगर बने चहुँ धाइ;
मदन-महावत को बल नाहिंन- अंकुस देत डराइ।
सखियन में अति हितू विसाखा, जनु तन की परछाँइ;
सो नँद-नंदन नेरे निरखि कैं, सहज उठी कछु गाइ।
जानी सब श्री राधा आईं, भयो चौगुनों-चाइ;
जे हीं नवल किसोरी साथी, ते दौरी समुहाइ।
तिन सँग मोहन धाए-आए, (ज्यों) रंक महा-निधि पाइ;
प्रथमहि लाल जुहार कियो, मृदु मुरली माँझ बजाइ।
इततै कुटिल कटाच्छन पिय-तन-चितई मृदु मुसिक्याइ;

चाँचर दैन लगी ब्रज-बीथिन, सुभग रंग उपजाइ।
गावन लागीं ग्वालिन गारी, सुंदर लाल लगाइ;
राधा गारि सुनत हँसि-हँसि कै हेरति हरिहि लजाइ।
ललकि अबीर, रोरि भरि झोरी, प्रान-पियहि पै जाइ;
सो सुख पिय-नैननि पहिचाने मो मन में न समाइ।
औरहु प्रेम बिवस रस को सुख कहत कह्यो नहि जाइ;
इहि सुख कहिवे को नित सरसुति कोटिक-मति सु-हराइ।
सेस, सुरेस, महेस न जानै, अज अजहूँ पछिताइ;
इहि सुख रमा तनक नहि पावत, जदपि पलोटत पाँइ।
श्री वृषभानु-सुता-पद-अंबुज, जिनके सदा सहाइ;
सो रस मगन रहति अति तिनपै 'नंददास' बलि जाइ ॥१८३॥

राधा बनी रँग-भरि होरी खेलैं, अपुने प्रीतम के संग।
एकु तो पहिलैं ही हती रँग-मँगी पुनि भीनी अति रंग॥
रंग-रंग की (बनी) सहचरी, बनी छबीली साथ।
पहिरैं बिबिध-बसन रँग-रँग के रँग-भरे भाजन हाथ॥
रँग-भरी कनक-पिचकारी सोहत कर कर एकु समान।
माँनहु मैत सु सिव पै साज्यो लैकर रूप-कमान॥
काहू पै कुसुमन-गूँथी-छरि काहू पै नये-नये नोर।
काहू पै कुसुम-गेंद अति सहित, काहू पै नूतन-मौर॥
काहू पै अरगजा रंग कौं, काहू पै केसर रंग।
काहू पै मृग-मद अति राजत, होत भ्रमर जहँ पंग॥
तिन में मुकुट-मनि लाडिली, सोहत अति सुकुमार।
लटक चलत ज्यौं पवन तैं कोमल-कंचन-डार॥
पिय-कर पिचका देखि कैं, छबि सौं नैन ढराइ।
खंजन से मनु उड़ि चले औ ढरकि मीन ह्वै जाइ॥
छिरकति रँग पिय तियन पैं उपजै अति आनंद।
मानों इंदु सुधाकर सींचत, नव-कुमुदिन के वृंद॥
भींजे-बसन सुतन लपटाने, बरनति बरन न जाइ।
उपमा दैन न देति नयन तब राखे हा हा खाइ॥
रंग-रँगीली-राधिका, रंग-रँगीलो पीय।
इहि रँग-भीने नित बसौ 'नंददास' के हीय॥१८४॥

राग विहाग

चली है कुँवरि राधिका खेलन होरी।
पंकज पराग भरि लई नव झोरी॥
रँग-रली बहु सोहैं अली।
सुफल करी सब गोकुल-गली॥
गावत सरस आछी मीठी धुनि।
हरि जो जारयौ मनोज जियौ चाहै पुनि॥
बाजत ताल मृदंग सुहाए।
मदन-सदन मनु बजत बधाए॥
सोहत मुख कछु अँवरन दुराएं।
आधों बिधु मनु नव घन छाएं॥
अबीर-धुँधरि मे राजत रँग-भीनी।
मनहु डीठ उर सु मार ढकि लींनी॥
उत तै आए मोहन रँगे-रंग।
चरन पलोटत कोटि अनंग॥
सुभग गलिन विच खेल भयो भारी।
इत हरि, उत वृषभानु-दुलारी॥
कनक जंत्र मिलि सोभा भारी।
छवि सौ छुटत मनु मैन फुलवारी॥
छिरकति आइ छबीली तिय-गन।
रँग बरसै मनौं नूतन अति घन॥
तियन-अंग रंग-कन सोहैं।
कंचन-छरी जरी छवि को हैं॥
इत उत चलत धार रँग-मेली।
आतुर उलहीं प्रेम-नवेली॥
अबिर, गुलाल सु मंडित गगन।
मनहुँ प्रेम रबि चाहत ऊगन॥
घेरे कामिनि स्यामहि ऐसैं।
दामिनि-निकर मनौं घन जैसैं॥
लिपटि साँवरे अँग सोहैं ऐसी।
मनु सिंगार-तरु छवि-लता (सु) जैसी॥

हँसत-हँसत चद्रावलि उत गई।
लालहि कही हौ तिहारी दिसि भई॥
छल करि मुरली लई किसोरी।
हँसि तारी दै बोलीं होरी॥
बाँसुरी राधा-अधर बिराजी।
ऐसी कबहुँ न पिय पै बाजी॥
बंसी दैन मिसि राधिका बुलाए।
हँसत सुलाल अकेले आए॥
गावत ब्रज-बधु कीर्त्ति तिहारी।
चिरजिओ प्यारी अटल-बिहारी॥
फगुआ कुँवरि कान्ह बहु दीनो।
प्रेम-प्रीति करि माँथै लीनों॥
'नंददास' सुख कहा बखानै।
बिधि हू कह्यो जानै सोइ जानै॥१८५॥

इक दिसि बर-ब्रजबाला, इक दिसि मोहन-मदन-गुपाला;
चाँचर देति परसपर छबि सो, कहि न परत तिहि काला।
कुसुम-धूरि धूँधरि मधि चाँदनि, चंद-किरनि रही छाइ;
तैसोई बन्यो गुलाल गगन कछु वरनत बरनि न जाइ।
सुर-मंडल, डरू, बीना-झीना, बाजत रस के ऐन;
चाँचर मे चाँचर सो चितवत, नवल तियन के नैन।
बजत चटक कठताल, तार अरु मृदुल-मुरज-टंकार;
तिन सँग रंग रँगीली-मुरली, बिच अमृत सी धार।
बढ्यों दुहूँ-दिसि गुन बितान रस-गान सुनत रस-मूले;
मंद मंद आवन, उलटन, मनो प्रेम हिंडोरे झूले।
लटकि-लटकि आवत छबि पावत, भावत नारि नवेली,
प्रेम-पवन बरु डोलत मानों रूप अनूपम बेली।
चारु चलन में मनिमय-नूपुर, किंकिनि कलरव राजै;
मनहुँ भेद-गति पाछैं आछैं मधुर मधुर धुनि छाजै।
चमकि चमकि दसनावलि-द्युति फिरि बदरन माँझ दुराइ;
दमकि-दमकि दामिनि छबि पावत, चाँदन में दुरि जाइ।
भाँति अनेक, राग रागिनी, अति अनुराग उपजावै;

रस उतंग में बोरी होरी नित उठि खेलन आवै।
मुनि थाके नारद, सिव, सारद, तनकहु पार न पावै;
'नंददास' जाके भूरि भाग जे विमल विमल जस गावैं ॥१८६॥

राग कान्हरा

आजु साँवरे-सलौंने सों होरी खेलन जैए।
बड़े-बड़े मॉट भराइ रंग सों, पिचकारिन छिरकैए।
खेलत-खेलत रंग रह्यो अति, अबीर गुलाल उड़ैए।
'नंददास' प्रभु होरी गावत आनँद-सिंधु बढ़ैए ॥१८७॥

राग नायकी

ब्रज में खेलत होरी मोहन-प्यारो री नंद कों।
संग बनी रस ओपी गोपी, कह्यो न परत
कछु जो बाढ़्यो सुख-सिन्धु उडु-चंद कों।
बाजत ताल, मृदंग, झाँझ, डफ बाढ़्यो
सरस सुर अति अनंद कों;
'नंददास' प्रभु प्यारे कों कौतुक देखति थकित भई
सोभा सरस गिरिधर मैन फंद कों ॥१८८॥

सब अँग छींटैं लागी नीको बन्यौ बान।
गोरी अगर अरगजा छिरकति खेलत गोपी कान्ह ॥
हाथन भरै कनक पिचकाई भरि भरि दैति सुजान।
सुरनर मुनि जन कौतुक भूले जय जय जदुकुल भान ॥
ताल पखावज बेनु बाँसुरी राग रागिनी तान।
विमला 'नंददास' बलि बंदित नहिं उपमा कौ आन ॥१८९॥

राग काफी

हाँ हाँ निकसे हैं मोहनलाल
ब्रज में खेलन फाग री, रँग हो हो हो रंग हो री ॥
घुमड़्यो हे अबिर गुलाल, मनु उनयो अनुराग री।
काछनि काछे लाल, लालन चोली रँग बनी ॥
सोभित मदनगोपाल, कटि बाँधे पट सोहनुँ।
मोर मुकुट छबि देत, मंद हँसनि, द्दग देखनुँ ॥

सबहि को मन हरि लेत ऐन मैन मनु पेखनुं।
जुरि आईं व्रजबाल मृगनैनिन गजगवनि॥
छक्यो है साँवरलाल, घन घेर्यो जनु दामिनि।
छिरकत पिया नँदलाल, प्यारी पट ओट बचावहि।
मनु घन पूरनचंद, दूर निकट पुनि आवहिं॥
बने त्रियन को अंग छिरकि छिट छबि छैल की।
मनु फूली अँग अंग ललित लता मनु प्रेम की॥
बाढ्यो हे परसत रंग उमगि उमगि रँग भरनि में।
निरखि भई सब पंगु पितांबर-फरहरनि में॥
जब हरि रंगनि भरे, मोहनि मूरति साँवरे।
हरि हरि हरि हँसि परे, मुनि के मन गए बारे॥
भई सब श्रुति-मति के बौर और खेल कैसे कहूँ।
रँग भिने साँवर गौर, 'नंददास' के हिये बसौ॥१६०॥

राग मारू

निकसो नंद-दुलारे आज बदि ठनि व्रज खेलन फाग।
अरुन अति ललित माल जटित लाल टेपारो।
बड़े बड़े बंकु बिसाल नैन छवि भरे इतराई।
बन्यो है मंजुल मोर चंद्र चलत देख छाँई।
उत बनी नव व्रज-किसोरी गोरी रूप भोरी,
बोरी प्रम रंग मे मनु एकहि डार की तोरी।
बन्यो हे जलज-स्रेनी खेला छुटी है रंग की धार।
जनु धनुधर सपनि लरत मारत धार सौं धार।
व्रज की बाल लै गुलाल मोहन लाल छायो।
मनु नील घन के उपर अरुन अंबुद आयो।
ताही घुँघर मत गत भ्रमर भ्रमरत ऐसो।
बनी हे छवि बिसाल प्रेम जाल गोलक जैसो।
और कहाँ लौं कहीयेक बेली प्रेम रस की मूले।
थके हे सुर नारद सारद सिव समाधि भूले।
ज्योंही हिये हरि-चरित्र अमृत-सिंधु सो रति मानी।
"नंददास" ताही कुं मुकती लोन को सो पानी॥१६१॥

दोलोत्सव

राग-वसंत

डोल झुलावत सव व्रज-सुन्दरि, झूलत मदन-गुपाल ;
गावत फागु धमार हरखि भरि हलधर औ सब ग्वाल।
फूले कमल, केतकी कुंजन गुंजत मधुप रसाल ;
चंदन वंदन चोवा छिरकति उड़त अवीर गुलाल।
वाजत वैनु, विपान, वाँसुरी, डफ, मृदंग अटताल।
"नंददास" प्रभु के सँग विलसति, पुन्न-पुंज व्रजवाल ॥१६२॥

राग कल्याण

डोल झूलत हैं श्री गिरिधरन, झुलावत वाल ;
निरखि निरखि फूलत ललितादिक, राधावर नँदलाल।
चोवा, चंदन छिरकति भामिनि, उड़त अवीर, गुलाल ;
कमल-नैन कों पान खवावत, पहरावत उर माल।
वाजत ताल, मृदंग, अधौरी कूजत वैनु-रसाल ;
"नंददास" जुवती मिलि गावत, रिझवत श्री गोपाल ॥१६३॥

रँग रँगीलो नंद को लाल रँगीली प्यारी व्रज की
वीथनि मैं खेलति फागु।
रँग रँगीले सँग सखा गन रँगीली नव वधु तैसोंई
जम्यौं रँगीलौ वसंत रागु॥
रंग रंग की ओझट छिरकति हरखि हरखि
वरखि अनुराग।
"नंददास" प्रभु कहाँलौं वरनूं वेदहु आपुन मुख
कह्यौं यह माननि वड़भाग ॥१६४॥

राग सारंग

व्रज की नारी डोल झुलावैं।
सुख निरखत मन मैं सचु पावैं मधुर मधुर कल गावैं॥
रतन खचित सिंघासन सोभित मनो काम की डोरी।
बैठे स्यामा स्याम झुलत हैं नील-कमल पिय राधा गोरी॥
सूरत मूरत दोउ रसीली उपमा नहिं सम तोल।
'नंददास' प्रभु को सुख निरखत दंपति झूलत डोल ॥१६५॥

———

टिप्पणी

रास पंचाध्यायी

प्रथम अध्याय

१—जोतिमय—ज्योतिमय, प्रकाशमान।

३—नीलोत्पलदल—नीले कमल का पत्ता।

जोवन—यौवन।

अलक—घुँघराले बाल।

अवलि—पाँति, माला।

४—निकर निसाकर–चंद्रमा के झुंड।

प्रतिबंध—रुकावट, बाधा।

दिवाकर—सूर्य।

५—ऐन—गृह, घर।

रतनारे—लाल।

कृष्णरसासव—कृष्णजी के प्रति प्रेम रूपी मदिरा।

६—उन्नत—ऊँची।

अधरबिंब—कुँदरू के समान लाल ओष्ठ।

मसि भीनी—कुछ कुछ निकलती हुई मूँछ।

७—गंड-मंडल—कपोल - कनपटी।

मधु—मिठास।

८—कंबु कंठ—शंख के समान गला।

१०–हिय-सरवर–हृदय रूपी सरोवर।

११–कुंडिका—पवरी, पत्थर का कटोरा।

त्रिबली—पेट में जो एकाधिक बल पड़ जाते हैं, उन्हें ही त्रिबली कहते हैं।

१२–गूढ जानु—कठोर दृढ़ जंघा।

आजानुबाहु—जंघे तक पहुँचनेवाली लंबी भुजा।

१३–दिनमनि—सूर्य।

दुरि—छिपकर।

घुमड़ि घुरि—चारो ओर से घिरकर।

१४–लोक-ओक—कुल संसार।

विभाकर—सूर्य।

१५–रहस्य—गुप्त, गोपनीय, सहज समझ के परे।

पंच प्राण—प्राण, अपान, व्यान, उदान तथा समान।

१७–चिद्घन—चेतनता संयुक्त, चैतन्य।

१८–नग—पर्वत।

वीरुध—वृक्ष।

काल-गुन-प्रभा—समय के गुणों का प्रभाव, असर।

१९-अविरुद्ध—बिना किसी रुकावट के ।
हरि—सिंह, शेर ।

२१-भ्रू विलसति—भृकुटि के खेल मात्र से ।

२२-श्री—शोभा ।
अनंत—बहुत, असीम ।
संकरषन-संकर्षण, बलरामजी ।

२३-रमा-रमन—श्री विष्णु भगवान ।

२४-बानिक—शोभा ।

२५-चिंतामनि—एक रत्न जो इच्छित फल देता है ।

२७-लुब्ध-लोभी, ललचाए हुए ।

३०-धर-धरा, पृथ्वी ।

३१-अंक-चित्र—संख्या के चित्र सहित ।
चक्राकृति—चक्र के आकार का गोल ।

३२-करनिका—कर्णिका, कर्णफूल ।
पुरंदर—इंद्र ।

३३—कौस्तुभमनि—समुद्र-मंथन के समय निकले चौदह रत्नों मे से एक ।
उडु—नक्षत्र ।

३६-पौगंड—कैशोर, दस से सोलह वर्ष तक की अवस्था ।

४०-मुकुलित—कली । बाल ती—कुमारी ।

४१-छपा—रात्रि ।

४२-उडुराज—चंद्रमा । नागर—चतुर ।

४३-अरुणिमा—लाली ।

४४-फटिक-स्फटिक, बिल्लौर ।
बितनु-अति सूक्ष्म, अशरीरी ।
बितान – चंदवा ।

४६-अघटित—जिसकी आशा न हो
अधरासव - ओष्ठ का रस ।
जुरली—जुड़ा हुआ ।

४७-नाद- ध्वनि, शब्द ।

४८-कलगान—सुंदर गाना । बाम बिलोचन—तिरछेकटाक्ष पूर्ण नेत्रोंवाली ।

४९-गीत-धुनि को मारग गहि-मुरली के गान के शब्द पर सीधे उसी ओर चली ।

५०-अमृत को पथ—अमरत्व पाने का मार्ग ।

५१-अधीर—धैर्य छूट गया है, घबड़ाई हुई ।
गुनमय—सत्व-रज-तम गुणों से युक्त ।
सॅंच्यो—संचित किया ।

५२-दुसह—असह्य, न सहने योग्य ।
अघ—पाप, कष्ट ।

५४-इतर—अन्य, दूसरे, यहाँ लोहे से तात्पर्य ।
पाहन—पारस मणि ।

५५-पिंजरनि—पिंजड़े ।
संगम—संबंध ।
बिहंगम—पक्षी ।

५७-पॉंच भौतिक-पंचतत्व (जल, तेज, वायु, पृथ्वी तथा आकाश)

५९-भागवत—वैष्णव भक्त ।

६०उदर दरी—पेट के भीतर ।

६३–सवभाव—सभी प्रकार की भावना ।

६५–ओपी—मग्न, सनी हुई ।

६८–सुभग—सुंदर ।

अरबरे—टकटकी लगाए हुए ।

७२–डगरी—चली आई ।

सर्वरी—रात्रि ।

७३–बंक—टेढ़ा, व्यंग्य ।

माल—झुंड, समूह ।

७६–छवि सींच—सोभा की सीमा, अत्यंत सुंदर ।

नाल—कमल की दंडी ।

अलक-अलिन-बाल तथा भौंरे ।

७७–हुतासन—अग्नि, आग ।

सासन—उसासन, स्वाँस ।

झर—झड़ी, झरना ।

७८–अनुरागी—प्रेमिका, अनुरक्त ।

८१–धरमि—धार्मिक, धर्म करनेवाला ।

८५–नवनीत-मीत—माखन चाखनहार, श्रीकृष्ण ।

८७–कुमकुम—केसर ।

घनसार—कर्पूर ।

चरचित—लगाया हुआ ।

८८–गोहन—साथ, संग ।

८९–चोप—उत्साह ।

९०–धूँधरी—धुँधला ।

अलिंद—भौरे ।

९२–तुसार—तुषार, ठंढा ।

मदार—स्वर्ग का एक वृक्ष ।

९३–एलि—इलायची ।

कुरवक—कटसरैया ।

९४–परिमल सुवास, सुगंध ।

कमोद—लाल कमल, कोईं ।

९६–बिलसत—आनंद करना ।

बिलास—हावभाव, अंगो की सुंदर चेष्टाएँ ।

नीवी—साड़ी की गाँठ ।

९७–मैन—कामदेव ।

पंचसर—कामदेव तथा उसके फूल के पाँच बाण ।

९८–हरि-मनमथ वा मनमथ को मन उलटि करि मथ्यौ ।

१००–अलिगति—गले लगाती है ।

१०३–छिलछिल—उथला, कम पानी ।

१०४–बरधन – वर्द्धन, बढाना ।

दूसरा अध्याय

१—अम्ल—खट्टा ।

रुचिकारी—आनंद देनेवाली ।

२—पटु—वस्त्र ।

पुट—साफ करना, माडी देना ।

३—निमेष—पलक गिरने तथा उठने के बीच का समय ।

४—निधन—निर्धन, दरिद्र ।

जाइ—नष्ट हो जाय, न मिले ।

६—जाति—एक पुष्प जो चमेली की जाति का होता है ।

जूथिके—जूही का फूल ।

मान-हरन—मान को शीघ्र दूर कर देनेवाला ।

७—केतकि—केवड़ा ।

रूसे—रुष्ट, क्रुद्ध।
मुसकि—मुस्किराकर।
मनमूसे—मन को चुराया है।
८—मुकताफल वेलि—मोतिया की लता।
९—मंदार—मदार, श्राक।
करवीर—करौंदा।
१०—सिरावहु—ठंढा करो।
१२—श्रनुसरि—पीछा करके।
डहडहे—प्रसन्न, हरे भरे।
१३—तुंग—ऊँचा।
उलहे—प्रसन्नता, श्रानंद।
१५—श्रवनी—पृथ्वी।
१६—कल्यानि—कल्याणी, मंगल देनेवाली।
१७—चाँदने—प्रकाश।
तम-पुंज—श्रंधकार।
गहवर—गंभीर, घना।
१८—मन-हरन-लाल—श्रीकृष्ण।
२०—भृंगी—भ्रमरी, तिलनी।
२१—जव—यव, जौ।
गद—गदा।
२४—सैनी—श्रेणी, पंक्ति।
सुसुम—सुंदर।
सुकर—सहज सुंदर।
२५—मुकर—ऐना, दर्पण।
विलोलै—हिलता हुश्रा।
२६—श्रपमाहिं—श्रपने में, श्रापस में।
२७—श्रँतरु—श्रंतर, श्राड़।
२९—निरमत्सर—निर्मत्सर, द्वेषरहित, ईर्ष्याहीन।
३२—जोति—प्रकाश।
३३—काछें—पास।
३५—कासि कासि—(सं०) कहाँ हो, कहाँ हो।
वदति—(सं०) कहती है।
३७—श्रहुरि बहुरि—घूम फिर कर।

तीसरा श्रध्याय

१—श्रवधि-भूत—निर्धारित समय तक रहनेवाले।
२—नैन-मूँदिवो—श्राँख मिचौनी।
सुहथ—श्रपने हाथ।
५—श्रपननि—श्रपने लोगों को।
६—सिल—शिला, यहाँ कंकड़ से तात्पर्य है।
७—प्रनत-मनोरथ—श्रधीनो की इच्छा।
सरसीरुह—कमल।
८—फनी-फनन—सर्प के फनो पर, कालिय नाग के सौ फनो पर।
श्ररपे—नृत्य किया।
धरत—(पैर) रखते हुए।
१०—हरें हरें—धीरे धीरे।
श्रटवी—पृथ्वी।
श्रटत—टहलते हो।
कूट—कोना, नोका।

चौथा अध्याय

१—प्रेम-सुधानिधि—प्रेम का अमृत-सिंधु ।

अलवल—टेढा मेढा, व्यंग्य ।

२—दृष्टि-बंध—नजरबंद ।

नटवर—जादू दिखलानेवाला, श्रीकृष्ण ।

३—हथ—हाथ ।

मनमथ के मनमथ—कामदेव के कामदेव, कामदेव का मन मथनेवाले ।

४—घट—शरीर ।

५—असन—भोजन सामग्री ।

७—पटुकी—कमर में बाँधने का वस्त्र, कमरबंद ।

छटा—शोभा ।

८—छादन—ओढनी, चादर ।

१४—भजते को भजै—अपने को जो याद करे अर्थात् प्रेम करे उससे प्रेम करते हैं, उसका भजन करते हैं, पारस्परिक प्रेम ।

अनभजतनि भजहीं – जो अपने से प्रेम न करे उससे प्रेम करता है, एकागी प्रेम ।

दुहुँअनि तजहीं—दोनो को छोड़ देता है, न अपनी प्रेमिका के प्रेम को सार्थक करता है और न निष्काम प्रेमिकाओ के प्रेम का प्रति-दान देता है अर्थात् अत्यंत निष्ठुर है ।

१६–ऋनी—ऋणी, ऋणग्रस्त ।

१७–उऋन—उऋण, ऋणमुक्त ।

१८–अप बस—अपने वश में ।

पाँचवाँ अध्याय

१—गॉसि—मनोमालिन्य ।

२—बिलुठत—लोटती है ।

३—तूल—(तुल्य) समान, बराबर ।

निरबधि–निर्बाध, बाधारहित, निरवधि, सर्वदा ।

४—रास–प्राचीनकाल मे गोपो में प्रचलित नृत्यक्रीडा, जिसमें स्त्री-पुरुष एक साथ घेरा बाँधकर नाचते गाते थे ।

५—मर्कतमनि–नीलम ।

६—उपंग–नसतरंग, एक बाजा ।

चंग–डफ की चाल का छोटा बाजा ।

७—मुरज–पखावज ।

रली–मिल गई, सम्मिलित हो गई ।

८—कठतारनि–करताल, ताली बजाना ।

१०–बिलुलित–झूलती है ।

अलि-सैनी–भ्रमरो की पंक्ति ।

११–मलकनि–आँखों की तिरछी अदा ।

१२–तिरप–नृत्य की एक गति ।
बाँधि–गति बनाकर ।
करतल–हथेली ।
लट्टू होत–हर्ष के मारे लोट लोट जाना ।
१४–चाहि–देखकर ।
प्रतिबिंब–छाया ।
१६–छेंकि–रोक कर ।
१७–सुख-सदन–आनंद का घर, अत्यंत आनंददायक ।
ढरि–रीझ कर, आकृष्ट होकर ।
१८–गवन–गमन, चाल ।
आगम–वेद ।
२५–व्रीडन–लजाना ।
२६–उरसि–वक्षस्थल पर ।
मरगजी-दला-मला हुआ ।
२७–करनी–हथिनी ।
२६–मकरंद–पराग धूलि ।
३२–अज–ब्रह्मा, आज ।
३३–कमला लक्ष्मी ।
अमला–निर्मल, शुद्ध ।
३५–विषय-विदूषित–विषय दोष से ग्रस्त ।
३७–हीन असर्धा–श्रद्धाहीन ।
बहिर्मुख–पराङ्मुख ।
३९–सप्त-निधि–सातों समुद्र ।
भेदक–तोड़नेवाली ।
धारहि धार–ऊपर ही ऊपर ।
४१–सार–तत्व ।

परिशिष्ट

२—सुदेस—सुंदर ।
७—थलज—स्थल से उत्पन्न ।
११–सूर्यकांत मणि—वह रत्न जो सूर्य की किरणों के पड़ने से अग्नि उत्पन्न करता है ।
१६–आनि—अन्य, दूसरा ।
विभचारि—व्यभिचार ।
१७—राका—रात्रि ।
मयक—चंद्रमा ।
१८–कैक—कई एक ।
२४–लुबधी—लोभित हुई, मोहित हुई।
२६–मंडन करत—सजाते हुए, शोभा बढाते हुए ।
३३–नैसुक–थोड़ा ।
३५–लोकमनि—लोकमणि, संसार के रत्न ।
पनस—कटहल ।
३६–गेंदुक - कंदुक, गेंद ।
त्रिभंगी—गले, कमर तथा पैरो से टेढे होकर बाँसुरी बजाने की चाल ।
४६–दृगंचल —नेत्र की कोर ।
रद-छद—दाँत लगने के चिन्ह ।
५६–कंद-कंदर्प-दर्प-हर-कामदेव के घमंड को नष्ट करनेवाले शिवजी को आनंददायक ।
६१–अकृतज्ञी—कृतघ्नी, किसी के उपकार को न माननेवाला ।

६४-चितनि—चिंतित-कार्य, इच्छा-नुसार वस्तु।
६६-विथुरिन—छितराया हुआ।
झाईं—झलक, छाया।
६७-आलात—एक सिरे पर जलती हुई लकडी।
६६-अविकल—ज्यों का त्यों, हूबहू, वही।
७३-त्रिगुन—तीनों गुण युक्त।
विजन—हवा।
७४-आवज—पुरानी चाल का बड़ा ताशा बाजा।
७६-कुहुकि-पक्षियों की मीठी बोली।
८९-सैनी—सैया।
उसेसी—तकिया।
६३-अंसनि—अंश, कधा।
६७-निसैनी-सीढी।
१११-तन—ओर।
निरमोलक—अमूल्य।
११४-अन अन भाँतैं-दूसरी दूसरी प्रकार।

श्रीकृष्णसिद्धांत पंचाध्यायी

११६-रसावधि-रस की सीमा।
१-अभिराम—मनोहर, सुंदर।
२-उसासा—श्वास, साँस।
३-महाभूत—पाँच तत्व, वायु, जल, तेज, आकाश और पृथ्वी।
४-इद्रिय—पाँच ज्ञानेंद्रिय और पॉच कर्मेंद्रिय।
तत्व—सार, यथार्थ वस्तु।
परमहंस—पूर्ण ज्ञानी सन्यासी।
५-प्रभव—उत्पत्ति।
६-सुपुप्ति—निद्रा।
भासें-प्रत्यक्ष रहे, दिखलाई दें।
८-पौगंड—प्रौढ, यौवन पार करने के वाद की अवस्था।
वलित—युक्त, मिला हुआ।
ललित—मनोहर, सुंदर।
नित्य किशोर—सदा सोलह वर्ष का वने रहना।
६-निरोध—चित्तवृतियो को रोकना।
१०-तिरशूली—महादेव जी।
११-हरि—इंद्र।
१२-दर्प-दलन—घमड को चूर्ण करने वाले।
१३-अवधि-भूत—सीमा तक पहुँचा हुआ, उत्कृष्ट।
नितसि—निचोड़, सार।
१४-ननु, ठीक, निश्चय के साथ।
अनुसर—अनुगमन करता है।
१४-विधि—जिसे करने के लिये शास्त्र की आज्ञा हो, विधेय।
निपेध—जिसे न करने की शास्त्र की आज्ञा हो।

१७–अनिमादि—अणिमा आदि ।
कीटांत—कीडे मकोडे तक ।
सर्वांतरजामी—सब के अंतःकरण का जाननेवाला ।
१८–फदे—फँसे हुए ।
१९–सच्चिदानंद—सत् + चित् + आनंद तीनो से युक्त, परमात्मा ।
२०–चिद्घन—ज्ञानमय ।
नित्य—सदा सर्वदा ।
२१–अखंड-मंडल—पूर्ण बिंब ।
२२–बलबीर—श्रीकृष्ण ।
रमिवे—रमण करने का; क्रीड़ा करने का ।
२३–उडुराज—चंद्रप्रभा ।
कुकुम-मंडित–गुलाल से रँगा हुआ ।
२५–विकस्यो—खिला, प्रकाशित हुआ ।
२६—शब्द-ब्रह्म—वेद ।
२७–ब्रज-जुव—ब्रज की युवती बाला ।
२९–नगधर—गिरिधारी, श्रीकृष्ण ।
३०–सौंहन—शोभन, पति ।
निषेवा–सेवा ।
३१–निगम—वेद ।
निदेशा—आज्ञा ।
परिहरि–त्यागकर, छोड़कर ।
३२–प्रीतम-सूचक—प्रीतम शब्द के यावत् पर्याय ।
कंचुकि–केचुल ।
३३–अभरन–आभरण, गहने ।
आनि–जाकर ।
३४–तुष्ट–प्रसन्न ।
बिमचार–उलटा ।
३५–रस बुकी–भक्ति रस से ओत प्रोत ।
३६–बिघनेस–बिघ्नों के राजा ।
३७–अरबर–अंडस, रुकावट । गुन-मय–पंचतत्व की बनी हुई ।
चिरस्वरूप–आत्मा ।
३८–प्रेम-पंथ–प्रेम से ईश्वर-प्राप्ति का मार्ग ।
न्यारोइ—निराला, अलग, भिन्न ।
आतमगामी–आत्मा को जानने वाला ज्ञानी ।
३९–अनावृत्त—जो आच्छादित न हो ।
४०–निरवृत्त–न ढँकी हुई, स्पष्ट ।
परा–ब्रह्म विद्या ।
४१–ब्रह्मानंद–परब्रह्म के ज्ञान से उत्पन्न आनंद ।
४२–छिछै–चाहते हैं ।
इछै–इच्छा करते हैं ।
४३–गानत–गाते रहते हैं ।
४४–पन पन–त्तण त्तण ।
घन वृधि–बहुत बढ़ना ।
४५–त्रिगुन–तीनों गुणों युक्त ।
४६–नूपुर–घुँघुरू ।
४८–काम विषै–रति शास्त्र ।
४९–बिषई—व्यभिचारी, भोग-लोलुप ।
५०–अनाकृष्ट–आकर्षित न होनेवाला

५३–अन्यारे–अलगाव के, दूसरापन का।

५४–धर्महिं रत–धर्म को सब कुछ माननेवाला, धर्मात्मा।

समल–दूषित, सदोष।

५५–विज्ञान–विशिष्ट ज्ञान।

आभासै–प्रगट हो।

५६–प्रेम-भगति–प्रेम के आधारपर किसी में भक्ति रखना।

५८–रति–आसक्ति, भक्ति।

नित्य-प्रिय–सदा प्रिय रहनेवाले।

५६–दार–स्त्री।

गार–आगार, घर।

६३–विहरत–भ्रमण करते हैं।

विपिन–वन।

६४–पारस—वह पत्थर जिसके छूने से लोहा सोना हो जाता है।

सौभग–सौभाग्य।

६५–गर्व—घमंड, एक भाव।

प्राकृत—प्रकृति के विद्वान्।

६६–रम्यो—रमण करना, क्रीड़ा करना।

समसरि—बराबर।

६७–दृष्टिबंध–नजरबंद, जादू।

दुरै—छिपै।

६८–अलक पलक की ओट—पलक के नीचे गिर कर आँख बंद कर लेने से।

६६–निगम-सार—वेद का तत्व।

अलबल—अंट संट।

७७–पौगंड—प्रौढ।

वलित—युक्त।

प्रापति—प्राप्ति, पाना।

७८–अभेद—कृष्ण तथा जीव में भेद नहीं है।

८१–ललना–स्त्री।

८२–जीवनमूरि–संजीवनी औषधि।

८३–अज–ब्रह्मा।

रमा-रमन—विष्णु।

८५–आराधे—पूजन किया।

८७–उद्गार—आधिक्य।

विध्वंसक—नष्ट करनेवाला।

निरोध—रोक।

उतंसक—बढानेवाले।

८८–इंद्रियगामी—व्यभिचारी।

८९–प्रेम सुगम्य—प्रेम ही से जो मिलने वाले हैं।

६१–चिद्रूप—ब्रह्म।

६२–मधु—मीठा मीठा।

९३–अंबुज–बादल।

६४–न्यारी–अलग, दूर।

९७–निकंदन–नाश करनेवाला।

६८–विलोलित–लटकती हुई।

मनमथ—कामदेव।

६६–उर्वी—उठीं।

१०१–सुपुप्ति–घोर निद्रा।

तुरीय—चौथी, अंतिम।

१०३–अखंडानंद–सदा आनदमय।

१०४–आवृत–घिरा हुआ।

१०५–रस वोपी—रस से भरी हुई।

१०६–श्रुति—वेद।

१०७–कर्मकांड—तप आदि कर्मों का विवरण।

परमानैँ–प्रमाणित करैं या मानैं ।
१०८–काम्य—इच्छित फल ।
१०९–रसी—मग्न हुई ।
निःसीम—सीमारहित ।
११०–जेनकेन—येन केन, किसी ।
अनाकर्ण–अश्रुत, न सुनी हुई ।
११२–स्रुवा–होम में घृताहुति डालने की लकड़ी की कलछी ।
११३–अष्टांग—योग के आठ अंग ।
११४–उत्कट—तीव्र, प्रबल ।
११५–सुलास—सुलास्य, नृत्य ।
अमल—निर्मल, निर्दोष
११६–करनिका—कर्णिका, मध्य ।
त्रिनि—दो
११७–आलात—जिस लकड़ी का एक छोर जलाकर चक्र सा घुमाया जाय ।
११८–बच्छस्थल–वक्षःस्थल, छाती ।
१२०–अनागत—अज्ञात ।
१३२ – उडुप—चंद्र ।
उडुगन – तारे ।
१३७–छिया—घिनौनी वस्तु ।

रूप मंजरी

१—रूपउ–रूप भी ।
३—सरसै–रस-सिक्त हो, विह्वल हो ।
रस-वस्तु–रस का आधार ।
४—अलि–भ्रमर ।
६—छाँही–छाया, प्रतिबिंब ।
९—तरनि–सूर्य ।
११–जोबन–यौवन, जवानी ।
१२–सुरँग–लाल ।
१४—दर्पन–ऐना, सूर्यकांत मणि, आतिशी शीशा ।
बिररौ–बिरला ।
१५–जराय–कुंदन से जड़े जाने पर ।
काच-करकचन—शीशे के टुकड़े ।
१६–मग—मार्ग, पंथ ।
१७–सूखिम–सूक्ष्म, पतला ।
१८–नाद–गान, भजन ।
अमृत–अमर कर देनेवाला ।
रूप-सौंदर्य, प्रेम ।
अमीकर–अमृत देनेवाला ।
१९–इकंग–एकांग, मिलाकर ।
२०–निरवारि–अलग अलग करके ।
२१–अगोचर–अनदेखा ।
२२–निबहति–निबहते, निर्वाह पाते ।
नगधर–गिरिधर, श्रीकृष्ण ।
२५–उघरे–स्पष्ट ।
गूढ–अस्पष्ट, गहन, न समझने योग्य ।
मरहठ–महाराष्ट्र ।
२६–नीरस—हृदयहीन ।
२७–रसविहीन—जिनके हृदय में सरसता न हो, रूखे ।
२८–स्मित–मुस्कराहट ।
२९–सितकारा–सीत्कार, आनंद के

कारण उत्पन्न आवाज।
०—दुलग—त्रास, आकर्षक।
१—भिदै—भीजे, रससिक्त हो।
२—पखान - पाषाण, पत्थर उपाख्यान, कथा।
३८—धौरहर—प्रासाद।
४०—सिखंड मोर की पूँछ।
४२-अमराव-बाग़।
४४—धातक-पोत—चकवा का बच्चा।
सारिका—मैना।
४५—चटसार—पाठशाला।
४७—कासार—जलाशय, तालाब।
निकाई—सौंदर्य।
४६—कुसेसे—कुशेशय, कमल।
५०—फुटक-शीशे के भीतर वायु के रह जाने से कण के समान बुलबुले।
५१—दुलावै—हिलावे।
५२—ननुकारति—अस्वीकार करती है, नहीं नहीं कहती है।
५५—पनिच—प्रत्यंचा, धनुष की डोरी।
५७—सर—शर, बाण, पराजित, सिर।
६१—हिमगिरिवर—हिमालय पर्वत।
हिमवद्-बारी—पार्वतीजी।
६२—लरिक समैं—लड़काई में।
६५—समुद्र की बेटी—लक्ष्मीजी।
६६—दिपय—प्रकाश करती है।
६७—सहज—स्वाभाविक।
उलेल—चमकती वस्तु।
६८—ब्याल-बाल—नागिन।

७०—खुभी—कान की लौंग, तरकी।
सुभी—सुंदर।
७५—बैसँधि—वयःसंधि, अवस्था का संधि-काल, यौवन का आगम।
७६—उलहे—उमड़े हुए, निकले हुए।
८२—सुढारा—सुडौल।
८७—अहित—शत्रु।
६२—जुवन राव—यौवन का राजा, कुच।
सैसव राव—बाल्यावस्था का राजा।
जबन—नितंब।
६३—मधि-देसा—बीच का अंग, कमर।
६५—उथराने-उथले हुए, कम हुए।
९७—अमल—निर्मल, सुंदर।
१०४—लैकारा—क्षयकारी, नष्ट करने वाला।
१०५—औटे—तपाए हुए।
१०७—बोपी—ओपी, चमकती हुई।
११२—छनक—क्षण।
११४—चहनि—देखना।
११६—मृगज—हरिण का बच्चा।
११७—पासी—पाश, फाँस।
११६—पुइ—पोई, एक लता जिसकी पत्ती लाल होती है।
अरुन—लाल।
पाट—रेशे, तंतु।
१२१—उभकै—देखै।
१२३—निबोरी—एक गहना।
१२६—नभसि – आकाश में।

१२७-विवि—दो।

१२६-परवाने—प्रमाण माना, ठीक समझा।

१३६-लीह—भूमि।

धरती—पृथ्वी, रखती।

जीह—जिह्वा।

१४६-सुमिल—सुडौल, एक मेल का।

सुठौनि—अच्छी, सुष्ठु, सुंदर।

१५१-सति—सत्य।

१५३-उपपति-रस—परकीया भाव।

१६७-प्रतिमा—चित्र, मूर्ति।

१७०-उनहारी-छाया।

१७३-तरि—नाव।

१७८-तनमन—शरीर तथा मन दोनो से।

खंडन—चुंबन।

१८९-बूझनी—प्रश्न।

१९२-तपनौ—जलन, शंका।

१९५-बारी—बाग।

१९६-बानें—सजधज बनाया।

चखौंडे—चँदवा, चंद्रातप।

२००-सुपेसल—गुलगुली।

आलबाल—वृक्ष के नीचे का थाला।

२०१-नीली नदिया—यमुना।

२०२-हूँ—मैं।

अली—भ्रमर, सखी।

२०९-अबोली—मौन, चुपचाप।

२१०-सुखम—सुडौल, छोटा।

२१५-वारि फेरि—निछावर करके।

२१८-बिजननि—पेखे।

२२१-बारा—देर।

२२५-सूखिम—सूक्ष्म, गुप्त।

२२८-पजारि—प्रज्वलित होना।

२३७-टटावक—काला टीका।

लौनो—लावण्यमय।

२४१-श्रौती—तीव्र।

२४३-लालनि-चोप—माणिक्य रत्न की आभा।

२४८-कुचील—मलिन।

२५३-निरवधि—असीम।

२५४-ब्रजजुवतिन को दर्पन—जिनका मुख ब्रजबाला देखा करती थी, श्रीकृष्ण।

२६६-दर्पन—सूर्यकांत मणि।

पुट पागि—बत्ती बनाकर तथा घी में डुबोकर।

२७२-आलय—घर।

२८०-जराय जरी—जड़ाव कार्य जिसमे जड़ा हुआ है।

२८२-कुंतलहार-केशावलि, बालों।

२९१-विवरन—रंग फीका पड़ना।

२९४-रहसि—एकांत में।

२९५-पति झाई-प्रतिबिंब, परछाईं।

२९६-बाल अर्क—प्रातःकाल का सूर्य।

३०३-आर्नव-नाव-समुद्री पोत।

३०५-घूँघरि—बादलो का घेर।

३१५-बरावै—बहलाकर व्यतीत करती है।

३१७-पटबिजना—जुगनू।

छटनि—शोभा।

उछटि—अलग होकर, उड़कर।

३१६-सकुनि—शकुंत पक्षी।

वंचक—कपटी।

३२५-सौंधो—सुगंधि, बाल धोने का मसाला।

३३७-उवानी—उदय हुआ।

तन—ओर (देखकर)।

३४४-उसास—स्वाँस।

३४५-उषी—लपट।

कसार—ताल, तालाब।

३४८-चीत्यौ—चैतन्य हुआ।

३५०-बगावै—फैलावै, बिखेरै।

छुरावै—छुलै।

३५१-फरी—गोल छोटी ढाल।

३५४-गिलि—निगल कर।

३५७-जरा—वह राक्षसी जिसने जरा-संध के दो टुकड़ो को जोड़कर पूरा मनुष्य बना दिया था।

३५८-अहरनि-लोहे का बड़ा ढोका जिस पर किसी वस्तु को रख-कर घन से पीटते हैं, निहाई।

३५६-तरुन-प्रबल।

३६२-अनावै—बुलावै।

३६४-सिसु-जोबन-नया यौवन, नई जवानी।

३७०-बितन-कामदेव।

नाट—लोहे की नोक।

३७३-बिधि—ब्रह्मा, कमल से उत्पन्न।

३७५-मुलकि—प्रसन्न होकर, नेत्रो की हँसी।

३७७-समीती—समेत, साथ।

३८२-चाँचरि—चर्चरी राग, एक गान।

३८३-पट-साड़ी, वस्त्र। पहपटिया-उपद्रवी, झगड़ालू।

३६०-सुरमंडल—एक प्रकार का बाजा।

ताल—मँजीरा।

आवज-एक प्रकार का बाजा।

३६६-कनाषन—कनखियो से, तिर्छी आँखें कर।

४०४=साइरि—सागर, समुद्र।

४१२-घैर—निंदा फैलना, चर्चा।

४३२-नौहरि—शरीर को तानना।

४४५-उनसौहीं-अनखाई हुई।

४५१-नृपाई-राजत्व।

४५२-नहुरै-एक रोग।

४५३-राती—लाल।

४५७-तर—धनाढ्य, लक्ष्मी के वाहन।

४५८-अखेटक-शिकार।

४६०-सोखन-शोषण।

छोभन-हृदय में क्षोभ पैदा करना, घबराहट।

सम्मोहन—मुग्ध कर देना।

४६५-कुसुम धूरि—पराग।

घूघरि—फैली हुई।

४६६-भीषम—भयानक।

४६६-बाल—बाला, स्त्री।

दुकाय—छिपाए हुए।

४७०-निदाघ—ग्रीष्म, गर्मी।

४७३-मृगीवंत—मृगतृष्णा।

४७४-झर—आग।
लवा—लावा।
४७५-अरबरै—घबडाती है।
४७६-समोध-समाचार, समझाना।
४८४-ग्रीव गोई—गला लटका दिया।
४९१-उयबानी—जँभाई लिया।
उसीसी—तकिया।
५०१-बारि-बारुका न्याय-जल तथा बालु के न्याय से।
निपीडे-दबाने पर।
थलराए—थिरने पर।
रसाय—रस दे, जल दे।
५०२-मादक—मोहनेवाली।
मधु—मीठी।
निहोरि—मनाकर।
निकाई—सुंदरता।
५०४-सुपेसल-गुलगुला, मुलायम।
आलबाल-थाला।
५०५-मनुहारि—समझा बुझाकर।
५०६-सिरावति—ठंढा करती है, बुझाती है।
४१०-उरसि—हृदय में।
५१३-बिबधान—व्यवधान, भेद, दूरी।
रसमोई—रस से भरी हुई।
५१८-एलाने—विकसित हुए।
परकिय-परकीया, परस्त्री।
५१९-कुरकुट-कुक्कुट, मुर्गा।
चुरकुट—घबडाना, सहमना।
उससि—घबडाकर।
५२०-करोत—आरा।
बिबि—दो खंड।
५२१-गौने—गए।
५२२-तन—की ओर देखकर।
५२३-सगबगि—बिथुरी हुई।
श्रमकन—पसीना।
पगी—रँगी हुई।
५२७-ओनू—पृथ्वी पर।
५३१-निस्तरी—मुक्त भई।
५३४-अगम—वेद, न समझने योग्य।
निगम—वेद।

रसमंजरी

१—आनंदघन—आनंद के बादल, आनंद की वर्षा करनेवाले अर्थात् देनेवाले।
रस-मय—रस से भरे हुए।
रस-कारण—रस को पैदा करनेवाले।
रसिक—रस का आनंद लेनेवाले।
५—जल-धर—बादल, समुद्र।
कलै—अवसर, इच्छा।
६—अनगन—अगणित।
ररै—रलै, मिलै।

१२–निछानै—पहिचाने ।

१४–मधुलिह—शहद की मक्खी ।

१५–निरमोलिक—अमूल्य, बहुत दाम का ।

१६–दूतर—दुस्तर, कठिन ।

१७–दूझै—दुःखी करे ।

१६–कर करि—हाथ से ।

२०–पाथरासि—समुद्र ।

२४–वनिता-भेद—नायका-भेद ।

२६–स्वकीया—अपनी विवाहिता स्त्री ।

परकीया—दूसरे की स्त्री ।

सामान्या—साधारण वेश्या आदि ।

२७–मुग्धा—कैशोर अवस्था की स्त्री, युवती ।

मध्या—पूर्ण युवती जिसमें पति के प्रति लज्जा तथा वासना समान हो ।

प्रौढ विहार—प्रौढा, प्रगल्भा, कामकेलि में दक्ष ।

२६–नऊढा—(नवोढा) तुरंत की व्याही हुई, पति समागम से संकोच करनेवाली ।

विश्रब्ध नऊढ़ा—पति पर कुछ प्रेम तथा विश्वास रखनेवाली।

३०–अंकुरै—अंकुरित हो, स्पष्ट हो ।

संकुरै—संकुचित हो, सिकुडी रहै ।

३१–अलि—सखी ।

३२–निर्वासित करै—बैठावे ।

३३–क्रोडी करि—गोद में लेकर ।

३४–वैसंधि—वयः संधि, बाल्य तथा कैशोर का मिलनकाल ।

३५–पारिदि—पारा ।

३६–ढरी—ढाली हुई ।

३८–मुक्ताफल—मोती ।

पानिप—पानी, चमक ।

४०–जमल—यमल, युग्म ।

४१–औघ–ऊँघना ।

४६–बलसि—बलि, बल, पेट की सिकुड़न ।

५२–चद्रचूड—शिव ।

सुकृती—पुण्यात्मा ।

५६–सोहन—शोभन, सुंदर ।

मध्यास्तु—मध्याः+तु, मध्या ।

५८–गहगोरी–गह+गोरी, प्रसन्नता के कारण जिसका गौरवर्ण खूब खिला हुआ है ।

५६–कोविदा—दक्ष, कुशल ।

६१–प्रगल्भ बैनी—बोलने में तेज़ ।

रसरैनी–रस+रमणी, रसिका ।

६३–बिचच्छिन—विचक्षण, चतुर ।

६६–सापराध—दोष सहित ।

विंगि—व्यंग्य, टेढा मेढा ।

६८–नलिनी-दल—कोई के फूल का पत्ता ।

बिजना—पंखा ।

बीजो—पंखा हाँको, हवा करो ।

६६–रचक—थोड़ा ।

करेरी—टेढा ।

७४–अव्यंगि—अव्यंग्य, स्पष्ट ।

रिस भौय—क्रोध मिश्रित ।

७५-सागस—सामने, पास ।

८१-कुश—काँटा ।

प्रगोरी—अत्यंत गोरी ।

८५-अवधारै—विचार करें ।

प्रतिबिंब—छाया, चित्र ।

९१-अंतर—भीतर ।

सुतंतर—स्वतंत्र, अकेली ।

९३-आँपु—चूहा ।

मंजारी—बिल्ली ।

उचरि परी—उछलकर कूद पड़ी ।

दइमारी—दैव की मारी, अभागी ।

९५-छतनि—घाव ।

सुरतिगोपना—पर-पुरुष के समागम को छिपानेवाली ।

९८-वल्लि—लता ।

१००-वाक्विदग्धा—बात करने में चतुरा ।

१०१-लखिपायी—प्रगट हो गया, छिप न सकी ।

सतर—टेढ़ी ।

१०४-पेट पातरैं—हलके पेट में ।

लच्छिता—लक्षिता, जिसका रहस्य छिप न सका ।

१०६-देसांतर—दूसरे देश मे, विदेश ।

विरह-जुर—विरह का ताप ।

प्रोषितपतिका, प्रोषिता-जिसका पति विदेश गया हो ।

११५-वलै—वलय, कड़ा ।

आधि—चिंता, दौर्बल्य ।

१२१-बाहु की वलय—बरेखी, जोसन आदि ।

नाड़िका—नाडी ।

जीति है—जीती है ।

१२८—अँवा-अगिनि—मिट्टी के बर्तनों को पकाने की आँवा की आग ।

१२९—चकमक—चकमाक, एक प्रकार का कड़ा पत्थर जिस पर लोहा रगड़ने से चिनगारी निकलती है ।

१३१-खंडिता—जिसका पति परस्त्री के पास रात्रि बिताकर सवेरे गृह लौटे ।

१४४-ऐंपरि—इस पर ।

१४८—दुसासन—उसास का उल्टा स्वाँस छोड़ना ।

१५४-कलहंतरिता—प्रिय से पहले लड़ बैठे और फिर पछताकर रोवे ।

१५६-घुरि—घुसकर, चिपककर ।

१५८-रवन—रमण, पति ।

१६२-तरारे—टेढा ।

अनखि—क्रोध करना ।

१६६-हरुए—हलके ।

गुर—गुण ।

बिरराई—भगा दिया ।

१६९-अवमाने—अपमान किया ।

बिकूल—प्रतिकूल, उलटा ।

१७१-ऊनौ करै—छोटा करै, हानि पहुँचावै ।

१७४–उत्कंठिता—संकेत स्थान मे प्रिय को न पाकर व्यग्र।

१७५—विरमाये—बहला लिया, रोक रखा।

१७६–मुर्फै—मुर्झाय, कष्ट पावे।

१६१–भोरे लये—बहला लिया, रोक लिया।

१६५–विप्रलब्धा—विरहिणी।

२०४–वामदेव—महादेव।

२०५–शूलिन्, हिमकर धर—महादेव।

२०६–मृड्-शिव।

२०७–त्रिनैन–शिव।

२०८–तरंगिनी—नदी।

२१३–गैब्रर—गजवर, बडा हाथी।
कवर-केशों का गुच्छा।

२१४–सुरति—प्रेम-समागम।
वासकसज्जा—पति – आगमन जानकर उसके सत्कार की तैयारी करनेवाली स्त्री।

२२६–सिरावै—ठंढा करे, बुझावे।

२३१—जोन्ह—चाँदनी।

२३६—अभिसारिका—प्रिय से मिलने के लिए जाती हुई नायिका।

२४०–त्रपा—लज्जा।

मुञ्च—छोड़ो, त्याग दो।
अभिसर—चलो।

२४३–वोट—ओट, आड़।

२५३–भंगुर—शिथिल, टेढी मेढी।

तूटि—टूटि।
लटी—पतली।

२५५–बगावै—सैर कराये, घुमाए।

२५६–पारिस–एक कल्पित पत्थर जिससे छू जाने से लोहा सोना हो जाय।

२६१–स्वाधीनरतिका, स्वाधीन-वल्लभा—जिसका पति उसके अधीन हो।

२६३–गरिमता—भारीपन।

२६४–बक्रिमा—बाँकपन, तिरछापन।

२७१–अरग–अरग—अलग–अलग, छिपाकर।

२७४–रस वोढ़ा—रसिका, रसमयी।

२८२–प्रीतम गवनी—जिसका पति विदेश जानेवाला हो।

२८८–घोरै—मलै, सहलावै।
अच्छर टकटोरै—अपने कर्म का लिखा पढती हो।

२९०–श्रीपति—विष्णु भगवान।

२६२–पटीर—चंदन।

२६६–दुक्रत—दुष्कर्म, पाप।
जीवत—जीते हुए।

३०४–प्रमदा—सुंदरी स्त्री।

३०५–धृष्ट—लज्जाहीन, वेहया।
शठ—दुष्ट, शरारती।
दक्षिण—अनेक नायिकाओं का प्रिय।
अनुकूल—एक स्त्री पर अनुरक्त।

३०९–कनक—सोना, खनक।
करुनावै—दया आवे।

३१२–भावते–प्रिय, प्रसन्न करने-वाला।

३१६–अनगन—अगणित, बहुत।
बिबि—दो, युगल।

३१७–निवेसि—निवेश, प्रवेश, गृह।
तकीजै—देखे।

३२१–करकस—कर्कश, कड़ा।

३२३–तपति—गर्मी, तपन।

३२७–भाव–प्रिय को देखने से मन मे जो विकार उत्पन्न होता है उसे भाव कहते हैं।

३२६–हाव—मन का विकार जब नेत्र आदि से प्रकट होता है तब उसे हाव कहते हैं। हाव ग्यारह प्रकार के कहे गए हैं।

३३१–हेला—नायिका की मिलन के समय विनोदमय क्रीड़ा।

३३२–रति—अनुराग, प्रीति।

३३६–स्तंभ—एक सात्विक भाव, जड़ता।
स्वेद—पसीना हो जाना।
पुलकित अंग—अंगो में रोमांच होना।
स्वरभंग–आनंद के कारण स्वर का बिगड जाना।

३३७–बिबरन—रंग का बदल जाना, एक भाव।
कंप—प्रेमानंद में अंगो का कँपना।

विरह मंजरी

१—उच्छलन-उमड़ना।
मैन–कामदेव, प्रेम।

५—प्रमोधत–सात्वना देते हैं।

६—प्रतच्छ–प्रत्यक्ष, सामने रहते।
पलकांतर–अप्रत्यक्ष, आँखो की ओट

६—संभ्रम–मान, व्याकुलता।
बलिता–भरी हुई, युक्त।

१०–छिए–छूने पर, लगने पर।

१३–अरबिंद-सुत–कमल से उत्पन्न, ब्रह्मा।

१५–पुतरी–पुतली।

१८–तदाकार–उसी रूप का, वैसा ही।

२१–गैन–गगन।

२३–अटपटी–गूढ।

२४–असंत–असाधु, दुष्ट।
मयमत–मत्त।

२५–कुहुक–मीठी बोली।

२६–किलकार–हर्षध्वनि।

२७–तति–ताँत की डोरी।

२८–नूत–(सं० नूद) शहतूत।
पचवान–कामदेव।

३२–धूँधरी–धूमिल, छाई हुई।

३३–लवंगलता–एक प्रकार की बेल।

३४–सुपेसल–मुलायम।

उसीसा—तकिया ।

३५—परिरंभन—आलिंगन ।

३८—अमेठ—ऐंठ ।

बधुवनि—बधुओं को ।

३६—तपति—ताप, गर्मी ।

बई—बढ़ा दी ।

४०—सियरे—ठंढा ।

४१—रतवाहि—डाँका ।

५२—धुरवा—बादल ।

पटा—बिना धार की तलवार का खेल ।

५३—नकबानी—सताना ।

अवधि—आने का दिया हुआ समय ।

५५—होड़नि—बाजा लगाकर ।

५८—बीज—बिजली ।

६२—उडुप—चंद्रमा ।

६४—चंदव—चंद्रयुक्त पंख ।

६६—जुर—ज्वर, ताप ।

६६—अरुगाई—एक एक बात समझाकर ।

७०—जाती—मालती पुष्प ।

७१—कलिंद नदिनी—जमुना ।

सुकर—सुंदर ।

७४—प्रजरि—प्रज्वलित ।

७५—उगाहन—उग्रह, छुटकारा ।

७६—दाय—दाँव ।

७७—विधुंतुद—राहु ।

इकसारा—एक समान, बराबर ।

८२—महाबकी—पूतना राक्षसी ।

८३—गिलि जाइ—निगल जाय ।

८६—मकर—एक राशि, शीतकाल ।

रहसि—प्रसन्न होकर ।

८७—जानमनि—ज्ञानी ।

८६—अनैये—लाती हूँ ।

६१—दाधे—जले ।

१००—अरबरे—चंचल हो गए ।

भ्रमरगीत

१—नागरी-नगर-निवासिनी, सुंदरी युवती ।

आगरी—(सं० आकर) खान, समूह ।

प्रेम-धुजा—(प्रेम + ध्वजा) प्रेम करनेवालियों में अग्रगण्या ।

रस-रूपिनी—रस की अवतार, रसीली ।

२—ओसर—अवसर, समान ।

एक ठाऊँ—एकांत स्थान, संकेत ।

मधुपुरी—मथुरा ।

३—बाम-(सं० वामा) स्त्री ।

वेली—(वेलि) लता ।

द्रुम—वृक्ष ।

पुलक-प्रेम, हर्ष आदि के उद्रेक में रोमकूपों का प्रफुल्लित होना, रोमांच ।

कंठ घुटे-गला भर आना ।

विवस्था—व्यवस्था, वृत्त, नियम।

४—अर्घासन–(अर्घ + आसन) पूजा कर आसन देना।

नीके–भले, अच्छे।

बलबीर–बल्देवजी के भाई श्रीकृष्ण।

रसाल–रस भरी, मीठी।

५—तीर–पास, समीप।

६—आनन–मुख।

आवेस–आवेश, उद्वेग।

प्रबोधहीं–समझाते हैं।

७—अखिल–समग्र, सब।

दारु—लकड़ी।

सचर–चर, चलनेवाला।

जोति–ज्योति, तेज।

८—स्रुति–कान।

दिखाइ–दिखलाई देता है, भान होता है।

ठगौरी–ठगो की सी माया, मोहनी शक्ति।

९—सगुन–सगुण, साकार, सत्व-रज-तम तीनो गुणो से युक्त।

उपाधि–कपट, छल, विकार।

निर्गुन–तीनो गुणों से रहित।

निराकार–जिसका कोई स्वरूप नहीं है।

निर्लेप–जो सभी विषयो से दूर है।

अच्युत–जो च्युत न हो, दृढ़, अविनाशी।

११–अंड–पिंड, लोक, मंडल।

जाता–लय होता है।

जुगुत–युक्ति, उपाय।

परब्रह्म-पद-धाम–परमेश्वर के चरणो में स्थान।

१२–जोग–योग, योग्य।

पियूषै–पीयूष, अमृत।

धूरि–धूलि, कर्म-योग के लिये यह शब्द आया है।

१३–ईस–महादेवजी।

धूरि-छेत्र–संसार, पृथ्वी।

१४–बंध–बंधन।

बिमुख–उल्टे, विरुद्ध।

१५–सद्गति–अच्छी गति।

१६–पचि मुये–पच कर मर जाते हैं।

१७–पद्मासन–योग की साधना में पालथी मारकर बैठने का एक ढंग।

सिद्धि–योग के पूरे होने पर प्राप्त फल, अणिमादि आठ सिद्धि।

समाधि–योग का श्रेष्ठ फल, सासारिक सुख दुःख से मुक्ति।

साजुज्य–(सायुज्य) ब्रह्म में लीन होना, चार प्रकार की मुक्ति में से एक।

१८–निर्गुन गुन–जिस गुण में कोई भी गुण न हो।

१९–नेति–(न + इति) जिसका अंत न हो।

उपनिषद–वेद की शाखा ब्राह्मणो के अंतिम भाग, जिनमे आत्मा, परमात्मा आदि का निरूपण है।

टेक-सहारा, आश्रय।
२०-दरपन-दर्पण, ऐना।
अमल-निर्मल, स्वच्छ।
२१-और-अन्य, दूसरे।
२२-आसक्ति-प्रेम।
२३-लौ लागे-स्नेह उत्पन्न हो।
वस्तु-दृष्टि-प्रत्यक्ष वस्तु, चीज को देखने पर।
तरनि-सूर्य।
गुनातीत-(गुण + अतीत) गुणों से परे, निर्गुण।
२५-निहकर्म-भले बुरे कर्मों का भोग कर लेने पर उनसे छुटकारा मिलना, कर्म से परे।
२६-परमान-प्रमाण, प्रतीति, सत्यता, इयत्ता।
अतीत-पृथक्, न्यारा।
२७-नस्वर-नश्वर, नाश होनेवाले।
अधोछज-अधोक्षज, कृष्ण या विष्णु का एक नाम।
२८-नास्तिक-अनीश्वरवादी, ईश्वर को न माननेवाला।
करतल आमलक-जिन्हें ब्रह्मांड हथेली पर के आँवले के समान है, भारी ब्रह्मज्ञानी।
२९-वीरी-पान।
बागे-पहिरने के वस्त्र।
चुचात—जल भर आना।
तरक—तर्क, वाद।
३०-बिडरात फिरह—मारी मारी फिरना।
कर-अवलंबन—हाथ का सहारा
३१-दुरि दुरि—छिप छिप कर।
कोरि—करोड़।
बहुताइत—बहुतों के, अनेक प्रेयसियों के।
३३-बुध—बुद्धि।
३४-ब्याल—सर्प, अघासुर।
अनल—आग, दावाग्नि।
विष-ज्वाल—विष की जलन, कालिया नाग।
३५-करनहार—करनेवाले, बनानेवाले।
चित्र—विचित्र, आश्चर्यजनक।
३७-इस्त्री-जित—(स्त्रीजित्) स्त्री द्वारा जीते गए, स्त्री के वश।
लछ—लक्ष्य, लक्ष्मण।
लाघव—हाथ की फुर्ती।
संधान—निशाना लगाना, लक्ष्य पर मारना।
विरूप—कुरूप, रूप बिगाड़ देना।
३६-७ पदों में रामवतार पर उपालंभ है।
३८-वनमाली—श्रीविष्णु, श्रीकृष्ण।
अकाय—शरीर।
सत्त—सत्य, सच्चाई।
इस पद में वामनावतार पर उपालंभ।
३९-तोषे—तर्पण किया, तृप्त किया।
परशुरामजी ने पिता की आज्ञा से माता रेणुका को मारा था

और पिता का बदला लेने को पृथ्वी को क्षत्रियहीन कर दिया था ।

४१–दंड—यहाँ खंभे से तात्पर्य है । नृसिंह अवतार के प्रति उपालभ । प्रह्लाद ने पिता के प्रति द्रोह कर भगवान की भक्ति प्राप्त की थी ।

४१–छुधित—भूखा ।
रुक्मिणीहरण का उल्लेख कर उपालंभ ।

४२–अवेस—आवेश, चित्त की आतुरता ।
परम—अत्यंत बढ़ा हुआ, उत्कृष्ट ।

४३–नेम—नियम, धर्म ।
तिमिर—अंधकार ।
आवेस—व्याप्ति, सचार ।
वारि—निछावर करके ।

४४—दुविधा-ज्ञान—ज्ञान मे साकार निराकार आदि भेद रूपी शंकाएँ ।

४५–पुंज—झुंड, समूह ।
अरुन—अरुण, लाल ।

४८–मधुकारी—मधूकरी माँगनेवाला ।
बधकारी—वध करनेवाला ।
पातकी—पापी ।

४९–बापुर—वापुरो, वेचारा ।
गोरस—दूध ।

५१–रस—समान ।
छंद—छल की बातें ।

५२–खल—दुष्ट
बादि—व्यर्थ ।

५४–चतुरंगी—चार रंग की, बहुत प्रकार की ।
मुरारि—सुर असुर को मारनेवाले श्रीकृष्ण ।
त्रिभंगी—श्रीकृष्ण, जो बाँसुरी बजाते समय पैर, कमर और गर्दन टेढी कर खड़े होते थे, तीन स्थान से टेढी कुब्जा ।

५५–मधुवन—मथुरा ।

५७–संथा—पाठ, एक दिन का पढा हुआ भाग ।
चटसार—चटशाला, पाठशाला ।

५८–विषवारे—विषैले, कपटी ।
भुअंग— विषधर, सर्प ।

५९–जग-निंद—संसार भर मे निंदित ।
अलिंद—(अलि + इंद्र) भौरा ।

६०–भृंग संग्या करि—भ्रमर नाम रखकर ।
लोपी— मिटाकर ।
फाटि हिय दृग चल्यौ—हृदय फटकर आँखो से बह चला ।

६१–मेंड – मर्यादा, सीमा ।
कूल—किनारा ।
तृन—तिनका ।

६२–कृतकृत—कृतकृत्य, सफल मनोर्थ ।

जानि—ज्ञान ।

निरूपि—विवेचन करके ।

६४—परमानंद—लोकोत्तर उत्कृष्ट आनंद ।

पटतर—समानता ।

विषमता—विरोध, असमानता ।

६५—व्याधि—रोग, विकार ।

आधि—चिंता ।

६७—गुल्म—छोटा पौधा ।

६८—मधुकर – भ्रमर ।

६९—जीवनमूलि—संजीवनी बूटी, अति प्रिय वस्तु ।

७०—अवलंबई—जिन्होंने तुम्हें अपना आश्रय सर्वस्व मान रखा है ।

मेलौ—गिराते हो, डालते हो ।

७२—नातरु—नहीं तो ।

७३—कामतरोवर—कल्पवृक्ष, इच्छानुसार फल देनेवाला वृक्ष ।

उलहि—निकलकर, प्रस्फुटित होकर ।

७४—तरंगिनि—नदी ।

७५—व्यामोहक—मोह उत्पन्न करनेवाली ।

जारी-जाल ।

विहार—लीला ।

पुजनी—ढेर ।

गोबरधन लीला

२—कलोले—इच्छा किया, उत्साह हुआ ।

४—मघवा—इंद्र ।

उद्दिम—उद्यम, कार्य ।

तिन—तृण ।

५—उमाहै—प्रेरित होकर, उत्साहित होकर ।

बराक—वेचारा ।

६—सकट—छकड़ा, गाड़ी ।

बिंजन—खाद्यपदार्थ, भोजन का सामान ।

१२—सुरपति-रवनी—इंद्रपत्नी शची ।

१२—गोधन—गायो ।

१३—बिगसे—विकसित हुए, प्रसन्न हुए ।

१६—जग - संसार, राज्य ।

१७—खाती—रार, बैर ।

बाती—बात, औकात ।

पछ—पक्ष ।

२१—उरगन—साँपगण ।

२२—अनु अनु—अनेक प्रकार के ।

१७—साप वेसना—केंचुली ।

२६—तरकि—तड़प कर ।

३१—पाँख—पखो को तोड़ मरोड़ ।

३४—झर—वर्षा ।

३६—धुरि—गले मिलना ।

३९—नगधर—गिरिधारी ।

सींव—सीमा ।

३८—कुटक—कडुआ ।

श्याम सगाई

२—गोद पसारि—आँचल फैलाकर।
सोहनी—शोभायमान।
३—पौरि—द्वार, फाटक।
अरदास—प्रार्थना।
५—चरबाई—चंचल, दुष्ट।
अचपलो—चंचल
७—नाकँ आई—हैरान हो गई।
बात—विवाह की बातचीत।
८—ब्याउ—विवाह।
११—लड़ैती—प्यारी, स्नेहपात्री।
चहैकु—चँहक कर, घबड़ा कर
१४—कारे—काला साँप।
१५—गारुडी—साँप के विष को उतारनेवाला।
१७—पाँय लगौ—प्रणाम।
२०—बाङ्गी—व्यर्थ की बात, बकवाद।
२३—डोल—झूला, हिंडोला।
झोटा—पेंग, झोंका।

रुक्मिणी मंगल

३—दई—दैव, ईश्वर।
४—चहति—देखती।
माल—झुंड, समूह।
गलित नाल—डाँड़ी से टूटकर अलग हुई।
५—ऐन—घर।
अरबिंद—कमल।
६—अलि—सखी।
पुहुप-रेनु—पुष्प-रेणु, फूल की धूलि, पराग।
८—तपत उसास—तप्त स्वाँस, गर्म साँस।
कन्या-विरह-दुःख—कुमारी रहते हुए कैसा विरह और उसका कष्ट कैसा, जो कहा जा सके और वह भी एक कुमारिका द्वारा।
६—सुभग—सुंदर।
अरसो—हठ से।
१०—तातँ—गर्म, तप्त।
मति—नहीं।
१२—दुरी—छिपी।
रति—प्रेम।
सुर-भंग—स्वरभंग, कष्ट के कारण आवाज का बिगडना।
स्वेद—पसीना।
जडताई—जडता, कष्टाधिक्य से चेतनता का लोप।
१३—टकी लग जाई—अन्यमनस्कता से किसी एक ही ओर देखते रह जाना।
मुरझाई—मूर्च्छा।

१४-बिबरन तन—शरीर का रंग बिगड़ जाना।
१६-ढरहीं—गिरते हैं।
१७-दवा—अग्नि।
ऑवा—मिट्टी के वे कच्चे बर्तन जिन्हें सजाकर तथा चारों ओर से आग लगाकर पकाते हैं।
तजि—जल कर।
१८-मोचत—छोड़ती है, लेती है।
ढरारे—ढुलकनेवाले।
१९-कुलकानि—वंश की मर्यादा।
छीजै - नष्ट होती है।
२०-ज्यों—जिस प्रकार।
अनुसरौं—अनुगामिनी हो सकें, पत्नी हो सकें।
झट—ठप।
२१-नगधर—गिरिधारी।
अंतर पारै—दूर रखे, मिलने न दे।
२२-परिहरि—छोड़कर।
ओपी—भरी हुई, भींगी हुई।
२३-बॉछन लागे—चाहते हैं, इच्छा करते हैं।
२४-सिरायकै-पोछकर।
२५-खोलि—साफ साफ, स्पष्ट।
जदु-देव—श्रीकृष्ण।
२६-पतीजो—विश्वास करिएगा।
२७—पवन-गति—वायु के समान वेगवान चाल से।
आरति—आर्ति, दुःख।
२९-रूख—वृक्ष, पेड़।
३०-अलि—भ्रमर।
जंत्र—वाद्य-यंत्र, बाजा।
३१-मार—कामदेव।
चटा—शिष्य।
३२-विहंगम—पक्षी।
३४-बारे—बालक।
३६-अरक—अर्क, सूर्य।
३७-जालरंध्र—मकान की जाली।
घुरवा—छा जाना।
उरवा—उर, हृदय।
मुरवा—मोर।
३८-बगर—ऑंगन।
४०-भावती—अच्छी लगे, पसंद।
४१-सिहपौरि—सिंहद्वार, फाटक।
४२-परिचार—सेवक।
४४-छिप्र—वेग से।
प्रभु—स्वामी।
ब्रह्मन्य—ब्राह्मण।
पौरिया—द्वारपाल, दौवारिक।
४५-सचु-सुख।
उडुमंडल—आकाश।
४६-दिनेस—सूर्य।
किंकिनि—करधनी।
४९-सैन—शैया, पलंग।
५०-उसनोदक—(उष्ण+उदक) कर्म जल।
५२-कागर—कागज, पत्र।
नवीनो—नया।
श्रीधर—श्रीकृष्ण।
५३-ऑंचे—लग गए।
५४-सिरावत—ठंढा करती है।
५९-विलगु—अलग, दूसरी।

उधरो--उद्धार करो।

६१-परिचारि—दासी।

६२-पुरदर—इंद्र।

६३-कालकूट—विष, हलाहल।

परतंतर—परतंत्र, पराधीन।

६४-पानिप—जल।

घोरे—घुले हुए।

ओरे—ओला।

६५-सिसुपाल—चेदि देश का राजा।

रुकुम—रुक्म, विदर्भ नरेश भीष्मक का पुत्र तथा रुक्मिणी का बड़ा भाई।

६६-वारन-वृंद—हाथियों का झुंड।

गोमायन—शृंगाल।

६७-विडारौ-नष्ट कर दो।

६८-परेवा—कबूतर।

६९-बरिहौं—जला दूँगी।

७०-स्याल--सियार।

७२-बानक—बनावट, शोभा।

हरबर—जल्दी में।

७४-दारु—लकडी।

सार—तत्व।

७५-अरबर—फुर्ती से।

कुंडिनपुर—विदर्भ की राजधानी।

७६-तरफरै—तड़प रही है, घबड़ाती है।

७७-त्रिपित—प्यासी।

चकोरी—एक पक्षी, जो चंद्र को निरंतर देखती रहती है।

७८-तरकन—टूटना।

७६-डहडह्यो—प्रसन्न।

८१-बहुर्यो पायै—लौटा हुआ पाया।

८५-काम-लावन्य—कामदेव के समान सौंदर्य।

८६-अलकन—बाल की लटें।

पाग—पगड़ी।

८८-मद-गज—मस्त हाथी।

चहले—कीचड़, दलदल।

मटके—हिले।

६०—श्रीवत्स - विष्णु भगवान।

९१-छटा—बिजली की चमक।

६२-भरे भवन के चोर—वह चोर जो बहुत सामान देख कर क्या ले जायँ क्या न ले जायँ के फेर मे पड गया है।

६५-मुख धूरि जु परिहैं—असफल हो चले जाएँगे।

६६-मद-मथन—गर्वप्रहारी।

बिखाद—विषाद, दुःख।

ओज—दर्प, अहंकार।

६८-ऊजन—विशाल, दृढ।

अंबिका—गौरीजी।

६६-नभ घन—आकाश के बादल।

बरम—वर्म, कवच।

चरम—चर्म, ढाल।

१०१-पखारि—धोकर।

देवालय—गौरीजी का मंदिर।

१०२-अरचि—अर्चा, पूजन करके।

चरचि—चंदन लगाकर।

१०३-बरदाय—वरदान देनेवाली।

१०६-बिकसी—प्रसन्न होकर।

मठ—यहाँ मंदिर से तात्पर्य है।

झकैं—झगड़ें।

१०७—मनमथ—कामदेव।

१०८—प्रतिबिंब—छाया।

उनमानी—अनुमान किया।

धर—धरा, पृथ्वी।

११०—अंबर—आकाश।

गहगह्यौ—प्रभायुक्त।

१११—रदन—दाँत।

११२—खुभी—कान का एक गहना।

काम-कलभ—कामदेव रूपी हाथी का बच्चा।

११४—उरेझा—फाँस।

वेझा—वेध्य, निशाना।

११७—हरैं हरैं—धीरे धीरे।

ठग-मूरी—जड़ी जिसे ठग खिलाकर पागल बना देते हैं।

११९—मधुहा—शहद निकालने वाले।

१२१—आभासी—ज्ञात हुई, मालूम पड़ी।

नीरद—बादल।

१२२—जूप—यज्ञ का खंभा।

बजमारे—वज्र से हत।

१२३—कूकत—भौं भौं करते हैं।

१२५—मागध—मगधनरेश जरासंध।

१२७—कुलही—टोपी।

सुदामा चरित

१—दुजवर—द्विजवर, ब्राह्मण-श्रेष्ठ।

अलिपति—भ्रमर, कोयल।

सरसीरुह—कमल।

२—अकिंचन—तुच्छ, दरिद्र।

संसार-बयार—दुनियादारी की हवा।

३—विषम-अगर विकट गृह, भयानक स्थान।

४—उपसम—वासनाओं का दमन, शांति।

५—तिसा—तृषा, प्यास।

प्रतिपारै—पालन करै।

७—लस्यो—कृश हुआ, दुर्बल

८—कमलाकांत—लक्ष्मीपति, श्रीकृष्ण।

अरस—आलस्य।

१०—चक्रपानि—चक्रपाणि, विष्णु भगवान।

परसहु—स्पर्श करना।

१४—ऐना—ठीक, यथोचित।

१५—सुथरी—स्वच्छ, साफ।

बंदन—रोली, रोचन।

धुरकी—छिड़की हुई।

१६—ढोरत—हिलाती है।

२२—अटक—पैरो में बिवाई फटने से कड़े नोक से बन जाते हैं, जिनमें वस्त्र फँस जाता था।

२३-पाइ—भोजन कर लेने पर ।
२८-रमन—रमण, श्रीकृष्ण ।
३०-चवाव—विचार ।
३२-बधिर—बहरा ।
मुदित—प्रसन्न ।
३४-संभ्रम—मान, सहम ।
अमरनि—देवताओं ।
३८-विभूति—ऐश्वर्य, संपत्ति ।
४१-तूरन—तूर्ण, शीघ्र ।

भाषा दशम स्कंध

प्रथम अध्याय

नव-लच्छन—श्रीमद्भागवत में सृष्टि की उत्पत्ति तथा लय के संबंध मे जो वर्णन है उसके दस भेद हैं, जिनमें प्रथम नौ लक्षण तथा दसवाँ लक्ष्य माना गया है।

आश्रय—परमेश्वर श्रीकृष्ण दसवें विषय लक्ष्य हैं जिन्हे अच्छी प्रकार मनोगत करने के लिये अन्य नौ विषय हैं।

कृष्णाख्य—श्रीकृष्ण की कीर्ति ।

सुख छीजै—सुखपूर्वक जीवन व्यतीत कीजिए ।

श्रीधर स्वामी—श्रीमद्भागवत की प्राचीनतम टीका इन्हीं की बनाई हुई है।

दरेर—धक्का, वेग ।

महदादिक—महत् या महत्तत्व आदि जैसे पंचमहाभूत आदि। सृष्टि के कारण रूप प्रकृति के विकार। ये ही सृष्टि के कारण हैं जिन्हें सर्ग कहते हैं।

विदुष—विद्वान् ।

विसर्ग—कारणों से जो स्थूल सृष्टि होती है।

वितान—विस्तार ।

स्थान—सूर्य आदि की अपनी मर्यादा में स्थिति ।

पोषन—पोषण, भक्तो पर दया ।

ऊति—असाधु दुष्टों का भूतलोक ।

मन्वंतर—मनु आदि के धर्म ग्रंथो के अनुसार आचरण करने की प्रवृत्ति ।

ईसान कथा—भक्तो की कथा ।

निरोध—दुष्ट राजाओ को दंड देना, दुष्ट मनोविकारो को रोक कर भगवान मे मन लगाना ।

भर्ता—पालन करनेवाला ।

चाहि—देखना ।

विभावन—शोभा देनेवाले ।

मुमुषिनु—मुमुक्षुओ को, मुक्ति चाहने वालो को ।

संसृति—जन्म-मृत्यु ।

पसुघ्न—पशुघ्न, पशुत्व का नाशक ।

तिमि—बड़ी मछली ।

दुरत्यय—भारी दुष्कर्म ।
अन्यारौ—फेका, मारा ।
अर्भ—बालक ।
वर्म—कवच, रक्षक ।
वैयासिक—व्यास पुत्र, शुकदेवजी ।
पृच्छक—प्रश्नकर्ता ।
किक्यान—केकान देश के घोडे ।
पलान—चारजामा ।
जंता—सारथी ।
आनक दुंदुभि—वसुदेव ।
अमै—अनिष्ट, कुकर्म ।
तृनजोक—हरियाली का कीड़ा ।
सुरापी—राक्षस ।
निग्रह—आग्रह, हठ ।
धाता—ब्रह्मा ।
अनृत—झूठ ।
बाल विधि को—ब्रह्मा के पुत्र नारद ।
कषाइ—कसैलापन ।

द्वितीय अध्याय

मागध—मगध देश का राजा ।
अरगाने—मौन धारण कर ।
महिम—महिमा, महत्व ।
बगर—घर ।
विसंस्रुत भयौ—गिर गया ।
सुसा—स्वसृ, वहिन ।
गुर्विनी—गुर्विणी, गर्भयुक्त ।
श्रेय—उत्तमता, मंगल ।
सीथ—अन्न का दाना ।
प्रपन्न—शरणागत ।
लिलात—दीनता से बोलना ।
ऊर्ननाभि—मकड़ी ।
विस्फुलिंग—चिनगारी ।
सन्निधि—पास ।
उखटि हूँ परे—लड़खड़ा कर गिरे ।
कूख विषै—कोख मे ।
वृंदारक-वृंद—देव समूह ।

तृतीय अध्याय

बनराजी—वन का समूह ।
अंबुद—बादल ।
छवि-जटी—शोभायुक्त ।
कौस्तुभ—विष्णु भगवान के गले की मणि ।
तरुन—प्रबल ।
भू-भर—पृथ्वी का भार ।
अवहेरे—देखा ।
उपसंहरौ—समाप्त करो ।
सुतरिपु—कंस ।
दुख घूमि—व्यथित होकर ।
कुसर—कुशल ।

चतुर्थ अध्याय

संस—संशय, शंका ।
रौर—कोलाहल ।
तलपते—तड़पकर, शीघ्रता से ।
अखुटत—लड़खड़ाते हुए ।
भनैजी—भाजी, बहिन की पुत्री ।
राजिवदल—कमल का पत्र ।
गारौ—गर्व ।
ब्रह्महा—ब्राह्मण का हत्याकारी ।
सौनक—कसाई ।
वलान—बढ़कर बातें करना ।
इलावृत वन—जिस वन मे जाते ही पुरुष स्त्री हो जाता था ।

वृकन—भेड़िए।
अजन—बकरे।

पंचम अध्याय

दूधी—दूध देनेवाली।
प्रथम प्रसूता—पहले बिआन की, तरुणी।
मागध—भाट।
अजिर आँगन।
पदिक—पुखराज।
समोधत—समझाते हैं।
अदिष्ट—अदृष्ट, भाग्य।
कलमले—घबड़ाए।

षष्ठ अध्याय

चित्र—विचित्र, आश्चर्यजनक।
बकी—बकासुर की बहिन पूतना।
बनक—चाल, बनावट।
छुटनौ—छोटा सा।
करतार—(कर्त्तरी) कटार।
बिथकित—व्यथित।
कढोरि—घसीट कर।

सप्तम अध्याय

बरहे—बाहर खेत आदि मे।
अभिचार—मंत्र द्वारा प्रेरित।
कूट—कूटाचल, पर्वतशृंग।
भावतौ—इच्छित बात।
वातचक्र—घूमती हुई आँधी।
साँकरी—कष्ट।
ब्रुरि—लिपट।
करच करच—टुकडे टुकडे।

अष्टम अध्याय

अतिं इंद्री ज्ञान—जो ज्ञान इंद्रियों के परे है।

सम्यक—पूर्ण, अच्छी प्रकार।
अरग—एकात में, चुपके से।
चखौंडा—दिठौना।
नथूनी—बेसर, बुलाक।
झँगूली—बिना बाँह का कुरता, झबरा।
बघूली—सोने में मढ़ा बघनखा।
गोहन गोहन—साथ साथ।
खरिक—गोशाला।
खोरि—गली।
खीर—दूध।
कितौ—कहता था।
माखन मो हारे—मक्खन में लपेट कर।
हरैं हरैं—धीरे धीरे।

नवम अध्याय

औटे—तपे हुए।
पृथु—चौडी।
बिलुलित—लहराती हुई।
कबरी—चोटी।
नेत—डोरी जिससे मथानी चलाई जाती है।
लड़िक—प्यार।
श्रोणी-भर—नितंबो का भार।
नोई—डोरी।
जेवरी—डोरी, दाम।
परिवानै—मानते हैं।
मायक—माया संबंधी।
दरबी—कलछुल, चमचा।

दशम अध्याय

भव-पारद—संसार सागर से पार करनेवाला।

खेह—मिट्टी ।
अलका—कुवेरजी की पुरी का नाम ।
अव्यय—नित्य, विकार शून्य ।
बीय—दूसरा ।
ऊक—लुक, उल्का ।
निधूम—धूएँ से रहित ।
बिवि—दो ।
गुह्यक—यक्ष ।

एकादश अध्याय

दारन—कुल्हाड़ा ।
पाँवरी—खड़ाऊँ ।
नाख्यो—डाल दिया ।
आड़—टीका ।
निर्जर—देवता ।
पटेरहिं—पानी में होनेवाली एक घास ।
अगदराज—औषधियों का राजा ।

द्वादश अध्याय

अमोद—आनंद, प्रसन्नता
मधि नायक—बीच का बडा टिकड़ा या रत्न ।
महुअरि—मुख से बजाने का यंत्र ।
नर-दारक—मनुष्य का पुत्र ।
काकोदर—सर्प ।
तिलोदक—मृतकों को तिल मिलाकर जल दिया जाता है ।
चके—चकित हुए ।
दरी—पहाड़ के बीच का नीचा स्थान, गुफा ।
सति—सत्य ।
तुड—मुख ।

निरोध—रुकावट ।
चित्र—आश्चर्य ।
दुरित-निकंदन—पापनाशक ।
अनघ—निष्पाप ।

त्रयोदश अध्याय

परिमल—सुगंध ।
करनिका—कमल पुष्प के बीच का डंठल ।
गहवर—गह्वर ।
निरवधि—असीम ।
अंड—लोक ।
अजा—माया ।
जवनिका—पर्दा ।
क्षुत—क्षुधा, भूख ।
जग दगल—सासारिक झंझट ।

चतुर्दश अध्याय

ईड्य—स्तुति-योग्य ।
तडिदिव—बिजली के समान ।
दुतर—दुस्तर, अपार ।
रीते—खाली ।
फोटक—फुटका ।
अनासक्त—निर्लिप्त, लोभ रहित ।
अगरनि—आगे ।
पटबिजना—जुगुनूँ ।
चार्यौ फुटी—दो बाह्य तथा दो अंतर के नेत्र फुट गए हैं ।
वितस्ति—बित्ता ।
त्रिसरैनु—अत्यंत सूक्ष्म कण ।
नार—जल ।
परिछिन्न—प्रछन्न ।
गुरझैं—गुत्थियाँ ।

तरुना—नई, पूर्ण ।
वीतराग—विरक्त ।
जंजर जेरी—जंजाल की डोरी ।
पावन पायौ—खाने पाए ।

पंचदश अध्याय

अवरावन—पहुँचाने ।
मंगली—मंगल टीका ।
बीजना—पंखा ।
अनावत—बुलाते हैं ।
डेल—ढेला ।
ताल—तालवृक्ष, जिसके फल से मादक द्रव्य ताड़ी निकलती है ।
गुनातीत—सब गुणों से परे ।

षोडश अध्याय

अजलचर—जो जल में न रह सके ।
हृद—झील ।
हुते—जल गए ।
अमुना—इस प्रकार ।
दह—नदी में जहाँ पाल पड़ा हो ।
बरवारौ—बलवान ।
मॉडे—गूँधे हुए, कच्चे तैयार ।
नागदमन—एक जड़ी जिससे सर्प-विष दूर हो जाता है ।

सप्तदश अध्याय

अचन—एकाएक
मधुरिपु आसन—मधु दैत्य के शत्रु विष्णु के वाहन गरुड़ ।
सौभरि—एक ऋषि ।
लेलिह—सर्प ।
झर—झार, लपट, ज्वाला ।

अष्टादश अध्याय

निदाघ—ताप, गर्मी ।
दई कौ हान्यौ—दैव का मारा ।
तीर—पास ।
सिरुह—बाल, केश ।
करच—टुकड़ा ।

एकोनविंश अध्याय

वनातर—दूसरे वन में ।
वगदीं—लौटीं ।
वृष-रवि रस्मि—वृष राशि के सूर्य की किरणें ।
भिया—भाई ।

विंश अध्याय

प्रावृट्—वर्षाकाल ।
उत्पथ—मार्ग से हटकर ।
बुढ़ी—बीरबहूटी ।
उच्छलिध्र—कुकुरमुत्ता ।
निपजे—पैदा हुए ।
ऊरमि—लहर ।
तड़ि—तड़ित, बिजली ।
छतना—छाता ।
वनौकस—वन के निवासी ।
कचोर—कटोरा ।
पुहुपवती—रजस्वला ।

एकविंश अध्याय

धूनित—ध्वनित, गुंजायमान ।
ईरति—रति, प्रेम ।
कबरि—केशपाश ।
प्रबाल—कोमल पत्ता ।

द्वाविंश अध्याय

दारिका—स्त्री ।

हविषा—हवन की सामग्री ।
वेपत—कॉपती हैं ।
आत्यंतिक—जो अधिकता से हो ।
आगामिनी—आनेवाली ।
तरहर—नीचे का भाग ।
जगपतिनी—यज्ञपत्नी, यज्ञ करनेवाले की स्त्री ।

त्रयोविंश अध्याय

जाग्यक—यज्ञ करनेवाले ।
जाचंग्या—याचना, मॉगना ।
ओदन—भात ।
मद करि मचिवौ—मत्त होना ।
चुस्—चूसनेवाले पदार्थ ।
लिह—चटनी आदि ।
रोचन—मनमोहक ।
तुरीय—तुरीय, चौथा, अंतिम अवस्था ।
अध्यास—भ्राति, झूठा ज्ञान ।
जजन—यजन, यज्ञकार्य ।
सत्र—यज्ञ ।
असूया—ईर्ष्या, द्वेष ।
ममत—अहमत्व, ममता ।
सायुज्य—जीवात्मा का परमात्मा में मिल जाना ।
अधोत्तज—श्रीकृष्ण ।

चतुर्विंश अध्याय

जीवन—जल ।
गोधन—गोवर्द्धन ।

पंचविंश अध्याय

पंचविंश—पंचतत्व की पॉच पाँच प्रकृतियाँ ।
घाती—दुष्टता, कपट ।
उरन—ऊर्ण, मेड़ा ।
थॅभनि—खंभे ।
सॉप वेठना—केंचुलि ।
रानौ—राणा, राजा ।

सप्तविंश अध्याय

दुरासद—कठोर ।

एकोनत्रिंश अध्याय

खर्जादिक—षड्व आदि सप्त स्वर ।
पारखद—पार्षद, पार्श्ववर्ती ।
आरजपथ—आर्यों की मर्यादा ।

पदावली

१—कुंती के कुँवर—पाँचो पांडव ।
नाथन-प्रतिपार-युधिष्ठिर आदि स्वामियो के पालनेवाले ।
सुतन—सुंदर शरीर ।
२—अवधेश—रामचद्र, अवध के राजा ।
३—कलोल—हिलोर मारना, खेल ।
५—परसोत्तम—उत्तम पुरुष, श्रेष्ठ ।
पटतर—समानता, बराबरी ।
६—बिसतर—फैलानेवाले ।
अतुल—जिसकी तुलना न हो सके ।
पुष्टि म्रजाद—पुष्टिमार्ग की मर्यादा । वल्लभ-संप्रदाय पुष्टि

मार्ग भी कहलाता है ।

पोषन भरन—पालन पोषण करनेवाले ।

७—रुक्मिनीनाथ—श्रीकृष्णजी ।

पद्मावती-प्रानपति—श्री विट्ठल-नाथ जी ।

उडुराज—चंद्रमा ।

मुक्तिकाङ्क्षीय—मुक्ति की इच्छा रखनेवाले ।

सकल तीरथ फलित—सभी तीर्थों का फल प्राप्त हो जाता है ।

६—लछमन—वल्लभाचार्य के पिता का नाम लक्ष्मण भट्ट था । पुरुषोत्तम—श्रीकृष्ण, श्रीविष्णु ।

चौक पुराई—आँगन के बीच में चित्रकारी बनाना ।

द्वंद्व—दुःख, कष्ट ।

१०—ध्येय—ध्यान करने योग्य

प्रतिहार—द्वार रक्षक ।

११—रसना—जिह्वा, जीभ ।

बंधु—मित्र, साथी ।

१२—सिराऊँ—ठंढा करूँ ।

१३—जस-मकरंद—यशरूपी पराग ।

षटगुन-संपन—छ गुणों से भरे पूरे ।

१४—परमारथ—दूसरों का हित ।

बिसैसी—विशेष, अधिक ।

१६—पुष्टि—पोषण, दृढता ।

भगवदीन—भागवतगण, भक्त-गण ।

सानिधि—सान्निध्य, सामीप्य ।

१८—तरंग-रंग-भरी—लहरों से भरी, जिसमें लहरें उठ रही हैं ।

मंग—माग ।

१६—कुलाँच—कुदान ।

२०—बनराई—बानरों का समूह ।

रावल—अंतःपुर ।

२१—हलधर—बलभद्र जी ।

२३—मोद भरे—प्रसन्न चित्त ।

अखिल-लोक-प्रतिपाल - समग्र विश्व के पालक ।

कुटिल—टेढे, अत्यंत दृढ़ ।

अंबुद—बादल ।

२४—ढोटा - बालक, पुत्र ।

ओभा—काति ।

लोले—टहले ।

अष्ट महासिद्धि—अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, तथा वशित्व ।

सथिया—स्वस्तिक का चित्र ।

जगमगे नग के—रत्नो के जड़े जाने से चमक रहे हैं ।

लसि—शोभा पा रही है ।

२५—खोरें—लगाए हुए ।

२६—पदिक मनि—पुखराज ।

घन गोप-बहुत से गोप, झुंड ।

२७—निकर पुरंदर—इंद्रो का समूह ।

२८—दधिकांदो—जन्माष्टमी के दूसरे दिन का उत्सव ।

ठनगन—प्रसन्नता के समय हठकर कुछ माँगना।
गेंदुक—गेंद, कदुक।
भानुसुता—कालिंदी, यमुना।
कलिंद नंदिनी—यमुना।
घुरत—फहरा रहे हैं।

२६—फूलिकै—प्रफुल्लित होकर, प्रसन्न।
समूलि कै—एकत्र करके।
कूल—किनारा।

२६—कौलव करन—ज्योतिष के ग्यारह करणों मे तीसरा। इसमें जन्म लेनेवाले गुणी विद्वान पर कृतघ्न होते हैं।
राजियैं—समूह।
पटह—नगाड़ा।

३०—ढाढिन—पुत्र जन्म के समय गानेवाले।
वागा—पहिरने के वस्त्र।
जेहरि—पैर का आभूषण, पैजेब।
गोली—(पु० गोला) दासी।
अतोली—जिसका तौल न हो सके।
ढुलिया—ढोलनी, बच्चो का पालना।
ढोली—दो सौ पान के पत्तो का एक परिमाण, ढाँढिन, ढोल बजाकर गानेवाला।
माँडो झोली—याचना करे।

३४—गोरोचन—एक सुगंधि द्रव्य, जिसके तिलक से बच्चो को दृष्टि नही लगती।
केहरि-नख—बघनखा, सोने मे मढा हुआ शेर का नख।

३५—तिवारी—तिनदुआरी, कमरा।

३६—उरैधो—हृदय पर, गोद मे।
बैयाँ—बाँह, हाथ।

३७—वारि पीवत पानी—उतार कर पानी पीती है।
दाईं—बराबर।
धैया—थन से मुख मे रोपकर दूध दुहना।

४०—लटूरी—बाल की घुँघराली लट।

४१—चखोड़ा—दिठौना।

४२—थोदिया—बच्चो का निकला पेट।
ब्रह्म-घनीभूत—विशाल ब्रह्म छोटे बच्चे के रूप में।

४६—सुरंग—लाल।
दुरंग—दो रंगा, दो रंग का।
कुरंग—हरिण।

५२—मैना—मदन, कामदेव।
सची—शची, इंद्र-पत्नी।
कौतुक—खेल, विचित्र बात।

५३—निरवध—निर्बाध।

५५—बलबीर—श्रीकृष्ण।
दुराऊं—छिपाऊँ।

६०—उपंगा—एक प्रकार का बाजा।
हथलेवा—पाणिग्रहण।

६१—उरसि—वक्षस्थल पर।

६६—जूडा, चोटी।

६९–न्याय परों—विचार करना पड़ा।
७०–केलि—क्रीडा, खेल।
दरक गई—फट गई।
आरस—आलस्य।
७२–कौंधि जात—चमक जाती है।
मया—स्नेह, दया।
७५–पाग—पगड़ी।
भृगु-रेखा—श्रीविष्णु के वक्षस्थल पर भृगु ऋषि द्वारा बनाया गया चिह्न।
खौर—चंदन का चिह्न।
खोर—गली।
७६–हेरैं—देखे।
बगमाल—बगुलो की पाँत।
७८–अलिआरो—भ्रमरावलि।
७९–सलकैं—शलाकाएँ, रेखाएँ।
८०–गाँस—प्रेम का फंदा।
अरस—रसहीन।
चायन—चवाइन, प्रेम की बात।
८७–तमचोर—कुक्कुट।
९२–उनींदे—निद्रा न आने से।
गुन—डोरी, सूत्र।
९४–दाँव—अवसर।
१००–बहु-नायक—कई स्त्रियों का प्रेमी।
१०४–निकसि जाइ—छिन जायगी, न रहेगी।
१०६–मृग-मेदन-कस्तूरी।
१०७–भाजन—बर्तन।
१०८–छाक—पकवान, मिठाई।
डला—दौरी, दौरा।
गाँठ—गठरी।
ओदन—भात।
कामरि—बहँगी।
११२–दहेड़ी—जिस पात्र में दही जमाई जाती है।
छिलछिलो—जल के आधिक्य से पतली।
तमी—पात्र।
छैया—छैला, पुत्र।
११५–डगरौंगी—चल दूँगी।
११७–अति भर—अधिक भार, बोझ।
११९–ततथेई—नृत्य के बोल।
उरप तिरप—नृत्य की गति।
१२०–अमल—निर्मल, स्वच्छ।
वलित—घिरे हुए।
१२१–नग—पर्वत।
अपनपौ—अहंता।
१२८–सारंग—हरिण।
गहरु—गंभीरता, मान।
इस पद में सारंग, कल्याण, भैरो, कान्हड़ा आदि रागों के नाम लाए गए हैं।
१२९–कई—कही।
१३०–सैनी—शैया।
१३१–आप काज महाकाज—अपना कार्य आपही देखने से पूरा होता है।
१३३–आरति—दुःख, कष्ट।
राग—अनुराग।

१३४–अनेरी—हठीली।
सुलफ—कोमल।

१४८–उल्हैया—उल्लास, प्रसन्नता।
कुल्हैया—टोपी।

१५०–बंकुस—टेढी मेढ़ी चाल।
दमामो—बड़ा नगाड़ा।
सचु—सुख।

१५५–सिकोहै—शोभा बढाते हैं।
कोने—नेत्रो के कोने।
बाध्यो—बढा।

१५६–मयार—हिंडोले के खंभो के बीच का भाग जिससे डॉडी या रस्सी लटकती है।
अनगना—अंगना, स्त्रियॉ।

१६०–झोटन—हिंडोले का झोका।
रमकन—पेग मारने में।

१६५–मरुवा—मयार, वह लकड़ी जिस पर हिंडोले की रस्सी रहती है।
प्राची कोरैं—पूर्व के कोने।
अनुहोरैं—समान हो गए।

१६६–तारी—समाधि।
वंशीवट—ब्रज मे एक स्थान है, जहॉ बट-वृक्ष के नीचे कृष्ण जी ने वंशी बजाई थी।

१६९–लहकन लागी—बहने लगी।
श्रमकनि—पसीने की बूँदे।

१७०–पिछौरा—दुपट्टा।
गैंदुवा—तकिया।
फौंदा—फुन्ना।

१७२–हुमेल—गले का गहना।
तरौना—तरकी, कर्णफूल।
फबो—शोभित होना।

१७३—अनगन-अगणित, असंख्य।
बंदन—चोत्रा।
अट गए—भर गए।
ठराईं—ठहर गईं, रुक गईं।

१७५–नवरंगी—नए रंग या नौ रंग से युक्त।

१७६–मुरज—एक बाजा।
ऐंड़—हठ।
मेंड—मर्यादा।

१७७–ओलिन—झोलियॉ।
गहेलि–गंभीर, मान से युक्त।

१७८–उनयो—फैला, छाया।
निचोयो—निचोड़ कर निकाला हुआ।
अनाघात—निरंतर।

१७९–कोद—धूम।
कौंधन—चमकती है।
हेली—हे सखी।
अरगजा—सुगंधि द्रव्य।
सीमंत—मॉग।
अँकवारी—गले लगाना, दोनो हाथ के बीच लेना।

१८१–धनी—स्वामी।
अनी—समूह, भीड़।

१८२–ऐन—गृह, भंडार।
चौहटा—बजार।

टोल—महल्ला, झुंड ।
सारव—पुरवा ।
१८३-नाइ—नवाकर, नीचेकर ।
अरगाई—अलग होकर ।
ढुराई—हिलाकर ।
गहर—देर ।
सौंधे—सुगंध ।
पटोरन—रेशमी वस्त्र ।

———

सहायक ग्रंथ-सूची

जिन ग्रंथो से इस संग्रह के संपादन, भूमिका तथा कवि-चरित्र के लिखने मे सहायता ली गई है, उनके लेखको तथा संपादको के प्रति आभार मानते हुए कृतज्ञता प्रदर्शनार्थ उन सभी की सूची यहाँ दी जाती हैं। अन्य हस्तलिखित तथा छपी पुस्तको का उल्लेख भूमिका में किया गया है, जिनसे पाठ ठीक करने में सहायता मिली है।

१—भक्तनामावली—ध्रुवदासजी कृत तथा बा० राधाकृष्णदास द्वारा संपादित संस्करण।

२—भक्तमाल—नाभादास कृत तथा प्रियादासजी कृत 'भक्ति रस-बोधिनी' टीका। निजी हस्तलिखित प्रति।

२—दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता—डाकोर का संस्करण पृ० २८-३५, ३८५-७।

४—उत्तरार्द्ध—भक्तमाल—भारतेंदु हरिश्चंद्र कृत।

५—भक्तकल्पद्रुम—राजा प्रतापसिंह पंडरौना कृत भक्तमाल की गद्य टीका।

६—भक्तनामावली—भगवतरसिक कृत।

७—श्रीनाथजी की प्राकट्य वार्ता।

८—शिवसिंह सरोज—उन्नाव-निवासी शिवसिंह सेंगर कृत, सन् १८७८ ई० का लखनऊ संस्करण।

९—सुकवि सरोज—टीकमगढ सनाढ्यदर्श ग्रंथमाला।

१०—नवरत्न—मिश्रबंधु कृत।

११—मिश्रबंधु-विनोद—मिश्रबंधु-त्रय कृत पुराना तथा नया संस्करण।

१२—तुलसीदासजी की जीवनी—पं० रामचंद्र शुक्ल कृत।

१३—तुलसीदासजी की जीवनी—बा० श्यामसुंदरदास तथा पं० पीतांबरदत्त बडथ्वाल कृत।

१४—हिंदी साहित्य का इतिहास—पं० रामचंद्र शुक्ल।

१५—हिंदी भाषा और साहित्य—रायबहादुर बा० श्यामसुंदरदास बी० ए० कृत।

१६—मॉडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर आव हिंदुस्तान—डा० सर जॉर्ज ग्रियर्सन कृत।

१७—इस्त्वार दलालितरेत्योर इंदीन—गार्सिनद तासी कृत, द्वितीय सस्करण भा० २, पृ० ४४५—७।

१८—हिंदी का आलोचनात्मक इतिहास—प्रो० रामकुमार वर्मा एम० ए० कृत।

१६—हस्तलिखित पुस्तकों की खोज की रिपोर्टें—नागरी प्रचारिणी सभा, काशी द्वारा प्रकाशित।

२०—रत्नावली दोहा संग्रह।

२१—रत्नावली चरित—मुरलीधर चतुर्वेदी कृत।

२२—शूकरक्षेत्र माहात्म्य—कृष्णदास कृत।

२३—वर्षफल—कृष्णदास कृत।

२४—अष्टसखामृत—प्राणेश कवि कृत।

२५—मूल गोसाईं चरित—बाबा वेनीमाधवदास कृत।

———

पत्र-पत्रिकादि में लेख

१—'नंददास'—हिन्दुस्तानी भा० ५ सन् १६३५ पृ० ३७६-८६ ।

१—'रुक्मिणी मंगल का परिचय'—माधुरी व–८ भा० २ पृ० सं ६३४–८, पं० जवाहिरलाल चतुर्वेदी लिखित ।

३—'महाकवि नंददास'—माधुरी व० ६ खं० १ पृ० २०१–१०, पं० जवाहिरलाल चतुर्वेदी लिखित ।

४—'महाकवि नंददास और उनका काव्य'—विशाल भारत दिसंबर सन् १९३१, पृ० ७२९–३६, पं० बनारसीदास चतुर्वेदी लिखित ।

५—'पंचाध्यायी'—हरिश्चंद्र चंद्रिका खं० ६ सं० ६–७ दिसं० जन० सन् १८७८-९ ई० । पद संख्या १–१३८, १३६–२८४ । इसमें पंचाध्यायी के साथ रास शब्द नहीं है और न अध्याय दिए गए हैं । भूमिका भी नहीं दी गई है, जिससे संपादन के आधारों का पता लग सके ।

६—'स्याम सगाई'—विशाल भारत । सन् १६३१, पृ० ६५४–६ ।

७—'रुक्मिणी मंगल' „ जून सन् १६२६, पृ० १२६–४० ।

८—'सिद्धात पंचाध्यायी'„ जुलाई सन् १९३३, पृ० २२–४ ।

६—'महाकवि नंददास', „ जून सन् १९३९ ।

रामदत्त भारद्वाज एम० ए०, एल–एल० बी० लिखित ।

१०–माधुरी 'कवि चर्चा' आश्विन ३०६ तु० सं० ।

'गोस्वामीजी का जन्मस्थान'—गोविंद-वल्लभ सोरो (एटा)

११–'तुलसीदास और नददास के जीवन पर नया प्रकाश'–हिंदुस्तानी जुलाई सन् १९३६ ले० अच्युत दीनदयाल गुप्त एम० ए० ।

१२–'नंददास'—ना० प्र० पत्रिका व० ४४ सं० १६६६ ।

१३–'महाकवि नंददास का जीवन चरित'–हिंदुस्तानी जुलाई १९४७ ।

१४–'अष्टछाप पर मुसल्मानी प्रभाव'—वीणा, ज्येष्ठ १६६२ ।

१५–'हिंदी काव्य मे अश्लीलता'–वीणा, वादो १६६२ ।

१६–सुधाकर, लाहौर, जन० १६३९, गुरॉदिचा खन्ना का लेख—'महाकवि नंददास संबंधी एक नई खोज' ।

पदानुक्रमणिका

अ	पद संख्या
अच्छय तृतिया अच्छय सुखनिधि	१४१
अति आछी तनक कनक की दोहनी	३६
अनत रति मान आए हो जू	६६
अब नैंकु हमहिं देहु कान्ह गिरिवर	११७
अरि चलि दूलह देखनि जाँय	५८
अरी चलि नवल किशोरी गोरी	१८३
अरी तेरी सेज की मुसक्यान	६८
अरी प्यारी कैं लाल लागे देन	६२
अली फूल को हिंडोलो बन्यो	१५२
अहो तो सों नंदलाल झगरौंगी	११५

आ	
आइ क्यो न देखौ लाल, अपनी प्यारी	१३८
आई है बड्डी झूलै झलके चंदा मोर के	१५३
आए तहाँ नंदलाल पहिरे फूल माला	१५६
आगम गहरि, गहरि गरजन सुनि	१४६
आगे आगे रथ भगीरथ जू को	१८
आजु अरुन अरुन डोरे दृगनि	८५
आजु छबि देखि आय मानिनी की	१३७
आजु मेरे आए माई नदकिसोर	८७
आजु मेरे धाम री नागर नंदकिसोर	६३
आजु साँवरे सलौने सो होरी	८७
आजु हरि खेलत फागु बनी	१८१
आपुन चलिए जु लालन	१३२
आयो आगम नरेश देस देसन मे	१५०
आलस उनींदे नैन लाल तिहारे	९२

आली मंद मंद मुरली धुनि बाजत १२५
आली सावन की पून्यों हरिवारी १६१
आवती ही जमुना भरि पानी ८४
आवरी बावरी ऊधरी बाग में ४३

इ

इक दिसि वर व्रज बाला, इक दिसि १८६
इहि काहू का ढोटा स्याम सलोने ४५

उ

उपरना याही कै जु रह्यो ६४

ए

ए तुम पहिलै तौ देखों न आई १२७
एरी सखी निकसे मोहन लाल १७८
एरी सखी प्रगटे कृष्ण मुरारी २७

ऐ

ऐसो को है जो छुवै मेरी मटुकी ११३

क

कहो जू दान लैहौ कैसे हम तो ११४
कान्ह कुँवर के कर पल्लव पैं ११८
काहे आइ न देखिए रानी जू १०७
काहे कों प्यारे तुम सखी भेष कीनो १३५
कुंज कुटीर मिलि जमुना तीर १७४
केलि करि प्यारी-पिय पौढ़े चारु ७०
केलि कला कमनीय किसोर ७६
कृष्ण जनम सुनि अपने पति सो ३०
कृष्ण नाम जब तैं श्रवन सुन्यौ री ५४

ख

खेलत नद को नंदन होरी १८२
खेलत रास रसिक रसनागर १२०

ग

गाइ खिलावत सोभा भारी ३८
गावत चड़ी हैं हिंडोरे सूही सारी सोहे १५५
गोकुल की पनिहारी पनियाँ भरन ८३
गोकुल की पौरि रच्यौ है हिंडोरना १५४

च

चंचल लै चली री चितचोर ५६
चलिए कुँवर कान्ह सखी भेष कीजै ६४
चली है कुँवरि राधिका खेलन होरी १८५
चली है भरन गिरिधरनलाल को बनि बनि अनगन गोपी १८३
चहुँ दिसि टपकन लागी बूँदैं ११०
चाँपत चरन मोहनलाल १०५
चित्र सराहत चितवत मुरि मुरि ३५
चिबुक कूप मधि पिय मन पर्यो ६३
चिरैया चुहचानी सुन चकई की बानी ३२

छ

छयन मगन बारे कन्हैया ३६
छोटो सो कन्हैया मुख मुरली ३३

ज

जगावति अपने सुत को रानी ३१
जब कूद्यो हनुमान उदधि जानकी १६
जमुना पुलिन, सुभग वृन्दाबन ४८
जयति रुक्मिनी नाथ पद्मावती ७
जरि जाओ री लाल मेरे ऐसो कौन ८१
जल को गई सुधि बिसराई ८०
जहँ तहँ बोलत मोर सुहाए १४६
जागे हो रैन सब तुम नैना अरुन हमारे ६१
जानन लागे री लालन मिलि १०६

जुरि चली हैं वधावन नंद महर २६
जो गिरि रुचे तो बसो गोवरधन २२

झ

झूलत मोहन रंग भरे गोप बधू १५७
झूलत राधा मोहन कालिंदी के कूल १५८

ठ

ठाढो री खिरक माई कौन को किशोर ४६

ड

डला भरि हो लाल, कैसे कै उठाऊँ १०८
डोल झुलावति सब ब्रज सुंदरि १६२
डोल झूलत हैं श्री गिरिधरन झुलावत १६३

ढ

ढीले ढाले पग धारत ढीली पाग ६६

त

तातै श्री जमुना जमुना जी गावौ १५
तुम रँग भीने हो सुनत ही गई ८६
तू नहिं मानन देति आलरी १३३
तेरी भौंह की मरोर तैं ललित ७२
तेरी री नव जोबन के अँग रँग ६५
तेरे ही मनायवे ते नीकौ री जगत मान १४०
तेरोई मान न घट्यो आली री १३१

द

दंपति पौढेई करत रस बतियाँ ६७
दीपदान दै हटरी बैठे नंद बबा के साथ ६०
दूलह गिरिधर लाल छबीलो १४५
दूलह गिरिधर लाल छबीलो ६०
दूलह दुलहिन सुरँग हिंडोरे १६५
देखन दै मेरी बैरन पलकैं ७६
देखोरी नागर नट निरतत ११६
दौरी दौरी आवत मोहि मनावत १२६

ध

धरैँ टेढी पाग चन्द्रिका टेढी ७४
धरैँ बाँकी पाग चंद्रिका बाँकी ७५

न

नद को लाल ब्रज पालनैँ झूलै ३४
नंद गाउँ नीको लगत री २१
नंद भवन को भूषन माई ५१
नंद महरि घर मिसि ही मिस ८२
नंदराय जू के द्वार भोरहि हौं उठि धाऊँ ४२
नद सहन गुरुजन की भीर ५५
नयो नेह नयो मेह नई भूमि हरियारी १४८
निकसि कुँवर खेलन चले १७७
निकसि ठाढ़ी भई री चढि १५१
निकसो नंदढुलारो आज १६१
निरंजन अजन दिए सोहै नंद के ४१
निरखन चलीं गिरिधरन लाल कों १७३
निरतत गिरिधरन संग रंगभरी नागरी १२४
नेह कारनै जमुनाजी प्रथम आईं १७

प

पहिले तौ देखौ आइ मानिनी की १३६
पीताबर काजर कहाँ लग्यो हो लाला ६५
प्यारी तेरे लोचन लौंने लौने ५६
प्यारे, पैयाँ परन न दोनी १३०
प्रकटित सकल सृष्टि आधार १०
प्रातकाल नंदलाल पाग बनावत ४७
प्रात समै श्री वल्लभ सुत के ५
प्रात समै श्री वल्लभ सुत को ११, १२

फ

फूलन के महल बने फूलन बितान १७१
फूलन को मुकुट बन्यो फूलन को १७०
फूलन लागे हो पिय, पान खात १६०
फूलन सों बैनी गुही फूलन की १७२
फूलन के माला हाथ, फूली गिरै आली ४

ब

बडे खिरकि में धूमरि खेलत १८०
बधाई री बाजति आज सुहाई २५
बन ठन कहाँ चले ऐसी को मन भाई १०४
बन ते आवत गावत गौरी ८८
बनहु से आवत गावत गौरी ८९
बरसाने की सीम खेलत रंग रह्यो है १७९
बरसाने तैं दौरि नारि इक नंद ५२
बलि बामन हो जग पावन करन १४४
बृंदाबन वंसी बट जमुना तट १२२
वेसर कौन की अति नीकी ६९
ब्रज की नारी डोल झुलावे १९५
ब्रज की नारी सब मिलि आईं २४
ब्रज में खेलत होरी मोहन प्यारो १८८

भ

भजौ श्री वल्लभ सुत के चरन ८
भलैंजू भलैं आए मो मन भाए १००
भले भोर आए नैना लाल ६८
भक्त पै करी कृपा श्री जमुना जी ऐसी १४
भाग सुहाग श्री जमुना जू दैई १६
भोजन भए लाल नीकी विधि ११२

म

माई आजु तो गोकुल गाँव कैसो १८
माई आजु तो हिंडोरे झूलैं १६६

माई जे दोऊ कौन गोप के ढोटा ४४
माई झूलत नवल लाल झुलावत १६७
माई फूलन को हिंडोरा वन्यो १५६
माई फूलन को हिंडोरा वन्यो १६८
माधो जू तनिक सो वदन सदन ४०
मिस ही मिस हो आवे गोकुल की नारि ६०
मेरे री वगर आवत छवि सों १०२
मोहन जींमत छाक ग्वाल मंडली माहिं १११

र

रंगमहल रंग राग तहँ वैठे दूलह लाल १०३
रँग रँगीलो नंद को लाल रँगीली प्यारी १६४
रँगीले हिंडोरे दोऊ मिली झूलत १६२
राखी नंदलाल कर सोहै १४३
राखी वाँधत गरग स्याम कर १४२
राजे गिरिराज आज गाय गोप ११६
राधा वनी रँग भरी होरी खेलैं १८४
राधिका तजि मान मया करि ७३
रामकृष्ण कहिए उठि भोर २, ३
रास में रसिक दोऊ आनँद भरि नाचत १२६
रीझी हो प्यारे हरि को रास देखि १२३
री चलि वेगि छबीली हरि सो खेलन फाग १८२
रैनि री घटत जात सुन री सयानी बात १३६

ल

लहकनि लागी वसंत वहार सखि १६६
लाडिली न मानै लाल आपु पग धारो १-३४
लाल वने रँग भीने गिरिधर लाल ६१
लाल सँग रति मानी हम जानी १००
लाल सिर पाग लहरिया सोहै १४७

व

वृंदावन वंसी वट जमुना तट ११४
वेद रटत व्रह्म रटत संभु रटत १

श्र

श्री गोकुल जुग जुग राज करौ — १३
श्री गोपाल गोकुल चले हो — २३
श्री लछुमन घर बाजत आजु बधाई — ९
श्री वल्लभ सुत के चरन भजौ — ६
श्री वृषभानु नृपति के आँगनि — ५३
श्री व्रजराज जू के आँगन बाजत — २९

स

सजनी आनद उर न समाऊँ — ५८
सब अँग छींटै लागी नीको जन्यौ बान — १८९
सब व्रज गोपी रहीं तक ताक — २०९
सरद निसा को चद्रमा री तेरे — ७१
साँझ समै बन तैं हरि आवत — ७७
सारँग-नैनी री काहे कियो एती मान — ११८
साँवरे प्रीतम सग राजत रंग भीन — २२१
साँवरो पीतम जहाँ बसै सो — ७८
सिंधु पार पहुँच्यो पवन पूत दूत श्री रघुनाथ को — २०
सिर सोने को सूत सुसोहत पगिया — ३७
सुंदर मुख पै वारौं टोना — ६६
सुरंग दुरंग सोहत पाग लालकैं — ४९

ह

हरि संग होरी खेलन आजु — १७६
हाँकै हटक हटक गाय ठहक — ५०
हाँ हाँ निकसे हे मोहनलाल — १९०
हिंडोर झूलत गिरिधरलाल — १६३
हिंडोरे माई झूलत गिरिधरलाल — १६४
हो हो होरी खेले नंद को नवरंगी — १७५

———

सभा के कुछ नवीन प्रकाशन

भिखारीदास ग्रंथावली

संपादक—श्री पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र

भिखारीदास रीतिकाल के अंतिम आचार्यों में विशिष्ट आचार्य और कवि हो गए हैं। इनके दो ग्रंथ काव्यनिर्णय और छंदार्णव बहुप्रचलित ग्रंथ रहे हैं। फिर भी इन ग्रंथों के वैज्ञानिक और समीक्षात्मक संस्करण नहीं थे। आकर-ग्रंथमाला के अंतर्गत भिखारीदासजी के चारों साहित्यिक ग्रंथों—रससारांश, शृंगारनिर्णय, छंदार्णव तथा काव्यनिर्णय—का वैज्ञानिक संपादन आधुनिक पद्धति पर प्रस्तुत किया गया है। इसमें प्रत्येक ग्रंथ के पाठांतर पादटिप्पणी में यथालब्ध हस्तलिखित तथा मुद्रित प्रतियों के आधार पर दिए गए हैं। परिशिष्ट में प्रत्येक ग्रंथ के छंदों की प्रतीक-सूची और प्रत्येक में प्रयुक्त शब्दों के अर्थों का विस्तृत कोश भी दिया गया है। संपादक ने आरंभ में संपादन-सामग्री और सपादन-शैली का अनुसंधानपूर्ण विवेचन किया है। पहले खंड में लगभग चार सौ पृष्ठों में रससारांश, शृंगारनिर्णय और छंदार्णव संकलित हैं। दूसरे खंड में लगभग ३०० पृष्ठों में केवल काव्यनिर्णय है। मूल्य प्रथम खंड ७॥), द्वितीय खंड प्रेस में है।

तुलसी की जीवन-भूमि

लेखक—श्री चंद्रबली पाडेय

गोस्वामी तुलसीदास जी के जन्मस्थान तथा जीवनवृत्त के संबंध मे कई भिन्न भिन्न मत साहित्यसमाज में प्रचलित हैं। प्रस्तुत पुस्तक में विद्वान लेखक ने तर्क और अध्ययन को कड़ी कसौटी पर रखकर उन समस्त मतों का विवेचन करते हुए, स्वयं गोस्वामीजी की रचनाओं से, यह निष्कर्ष निकाला

है कि वे कहाँ के थे और उनका जीवनवृत्त क्या था। लेखक ने गोस्वामी जी के समसामयिक संतो और कवियों की रचनाओं की, सरकारी कागज पत्रों की तथा ऐसी समस्त अन्यान्य सामग्री की छानबीन अत्यंत बारीकी से की है। और उन्हीं के आधार पर अपना पक्ष उपस्थित किया है! विद्वान लेखक की दृष्टि बड़ी पैनी और सूक्ष्म तथा सिद्धांत सर्वथा मौलिक हैं। तुलसी का अध्ययन करनेवालों के लिए इस ग्रंथ का परिशीलन आवश्यक ही नहीं अनिवार्य है। डबल क्राउन १६ पेजी, सजिल्द, ३०० से अधिक पृष्ठोंवाली इस पुस्तक का मूल्य केवल ३)।

पुरानी राजस्थानी

लें०—डा० एल० पी० तेस्सितोरी

अनु०—श्री नामवर सिंह

प्रस्तुत पुस्तक डा० तेस्सितोरी के इंडियन ऐंटिक्वेरी में धारावाहिक रूप से प्रकाशित होनेवाले एक निबंध का अनूदित रूप है। इसके विषय में डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या का कहना है कि पुरानी राजस्थानी की उच्चारणरीति रूपत्व और वाक्यरीति के पूरे विचार के साथ तेस्सितोरी की आलोचना ऐसी महत्वपूर्ण है कि इसे यदि राजस्थानी (मारवाड़ी) तथा गुजराती भाषातत्व की बुनियाद कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी। सचमुच डा० तेस्सितोरी ने राजस्थानी भाषा का ऐतिहासिक व्याकरण प्रस्तुत करके बहुत ही महत्वपूर्ण कार्य किया है। अभी तक आधुनिक भारतीय भाषाओं में किसी भाषा का ऐतिहासिक व्याकरण नहीं लिखा गया था। अनुवादक ने बड़ी ही सुबोध शैली में उसका अनुवाद करके अपभ्रंश और आधुनिक भारतीय भाषाओं के बीच की खोई हुई कड़ी को जोड़ दिया है। यह पुस्तक शोध कार्यकर्ताओं के लिये उपयोगी ही नहीं आवश्यक भी है। डबल डिमाई १६ पेजी, पृ० २१२, आकर्षक कवर युक्त पक्की जिल्द, मूल्य ४) मात्र।

पाषाण-कथा

ले०—राखालदास वंद्योपाध्याय

अनुवादक—श्री शंभुनाथ वाजपेयी

भारत में युग परिवर्तन तथा राज परिवर्तन के साथ पाषाण का उपयोग बदलता रहा परंतु रहा वह महान घटनाओं, महापुरुषों और युगप्रवृत्तियों का साक्षी। मनस्वी लेखक की अंतर्दृष्टि और लेखनी ने प्रस्तुत पुस्तक में उस जड साक्षी को चैतन्यता प्रदान कर उसे मुखर बनाया है। इस ग्रंथ का आधार पुरातत्व और इतिहास है। तथापि इसमें आख्यायिका के प्रायः सभी गुणों का निर्वाह हुआ है। पाठक कहीं भी पाषाण के वस्तुरूप से टकराता नहीं प्रत्युत ज्ञानवर्धन के साथ प्रचुर आनंद का अनुभव करता है। 'पाषाणेर कथा' का यह भाषांतर अविकल किंतु बड़ा ही सजीव और सुंदर हुआ है। एंटिक कागज, सजिल्द, २०० पृष्ठोंवाली इस पुस्तक का मूल्य २॥) मात्र।

नहुष नाटक

लेखक—महाकवि श्री गिरिधरदास

संपादक—श्री व्रजरत्नदास

'नहुष नाटक' भारतेंदु हरिश्चंद्र जी के पिता श्री गिरिधरदास जी की लेखनी से प्रस्तुत हुआ है। भारतेंदु जी ने 'नहुष नाटक' को हिंदी का सर्वप्रथम नाटक कहा है। वह नाटक अब तक अप्राप्य था, जिसको आधुनिक रूप में संपादित कराके सभा ने प्रकाशित किया है। भूमिका में नाटक-साहित्य की उपयोगी विवेचना भी है। डबल डिमाई, १६ पेजी। १३२ पृष्ठोंवाली पुस्तक का मूल्य केवल १।=)।

असीम

ले०—श्री राखालदास वंद्योपाध्याय

अनुवादक—शंभुनाथ वाजपेयी

प्रस्तुत पुस्तक श्री वंद्योपाध्याय जी के परवर्ती मुगलकालीन ऐतिहासिक उपन्यास का अनुवाद है। लेखक प्रसिद्ध पुरातत्त्व शास्त्री थे, परंतु उनकी

अमर यशगाथा के स्तंभ उनके ऐतिहासिक उपन्यास हैं जो किसी भी साहित्य के लिए गौरव की वस्तु है। वंग साहित्य की औपन्यासिक परंपरा में श्री राखलदास जी के ऐतिहासिक उपन्यास अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। आरंभ में लेखक का जीवनवृत्त और प्रस्तुत उपन्यास का विस्तृत ऐतिहासिक विवेचन है। डबल क्राउन १६ पेजी, सजिल्द, ५०६ पृष्ठोंवाली इस पुस्तक का मूल्य केवल ४)।

चंदेलवंश और उनका राजत्वकाल

लें०—केशवचंद्र मिश्र, एम० ए०, बी० टी०, साहित्यरत्न

भारतीय इतिहास मे चंदेलो का स्थान कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। विंध्य मेखला और उसके जंगली प्रदेशो ने इतिहास के कई विकट कालो में भारत की राजनीतिक तथा सांस्कृतिक शक्ति का गोपन, संरक्षण तथा परिवर्धन किया है। प्राचीन काल मे एलो, चेदियो तथा वत्सो ने और परवर्ती भारशिवो, नागो और वाकाटको ने अपनी शक्ति-साधना के लिये विंध्यशृंखला और विंध्याटवी का उपयोग किया था। हर्ष के पाश्चात् तो इस भूभाग मे प्रायः सैनिक अभियान तथा राजनैतिक उथल-पुथल रहती थी। देश की इन विशृंखलित कड़ियो मे संधि और संतुलन स्थापित करने में इस नई शक्ति का बड़ा हाथ था। यह शक्ति चंदेलो की थी। पर्वती तथा जंगली प्रदेशों में उपनिवेश तथा नगर-स्थापन, सेना तथा शासन का संगठन, कृषि तथा व्यापार का संरक्षण, जनहित के कार्य, साहित्य, कला तथा धर्म को आश्रय आदि सभी क्षेत्रों में चंदेलो की महत्वपूर्ण देन है। प्रस्तुत पुस्तक मे लेखक ने चंदेलो के इतिहास का प्रणयन कर भारत के एक गौरवमय युग का उद्घाटन किया है। डबल डिमाई १६ पेजी, सजिल्द, ३४० पृष्ठोवाली इस पुस्तक का मूल्य केवल ८)।